अब न बसौं इह गाँव

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। नीचे बैठा लिपिक इसका विवरण लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०

सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

पंजाबी का कालजयी उपन्यास

अब न बसौं इह गाँव

लेखक एवं अनुवादक
कर्त्तार सिंह दुग्गल

साहित्य अकादेमी

Ab Na Bason Ih Gaon : Hindi translation by Kartar Singh Duggal of his Punjabi novel. Sahitya Akademi, New Delhi

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवनतारा भवन, 23 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053

172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुम्बई 400 014

304-305, अन्ना सालई, तेनामपेट, मद्रास 600 018

ए डी ए रंगमंदिर, 109, जे.सी. मार्ग, बैंगलौर 560 002

ISBN : 81-260-0123-2

लेज़रसेटिंग : फाइन इम्प्रेशन्स, नयी दिल्ली 110 026

मुद्रक : सुपर प्रिंटर्स, दिल्ली 110 051

भूमिका

उपन्यास के पहले कुछेक वाक्य ही पढ़ पाया था कि लगा जैसे दुग्गल जी ने मेरी ऐसी रग को छेड़ दिया है जो मुझे बेकाबू कर के छोड़ेगी। यह तो मेरे ही शहर की कहानी थी, वही इलाका, वही माहौल, वही जाने-पहचाने नाम, वही तर्ज़े-कलाम, वही मेरे दिल को गहरे में छूने वाली मात-बोली। मैं सचमुच उद्वेलित हो उठा। बहुत दिन बाद मैं उसी इलाके में फिर से घूम-फिर रहा था, उसी माहौल में सांस ले रहा था जो माहौल आज़ादी की पूर्व वेला में मेरी आंखों के सामने ही बिखरने-टूटने लगा था। वही दर्दनाक मंज़र, जो इसलिये दर्दनाक नहीं था कि सदियों तक एक साथ रहनेवालों हमसायों की आंखों में खून उतर आया था, बल्कि इसलिये कि ऐसी जीवन पद्धति जिसमें सभी भागीदार थे, जिनकी ज़बान एक थी, जिनका रहन-सहन एक-सा था, जिनका लहजा, हास्य-विनोद, ज़िन्दगी को देखने-समझने का नज़रिया एक-सा था, और जो एक तरह से एक-दूसरे का हाथ थामें, एक-दूसरे के सुख-दुख में शरीक होते हुए, अपने इतिहास की कितनी ही शताब्दियाँ लाँघ आये थे; उनकी इस साझेदारी का खून किया जा रहा था।

पहले पन्ने पर ही एक तरफ सतभराई और राजकर्णी दिन-रात एक साथ रहने वाली सहेलियां हैं, दूसरी ओर सोहणेशाह और अल्लादित्ता की ज़िन्दगी भर की, परस्पर विश्वास और अटूट स्नेह की नींव पर खड़ी दोस्ती है और उधर पृष्ठभूमि में दंगों की आग भड़कने लगी है और फ़िरकावाराना सियासत के भयानक नारे गूँजने लगे हैं, धमियाल के निवासी तरह-तरह की अफ़वाहें सुनते हुए बेसुध हुए जा रहे हैं। ऐसा न कभी देखा, न सुना। धमियाल का कस्बा, बड़े शहर से कुछ ही दूरी पर बसा हुआ, एक छोटा जज़ीरा-सा नज़र आने लगता है, जिसके चारों ओर आग के शोले उठने लगे हैं, पर जहां सब की आंखें धमियाल के निवासियों पर लग जाती हैं कि अब यहां क्या होगा, इस संकट भरे माहौल में यहां के किरदार कैसी भूमिका निभाएंगे ? एक तरफ़ ज़िन्दगी भर की कदरें-कीमतें, प्यार और मुहब्बत की साझी ज़िन्दगी, दूसरी तरफ़ खून आलूदा मज़हबी जुनून की तलवार, और उसके पीछे तरह-तरह की साज़िशें, हथकण्डे, भड़काव, मानव प्रेम और इन्सानी कदरों-कीमतों की नाजुक-सी जान इनका कैसे मुकाबला कर पायेगी ?

यह उपन्यास ऐतिहासिक दस्तावेज़ नहीं है, दुग्गल जी ने सचमुच घटनेवाले घटनाक्रम को आधार बनाते हुए भी उस विकराल समय का इतिहास नहीं लिखा है। यह इन्सानी रिश्तों

की कहानी है, इसमें इन्सान ही नहीं मरते, कदरें भी मरती है, देश का बंटवारा ही नहीं होता, साझी संस्कृति भी कट-कट जाती है और हम जो दर्दनाक चीख़ बार-बार सुनते हैं, वह किसी दम तोड़ते, निर्दोष ज़ख्मी इन्सान - हिन्दू, मुसलमान या सिक्ख - की ही न हो कर घयल इन्सानियत की चीख़ सुनने लगते है।

किताब के पहले पन्ने से ही लेखक हमें ऐसे माहौल में ले जाता है जहां गिने-चुने किरदार नहीं हैं, कोई नायक-नायिका नहीं है, यह सारी कौम की कहानी है, इसलिये एक-एक प्रकरण में लेखक दसियों नाम गिना जाता है दसियों घटनाओं की चर्चा कर जाता है। कुछेक वाक्य पढ़ जाने पर ही हम धमियाल के अन्दर चलने वाली हलचल में शामिल हो जाते हैं। किताब की सबसे बड़ी खूबी भी मुझे यही लगी कि एक छोटा-सा कस्बा सारे देश का बल्कि कौमें की जिन्दगी का एक सजीव धड़कनों भरा प्रतीक बन कर उभरता है। पढ़ते हुए लगता है कि लेख ने बड़ी बेचैनी में यह किताब लिखी है, यह कहानी कही है, एक किरदार की चर्चा एक वाक्य में करते हैं ते झट से कोई दूसरी, उससे जुड़ी घटना आंखों के साने घूम जाती है और पहलू-दर-पहलू कहानी उजागर होती चली जाती है।

ज़माना बीत चुका है जब देश का बंटवारा हुआ था। पर लोक उसे आज तक नहीं भूल पाये। संवेदनशील लेखक बार-बार उस मौज़ूँ को पकड़ते हैं, बार-बार हमारे दिल और दिमाग को झंझोड़ते हैं, बार-बार हमें याद दिलाते हैं कि जिस क़ीमत पर तुमने देश का बंटवारा किया था, वह बेशकीमत विरासत-इस साझी संस्कृति को रौंद कर किया गया था।

लेकिन इस उपन्यास से एक और आवाज़ भी उठती है, जनसमें लेख का यह विश्वास, प्रकाश की लौ की तरह समूचे औपन्यासिमक क्षितिज को रोशन कर देता है कि देस के बंटवारे करना ते आसान है लेकिन इन्सानी कदरें-कामतें कभी मरती भी नहीं हैं, अलग-अलग मज़हब होते हुए भी जनसाधारण आज भी मज़हबी तंगनज़री के घुटन भरे दबाव से छुटकारा पाना चाहते हैं। वे उस नज़रिये को खो नहीं बैठे हैं जे उन्होंने इस देश के हज़ारों साल के इतिहास मे ग्रहण किया और जिसे वे आज भी अपने दि में संजोये हुए हैं।

यह अटूट विश्वास लेखक की इस कालजयी पुस्तक की प्रेरणा का स्रोत है।

पुस्तक की प्रति घर-घर पहुंचे, दिलों को रोशन करे, पाठकों को सोचने पर बाध्य करे, देश का भविष्य उज्जवल बनाने में सहायक हो, यही हार्दिक कामना है।

- **भीष्म साहनी**

पहला खण्ड

1

सोहणे शाह सोचता – आज चारों ओर खामोशी क्यों छायी हुई है ? जिन खेतों में किसान साँझ-सवेरे हल चलाते, रखवाली करते, ढोर-डंगर चराते, हँसते-खेलते, माहिया की तानें उड़ाते दिखाई दिया करते थे, आज उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे मौन क्यों हैं। रुंडमुंड बबूल के पेड़ पर एक मैना अकेली बैठी थी। खानकाह के खंडहरों में हवा सीटियां बजा रही थी। सोहणे शाह की दूध जैसी सफेद दाढ़ी बिखर-बिखर जाती और वह एड़ियां उठा-उठाकर, आँखें फाड़-फाड़कर देखता, दूर क्षितिज तक चारों ओर उसे कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा था।

सोहणे शाह की समझ में कुछ भी न आ रहा था।

आखिर उसने सोचा – कहीं गाँव में कोई अपशकुन न हो गया हो। पहले तो उसके मन में आया कि वह लौट चले। किन्तु फिर उसने सोचा, खुदाबख्श और वह दो थोड़े ही थे। यदि कोई ऐसी-वैसी बात हुई, तो वह चुपके से मेंहदी की पुड़िया उसके दालान में रख जायेगा; कितने दिनों से वह मेंहदी-मेंहदी कह रहा था। कल जब सोहणे शाह कचहरी से लौटा तो रास्ते में उसने आध सेर मेंहदी खरीद ली।

'ससुरे खुदाबख्श के बाल सफेद हो गये हैं।' तोपखाना बाजार के दुकानदार ने जब सोहणे शाह की ओर अर्थपूर्ण निगाहों से देखा, तो सोहणे शाह ने उसे बताया, 'न जाने कहाँ धूप में बैठा बाल सफेद करता रहा है !'

गाँव में दाखिल होकर उसने देखा – बूढ़ी-बेरी तले कोई बेर नहीं गिरा रहा है, कोई चुन नहीं रहा है, कोई खा नहीं रहा है। वैसे सारा दिन लड़के और लड़कियों की टोलियाँ बेरी से चिपटी रहती थीं। फजल चौकीदार के आँगन में चितकबरी कुतिया सोहणे शाह को देखकर आज पहली बार भौंकी, किन्तु वह बैठी-बैठी बल खाती रही जैसे धरती में गड़ी हुई हो। बायीं ओर सामने नौगजे-पीर की खानकाह थी, आज उस पर चाँद-तारे वाला नया हरा झण्डा लहरा रहा था – ऊँचा और लम्बा जैसे आकाश से बातें कर रहा हो। चन्नो महरी अपनी भट्टी को लीप-पोत रही थी।

'अम्माँ, आज इस गाँव के लोग कहाँ गये ?'

'चौधरी, मस्जिद में कोई मौलवी आया हुआ है।' और चन्नो महरी ने अगला वाक्य अपने पोपले मुँह में बुड़बुड़ाते हुए कहा, 'ये नामुराद नित्य नया गुल खिला देते हैं।'

लेकिन सोहणे शाह को निश्चय था कि खुदाबख्श अवश्य हवेली में ही होगा। वह कभी मजहब और मस्जिद के झंझटों में नहीं पड़ा था। वही बात हुई। जब सोहणे शाह ड्योढ़ी में

दाखिल हुआ, तो सामने बरामदे में खुदाबख्श बैठा था और उसकी चारपाई से चारपाई जोड़े एक हरे चोगे वाला फकीर उसके कान में कुछ फुसफुसा रहा था।

सोहणे शाह को देखकर दोनों चौंक पड़े और 'बिस्मिल्लाह-बिस्मिल्लाह' कहते हुए बरामदे में से उठकर आँगन में आ गये।

सोहणे शाह ने सोचा – यह अपरिचित व्यक्ति नौगजे-पीर के मज़ार पर ज़ियारत करने आया होगा। और फिर न जाने कितनी देर तक वे बाहर आँगन में बैठे मज़ार के चमत्कारों की चर्चा करते रहे।

सोहणे शाह की अपनी इकलौती बेटी राजकर्णी के मुँह पर जब दाद हो गया था और पीछा छोड़ने ही में न आता था तो इसी मज़ार पर दीये जलाकर उसका पिण्ड छूटा था। खुदाबख्श कहता – 'अगर भाभी को भी तुम यहाँ ले आते और मेरा कहना मान लेते...।' सोहणे शाह और खुदाबख्श की अभी तक यह धारणा थी कि सोहणे शाह की पत्नी इतनी जल्दी न मर जाती। सबका यह विचार था कि 'साये' का इलाज डाक्टरों और हकीमों के पास नहीं होता। सोहणे शाह अभी तक इस बात को याद करके अफसोस से हाथ मलता था। किन्तु 'आई' का कोई इलाज नहीं और भाग्य सीधा हो तो कोई बाल बाँका नहीं कर सकता – यह सोचकर वह अपने को ढारस बँधाता। राजकर्णी और उसके पड़ोस में रहने वाली उसकी सहेली सतभराई ने इसी मज़ार की चारदीवारी में दोस्ती का इकरार किया था। सोहणे शाह ने स्वयं यहाँ आकर सतभराई के पिता अल्लादित्ता के साथ पगड़ी बदली थी, और आज पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे उनकी दोस्ती को। अभी अल्लादित्ता की पत्नी को मरे तीन मास नहीं हुए थे कि सोहणे शाह की पत्नी भी चल दी। लोग यही कहते, उस पर पड़ोसिन की 'छाया' थी।

खुदाबख्श ने फिर पीर जी को बताया कि सोहणे शाह हर साल नौगजे पीर के मज़ार पर भण्डारा कराता था, जहाँ इलाके के सब लोग आकर इकट्ठे होते थे, क्या सिक्ख, क्या मुसलमान, सभी एक साथ बैठकर खाते-पीते और कव्वालियाँ सुनते थे।

सोहणे शाह हैरान था, हरे चोगे वाले पीर ने अभी तक कोई बात मुँह से नहीं निकाली थी। कितनी देर तक वह उनकी बातें सुनता रहा, सुनता रहा। कभी-कभी उसके चेहरे पर एक मुस्कान फैल जाती, जिसे वह तत्काल जैसे दबा लेता।

उठने से पहले पीर ने सोहणे शाह से अखबार का कोई समाचार पूछा। सोहणे शाह कचहरी से लौटता हुआ अखबार अवश्य पढ़कर आया करता था। अभी तक तो उसे चारों ओर अशान्ति-सी फैली हुई दिखाई दे रही थी। नवाखाली में मुसलमानों ने हिन्दुओं को मारा था और अब बिहार में इसका बदला लिया जा रहा था। सोहणे शाह बार-बार अफसोस में हाथ मलता और बार-बार पीर जी से पूछता, 'दुनिया में यह क्या हो रहा है ?'

सोहणे शाह हैरान था कि एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी पर कैसे हाथ उठा सकता है। और उसकी आँखों के सामने राजकर्णी और सतभराई एक साथ हँसती-खेलती हुई, एक साथ उठती-बैठती हुई, एक साथ सोती-जागती हुई आ जातीं। अल्लादित्ता की हवेली में बँधे हुए उसे अपने ढोर-डंगर याद आते। अपने घर में पड़ी हुई अल्लादित्ता की गेहूँ की बोरियाँ याद

आतीं। वह सोचता, कितनी-कितनी रात गये तक वे हर रोज चारपाई से चारपाई जोड़े हुए तारों की छाँह में इधर-उधर की बातें करते रहते थे। रात को यदि एक खाँसता, तो दूसरा जाग पड़ता, और फिर वे इधर-उधर की बातें छेड़ देते। सोहणे शाह को यदि कभी कचहरी में देर हो जाती, तो अल्लादित्ता गाँव के बाहर बड़े पुल पर बैठकर उसकी राह देखा करता था। उधर से गुजरने वालों से अपने मित्र के बारे में पूछता रहता था। लोग साइकिलों पर से उतर-उतर कर और छकड़ों को रोक-रोक कर अल्लादित्ता को सलाम भी करते और यह भी बताते कि उन्होंने उसके मित्र को कहाँ देखा था। कभी-कभी कोई ग्रामीण अल्लादित्ता से दिल्लगी भी करता – 'चौधरी ! सोहणे शाह के बिना तुम्हारा मन नहीं लगता क्या ? कोई बच्चा तो नहीं है कि वह रास्ता भूल जायेगा ? क्यों घबरा रहे हो, चौधरी ?'

पीर वैसे-का-वैसा चुपचाप उठकर चला गया। खुदाबख्श और सोहणे शाह कितनी देर तक आँगन में बैठे बातें करते रहे। खुदाबख्श के पड़ोस में लुहार रहते थे – ठक्-ठक्, ठन्-ठन् की आवाजें आती रहीं, आती रहीं।

'खुदाबख्श, तेरा पड़ोस बड़ा गंदा है !'

'नहीं शाह, आजकल इन ससुरों के पास काम ही कुछ ज्यादा है।'

और फिर वे अभी ये बातें कर ही रहे थे कि पिछली ओर से दीवार फाँदकर फत्तू लुहार दौड़ता हुआ आया – 'देखना चौधरी, क्या यह ठीक है ?' एक नया सान-चढ़ाया नेजा वह खुदाबख्श को दिखाने के लिए लाया, लेकिन सोहणे शाह को देखते ही जहाँ खड़ा था, वहीं गड़कर जैसे रह गया।

खुदाबख्श ने उसकी घबराहट को टालने की बेकार कोशिश की। सोहणे शाह की समझ में नहीं आ रहा था कि आज वे लोग उससे क्यों बिदक रहे थे।

और फिर खुदाबख्श ने सोहणे शाह से लाख कहा कि अगली नेजाबाजी की तैयारी के लिए वह एक खास नेजा बनवा रहा था, किन्तु सोहणे शाह को उसकी बातों पर विश्वास नहीं आया, और वह उसी क्षण वहाँ से चल दिया।

रास्ते भर खुदाबख्श ऐसे नास्तिक की पीर के साथ कानाफूसी, फिर उसे देख कर दोनों का चौंक पड़ना, फिर फत्तू लुहार का घबरा जाना – सोहणे शाह के मन में इन बातों से खलबली मची रही।

बड़ी सड़क को पार करते समय सोहणे शाह ने एक और पीर को देखा – सिर सफाचट, हरा चोगा पहने हुए, नंगे पाँव, वह 'ढल्ले' और 'अड्डियाले' की ओर जा रहा था।

'पीर जी, सलाम अर्ज़ करता हूँ !' सोहणे शाह ने पुकारा। लेकिन पीर ने सोहणे शाह की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं।

सोहणे शाह हैरान था।

फफरों के ग्राँव के पास से जब वह गुजर रहा था तो उसने एक और पीर को देखा। नौजवान, बालों के पटे रखे हुए।

'पीर जी, सलाम अर्ज़ करता हूं', सोहणे शाह ने अपने मित्र अल्लादित्ता के धर्म का फिर

सम्मान किया। लेकिन यह पीर भी चुपचाप उसके पास से गुज़र गया।

सोहणे शाह सोचता, यह कैसे नये-नये पीर बरसाती कीड़ों की तरह चारों ओर से निकल आये हैं। किसी को इतना भी पता नहीं था कि वह उस सारे इलाके का चौधरी था। उसकी ज़मीन सबसे अधिक थी, और उसकी साहूकारी की ईमानदारी की चर्चा हर किसी की ज़बान पर थी।

सोहणे शाह को आज की शाम अवकाश था। उसका जी चाहा कि वह फ़फरों के गाँव में से भी होता जाये; अपने गुमाश्तों की सुध-बुध लेता जाये। एक गली में से वह गुज़र गया, दूसरी गली में से गुज़र गया, जब सोहणे शाह तीसरी गली मुड़ रहा था, तो उसने देखा, सैदन लुहार के आँगन में पाँच भट्टियाँ तप रही थीं। परिवार के सब छोटे-बड़े काम में जुटे हुए थे। सोहणे शाह और आगे बढ़ा और उसने देखा कि दालान भालों, बेलचों और बर्छों से भरा पड़ा था।

'क्या कोई जंग शुरू हो गयी है? इन भालों का और इस सब-कुछ का क्या करोगे?' सोहणे शाह ने सैदन से पूछा।

'यह छावनी का 'आर्डर' है', सैदन ने तड़ाक से गढ़ा-गढ़ाया उत्तर दिया। बाकी सभी उसका मुँह ताकने लगे।

सोहणे शाह की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। छावनी वालों को इतने भालों, इतने बेलचों और इतने बर्छों का क्या करना था? और फिर उसे फत्तू लुहार के घर की भागदौड़ याद आयी। वहाँ कैसा कोलाहल मचा हुआ था! उसके पास भी शायद फौजी आर्डर होगा। फिर सोहणे शाह ने सोचा, शायद कोई ठेकेदार आकर उन सबको काम दे गया था और वह सिर हिलाता हुआ सैदन के दालान में से निकल आया।

अभी वह उनके दालान में से निकल ही रहा था कि सैदन लुहार का काम में व्यस्त एक लड़का खिलखिला कर हँस पड़ा, फिर एकाएक जैसे किसी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया हो, उसकी हँसी रुक गयी! सोहणे शाह ने सोचा कि लड़के को यों हँसता हुआ देखकर सैदन ने उसे झिड़का होगा, उसके किसी बड़े भाई ने संकेत किया होगा।

नदी पार करके सोहणे शाह जब दूसरे किनारे पर पहुँचा, तो उसने देखा सामने एक टीले पर तीन-चार आदमी लम्बी-लम्बी बाँहों से कभी एक ओर कभी दूसरी ओर इशारे करते बातें किये जा रहे थे। एक के हाथ में एक लम्बा-चौड़ा कागज़ था, जिसमें से वे कुछ पढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

कोई नया पटवारी होगा, शायद कोई अपनी जमीनों की पड़ताल करवा रहा है, सोहणे शाह ने सोचा।

शाम हो रही थी। सोहणे शाह की समझ में नहीं आ रहा था कि आज उसका दिल यूँ क्यों बैठ रहा था, उसे बुरे-बुरे विचार क्यों आ रहे थे। घर पहुँच कर वह चारपाई पर गिर पड़ा। उसने न कुछ खाया, न कुछ पिया।

2

घर में न राजकर्णी थी; और न पड़ोस से सतभराई की आवाज आ रही थी। चौधरी अल्लादित्ता पिछले तीन दिनों से बाहर किसी काम से गया हुआ था।

रात घोर अँधेरी थी।

नौकर-चाकर अपने-अपने काम से छुट्टी पा चुके थे। चौके में महरियाँ खाना बनाकर खाने वालों की प्रतीक्षा में जम्हाइयाँ ले रही थीं।

सोहणे शाह पलंग पर पड़ा हुआ जैसे किसी बोझ के नीचे दबा जा रहा था। अजीब-अजीब दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगते थे।

उसने सुना था कि नवाखाली में मुसलमान पड़ोसियों ने हिन्दुओं के मोहल्लों-के-मोहल्ले जलाकर भस्म कर दिये थे। बच्चों, बूढ़ों और युवकों को काटा गया था। मुसलमान कहते थे कि हिन्दू उनका पाकिस्तान नहीं बनने दे रहे थे।

और बिहार के हिन्दुओं को शिकायत थी, मुसलमान उनके हिन्दुस्तान की आजादी की राह में काँटे बिछाते थे। और उन्होंने अपने पड़ोसियों की फसलें बरबाद कर दीं, उनकी औरतें छीन लीं, उनके पुरुषों के सामने उनका अपमान किया। गोलियाँ छोड़ते और गँड़ासों से काटते हुए वे थक गये; गोलियां समाप्त हो गयीं लेकिन मुसलमान खत्म नहीं हुए।

सोहणे शाह यूँ चिंताओं में डूबा हुआ था कि उसे अपने घर के पिछवाड़े की ओर मुसलमानों के मोहल्ले में छोटे-छोटे बच्चे 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते हुए सुनाई दिये। प्रतिदिन सायंकाल वे बच्चे यूँ ही किया करते थे। एक छड़ी के साथ हरे रंग का चीथड़ा बाँधकर गलियों में दौड़ते रहते और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते रहते। इसमें अक्सर हिन्दू और सिक्ख बच्चे भी आकर शामिल हो जाते। सब मिलकर नारे लगाते, खेलते और गाते रहते!

'ज़िन्दाबाद-ज़िन्दाबाद' कहती, खिलखिलाकर हँसती हुई, राजकर्णी और सतभराई गली में आ रही थीं। सोहणे शाह सुन रहा था, बच्चे 'राजी' 'सत्तो' 'बहन-बहन' कह कर उन दोनों से चिमट रहे थे।

फिर राजकर्णी ने कहा – 'पाकिस्तान!'

सब बच्चे उसके पीछे चिल्लाये – 'ज़िन्दाबाद!!'

फिर सतभराई ने कहा – 'पाकिस्तान!'

सब बच्चे फिर चिल्लाये – 'ज़िन्दाबाद!!'

और इस प्रकार जो कोई भी गली में से गुज़रता, बच्चे उसे पकड़ लेते और उसे तब तक न छोड़ते, जब तक वह नारा न लगा दे, चाहे वह व्यक्ति कोई सिक्ख हो, चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान हो! और बच्चे, बूढ़े, युवक, स्त्रियाँ और पुरुष सब-के-सब हँसते हुए बच्चों के इस खेल में शामिल होते रहते।

राजकर्णी और सतभराई आँगन में आकर फिर खिलखिला कर हँसने लगीं। उन दोनों की हँसी सारे गाँव में प्रसिद्ध थी। छोटी-सी बात पर हँसना आरम्भ कर देतीं; हँसती ही रहतीं; हँसती ही रहतीं – आधा-आधा दिन, आधी-आधी रात हँसती रहतीं। चौधरी अल्लादित्ता को तो आज आना नहीं था, और लड़कियों का विचार था कि सोहणे शाह भी अभी तक नहीं लौटा।

हँसती-हँसती दोनों सहेलियाँ गाने लगीं –

'उच्चियाँ लम्बियाँ टालियाँ,
विच गुजरी दी पींग वे माहिया।
पींग झुटेंदे दो जणे –
आशिक ते माशूक वे माहिया।
पींग झुटेंदे ढह पये,
हो गये चकनाचूर वे माहिया।'

और सोहणे शाह उनको गाते सुनता रहा। ज्वाले की लड़की का विवाह था, और उसने सोचा, दोनों वहीं से आ रहीं होंगी। जब किसी विवाह वाले घर गीत आरम्भ होते, ये दोनों वहां जरूर गीत गाने के लिए जातीं और फिर कितनी-कितनी देर घर आकर भी गाती रहतीं। कभी कोई तान छेड़ देतीं, कभी कोई गीत गुनगुनाने लगतीं।

सोहणे शाह सोचता कि राजकर्णी और सतभराई दोनों जवान हो गयी थीं। अब वह उनके हाथ पीले कर देगा। अल्लादित्ता ने कभी इस बात की चिन्ता नहीं की थी। ऊपर-तले दो बरातें बुलवाकर वह निश्चिंत हो जायेगा।

गली के पिछवाड़े बच्चे 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाये जा रहे थे। इस बार ताई 'पारो' उनके हत्थे चढ़ गयी – ताई पारो, जो जगत-ताई थी, जो हर समय पुरुषों के समान लाठी लेकर चलती थी। मर्द, औरतें, बच्चे और बूढ़े सभी ताई पारो से डरते थे। यदि किसी से नाराज हो जाती, तो भरे बाजार में खड़ी होकर वह भद्दी गालियों की बौछार करती, जिन्हें सुनकर पुरुष भी धरती में गड़-गड़ जाते। और अब जबकि बच्चों ने ताई पारो को घेर लिया था, न जाने कहाँ से वह तपी हुई आ रही थी, पंजे झाड़कर बच्चों के पीछे पड़ गयी।

'ठहरो! तुम्हारी माँ का पाकिस्तान-जिन्दाबाद निकालूँ!' आगे-आगे बच्चे और पीछे-पीछे ताई पारो, वे दूर गली का मोड़ मुड़ गये। बच्चे शोर मचाते, हँसते और सहमे हुए निरन्तर भागते जाते, पीछे-पीछे पारो पाकिस्तान को लाख-लाख गालियां देती हुई, लाठी घुमाती दौड़ती गयी।

सोहणे शाह ने सोचा, कभी पारो को समझा देगा कि वह पाकिस्तान के बारे में हँसी न उड़ाया करे। कहीं बात का बतंगड़ ही न बन जाय। उसने सुन रखा था कि शहर में इसी प्रकार हँसी-मज़ाक में लोगों ने बैर मोल लिये थे।

सामने गली में फिर पारो हाँफती हुई गालियाँ देती आ रही थी। उसके पीछे-पीछे बच्चे शोर मचाते हुए पारो को चिढ़ा रहे थे।

राजकर्णी और सतभराई ने इतने में एक और गीत छेड़ दिया –

'निक्का मोटा बाजरा माही वे,
मैढां कौन चरेसी ढोला !'

भूखे-प्यासे सोहणे शाह की लेटे-लेटे आँख लग गयी।

'अगर अब्बा बाहर गया हुआ हो तो चचा भी जहाँ तक बस चलता है, घर नहीं आते।' सतभराई ने कहा।

'कहीं ताऊ को लाने न चले गये हों !' राजकर्णी सोचती।

सोते हुए सोहणे शाह ने सपने में देखा कि भाले, छुरियों, बर्छियों और बेलचों से भरे हुए छकड़े छावनी की ओर जा रहे थे और ठेकेदारों को उनके बदले में सरकार की ओर से बन्दूकों, पिस्तौलों और राइफलों से भरे हुए ट्रक मिल रहे थे। फिर बन्दूकें चलने लगीं, राइफलें आग उगलने लगीं।...आतिशबाजी-सी छूट रही थी; अनार छूट रहे थे, गोले फट रहे थे। ढोलक और शहनाइयाँ बज रही थीं। मुंडेरों पर से फूल बरसाये जा रहे थे। रोशनी से सारा गाँव जगमगा रहा था।...दीपमाला के दिन सोहणे शाह दरबार साहब, अमृतसर तीर्थयात्रा पर गया था। कितनी जगमगाहट थी वहाँ ! किस प्रकार भीड़ थी वहाँ ! कन्धे-से-कन्धा छिल रहा था और इस कोलाहल में राजकर्णी सोहणे शाह से कहीं बिछड़ गयी थी...

सोहणे शाह पसीना-पसीना हुआ चौंककर उठ खड़ा हुआ।

राजकर्णी उसे जगा रही थी। 'हम तो नीचे बैठीं आपकी राह देख रही थीं।' राजकर्णी ने शिकायत की।

और सोहणे शाह अपने-आप को सँभालकर उसके साथ खाना खाने के लिए लिए नीचे उतर आया। आँगन में बैठी सतभराई ने सोहणे शाह को सलाम किया। 'सलाम बेटी', सोहणे शाह ने इतना कहा और चारपाई पर उसके पास जा बैठा।

सोहणे शाह ने देखा कि राजकर्णी और सतभराई के दुपट्टे एक ही रंग के थे, एक ही कपड़े के सूट उन्होंने पहन रखे थे, बिल्कुल एक ही सा उनका आकार था। एक को छिपा दो और दूसरी को दिखा लो !

सतभराई आयु में चाहे तनिक छोटी थी, किन्तु मुसलमान जमींदार की बेटी, डीलडौल में राजकर्णी के बराबर पहुंच चुकी थी।

'अल्लादित्ता सवेरे आ जायेगा।' सतभराई को चुप देखकर सोहणे शाह ने उसे बताया, और फिर वह दोनों से बातें करने लगा।

ज्वाले जमादार की बेटी की बातें होती रहीं। अपने विवाह पर आप गीत गाती थी। क्या मजाल जो कभी सिर पर आँचल रखे ! हर घड़ी कुछ-न-कुछ बोलती रहती और पुरुषों को, स्त्रियों को तड़ाक-फड़ाक जवाब देती थी।

सोहणे शाह ने बताया कि ज्वाला सिंह सरकारी अफ़सर था। अब पेन्शन लेकर अपने गाँव लौटा था। उसकी बेटी ने गाँव के बाहर ही जन्म लिया था, शहरों में उसका पालन-पोषण हुआ था, इसलिए अगर उसकी ये बातें उन्हें अजीब-सी लगती थीं तो इसमें उस बेचारी का

दोष नहीं था।

सतभराई कहती, 'चाचा, मैं भी पढ़ूंगी।'

और सोहणे शाह लाड़ से कहता, 'तू पढ़ने वाली बन, मैं कल ही इन्तज़ाम किये देता हूं।'

और फिर सतभराई छोटी-छोटी फरमाइशें करती रही – मुझे शहर से यह ला दो, वह ला दो। मैंने ऊँची एड़ी वाली जूती अभी तक नहीं पहनी। ज्वाले जमादार की बेटी काली ऐनक लगाती है। कभी सतभराई कहती, उसे ऐनक बहुत अच्छी लगती है; कभी कहती, ऐनक भी क्या कोई लगाने की चीज़ है ? और फिर ज्वाले की बेटी का रंग तो साँवला है। राजकर्णी की राय में सतभराई के चेहरे पर काली ऐनक बहुत भली मालूम होगी।

सोहणे शाह कहता कि अब की बार मैं शहर गया तो कचहरी से लौटते हुए तुम्हारी मँगवाई हुई एक-एक चीज़ ला दूँगा।

अब सतभराई ने और आँचल फैलाया। इन्हें सिनेमा देखे बहुत मुद्दत हो चुकी थी। छावनी में उन दिनों एक बहुत अच्छी फिल्म लगी हुई थी। इस बात में राजकर्णी भी उसकी हाँ-में-हाँ मिला रही थी। सोहणे शाह वचन दिये जाता, दिये जाता। उसे कभी साहस नहीं हुआ था कि वह सतभराई और राजकर्णी की किसी बात को पूरा करने से इनकार कर दे।

चौधरी अल्लादित्ता की और बात थी। जीवन के बारे में उसका दृष्टिकोण कुछ और ही था। जहाँ तक बस चलता, वह किसी बात पर समझौता न करता। आज सोहणे शाह अकेला लड़कियों के हत्थे चढ़ गया था, उन्होंने जी भरके उससे वचन ले लिये।

और सोहणे शाह अपने वचनों से टलने वाला इन्सान नहीं था।

3

सोहणे शाह की अभी आँख लगी ही थी कि किसी ने ड्योढ़ी का दरवाज़ा खटखटाना शुरू कर दिया।

वह उठा। बायीं ओर पलंग पर राजकर्णी और सतभराई बेसुध सोयी पड़ी थीं।

सोहणे शाह बाहर गया।

गाँव के तीन मुसलमान और दो सिक्ख नवयुवक आये थे। उन्होंने चौधरी सोहणे शाह से सारा हाल कह सुनाया।

अगले दिन पोठोहार में चारों ओर आग भड़कने वाली थी। हर हिन्दू सिक्ख को मारा जाना था, उनकी सम्पत्ति को जलाया जाना था, उनके गुरुद्वारों और मन्दिरों में गोहत्या की जाने वाली थी, उनकी पत्नियों और बेटियों का सतीत्व भंग किया जाने वाला था।

प्रत्येक मुसलमान भाले, छुरियों, बेलचे, बर्छे और बन्दूक से लैस किया जा चुका था। हर मुसलमान से मस्जिद में कसम उठवायी गयी थी। लोगों ने कुरान शरीफ आँखों से लगाकर

प्रतिज्ञा की थी। पीरों ने, मौलवियों ने, सैयदों ने घर-घर घूमकर यह आदेश दिया था कि कोई हिन्दू-सिक्ख जिन्दा नहीं बचना चाहिए।

रावलपिण्डी की 'जामा मस्जिद' से यह फरमान जारी हुआ था कि हिन्दुओं और सिक्खों की औरतों को मुसलमान बना लेना सवाब है, काफिरों की जायदाद लूटने वाले के पास ही रहेगी, काफिरों के जितने कोई सिर उतारेगा, उसके उतने ही गुनाह धुल जायेंगे, कम-से-कम छः काफिरों को मौत के घाट उतारने वाला सीधा जन्नत में जायेगा। बच्चे; बच्चों को कत्ल करें, बूढ़े; बूढ़ों का गला काटें, जवान; जवानों का खून करें, सिर्फ हिन्दुओं और सिक्खों की दूध-मक्खन पर पली हुई पोठोहारिनों को बिल्कुल न छेड़ा जाय, वे तो इस इलाके की रौनक थीं।

अगले दिन 'हजारे' की ओर से पठानों को भी पहुँच जाना था, 'छछ' के छः-छः फुट ऊँचे युवकों को देहात के गिर्द घेरा डाल देना था। प्रत्येक पड़ोसी के लिए पड़ोसी की छुरी बेचैन हो रही थी।

ट्रकवालों को पता था कि ट्रक कहाँ ले जाने थे, ऊँटवाले जानते थे कि उन्हें कहाँ-कहाँ पहुँचना था, छकड़ेवालों को पता था कि छकड़ों में कौन-सा सामान कहाँ ले जाना था।

यह भी निर्णय हो चुका था कि कौन कहाँ जाकर टूट पड़ेंगे। पहले हमला किस ओर से आरम्भ किया जायेगा, किस-किस घर को आग लगानी होगी, किस-किस को बचाना होगा।

मिरासियों को ढोल पीटने थे, शहनाइयाँ बजानी थीं। जिनको बन्दूक चलानी नहीं आती थी उनको भालों और छुरियों से लड़ना था। जो दिल के कमजोर थे, उनको मिट्टी के तेल और पेट्रोल के कनस्तर उठाये रखने थे, और जब मैदान साफ हो, तो आग लगानी थी। कसाइयों को तैयार किया गया था कि वे तेल के कड़ाह बच्चों को तलने के लिए तैयार रखें, आग के अलाव में बूढ़ों को भूनें और हठीली स्त्रियों को गली-गली में उलटा लटकायें।

प्रत्येक गाँव का ब्यौरा तैयार हो चुका था। प्रत्येक गाँव के निवासियों की सूची तैयार हो चुकी थी। इस बात का भेद भी लगा लिया गया कि गाँव में किस-किस व्यक्ति के पास कौन-कौन सा शस्त्र था, और जिन्हें पहले ही हल्ले में खत्म कर देना था, उनके नाम अलग लिख लिये गये थे।

हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ बिहार में भी बिल्कुल ऐसा ही किया था और पोठोहार के मुसलमानों ने फैसला कर लिया था कि वे एक-एक खून का बदला दस-दस जानों से लेंगे। कोई किसी के रोकने पर रुकने वाला नहीं था, कोई किसी के हटाने पर हटने वाला नहीं था। जो लड़ने-मरने के लिए तैयार नहीं थे, उनके नाम आदेश जारी किये गये थे कि वे इधर-उधर हो जायें। इस्लाम पहले ही खतरे में था, वे और बाधा न डालें!

सोहणे शाह ने सोचा, तभी शायद अल्लादित्ता तीन दिन से बाहर गया हुआ है। इस विचार के आते ही वह हक्का-बक्का सिर हिलाने लगा।

सोहणे शाह के हाथ-पाँव सुन्न हो गये। उसके शरीर से जैसे सारे-का-सारा लहू निचुड़ा जा रहा था, उसका सिर कितनी देर तक हिलता रहा। आखिर दरवाज़े का सहारा लेकर वह

देहली पर बैठ गया।

वे पाँचों युवक बोलते जा रहे थे –

धमियाल के मुसलमान रजवाड़ों ने वचन दिया था कि वह किसी से कुछ नहीं कहेंगे, बल्कि उन्होंने तो किसी को छावनी भिजवा दिया था कि वह ट्रकों का प्रबन्ध कर आये ताकि उस गाँव के बच्चे-बच्चे को शहर में पहुँचा दिया जाय !

'सोहणे शाह, तू किस सोच में गुम हो गया है ! अगर हमारे जिस्म में जान रही तो कोई तेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा !' मुसलमान युवकों ने बार-बार वचन दिया।

निर्णय यह हुआ कि कोई भी गाँव की सीमा से बाहर न निकले। गाँव के बाहर जाने वालों की ज़िम्मेदारी कोई नहीं ले सकता था। बाहर के लोग किसी के वश में नहीं थे।

चौधरी ने आखिर यह सुझाव दिया कि घर-घर घूमकर यह बात सबको बतायी जाय। विशेष रूप से जो लोग छावनी में काम करते थे, उन्हें यह बताना बहुत जरूरी था। चौधरी ने कइयों का नाम ले-लेकर बताया, बेचारों के पास साइकिलें नहीं थीं और मुँह-अँधेरे ही वे घर से निकल जाया करते थे।

सुनते ही लोगों ने सामान बाँधना आरम्भ कर दिया। सारे गाँव में कोहराम मच गया। भरे-भरे घर देखकर किसी की समझ में न आता, क्या रखे और क्या छोड़े। नवयुवतियाँ अन्दर-बाहर रो-रो कर बेहाल हो रही थीं, माता-पिता की नज़रों में न-जाने क्या-क्या कुछ लिखा हुआ देखतीं। धरती जगह नहीं दे रही थी कि वे उसमें समा जायँ। कोई सोचती – मैं कुएँ में कूद जाऊँगी। कोई सोचती – मैं छत पर चढ़कर छलांग लगा दूंगी। किसी ने कहीं से अफीम निकाल ली, किसी ने संखिया ढूँढ़ लिया। कोई अपने भाई से कहती और कोई अपने पिता से कि वे अपने हाथों से उनका गला घोंट दें। कोई मिट्टी का तेल सँभालकर रखती। कई कहतीं कि हम एक-दो को मारकर मरेंगी और कृपाणों की धार बार-बार तेज़ करतीं।

जवान लड़कों ने पत्थरों के ढेर अपने कोठों पर इकट्ठे कर लिये, पोठोहार की इस्पात जैसी कठोर चट्टानों के पत्थर। बन्दूक वालों ने बारूद इकट्ठी करनी शुरू कर दी। तलवारों को चमकाया जाने लगा। छुरों को रगड़ा जाने लगा। बूढ़ों और बच्चों ने चाकू और छुरियां संभाल लीं।

पंचकल्याणी भैंसे अपने मालिकों को विकल देखकर बार-बार डकारतीं। किसान बैलों के गले लग-लग कर रोते। कुत्ते चैन न लेने देते। बार-बार गली में दौड़-दौड़ कर जाते, बार-बार दालान में आकर घरवालों के कपड़े सूँघते। अनाज से भरी हुई कोठरियाँ देख-देखकर जमींदारों के दिल में टीस उठती। पोठोहार के खुले दालान, दालानों में 'ध्रेंक' की छाया, बेरियों के लाल-सुर्ख बेर, लोग सोचते कि वे क्यों कर ये सब कुछ छोड़ सकेंगे ?

सोहणे शाह बार-बार अफ़सोस से हाथ मलता। बार-बार सोचता – इस उम्र में मुझे यह अन्धेर देखना था ! जहाना, जुम्माँ, फत्ता, सैदन, सब मुझे कत्ल करने के लिए आयेंगे !

सामने के पलंग पर राजकर्णी और सतभराई सोई पड़ी थीं, अल्हड़ जवानी की मदमाती नींद ! तारों की मंद-मंद रोशनी में उसे इतना भी पता नहीं चलता था कि कौन कहाँ है। सोहणे

शाह तो तमाम उम्र कभी इनमें कोई अन्तर नहीं कर सका था। कई बार राजकर्णी को आवाज देनी होती तो उसके मुँह से सतभराई का नाम निकल-निकल जाता, और कई बार वह सतभराई को बुला रहा होता, तो राजकर्णी-राजकर्णी पुकारता रहता। और राजकर्णी पास बैठी खिल-खिलाकर हँस देती। सोहणे शाह सोचता – चौधरी अल्लादित्ता अवश्य पहुँच जायेगा, अगले दिन का उसका वचन था और जीवन में आज तक उसने अपना वचन कभी भंग नहीं किया था।

लेकिन वे पाँच नवयुवक न जाने उससे क्या कह गये थे! अल्लादित्ता से भी प्रतिज्ञा लेने को कहा गया होगा? उसके सिर पर भी कुरान शरीफ रखा गया होगा? उसे भी पाकिस्तान का सदक़ा दिया गया होगा? उसे भी बाहर की घटनाएँ सुना-सुनाकर उकसाया गया होगा? और अल्लादित्ता अपनी बेटी को भी छोड़कर चला गया था।

पलंग पर गहरी नींद सोई हुई लड़कियों में से एक ने करवट ली। एक भुजा ऊपर उठी और दूसरी ओर जा पड़ी। सोहणे शाह को लगा, जैसे कोई इस इन्तज़ार में हो, कि उसकी आँख लगे तो वह दौड़कर विरोधी दल में शामिल हो जाय!

सोहणे शाह की दादी ने उसे बताया था कि सिक्खों के राज्य के अन्त में किस प्रकार भगदड़ मची थी और वे लोग गुजरात से भागकर इधर आ गये थे। पहले आकर वे 'सुक्खो' में रहे, फिर उसकी ननद ने उन्हें यहाँ बुला लिया। और फिर वह गाँव का चौधरी बन गया था।

सोहणे शाह के पिता ने उस गाँव में दिन-रात परिश्रम किया। सोहणे शाह का दादा पुँछ से खच्चरों पर घी लादकर लाया करता था। फिर सर्दियों में जब सड़कें बन्द हो जातीं, तो ईंटें और बजरी ढोया करता था। और इस प्रकार कौड़ी-कौड़ी जोड़कर उसने अपने लिए एक मकान बना लिया था। सोहणे शाह का पिता दुकानदार था। साथ-ही-साथ साहुकारी भी करता। खेती-बाड़ी में भी हाथ-पाँव मारता रहता। खड़ी फसल का ठेका ले लेता, ढोर-डंगर सस्ते दामों खरीद लेता और पिंडी की मण्डी में जा बेचता। जो माल रावलपिंडी की मण्डी से मोल लेता, उसे 'गोलड़े' की मण्डी में बेचता।

इस प्रकार कई पापड़ बेलकर सोहणे शाह के पिता ने कुछ जायदाद बनायी। फिर जब सोहणे शाह की बारी आयी तो पहले उसने सोचा कि वह पटवारी बने, किन्तु वह अपने काम में कुछ इस प्रकार उलझ गया कि किसी दूसरी ओर ध्यान न दे सका। उसके पिता ने कई काम ले रखे थे। उसने अपने पिता से भी अधिक परिश्रम किया। परिश्रम के साथ-साथ लोगों की सेवा की। सारा इलाका 'सोहणे शाह' 'सोहणे शाह' पुकारने लगा, और वह गाँव का चौधरी बन गया। जब पुराना सरपंच मरा, तो हर कोई – क्या मुसलमान, क्या हिन्दू, क्या सिक्ख यही कहने लगा कि अब की बारी सोहणे शाह की थी।

सोहणे शाह ने पंचायती गुरुद्वारे को फिर से बनवाया, मसजिद में संगमरमर का फर्श लगवाया और दीवारों को टाइलों से सुसज्जित किया। सोहणे शाह ने चौपाल की मरम्मत करवायी, तकिये को पक्का करवाया, गली-मुहल्ले में सफाई का प्रबन्ध किया।

जहाँ तक बस चलता, लोग सोहणे शाह का कहा न टालते, चाहे झगड़ा सिक्खों में हो,

चाहे झगड़ा मुसलमानों में हो, चाहे झगड़ा सिक्खों और मुसलमानों में हो । गाँव के मुसलमानों के दो दल थे, यह पार्टीबाज़ी पुरानी चली आ रही थी । कई बार उनकी आपस में अनबन हो जाती; सोहणे शाह बीच में पड़कर झगड़ा निपटा दिया करता । एक बार तो उन्होंने एक दूसरे पर गोलियाँ भी चलायीं, किन्तु सोहणे शाह के सामने सिर न उठा सके और मामला थाने तक न गया । पुलिस वालों ने लाख सिर पटका कि वे इस झगड़े के बारे में पर्चा काटें लेकिन गाँववालों में से किसी एक ने भी गवाही न दी । जिसने शिकायत की थी उसका मुँह काला करके गली-गली उसे घुमाया गया ।

अभी तो पिछले सप्ताह एक झगड़ा हुआ था । अल्लादित्ता की राय में सिक्ख ठीक कहते थे और उन्होंने जो कुछ किया था वह उचित था । परन्तु सोहणे शाह की राय में सारा दोष सिक्खों का ही था । कितनी देर तक उनकी समझ में न आया कि किस पक्ष को अच्छा कहें और किसको बुरा । पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के पिछले गुरु-पर्व पर राशन की चीनी मुसलमानों ने इकट्ठी कर-कर के सिक्ख पड़ोसियों के लिए शर्बत की प्याऊ लगायी थी और गली-गली जा कर उन्हें ठण्डा शर्बत पिलाया था । सिक्ख और हिन्दू भी ईद के दिन गलियाँ शीशे की तरह चमका कर रखते और अपने पड़ोसियों के घर मिठाई भिजवाते ।

यदि किसी मुसलमान को मुर्गा हलाल करना होता, तो चोरी-छिपे एकान्त में वे उसे हलाल करते, और यदि किसी सिक्ख को बकरा झटकाना होता, तो कोठरी में ऐसा करता ताकि पड़ोसी उसका बुरा न मानें ।

सोहणे शाह सोचता – जैसे मुसलमान कहते हैं, यदि हिन्दू और सिक्खों को मार दिया गया, उन्हें यहां से भगा दिया गया तो फिर ये दुकानें कौन चलायेगा ? जाटों और किसानों को कर्ज कौन देगा ? उनकी चिट्ठियाँ कौन लिखेगा ? जब ये आपस में लड़ पड़ेंगे, तो कौन समझौता करायेगा ? उनके दिलों में तो इतना ज़हर था कि एक-दूसरे को बरबाद कर देंगे ।

सामने बिछे हुए पलंग में फिर हलचल हुई । फिर एक भुजा उठी और दूसरी ओर जा [illegible] । और सोहणे शाह उठकर देखने लगा कि किसकी नींद उचट रही थी ?

अगले [illegible] कर्णी ने देखा, सतभराई कोठे पर खड़ी बार-बार एड़ियाँ उठा-उठाकर अपने अब्बा की [illegible] देख रही थी, किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था ।

सारे गाँव में कोलाहल मचा हुआ था । सोहणे शाह के गले लग-लगकर लोग रोते, कई उसे एक ओर ले जाकर कानाफूसी करते । हाथ मलतीं और छाती पीटतीं स्त्रियाँ, सहमे और घबराये हुए बच्चे, वे युवक जो साहस तोड़ चुके थे, हलवाई जिनका आज बाहर से दूध नहीं

आया था, कुंजड़े जिनकी आज बाहर से सब्जी नहीं आयी थी – सभी एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे। डाकिये के आने का समय हो चुका था, न वह डाक देने आया और न कोई डाक लेने आया।

सड़क, जिस पर लोग चींटियों की तरह चलते, सुनसान पड़ी थी। पिछली रात आवारा कुत्तों ने मरे हुए एक बछड़े का पिंजर घसीट-घसीट-कर सड़क के बीच ला फेंका था और वह वैसे का वैसे सड़क पर पड़ा था।

गली-गली घूमते सोहणे शाह को पता चला कि हरनामे लीखल का लड़का बसन्ता और बड़े गुरुद्वारे के 'भाई' का लड़का पंजू किसी के रोकने पर नहीं रुके थे। मुँह-अँधेरे ही छावनी की ओर अपने काम पर निकल गये थे। जो कोई उन्हें समझाता, वे उसकी खिल्ली उड़ाते। उन्होंने चौधरी के सन्देश की भी परवाह नहीं की थी। बसन्ता तो 'सुखमणी साहब' का पाठ ही करता रहा, किसी के प्रश्न का कोई उत्तर न देता। बस, कभी-कभी हँस देता और पाठ करता हुआ लोगों के देखते-देखते चला गया। लेकिन पंजू आज अपने साथ तलवार ले गया था। यदि उसे कोई समझाता तो बार-बार म्यान पर हाथ रखकर तलवार बाहर खींचता और अपने पट्ठों को दिखाता।

'क्या हम कंगन पहने हुए हैं ? क्या मैं कोई औरत हूँ जो कोई मुझ पर हाथ डालेगा ? यदि कोई मेरी तलवार के आगे आया तो...' और वह इस प्रकार बोलता हुआ चला गया।

छावनी की सीटियाँ चीखतीं रहीं, किन्तु और किसी घर से कोई न निकला। पैदल चलने वालों के लिए सीटियाँ बज चुकीं, तो साइकिलों पर जाने वालों के लिए सीटियाँ बजनी आरम्भ हुईं। तरह-तरह की सीटियाँ लोगों को पुकारती रहीं, पुकारती रहीं। चीख़-चीख़ कर जैसे उनका गला बैठ गया हो, किन्तु और किसी ने बाहर जाने का नाम नहीं लिया।

सोहणे शाह का जी चाहा कि पिछवाड़े की ओर जाकर मुसलमानों के मुहल्ले का चक्कर लगाये, किन्तु न जाने क्यों उसके पांव उस ओर नहीं उठ रहे थे। कई बार वह उस ओर बढ़ा और फिर लौट आया।

राजकर्णी हैरान थी – चौधरी अल्लादित्ता अभी तक नहीं आया था। सतभराई हैरान थी – चौधरी अल्लादित्ता यूँ कभी बाहर नहीं रहा था।

फिर एकाएक गाँव के बाहर स्वयंसेवकों ने कोलाहल मचा दिया।

फ़सादी आ रहे थे। दूर क्षितिज के पास 'ढल्ले अड्डियाले' की ओर से ढोल पीटे जाने की धीमी आवाज़ कानों में पड़ रही थी। अनगिनत तुर्रे चींटियों की तरह चलते हुए सामने दिखाई दे रहे थे। ढोल पीटे जाने की आवाज़ें ऊंची हो रही थीं। तुर्रे और साफ दिखाई देने लगे। सारे-के-सारे गाँव में कुहराम मच गया। कई सोचते कि बाहर नदी में जा कर छिप जायें, कई कहते कि पंचायती गुरुद्वारे में गुरु के चरणों में जा गिरें। कई कहते प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी गली में लड़े, अपने-अपने घर में मारे या मर जाय। सोहणे शाह उन्हें अपने घर इकट्ठा होने के लिए कह रहा था। मुसलमान पड़ोसियों की भी यही राय थी। वे सोचते, यदि फ़सादी बिल्कुल न मानें तो बेशक गाँव को लूट लें, यदि उनकी यही मर्ज़ी हुई तो बेशक

गली-गली घर-घर को जलाकर भस्म कर दें, किन्तु धमियाल के किसी प्राणी पर वे हाथ नहीं उठने देंगे।

'सूअर खाएँ ये लोग!'

'ऐसी लूट कभी सुनने में नहीं आयी!'

'मैं कहती हूँ, क्या उन्हें अल्लाह का कोई डर नहीं?'

'यह सरकार कहाँ गयी – आज तो चाँदमारी भी नहीं हो रही है।'

राजकर्णी और सतभराई ऊपर कोठे पर खड़ी-खड़ी कभी फसादियों के तुरों की ओर देखतीं, कभी दूसरी तरफ रावलपिण्डी छावनी के बंगलों को देखतीं। हवाई जहाजों के अड्डे पर सरकारी झण्डे की ओर देखतीं, और देख-देखकर उनकी समझ में नहीं आ रहा था – यह क्या हो रहा है? क्यों हो रहा है? किसलिए हो रहा है?

दित्ता बढ़ई कितनी देर तक अपने हथियारों की ओर देखता रहा, बाहर खेलते हुए अपने बच्चे की ओर देखता रहा, बड़े कमरे में लगाये हुए नये फूलदार दरवाजे की ओर देखता रहा; देखते-देखते उनकी दायीं बाँह कुछ इस प्रकार दुखने लगी जैसे वह दिन-भर बसूला चलाता रहा हो।

सुन्दर सुनार और उसकी पत्नी, बाहर हवेली में कितनी देर से गतका खेला करते थे। सुन्दर मास्टर तारासिंह का बहुत भक्त था। और आज से छः महीने पहले जब मास्टर जी धमियाल, अपनी ससुराल, किसी विवाह के अवसर पर आये तो उन्होंने सबको बुलाकर खबरदार कर दिया था – 'लोगो! या तो शहरों में चले जाओ, देहात को छोड़ दो, अगर गाँवों में रहना है तो अपने आपको मज़बूत बनाओ, अपने घरों के गिर्द मोर्चे बनाओ, चारदीवारियाँ बनाओ, तलवारें रखो, नहीं तो तुम कहीं ढूँढ़ने पर भी दिखाई न दोगे। पोठोहारियो! तुम्हारा नामोनिशान तक मिट जायेगा। मुझे आँधी आती हुई दिखाई दे रही है। मुझे लगता है, ये तूफान यहीं से उठेगा। खालसे की परीक्षा का समय फिर आ रहा है।' और मास्टर जी आधी रात तक नन्दों के कोठे पर उनसे मिलने के लिए आये लोगों को समझाते रहे।

अगले दिन मास्टर जी के कहे अनुसार सुन्दर और उसकी पत्नी ने 'अमृत छका', और उस दिन से ये दोनों गाँव से बाहर अपनी हवेली में गतका खेलने लगे।

'मैं न कहती थी, मास्टर हीरा है, हीरा!'

'मैं न कहती थी कि वन्ती के पति को हर बात का पता होता है!'

'सेहरा बाँधकर हमारे पड़ोस में आया था, मैं कहती हूँ कि मास्टर जी से तो गोरे भी कन्नी कतराते हैं।'

'आज मास्टर जी अगर यहाँ होते!... शेरों की तरह उनका चेहरा दमकता रहता है।'

'सौभाग्यवती है वन्ती, मेरी सास की सहेली है!'

सवेरे से सुन्दर की पत्नी अपने पड़ोसियों से पागलों की भाँति बातें कर रही थी। अब उन्होंने फैसला किया था कि जिस प्रकार मास्टर जी ने उनसे कहा था, वे उसी प्रकार करेंगे, तलवार खींचकर बाहर निकलेंगे और वीरों की तरह जान दे देंगे।

फिर जैसे सबकी जान-में-जान आ गयी। बाहर बैठे हुए स्वयंसेवकों ने आकर सूचना दी कि फसादी मोरगाह वाली सड़क पर मुड़ गये हैं, ढोल की आवाज ने अपनी दिशा बदल ली है, झंडे दायीं ओर की सड़क पर हो लिये हैं।

धमियाल के मुसलमान पड़ोसी हँस-हँसकर कह रहे थे, 'किसी की क्या मजाल है कि धमियाल की ओर आँख उठा कर देख सके ?'

'जभी तो हम कहें कि ये कहाँ की तैयारियाँ करके आ गये ?'

पलक झपकते में दुकानदारों ने दुकानें खोलनी आरम्भ कर दीं। चूल्हों से धुआँ उठना शुरू हो गया। लोग खाने-पकाने की फिक्र करने लगे।

पुरुष टोलियाँ बनाकर खुसुर-फुसुर कर रहे थे।

राजकर्णी और सतभराई अभी तक छत पर बैठी हुई थीं। 'चौतरे' की ओर से कोई भी नहीं आ रहा था। सामने की सड़क खामोश थी। राजकर्णी और सतभराई के दिलों में कई प्रकार के विचार उठ रहे थे, कभी वे कुछ सोचतीं और कभी कुछ।

इस तरह वे व्याकुल हो रही थीं कि उन्होंने देखा, छावनी वाली सड़क पर से एक फौजी लारी आ रही है। लारी गाँव में आकर रुकी। खज़ान उप्पल के लिए उसके भाई ने दो फौजी सैनिक और एक लारी भेजी थी। उसके घर का सामान लारी में लाद लिया गया। पहले तो लोग चुपके-चुपके खजान का रंग-ढंग देखते रहे, किन्तु जब दरोगा ने कहा कि उसकी जवान लड़की के बच्चा होने वाला है और वह उसे शहर उसके चचा के घर तक ले जाये, अधिक-से-अधिक एक ट्रंक या एक बिस्तर उसे कम ले जाना पड़ेगा, और जब खजान ने अपनी आयु-भर की मित्रता की परवाह न करते हुए इन्कार कर दिया, तो लोग बहुत नाराज हुए। फौजी सैनिकों ने बताया कि छः मील की दूरी पर रावलपिंडी शहर में क्या हो रहा था। सारी रात गोली चलती रही थी, चारों ओर आग लगी हुई थी। सड़कें लाशों से अटी पड़ी थीं और सरकार की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे और क्या न करे!

दरोगा की नौजवान लड़की के पहला बच्चा होने वाला था। न गाँव में कोई दाई थी, न कोई नर्स, और यह भी पता नहीं था कि वह इस गाँव में कब तक रुके पड़े रहेंगे। फिर भी खज़ान उप्पल को दया न आयी। फिर जब लारी चलने लगी, तो वे लोग जो खड़े-खड़े सब-कुछ देख रहे थे, दाँत पीसकर रह गये।

खजान का ट्रक तेज दौड़ता हुआ नज़रों से ओझल हो गया।

लोगों को थोड़ा-बहुत जो ढाढ़स बँधा था वह खज़ान के जाने के बाद टूट गया। दुकानें फिर बन्द होनी आरम्भ हो गयीं। लोगों ने दोबारा वस्तुएं सँभालनी शुरू कर दीं। साथ ही जो बातें फौजी-सैनिक बता गये थे, वे सारी धीरे-धीरे गाँव में फैल गयीं। हाथों में पकड़े ग्रास वहीं-के-वहीं रह गये, छाछ बिलोये जाने का स्वर वहीं-का-वहीं थम गया, तदूंर तपते-के-तपते रह गये, स्त्रियां जहां कहीं भी थीं सिर पकड़कर बैठ गयीं। पुरुष कभी सोचते कि लड़ते-लड़ते मर जायेंगे, कभी कहते, लड़ने से क्या लाभ? किसी की समझ में कुछ नहीं आता था कि क्या होगा, कैसे होगा?

सोहणे शाह पिछले दो घंटों से अपने कमरे में बेसुध पड़ा था। छत पर बैठी हुई राजकर्णी और सतभराई सोच रही थीं कि वह शायद बाहर कहीं गया हुआ है। अचानक दालान में अल्लादित्ता को देखकर दोनों लड़कियाँ खिल उठीं। आते ही अल्लादित्ता सोहणे शाह की देखभाल में लग गया।

चौधरी अल्लादित्ता चाहे सब की हिम्मत बँधा रहा था, किन्तु उसकी अपनी हालत बड़ी नाजुक थी।

आखिर जब सोहणे शाह को होश आया तो कितनी देर तक दालान में दोनों बैठे खुसुर-फुसुर करते रहे।

अल्लादित्ता ने सोहणे शाह को अपनी आपबीती सुनायी। 'चौंतरे' में सारे इलाके के चौधरियों का जलसा हुआ था, जिसमें बड़े-बड़े पीरों ने यह बताया था कि उन्हें अपने गाँव में हिन्दुओं और सिक्खों का किस प्रकार नामो-निशान मिटा देना था। उनके घरों और हवेलियों को जलाकर भस्म कर दिया जाय ताकि वे लौटकर आने का नाम न लें। जितने आदमी हाथ लगें उन्हें क़त्ल कर दिया जाय। लूट-खसोट के माल से मुसलमान पड़ोसी अपने कोठे भर लें और सरकार को इस बात का भेद न लगने दें। फिर उन्होंने बताया कि कैसे घेरा डालना था, कैसे हमला करना था और कैसे आग लगानी थी। बेलचे कहाँ से मिलने थे, भाले कहाँ से इकट्ठा करने थे, बन्दूकें किसके पास पड़ी थीं, छुरियां कहाँ रखी थीं।

अल्लादित्ता सब कार्रवाई सुनता रहा। फिर उठकर वह सबको धिक्कारने लगा। वह अभी बोल ही रहा था कि कुछ गुण्डों ने उसे पकड़कर बाँध दिया और कोठरी के अन्दर डाल दिया।

आज वह बड़ी मुश्किल से अपने बन्धन खोलकर भाग आया था।

अल्लादित्ता सोचता, जैसे भी हो, राजकर्णी और सोहणे शाह यहाँ से निकल जायँ, लेकिन अब तो धमियाल के चारों ओर अलाव जल रहे थे, हर गाँव सुलग रहा था, हर रास्ते को गुण्डे घेरे बैठे थे, पग-पग पर लाशें बिछीं थीं, बच्चों की, बूढ़ों की और युवकों की।

फिर अल्लादित्ता ने कहा, उसके धमियाल को कोई हाथ नहीं लगा सकेगा। जब तक उसके तन में साँस है, जिस गाँव में उसका घर है उसकी ओर कोई आँख टेढ़ी करके नहीं देख सकता। यदि राजकर्णी को वहाँ से निकलना पड़ा, तो सतभाई भी वह गाँव छोड़ जायेगी। यदि सोहणे शाह को किसी ने उस गाँव से निकाला, तो वह अल्लादित्ता की लाश पर से होकर आगे बढ़ेगा।

5

दोपहर बीती, शाम आयी, किसी ने न कुछ खाया, न कुछ पिया। 'रत्ते' की ओर से, 'खलासी

लाइन' की ओर से, 'टंच' की ओर से; चौकी नं.22 की ओर से और मोरगाह की ओर से बमों के फटने की आवाज़ें आ रही थीं, और आसमान की ओर उठते हुए धुएँ के बादल हर घड़ी, हर पल बढ़ते जा रहे थे, बढ़ते जा रहे थे।

छावनी में आधी छुट्टी का बिगुल बजा, पूरी छुट्टी का बिगुल बजा, और अब शाम हो गयी थी। लेकिन न पंजू घर लौटा और न बसंता वापस आया। लोगों ने हर प्रकार के अनुमान लगाने आरम्भ कर दिये। जो कोई भी कुछ कहता, इस बात पर झुँझलाता कि आखिर वे गये ही क्यों थे, जब चौधरी सोहणे शाह ने सबको बाहर निकलने से रोक दिया था ? यदि वे एक दिन न जाते तो कौन-सी मुसीबत आ जाती ? बसंते लीखल की माँ को मूर्च्छा-पर-मूर्च्छा आ रही थी और पंजू का पिता भाई 'ढिल्ला' गुरुद्वारे के सामने गली में धरना देकर बैठ गया था। गंजे टूटन के गिर्द बार-बार अपने दूध जैसे सफेद बालों को खींचता और कहता – 'बेटा तो गया गुरुद्वारे की कृपाण भी गयी जो गुरु के चरणों में रखी जाती थी !'

और लोग सोचते कि बड़े गुरुद्वारे का भाई कितना ईमानदार है !

ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता जाता, त्यों-त्यों बमों के फटने की आवाज अधिक स्पष्ट सुनाई देने लगती। चारों ओर आग सुलगती दिखाई दे रही थी। सारी रात लोगों ने छतों पर बैठे-बैठे काट दी। चौधरी अल्लादित्ता जब से आया, मुसलमानों के मुहल्लों में जा घुसा था। लगभग आधी रात को लौटा; उसके चेहरे पर अब पहले जैसी घबराहट नहीं थी। 'और तो सब ठीक हैं, लेकिन जो दो लड़के छावनी में काम पर गये हुए हैं, वे नहीं लौट सकेंगे !' चौधरी अल्लादित्ता ने सोहणे शाह के पास चारपाई पर बैठते हुए कहा।

फिर दोनों मित्र अपनी बातों में उलझ गये। सोहणे शाह बार-बार कहता कि न जाने क्यों उसका साहस जवाब दे रहा था। जो आग चारों ओर भड़क चुकी थी, वह उनके गाँव को अपनी लपेट में लेने से कैसे रुकेगी ? बातों-बातों में वह बार-बार अल्लादित्ता को विदाई-सन्देश देने लगता। नूरपुर के पीर की दरगाह में सोहणे शाह पिछले बीस वर्षों से जा रहा था; पाँच वर्ष अभी और उसे वहाँ जाना था। और फिर उसने चौधरी अल्लादित्ता से कहा कि वह प्रति वर्ष उर्स पर अवश्य उसकी ओर से हो आया करे। इस वर्ष जब कुतिया ने पिल्ले दिये, तो उसने फफरों के लड़के मीरू को वचन दिया था कि वह उसे एक बच्चा देगा। एक पिल्ला उसने चन्नो महरी के पति को देने का इकरार किया था; बेचारे पति-पत्नी बूढ़े हो चुके थे, और सूना दालान उन्हें काट खाने को दौड़ता था। भट्टी के आगे बैठ-बैठकर चन्नो की नजर भी तो खराब हो गयी थी; जब कभी उसका पति घर पर न होता, चील-कौवे उसके बर्तनों में चोंच मारते रहते थे। दो महीने बाद जब काली भैंस सूख जाय तो सोहणे शाह ने उसे जोड़ियों वाले आलम के घर पहुँचा देने के लिए कहा। आलम से बढ़कर ढोर-डंगरों की और कोई सेवा नहीं करता था। सोहणे शाह ने चौधरी अल्लादित्ता को सिरदर्द के हटाने का मन्त्र बताया। ज्यों-ज्यों सोहणे शाह इस प्रकार की बातें करता, चौधरी अल्लादित्ता उससे खफा होता।

लेकिन सोहणे शाह बेबस था, उसकी आँखों के सामने ऐसे-ऐसे बुरे दृश्य आते कि वह काँप-काँप उठता। वह सोचता कि चौधरी अल्लादित्ता ने तो कभी कोई अख़बार नहीं पढ़ा

था। उसने तो केवल इधर-उधर की बातें सुन रखी थीं। सोहणे शाह जानता था कि नवाखाली में क्या हुआ था। बिहार में किस प्रकार खून की होली खेली गयी थी। उसी लड़ी की एक कड़ी पोठोहार था।

छछ और धन्नी के लोगों को अल्लाह ऐसे अवसर दे; वे तो कुछ भी नहीं छोड़ेंगे। फिर चौधरी अल्लादित्ता ने तो स्वयं उसे बताया था कि हज़ारे की ओर से, मरदान की ओर से, पठानों से भरे हुए ट्रक आ रहे थे। कड़ियल जवान, राक्षसों जैसे, जो शान्ति के दिनों में दिन-दहाड़े डाके डालते थे, और अब तो चारों ओर अन्धेरगर्दी मची हुई थी।

इस प्रकार सोच-सोच कर, कुढ़-कुढ़ कर सारी रात कट गयी। डर के मारे कोई अपने पशु नहीं खोलता था। लोग जहाँ बैठते वहीं बैठे रह जाते; किसी में शक्ति नहीं रही थी। बड़े गुरुद्वारे के 'भाई' और बसंते लीखल की माँ की चीखों और फरियादों ने सारा गाँव सिर पर उठा रखा था। और इधर फिर से छावनी का बिगुल बज रहा था, मजदूरों को काम के लिए बुलाया जा रहा था, क्लर्कों को हिसाब-किताब के लिए पुकारा जा रहा था। मुसलमान सिक्खों को मार रहे थे, मुसलमान हिन्दुओं को मार रहे थे। हिन्दू मुसलमानों को काट रहे थे, सिक्ख मुसलमानों पर तलवारें उठा रहे थे, और गोरे और उनकी मेमें सामने खड़े उनका कौतुक देखते रहे, उनसे कोई कुछ नहीं कहता था। छावनी के सारे अफ़सर गोरे थे।

अभी धूप निकली थी कि शहर की ओर से साइकिल पर मुजफ्फ़र, इनामखोर की लड़का आया! उसने आकर बताया कि रास्ते में दो लाशें पड़ी थीं, एक तो नदी के किनारे पर थी और दूसरी चाँदमारी के पास बूढ़े शीशम तले थी, दोनों सिक्खों की लाशें थीं।

यह सुनते ही स्त्रियों ने छाती पर दुहत्थड़ मार-मार कर बुरा हाल कर लिया। बसंते की माँ गलियों में एड़ियाँ रगड़ती, पंजू का पिता कुछ इस तरह बेसुध हुआ कि होश में ही न आता।

फिर कुछ लोगों ने सुना कि शहर से सूबेदार आया है। लोग उसकी हवेली की ओर दौड़ पड़े कि कहीं मुजफ्फ़र को गलती न लगी हो। उसने लाशों को पहचाना थोड़े ही थी, वह तो कालेज का विद्यार्थी था, कल रात सिनेमा देखने के लिए शहर रुक गया था। सूबेदार जीप पर आया और आते ही हवेली का बाहर का द्वार उसने बन्द कर दिया। जिन्होंने सूबेदार की जीप देखी थी, कहते वह ट्रंकों से लदी हुई थी, और भी न जाने क्या-कुछ उसमें भरा था।

कोई पौन घण्टे बाद चौधरी ने द्वार खुलवाया। सूबेदार के गले से पिस्तौल लटक रहा था, उसके हाथ में एक राइफ़ल थी। उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी। उसके होंठ पान से रंगे हुए थे।

चौधरी उसकी यह हालत देखकर वैसे का वैसा लौट आया। उसने उससे कोई बात न की। लौटते हुए उसने सोचा कि वह जमादार जहाँदाद से पूछे कि सूबेदार ने यह क्या रूप बना रखा था। किन्तु चौधरी को मालूम हुआ कि जमादार जहाँदाद खुद कल का गया शहर से नहीं लौटा था। ज़ैलदार का लड़का भी कुछ दिन हुए, नौकरी छोड़ घर आया था और पता चला कि वह भी घर में नहीं था। चौधरी अल्लादित्ता घर-घर घूमकर थक-हार गया। क्या सिपाही, क्या अफ़सर, जितने लोग लाम पर से आये थे, उनमें से कोई भी अपने घर में नहीं था। न वे

स्वयं घर में थे और न उनके हथियार घर में थे। कोई शहर कभी यूँ तो नही जाता कि अपनी बन्दूकें और पिस्तौलें भी साथ लेता जाय!

'हो-न-हो, इन सबकी अक्ल पर पर्दे पड़ गये हैं!'

चौधरी अल्लादित्ता के मुँह पर मानो ताले पड़ गये। लोग लाख उसे बुलाते किन्तु वह हैरान-परेशान किसी से बात न करता, फटी-फटी आँखों से घूरता और मुँह से कोई बात न निकालता।

फिर करमूँ मिरासी शहर से आया, उसके सिर पर सिलाई की एक मशीन थी। कह रहा था कि मशीन सड़क के किनारे पड़ी थी, उसने उठायी तो उसे किसी ने रोका नहीं, वह उसे उठाकर चल पड़ा, फिर भी उसे किसी ने नहीं रोका, वह निर्दोष था। वह तो स्टेशन पर उतरा था, रास्ते में मशीन पड़ी थी, वह उठा लाया। गाँव में दाखिल होते ही सीधे चौधरी सोहणे शाह के घर गया और पराई मशीन उसने गाँव के सरपंच के पास जमा करा दी। उसने लाख-लाख कसमें खायीं, कि उसका तनिक भी दोष नहीं था।

जब करमूँ ने यह कहा कि उसने रास्ते में कोई लाश नहीं देखी, तो सबको हौसला हुआ। किन्तु करमूँ तो एक आँख से काना था और दूसरी आँख से भी उसे कम दिखाई देता था; उसकी बात पर किसी को विश्वास न आता। फिर लोगों ने सोचा, क्यों न बन्दूकों और तलवारों से लैस एक जत्था जराही नदी और चांदमारी तक हो आये। लेकिन मुसलमान पड़ोसी सिक्खों और हिन्दुओं को गाँव से एक कदम बाहर न रखने देते। आखिर फैसला हुआ कि पाँच मुसलमान युवक साइकिलों पर जायें और इसकी खबर लायें।

पाँचों नवयुवक कुछ ऐसे गये कि लौटकर न आये। दोपहर हो गयी, दोपहर ढल गयी, सायंकाल हो गया। मुसलमान कहें कि लड़के भी हाथ से गँवाये, सिक्ख कहें कि साइकिलें भी खोयीं।

हारकर शाम को चौधरी सोहणे शाह ने फजलू चौकीदार को भेजा। लगभग एक घण्टे बाद वह पसीने से तर हाँफता हुआ आया, फूट-फूटकर रोता हुआ, सिर धुनता हुआ – वही थे, बिल्कुल वही थे, बसंता और पंजू। एक जराही के पास पड़ा था और दूसरा चाँदमारी के पास बूढ़े शीशम तले औंधे मुँह ढेर हुआ था।

जब सब लोग इधर-उधर हुए तो फजलू ने चौधरी सोहणे शाह को बताया कि पंजू के किस प्रकार तलवार से दो टुकड़े कर दिये गये थे। कन्धों से नीचे का उसका धड़ अलग पड़ा था। साथ के खेत वालों ने बताया कि 'टंच' के गुण्डों ने उसे उसी की तलवार से टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। बसंते को छुरियों से जैसे धुना गया था; वह मसला हुआ, कुचला हुआ पड़ा था। दोनों लाशों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। कुत्ते उन्हें आधा खा चुके थे। गिद्ध साथ वाले पेड़ पर आ जमे थे। बसन्ते को तो फजलू ने कपड़ों से पहचाना था और पंजू को कत्ल होता हुआ साथ के खेत वालों ने खुद देखा था। उसका रोटीवाला डिब्बा भी ले दौड़े थे। बसन्ते के पास पाठ करने वाला उसका 'गुटका' अभी तक पड़ा था, जिसे फ़जलदाद उठाकर ले आया था। गुटका खून से लथपथ था।

चौधरी चुपके से उठा और उसने दो चारपाइयाँ देकर आठ आदमी भेजे। ताकि लाशों को उठाकर ले आयें। सोहणे शाह ने किसी और के साथ इसकी चर्चा न की।

उस रात राजकर्णी को गले लगाकर चौधरी फूट-फूट कर रोया। हक्की-बक्की सतभराई छत पर खड़ी देखती रही, और जब सोने के समय वे दोनों इकट्ठी हुईं तो सतभराई के आँसू रोके न रुकते।

और अभी कुछ अधिक समय नहीं बीता था कि छावनी की ओर से एक लारी आती हुई दिखाई दी। सब लोग छतों पर खड़े होकर उसकी प्रतीक्षा करने लगे। कोई कुछ सोचता और कोई कुछ! लेकिन जब गाँव में वह लारी पहुँची, तो मुसलमानों के मुहल्लों में कुहराम मच गया। पाँच लड़के जो दिन को साइकिलों पर गये थे, और लौटे नहीं थे, उनमें से एक की लाश लारी में लदी हुई थी। कोई कहता कि किसी सिक्ख ने उसे गोली मारी थी, कोई कहता कि किसी फौजी गोरे ने। बात यों हुई – लाशों को देखकर ये लड़के गाँव लौटने के बजाय छावनी चले गये। वहाँ गली-गली में लूटमार हो रही थी, आग लगायी जा रही थी। 'अल्लाह ओ अकबर' के नारे लगाते ये भी लूटमार में शामिल हो गये। पता नहीं फिर कहाँ से एक गोली आयी और दोस्त मुहम्मद के बेटे के सीने में उतर गयी। पच्चीस वर्ष का भरपूर नवयुवक देखते-ही-देखते तड़पता हुआ ठण्डा हो गया।

सारा गाँव टूट कर दोस्त मुहम्मद के घर पहुँच गया। क्या सिक्ख, क्या मुसलमान, सभी दोस्त मुहम्मद के गले लगकर रोते। अभी यह सब कुछ जारी था कि सूबेदार ने उठकर बोलना आरम्भ कर दिया – 'यह लड़का शहीद है। इसे किसी सिक्ख की गोली लगी है। मुसलमान इसका बदला सौ सिक्खों के सीनों को गोलियों से बींधकर लेंगे।' सूबेदार ने अभी तक शराब पी रखी थी। बस बोलता गया, बोलता गया। जब कभी वह अधिक जोश में आता तो गले में पड़े हुए पिस्तौल पर हाथ रख देता।

आखिर जब सूबेदार ने बोलना बन्द किया, तो दालान में एक भी हिन्दू-सिक्ख नहीं था। सूबेदार ने दोस्त मुहम्मद के लड़के को अपने शराब में भीगे हुए होंठों से चूमा। उसके पैरों पर अपने सिर से तुर्रेदार पगड़ी उतारकर रख दी और लाख-लाख कसमें खाकर इकरार किया कि उसका खून व्यर्थ नहीं जाने दिया जायेगा।

और फिर 'अल्लाह-ओ-अकबर' के नारों से, 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारों से आसमान जैसे फटने लगा।

6

रात भर मुसलमानों के मुहल्लों में नारे लगते रहे – 'अल्लाहो अकबर' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे

अभी ये नारे गूँज ही रहे थे कि फजलू चौकीदार बसन्ते और पंजू की लाशें उठवाकर ले आया।

सहमे हुए हिन्दुओं और सिक्खों के मुँह से आवाज न निकाली। चुपके से उन्होंने चारपाइयों को कंधा देकर उठा लिया और बाज़ार में ला रक्खा। बसन्ते लीखल की माँ की किसी ने चीख न निकलने दी। पंजू के पिता के होंठों पर किसी ने फरियाद न आने दी।

'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे और ऊँचे हो रहे थे। दो दिनों से सड़ती हुई लाशों से दुर्गन्ध आ रही थी। गिद्धों की नोची हुई और कुत्तों की भंभोड़ी हुई लाशें धूल से अटी पड़ी थीं। बसन्ते की बाँह पर लिखा हुआ था – 'भाई बसन्तसिंह जी', और पंजू ने अपने सीने पर मेमों और फिल्म स्टारों के चित्र गुदवाये हुए थे।

चौधरी अल्लादित्ता और सोहणे शाह भी आखिर आ पहुँचे। सहमे हुए लोगों ने उन्हें रास्ता दे दिया। सोहणे शाह की आँखों में आँसू देखकर सभी दुहत्थड़ मारकर रोने लगे, जैसे कोई बांध टूट गया हो! बसन्ते की माँ दीवार पर सिर पटकने लगी, मिट्टी से मुट्ठी भर-भरकर अपने सिर में डालती। पंजू का पिता पागल हो गया; बार-बार उसे कपड़े पहनाये जाते, वह उन्हें फाड़ कर चीथड़े-चीथड़े कर देता।

सोहणे शाह और अल्लादित्ता के कहने पर लाशों के जलाये जाने का प्रबन्ध किया गया। और लोगों ने सोचा कि सवेरे से पहले-पहले उन्हें यह काम खत्म कर लेना चाहिए, क्योंकि उसके बाद उन्हें दोस्त मुहम्मद के लड़के को भी दफ़नाने के लिए जाना था।

'अल्लाह-ओ-अकबर' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे सारी रात गूँजते रहे। हर नारे के बाद अल्लादित्ता दाँत पीसने लगता, अन्दर-ही-अन्दर बल खाता।

राजकर्णी और सतभराई बार-बार छत पर चारों ओर आग की लपटें उठती हुई देखतीं और अपने-अपने हृदय में भुनकर रह जातीं!

मासूम आँखों में लाख प्रश्न लिखे हुए थे, मासूम चेहरों पर भयानक भय छाया हुआ था। आखिर चौधरी अल्लादित्ता ने उन्हें सब-कुछ बता दिया।

चौधरी ने फ़ैसला किया था कि वह अपने गाँव में दंगा नहीं होने देगा। दोस्त मुहम्मद का लड़का बाकी चार लड़कों के साथ छावनी की दुकानें लूट रहा था कि किसी गोरे ने गोली चला दी थी। उसके ख़ून का दोष सिक्खों पर लगाना अन्याय था। दोस्त मुहम्मद के लड़के को 'शहीद' कहना कुफ्र था। और चौधरी ने फ़ैसला किया था कि जब वे उसे दफ़नाने के लिए जायेंगे, तो वह उनके साथ शामिल नहीं होगा।

राजकर्णी और सतभराई जब सोचतीं कि दोस्त मुहम्मद का लड़का 'दीना' शहीद बन गया था, तो उनका खून खौलने लगता। दीना, जिससे गाँव की हर जवान लड़की को कोई-न-कोई शिकायत थी। वक्त-बेवक्त खाइयों में घूमता रहता, पेड़ों पर चढ़कर बैठा रहता। रक्खी तेलिन की बेटी से जब उसने एक दिन कुछ कहा था, तो वह फूट-फूट कर रोती हुई चौधरी अल्लादित्ता के पास शिकायत लेकर आयी थी। दोस्त मुहम्मद का लड़का, जिसके माँ-बाप उसके हाथ जोड़ते रहे और उसने एक अक्षर नहीं पढ़ा था। स्कूल न खुद जाता था, न

बाकी लड़कों को जाने देता था। हर पड़ोसी और हर साथी के साथ वह एक-न-एक बार झगड़ चुका था, लड़ चुका था। बड़े-छोटे का कभी लिहाज़ न करता। एक दोपहर को पुरियों का गुरुद्वारा खाली था और उसने भीतर जाकर उसकी गुल्लक तोड़नी शुरू कर दी। यदि ऊपर से हीरो न आ जाती, तो उसने सारे रूमाल भी चुरा लिये होते, और सारे पैसे भी। और जब कोई उस चोरी की चर्चा करता, तो दीना और उसका पिता दोस्त मुहम्मद सामने से लड़ने को उतारू हो जाते।

वही दीना आज शहीद बन गया था। उस दीने के बदले के लिए 'अल्लाह-ओ-अकबर' के नारे लगाये जा रहे थे, ताकि उन नारों में शामिल होने वाला हर आदमी अपने शहीद का बदला ले!

सोहणे शाह सोचता, बिल्कुल यूँ ही होगा, जैसे दूसरे गाँवों में हो रहा था। एक भ्रम सा था, एक आँखों की शरम थी, जो किसी क्षण भी हट सकती थी। और उसके अन्दर से बार-बार आवाज़ उठती – 'अच्छा, जैसी तेरी मरज़ी!' और वह सोचता यदि सारे हिन्दुओं और सिक्खों को मारकर, उन्हें अपने पाकिस्तान से निकाल कर मुसलमान प्रसन्न हो जायेंगे, चैन से बसेंगे, तो वह निस्सन्देह ऐसा कर लें। और यदि इस सब कुछ का परिणाम कुछ नहीं निकलने का; और यदि निर्धनों को निर्धन ही रहना था, यदि किसानों को यूँ ही भूखों मरना था, तो फिर ऐसा क्यों हो रहा था?

और अभी तो पाकिस्तान बना ही नहीं था, अभी तो शासन अंग्रेज़ के हाथ में था। एक दिन उसने कचहरी से लौटते हुए किसी को कहते सुना था कि यह सब-कुछ अंग्रेज़ का किया-धरा था। अंग्रेज ही लड़वा रहा था, हिन्दुओं को मुसलमानों के साथ, मुसलमानों को सिक्खों के साथ!

बसन्ते और पंजू को जलाने के लिए सारा गाँव आया। रातो-रात लकड़ियाँ इकट्ठी की गयीं, मिल-जुल कर सारा प्रबन्ध किया गया और चुपके-से जा कर उन्हें अग्नि की भेंट कर दिया गया। एक भी चीख़ न उठी, एक भी कदम जोर से न पटका गया।

और जब लपटें उठ रही थीं, दोनों चिताओं के पास बैठे हुए लोगों को चौधरी सोहणे शाह ने समझाना आरम्भ किया –

'आज हमारी परीक्षा का दिन है! आज हमारे दो नवयुवक नहीं मारे गये, हम सब मर चुके हैं! हम, जो न फरियाद कर सकते हैं, न उनका बदला ले सकते हैं...'

और इस प्रकार सोहणे शाह बोलता गया, बोलता गया। उसने लोगों को बताया कि चौधरी अल्लादित्ता बेबस है। उसकी कोई नहीं सुनता है। वह सिर पटक-पटक कर थक चुका है। अब हार कर घर बैठ गया है।

सोहणे शाह इस प्रकार देर तक बोलता रहा। अपनी बेबसी, अपनी मजबूरी के उसने करुणाजनक दृश्य खींचे। जब वह बैठ गया तो एक नवयुवक उठकर लोगों को ललकारने लगा। निर्णय हुआ कि पंचायती गुरुद्वारे में इकट्ठे होकर लोग अपनी रक्षा के साधन ढूंढ़ें।

लगभग एक घण्टे के पश्चात् गुरुद्वारे में बन्दूकों की सूची तैयार की गयी, कारतूसों की

गिनती की गयी। यह देखा गया कि किस-किस के पास कृपाण थी और किस-किस को उनका प्रयोग आता था। छुरियों वाले छुरियां ले आये, गँड़ासों वाले गँड़ासे, लाठियों वाले लाठियाँ। लोगों ने नोकदार पत्थर जमा करके घर भर लिये। फ़ैसला किया गया कि सारा गाँव चौधरी सोहणे शाह के चौबारे पर इकट्ठा हो जाये। लोग अपने घरों में ताले लगाकर चौधरी सोहणे शाह के घर में पहुँच गये। फर्शों पर दरियाँ बिछा दी गयीं, राइफ़लों वाले अपने-अपने स्थान पर मोर्चा बाँधकर बैठ गये। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए कोई-न-कोई हथियार पकड़े हुए था।

मुसलमानों के मुहल्लों से नारे अभी तक लग रहे थे। दोस्त मुहम्मद के लड़के को अभी तक 'शहीद' पुकारा जा रहा था, और हर नारा शताब्दियों से साथ रहनेवाले हिन्दुओं और मुसलमानों को चीर कर अलग कर रहा था। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे, जो अभी कल हिन्दू-मुसलमान और सिक्ख बालक मिल कर लगाया करते थे, आज ये नारे हिन्दुओं और सिक्खों को गोलियों की तरह बींध रहे थे।

आज फिर तीसरे दिन छावनी के वर्कशाप में सीटियाँ बजनी आरम्भ हो गयीं; सोकर जागने की सीटी, नहाने-धोने की सीटी, रोटी खाने की सीटी, घर से निकलने की सीटी, आधा रास्ता तय करने की सीटी, वर्कशाप पहुँचने की सीटी!

धमियाल के प्रत्येक घर में से एक-न-एक व्यक्ति वर्कशाप में नौकर था। 'वर्कशाप माई-बाप है!' धमियाल के लड़के पढ़ते-पढ़ते स्कूल से खिसकने लगते, फिर फेल हो जाते, यदि माता-पिता अधिक तंग करते तो एक बार फिर फेल हो जाते, फिर कोई-न-कोई उन्हें वर्कशाप में नौकर करवा देता। धमियाल के कई बाबू अब बड़े अफसर बन गये थे, जिनकी कलम चलने से प्रतिदिन कई नौकर हो जाते, कई निकाले जाते। धमियाल वासियों को एक शिकायत सदैव रहती थी कि जब कोई तनिक बड़ा हो जाता, जब किसी का वेतन अधिक हो जाता, तो बोरिया-बिस्तर उठाकर रावलपिंडी छावनी, तोपखाने, लालकुरती, खलासी लाइन या शहर में जाकर रहने लगता।

अमीर हिन्दू और अमीर सिक्ख शायद ही कोई गाँव में टिकता, इसलिए मुसलमान-जमींदार शुरू से अपने-आपको 'राजा' कहलवाते आये, और उनका दबदबा भी गाँव वालों पर कुछ कम नहीं था।

और अब जबकि मुसलमानों के मोहल्लों में 'अल्लाह-ओ-अकबर' के नारे लग रहे थे, हिन्दू और सिक्ख भय के मारे काँप-काँप जाते।

आखिर कुछ नवयुवकों ने तंग आकर सोचा कि नारों का जवाब नारों से दिया जाय; किन्तु चौधरी सोहणे शाह ने इस बात की बिल्कुल आज्ञा न दी।

'अगर वे दीवाने हो चुके हैं तो तुम भी पागल मत बनो!' बार-बार चौधरी याद दिलाता।

उधर अपने बड़े कमरे में अल्लादित्ता सिजदे में गिरा हुआ था। दुआ कर रहा था कि खुदा उसे इस इम्तहान में सुर्खरू करे! उसे भय था कि कहीं इस बूढ़ी उम्र में उसके मुँह पर कालिख न मल दी जाय। कहीं सारी उम्र के किये-कराये पर पानी न फिर जाय। उसे इस बात

की रत्ती-भर चिन्ता नहीं थी कि उसकी अपने बेटी का क्या बनेगा, उसका अपना क्या होगा

'खुदा मुझे हिम्मत दे !' बार-बार चौधरी अल्लादित्ता दुआ माँगता।

7

'आ गये – आ गये – आ गये !' और इस बार वे सचमुच आ रहे थे।

पिछले तीन दिनों से शोर मचा हुआ था। चारों ओर दूर क्षितिज तक धूल उठती और फिर बिखर जाती। ढोल बजते-बजते धीमे पड़ जाते, शहनाइयाँ सिमटकर रह जातीं।

किन्तु अब वे आ रहे थे, 'अली-अली' करते हुए। तंदूरों में ईंधन पड़ा का पड़ा रह गया, तवों पर रोटियाँ धरी की धरी रह गयीं, दही में बिलोनियाँ रुक गयीं।

सारा गाँव चौधरी सोहणे शाह के चौबारे पर इकट्ठा था। फिर चौधरी अल्लादित्ता लट्ठे की दूध जैसी चादर बाँधे व्याकुलता से घूमने लगा। उसकी नौकरानियाँ मिठाई की टोकरियाँ उठाये, दूध के पतीले उठाये, अपने पड़ोसियों के लिए लेकर आने लगीं।

सामने नदी के किनारे शमशान में अभी तक चिताएं सुलग रही थीं, उन नवयुवकों की, जिन्हें छुरियों से, गँडासों से काटकर रख दिया गया था।

चारों ओर धुँआ उठ रहा था। रात को नज़रें शोलों पर जमकर रह जातीं। दूरबीन वाले बारी-बारी से सारे इलाके के गाँवों के नाम ले चुके थे। जिस-जिस गाँव का नाम उनके होंठों पर आता, उस-उस गाँव के सम्बन्धी दुहत्थड़ मार-मारकर रोते। किसी की बेटी कहीं ब्याही हुई थी, किसी की माँ कहीं से ब्याही आयी थी।

बूढ़ा नज़रा नीचे गली में से गुज़र रहा था।

'ए भाई नज़रे।' ऊपर से एक खत्राणी ने आवाज़ दी, 'रवात की तुझे कोई खबर है ?'

'भाभी, झाड़ू दे आया हूँ !' एक हाथ से नज़रे ने अपने काँटों जैसी दाढ़ी खुजलाते हुए ऊपर की ओर देखकर कहा।

और खत्राणी की ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी। रवात गाँव में उसकी दो बेटियाँ थीं, एक ननद थी।

रवात को बरबाद करने में नज़रा भी शामिल था। नज़रा, जिसे कभी नदी में से गुजरना होता और यदि वहां स्त्रियाँ नहा रही होतीं, कपड़े धो रही होतीं, तो किनारे पर खड़े होकर आवाज़ दिया करता – 'अरे बाई कौन हो तुम ? अगर अपने मोहल्ले वाली हो तो कपड़ा ओढ़ लो।'

और गाँव की स्त्रियाँ उसे लाख-लाख गालियाँ दिया करती थीं।

जिन स्त्रियों के गर्भ सात महीने से ऊपर थे, वे सब माताएं बन गयीं। एक-एक दिन में तीन-तीन बच्चे पैदा होते। चौबारे की सारी चारपाइयां स्त्रियाँ सँभाले हुए थीं। एक चारपाई बूढ़े दरोगा के पास थी। उसे कोई नाराज़ नहीं कर सकता था। वह आठों पहर दुनाली बन्दूक

सीने से लगाये रखता। आजकल उसके जोड़ों में दर्द था। शहतीर जैसी लम्बी और सरो-कद पोठोहारिनों के यहाँ आजकल ठिगने, चूहे-बिल्लियों जैसे बच्चे हो रहे थे।

फ़सादी आते रहे, और टल जाते रहे, किन्तु आज वे सामने पहुँच चुके थे। गाँव के बाहर खालसा स्कूल को आग लगा दी गयी। ढोल पीटे गये, किन्तु अल्लादित्ता ने खत्रियों को रोके रक्खा।

अल्लादित्ता ने सोहणे शाह के साथ फिर पगड़ी बदली। उनके झुर्रियों से भरे हुए हाथ फिर उनकी श्वेत दाढ़ियों पर फिरते रहे।

और उधर सोहणे शाह की जवान बेटी राजकर्णी बार-बार अल्लादित्ता की जवान बेटी सतभराई के गले से चिमट जाती। चार आँखों में एक बाढ़, दो सीनों में एक टीस। यदि भुजाएं लहरातीं, तो एक ही तरह, आहें होंठों से निकलतीं तो एक ही जैसी।

मुसलमान चौधरी के घर एक ही बेटी थी, सिक्ख चौधरी के घर इकलौती बेटी थी और वे दोनों साथ खेल कर बड़ी हुई थीं। उनकी दोस्ती गुड़ियों से खेल-खेल कर जवान हुई थी, उनकी दोस्ती माहिया की तानों में पली थी। और आज वही दोस्ती तड़प-तड़प उठती।

अपनी अल्हड़ जवान बेटी की ओर सोहणे शाह निहारता और सोचता, यदि वे सचमुच आ गये तो...। और राजकर्णी अपने पिता की आँसुओं से भीगी आँखें देखकर अपनी चीखें न रोक सकती।

यदि वे सचमुच आ गये तो, सतभराई सोचती, मैं राजकर्णी के पहलू में बैठ जाऊँगी। लेकिन अब तो वे आ चुके थे। किसी के रोके रुकने वाले नहीं थे, किसी के टाले टलने वाले नहीं थे। अब तो वे आ चुके थे।

'अल्लादित्ता! तू कराड़ों से मिल गया है? कुछ तो सोच, तुझे लाज नहीं आती? मुसलमान भाई होकर तू सिक्खड़ों की मदद करता है? फसादी अल्लादित्ता को बार-बार लज्जित करते।

और चौधरी अल्लादित्ता बार-बार सोचता कि बिहार में रहने वाले मुसलमान पोठोहार में रहने वाले मुसलमानों के किस तरह अपने थे, और जिन पड़ोसियों के साथ वे हँस-खेलकर बड़े हुए थे, वे सहसा क्यों पराये हो गये थे? किसी की चीज किसी से क्यों छीनी जा सकती है? किसी को किसी दूसरे के दोष के लिए क्यों मारा जा सकता है? चौधरी अल्लादित्ता की समझ में कुछ नहीं आता। वह हैरान होता कि यदि खत्री यहाँ से चले जाएंगे, तो मुसलमान अकेले कैसे जी सकेंगे। किन्तु वह अकेला था। गाँव के दूसरे मुसलमान अपने-अपने मकानों में छिपे रहे। उन्हें लाख आवाज़ें दी गयीं, उन्हें लाख बुलाया गया, किन्तु कोई भी बाहर न निकला। चौधरी अल्लादित्ता अकेला था और उसके सामने 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों का एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ था। वह अकेला था और उसके सामने एक हज़ार तने हुए सीने थे।

अल्लादित्ता ने उन्हें समझाया। चौधरी अल्लादित्ता ने उन्हें धमकाया। बूढ़े अल्लादित्ता ने विनती की। किन्तु किसी ने उसकी न सुनी।

खुदाबख्श,जिसने अभी उस दिन सोहणे शाह से पगड़ी बदली थी,फ़सादियों का सरदार था,सबसे आगे खड़ा था। सैदन लुहार था,जो सोहणे शाह को सलाम करता नहीं थकता था। सोहणे शाह के अपने मुज़ारे थे। भाले उठाये,छुरियां लिए उछल-उछल पड़ते थे।

'खुदाबख्श,अभी तो सोहणे शाह की तुझे दी हुई मेंहदी तेरी दाढ़ी पर लगी है!' चौधरी अल्लादित्ता ने खुदाबख्श को शरमिंदा किया!

'वह पुराना सोहणे शाह भी मर गया और वह पुराना खुदाबख्श भी नहीं रहा,चौधरी!' खुदाबख्श ने अकड़ कर कहा। 'हमें बिहार का बदला लेना है!' सैदन लुहार ने तोते की तरह रटा हुआ वाक्य कहा। सैदन को तो इतना भी पता नहीं था कि गुज्जर खान के आगे कौन-सा शहर था।

'हमें पाकिस्तान लेना है!' फफरों के लड़के करमूँ ने कहा। करमूँ जिसके मुँह में जीभ नहीं हुआ करती थी। जब से उसने होश सँभाला था,ताँगा चलाया करता था।

चौधरी अल्लादित्ता सुनता रहा,सुनता रहा। आखिर उस से न रहा गया,'मेरे गाँव में यह जुल्म कभी नहीं होगा?' उसके अन्तिम शब्द भीड़ के कोलाहल में विलीन हो गये। जैसे अथाह सागर में एक लहर हो,एक तिनके की तरह चौधरी अल्लादित्ता की पगड़ी भालों की बाढ में खो गयी।

8

खत्री काटे गये लेकिन गाजर-मूली के समान नहीं! जिस-जिस में लड़ने की शक्ति थी वह अन्तिम साँस तक लड़ा।

जब हल्ला हुआ तो घबरा कर सिक्खों और हिन्दुओं ने चौधरी का चौबारा छोड़ दिया और एक-एक मोहल्ले को,अपने एक-एक घर को बचाने के लिए निकल पड़े। गलियों और दालानों में लाशों के ढेर लग गये।

बच्चों को भालों पर उछाला गया; स्त्रियों को गँड़ासों से काटा गया,बूढ़ों को बालों और दाढ़ियों से पकड़कर घसीटा गया,जवान लड़कों को गोलियों से भून दिया गया।

ढोल पीटते और शहनाइयाँ बजाते फ़सादी बाजे-गाजे के साथ आये। बाहर खालसा स्कूल को जलता हुआ छोड़कर जब वे आगे बढ़े तो चारों ओर जहाँ तक नज़र जाती,भाले और बन्दूकें ही दिखाई देतीं। जोड़ियों की ओर से जोड़ियों वाले आये,मोहड़े की ओर से मोहड़े वाले आये,टाली मूहरी की ओर से टाली मूहरी वाले आये,न जाने फसादियों के चश्मे कहाँ-कहाँ से फूट पड़े। और 'जाबे' की ओर तो जैसे गुण्डे और बदमाश पहले ही से आकर इकट्ठे हो गये थे।

'अल्लाह ओ-अकबर' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों से आकाश गूँज उठा।

ज्यों-ज्यों ये नारे नज़दीक आते, त्यों-त्यों गाँव के मुसलमानों के मोहल्लों में हलचल बढ़ती जाती। और जब फसादी गाँव के बिल्कुल पास पहुँच गये, तो बाहर के नारों का जवाब भीतर के नारों से दिया जाने लगा। फिर पड़ोसियों के देखते-देखते गाँव के सूबेदार के नेतृत्व में हार लेकर, सेवइयों और बताशों के टोकरे लेकर वे फ़सादियों से जा मिले।

सूचियाँ देखी गयीं। किस-किसके पास हथियार थे। किसका घर कहाँ था। गाँव में जवान लड़कियाँ कितनी थीं। कौन-कौन अख़बार पढ़ता था। कौन-कौन पाकिस्तान के विरुद्ध बातें करता था। किस-किस घर से क्या-क्या लूट का माल प्राप्त किया जा सकता था। करमू के लड़के लक्खू ने एक बार शामू हलवाई की लड़की प्रीतो को बुरी नज़र से देखा था, तो खत्रियों ने मार-मार कर उसका बुरा हाल किया था। जो भी आता, घूँसे और थप्पड़ जमाता। फिर उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे छत से लटका दिया गया था। सारी रात वह चीख़ता रहा था। अगले दिन कुत्ते से उसका मुँह चटवाया गया था। लक्खू, जिसने उस दिन से कभी खत्रियों के मोहल्ले की ओर आँख उठाकर नहीं देखा था, आज दमकती हुई छुरी उठाये शामू के घर पर नज़र गड़ाये हुए थे। और फिर जब आक्रमण हुआ तो वह अपनी टोली को लेकर सबसे पहले उस घर पर टूट पड़ा। शामू को उन्होंने एक खम्भे से बाँध दिया, और उसकी पत्नी को दूसरे खम्भे से, और फिर प्रीतो को और उसकी पाँच अन्य बहनों को उनके अपने माता-पिता के सामने मसलकर रख दिया गया, दूध-मलाई पर पली हुई शामू की सुन्दर बेटियाँ सिसक न सकीं, मुँह से कोई आवाज़ न निकाल सकीं। लहू से लिथड़े हुए छुरों के भय से किसी को चौके में ही गिरा लिया गया, किसी को दालान में ही पटक दिया गया, कोई बेरी-तले औंधे मुँह जा गिरी। सबसे छोटी तेरह वर्ष की कोंपल ऐसी लड़की देहली पर पड़ी हुई अपनी माँ की ओर देखती रही, देखती रही, और फिर ठण्डी हो गई। सबसे छोटी, सबसे ताकतवर राक्षस के हाथ लगी और जहाँ वह दाँत काटता वहीं से खून निकल आता। जाते हुए लक्खू ने शामू और उसकी पत्नी की एक-एक आँख निकाल ली।

मोहल्लों-के-मोहल्ले जलाये जा रहे थे। तड़-तड़ करती हुई गोलियाँ बरस रही थीं। 'अल्लाह-ओ-अकबर' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों से आकाश गूँज-गूँज उठता। फ़सादी लाशों पर से फलांग रहे थे, लहू से लिंथड़े हुए थे, और आक्रमण का निर्देशक ख़ुदाबख्श बार-बार नेफ़े में दबाई हुई शराब की बोतल निकालता और पीता जाता। उसकी आँखों की पुतलियाँ जैसे उछल कर बाहर आ रहेंगी। ढोल पीटने की आवाज़ और ऊँची होती गयी। शहनाइयाँ एक ही साँस में बजायी जा रही थीं। खुदाबख्श का सफेद घोड़ा मचल-मचल जाता।

चिश्ती कसाई का सारा परिवार भाले और गँड़ासे उठाये हुए था। चिश्ती पागलों की भाँति हँसता और लोगों को पकड़-पकड़ कर बताता, 'मुझे तो आज पता चला है कि औरत किसे कहते हैं। मुझे तो आज पता चला है कि औरत को मारना कितना आसान है।'

कमाल अपने रंगीन स्वभाव के कारण सारे इलाके में प्रसिद्ध था। प्रति वर्ष मुजरा करवाता और हर दूसरे वर्ष नयी औरत घर में डाल लेता। *और अब जिस दिन से फ़साद शुरू हुए थे,*

शराब की बोतल उसके मुँह से अलग न होती। कबाब खाता, शराब पीता, पान की पीक थूकता, और 'ढल्ले' के चौधरी की बारह साल की लड़की के मेमों की तरह बाल काट कर साथ लिए फिरता। दूध जैसी गोरी लड़की, शराब में बदमस्त हँस-हँस कर, ऐंठ-ऐंठकर, उसके साथ चलती।

फिर खुदाबख्श को किसी ने आकर बताया कि फ़सादी बीच के मोहल्ले में आपस में लड़ पड़े थे। ऐनक लगाने वाली, साड़ी बाँधने वाली, अंग्रेज़ी में गिटपिट करने वाली स्कूल की उस्तानी को जो कोई भी देखता, अपनी ओर खींचता। फिर जोड़ियाँ गाँव के लड़के मोहड़े गाँव के लड़कों से हाथापाई पर उतर आये। झगड़ते हुए छुरियां लेकर एक-दूसरे पर टूट पड़े. बीच में उस्तानी भी कट गयी और दोनों पक्षों के दो-दो, चार-चार व्यक्ति भी मारे गये।

खुदाबख्श के साथ परामर्श के लिए एक हरे चोग़े वाला पीर था, और एक फ़ौज में से छुट्टी पर आया हुआ सूबेदार था। पीर को बार-बार क्रोध आता और बार-बार अरबी भाषा में वह लोगों को बुरा-भला कहता। पीर की समझ में नहीं आ रहा था कि फ़सादी स्त्रियों और बच्चों को क्यों काट रहे थे। 'खत्रियों की औरतें पाकिस्तान की जायदाद हैं !' बार-बार वह कहता। 'बच्चे जिस घर में पलते हैं, उनका वही मजहब हो जाता है !' उसके पास ऊपर से यह आदेश आया था।

एक गली में 'जंड' की शाखा से एक सिक्ख नौजवान लटक रहा था। उसके साथ उसकी पत्नी अपने गज-गज-भर लम्बे बालों के साथ झूल रही थी। और 'जंड' की जड़ पर उनका छः माह का बच्चा कीलों से जड़ा हुआ था। कोई कहता कि स्त्री में अभी तक प्राण हैं, कोई कहता कि वे सब मर चुके थे। और पीर कहता – 'अबे ससुरो ! मैं किस मर्ज़ की दवा हूँ, इन लड़कियों को तुम मेरे पास क्यों नहीं भेजते ?' उसे यह आदेश मिला था कि स्त्रियों को कलमा पढ़वाया जाय और साथ-साथ उनके निकाह किये जायँ, ताकि बाद में कोई झगड़ा न उठे. इस्लाम में चार-चार पत्नियों की तो रसूले-पाक ने भी आज्ञा दे रखी थी। खुदा ने उन्हें यह अवसर दिया था कि सारे घर आबाद हो जायं, सब चूल्हों में आग जलने लगे। पीर सोचता, आखिर इन हिन्दुओं के मुल्क में इस्लाम इसी तरह ही फैलाया जा सकता है। और अब तो उन्हें पाकिस्तान को बनाना था। खत्राणियाँ साफ-सुथरे और गोरे बच्चे जनती थीं। पाकिस्तान को ऐसे बच्चों की जरूरत थी। फिर खत्राणियों के बच्चे पढ़ने-लिखने में बड़े तेज़ होते थे।

खुदाबख्श का फ़ौजी सहायक बार-बार झुँझला उठता। चारों ओर लाशों के ढेर देखकर वह सोचता, इस प्रकार अवश्य कोई बीमारी फूट पड़ेगी। अभी तो फ़सादियों को 'टंच' गाँव को लूटना था और फिर ख़लासी लाइन पर आक्रमण करना था। और फिर सारा रावलपिंडी शहर। और यदि वे एक बार यहाँ से निकल गये तो पीछे लाशें सड़-गलकर वातावरण दूषित कर देंगी।

'ये सिक्ख पाकिस्तान के बैरी यहाँ मर कर भी अपना बदला लेते रहेंगे।' बार-बार खुदाबख्श से वह कहता।

फिर उसने एक बड़ा अलाव जलवाया, और सब लाशों को उसमें फेंक दिया। फ़साद

सोचते – जान से मारने के बाद अगर उन्हें दोबारा आग में फेंकने की जरूरत थी, तो क्यों न उन्हें ज़िंदा जला दिया जाये ? खत्रियों को तो मरना ही था, उनके लिए क्या फ़र्क पड़ता था ? और वे बूढ़े जो 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' नहीं कहते थे, और वे बच्चे जिनके माता-पिता आत्महत्या कर गये थे, और वे पत्नियाँ जिनके पतियों ने लड़ने का प्रयास किया था और जो कलमा पढ़ने से इन्कार कर रही थीं, उन सबको जीवित ही अलाव में फेंक दिया गया।

फत्तू लुहार जब दित्ते की पत्नी को – जो बालों में तोता-मैना बनाया करती थी और धोबी के धुले दूध-जैसे सफेद कपड़े पहनती थी – कंधे पर उठाये बाहर दालान में लाया तो उसने उसके मुँह पर थूक दिया। फत्तू को यह समझ नहीं आया कि वह उसके साथ क्या करे। वह उसे उठाये हुए आग में फेंकने लगा। किन्तु सूबेदार भी, खुदाबख्श भी और पीर भी उसके पीछे पड़ गये।

'ओ फत्तू ! बदज़ात, यह तो बड़े काम की बीवी बनेगी। अने, यह तो दस और बच्चे पैदा करेगी, क्यों इसे यूँ ही हाथ से गँवाता है ?'

और जब वे फत्तू के पास आये, तो दित्ते की परी जैसी पत्नी ने तीनों के मुँह पर बारी-बारी से थूक दिया। वह थूकती जाती और वे सब-के-सब हैरान हक्के-बक्के उसके मुँह की ओर देखते जाते !

क्रोध में आकर सूबेदार ने दित्ते की पत्नी का कीमा कर दिया। हरे चोगे वाला पीर हैरान होता – मजाल है जो बालों में तोता-मैना बनाने वाली, फूल जैसी दित्ते की पत्नी ने फरियाद भी की हो।

यूं तो हर गली, हर मुहल्ले और हर घर में खत्री एक-न-एक चोट लगा कर मरे, किन्तु सबसे कड़ी टक्कर पुरियों के मुहल्ले में ली गयी। जैवन्त चाहे फौज में छः महीने ही रहा था, किन्तु अपने मुहल्ले की रक्षा का प्रबन्ध उसने खूब किया। पाँच मोर्चों पर उसने राइफलों वाले बिठा दिये थे और पाँच मोर्चों पर पत्थर वाले। दोनों ओर से रात-भर गोली चलती रही। अन्त में खत्रियों का बारूद खत्म हो गया। जब बड़े गुरुद्वारे के मोर्चे पर फ़सादी टूट पड़े, तो जैवन्त ने अपनी आँखों से देखा, मोर्चे में किस तरह उनके तीन नौजवान बर्छी से छलनी हो गये और फिर भालों पर उछाल दिये गये।

अगला मोर्चा दसवें गुरु के "जोड़ों" की जगह पर था। जैवन्त को विश्वास था कि जब फ़सादियों ने उसके घर में पाँव रक्खा, वे अन्धे हो जायेंगे। बचपन से वह कहानियाँ सुनता आ रहा था कि डाकू गुरु के "जोड़े" चुराने के लिए आये और अन्धे हो गये। आज जैवन्त देख रहा था, देख रहा था कि फ़सादी दौड़ते-भागते हुए उस मोर्चे तक आ पहुँचे। और फिर बिल्कुल वही हुआ, जो पहले मोर्चे पर हुआ था।

तीसरे मोर्चे पर सुन्दर सुनार और उसकी पत्नी थी. जब उनकी बारी आयी, तो कमर में दुपट्टा बाँधकर चमकती हुई तलवारें पकड़े पति-पत्नी गली में उतर आये। सुन्दर की पत्नी ने कड़क कर फ़सादियों को ललकारा। वे बहुत थे और ये केवल दो। वे उन से आमने-सामने आ कर लड़ें, लेकिन गोली न चलायें ! और इतना कह कर पति-पत्नी दोनों पीठ-से-पीठ

जोड़कर फसादियों पर टूट पड़े। कोई उनके पास न फटकता। कितनी देर तक गतके के दाँव सीख रहे सुन्दर और उसकी पत्नी ने फसादियों के छक्के छुड़ा दिये। यह देख कर फसादियों ने पत्थर फेंकने शुरू कर दिये। और पत्थर मार-मार कर सुन्दर और उसकी पत्नी को ढेर कर दिया। वे पत्थरों के नीचे दब गये, किन्तु फिर भी कोई फसादी उनके पास न जाता।

जैवन्त के पास नोकदार पत्थर थे। यूँ निशाना बनाकर पत्थर मारता कि लोग उसकी ओर मुँह न उठा सकते। आखिर झुँझला कर फ़सादियों ने उसके घर को आग लगा दी।

जैवन्त का मकान जला कर उनको लगा कि जैसे सारा गाँव खत्म हो चुका था।

खुदाबख्श ने अपनी कँटीली दाढ़ी पर हाथ फेरा। मेंहदी से रंगा हुआ एक बाल उसके हाथ में आ गया। उसी मेंहदी से रंगा हुआ; जो चौधरी सोहणे शाह ने उस दिन उसे लाकर दी थी।

9

कमाल खां सोचता कि उसका काम सबसे कठिन था। लड़ने वाले लड़कर, मारकर, आग लगाकर आगे चल देते थे, और उसे पीछे गांव को संभालना पड़ता था। सुनसान दालान उसे काट खाने को दौड़ते। कहीं खून में उसके पांव लथपथ हो जाते, कहीं जलते हुए मकानों से उसे आँच आती। लेकिन आज ढल्ले के चौधरी की लड़की बंसी उसका मन बहला रही थी। छावनी की मेमों की तरह, बंसी को उसने पतलून पहना दी थी और उसके कटे हुए नरम-नरम बाल उसके कन्धों पर नाच-नाच उठते। यदि स्वयं शराब की आधी बोतल पीता, तो एक घूंट उसे भी पिला देता।

बंसी शराब के नशे में चूर, मेमों की तरह पतलून की जेबों में हाथ डालकर चलती, जिस तरह कमाल ने उसे सिखा रखा था। वह मकानों को जलता हुए देखकर मुस्कराती, बच्चों को उलटे टंगे हुए देखकर हंसती, लाशों की छातियों पर चढ़कर खड़ी हो जाती और कमाल के कद से कद मिलाने लगती।

कमाल अभी सोच ही रहा था, किस तरह लूट का माल संभालकर पड़ोसी गांव की मस्जिदों में पहुंचाये कि उसके साथी लड़के जो उसकी सहायता के लिए पीछे रह गये थे, शोर मचाते हुए सामने की गली में घुस गये, और आन-की-आन में एक सिक्ख युवक को पकड़ लाये।

'इस गरीब से कुछ न कहना, यह तो 'अमरीका' है ससुरा, गुरदास का बेटा, यह तो पागल है, इसे क्या समझ कि...

और कमाल खां ने अमरीके को छुड़ा लिया, वरना लड़के तो उसकी बोटी-बोटी उड़ाने लगे थे।

अमरीका बाल बिखराये, मुंह खोले, फटी-फटी आंखों से चारों ओर देखता और मुस्कराता, यह क्या हो रहा था। और फिर पायजामे के एक पांयचे को उठाते हुए वह कमाल खां की ओर आया और सलाम करते हुए बोला, 'राजा जी, क्या आज दीवाली है ?' फिर वह खुद भी हंस पड़ा और बाकी लोग भी हंस दिये।

जितना समय वे ट्रकों में सामान भरते रहे, छकड़ों को, ऊंटों को लादते रहे, अमरीका गली-गली घूमता रहा। कभी कमाल खां के लड़कों की सहायता करता, कभी उठाई हुई वस्तु को जोर से धरती पर पटक देता और हंसने लगता। कमाल खां के कारिन्दे उसे लाख-लाख गन्दी गालियां बकते।

कमाल खां यों गली-गली, घर-घर घूम रहा था कि एक बाज़ू पर उसकी नजर पड़ी। उर्दू में उस पर गुदा हुआ था – 'अल्लादिता खां।' चौधरी अल्लादित्ता खां! इलाके में सबसे अधिक लोकप्रिय अल्लादित्ता खां!! कमाल खां का जी चाहा कि वह उस बाजू के टुकड़े को उठा ले। किन्तु जब बाजू के उस टुकड़े को उठाने के लिए उसने हाथ बढ़ाया, तो उसे ऐसा लगा कि वह बाजू सांप बन गया हो और उसे डसने के लिए लपक रहा हो। चौंक कर वह पीछे हट गया। और फिर वह चौधरी अल्लादित्ता के घर की ओर गया। चौधरी सोहणे शाह की हवेली भी जल चुकी थी, चौधरी अल्लादित्ता की हवेली भी जल चुकी थी। पिंजरों में लाख लाड़ से पले हुए तोते, बुलबुलें, विलायती चिड़ियां झुलसी पड़ी थीं। और चौधरी अल्लादित्ता का शिकारी कुत्ता मोती सामने की एक टूटी हुई छत पर बैठा 'च्याऊँ, च्याऊँ' कर रहा था।

'अल्लाह-ओ-अकबर' 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे साथ की गली में अभी तक लग रहे थे। जब कोई भारी सन्दूक उठाना होता, तो कमाल खाँ के कारिन्दे नारे लगाने लगते और 'अली-अली' करते हुए उसे उठाकर दौड़ पड़ते।

कमाल खां ने सोचा इन दोनों चौधरियों की हवेलियों के भीतर बेहिसाब माल होगा, उनकी जवान लड़कियों का दहेज़ संभाला नहीं जा सकेगा। किन्तु वे जवान बेटियाँ कहाँ थीं ? दो परियाँ, जिनके रूप की धूम सारे इलाके में थी।

और कमाल खाँ सोचता – चौधरी अल्लादित्ता ने यह क्या किया था ? आखिर कमाल खाँ के भी खत्री मित्र थे। लेकिन जब इस्लाम खतरे में था, जब पाकिस्तान बन रहा था, जब अंग्रेज की पराधीनता और हिन्दू की गुलामी से छुटकारा मिल रहा था और जब ऊपर से आदेश आया था कि किसी हिन्दू और सिक्ख को जीवित न रहने दिया जाय, जब जामा मस्जिद के पीर ने आदेश दिया था कि कोई काफिर जीवित न बचे, उनकी सम्पत्ति जलाकर राख कर दी जाये, तो फिर क्या रह गया था ? और फिर बिहार में बिल्कुल इसी तरह हिन्दुओं ने किया था, बिल्कुल यूँ ही गाँव के गाँव जला दिये गये थे, बिल्कुल यूँ ही पड़ोसियों का वध किया गया था, बिल्कुल यूँ ही स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया था। कमाल खाँ सोचता भी जाता और एक हाथ से ढल्ले के चौधरी की बेटी, बिल्ली जैसी आँखों वाली बंसी के गोरे-गोरे गालों से खेलता भी जाता।

दो पत्तर अनारां दे

सड़ गई जिन्दड़ी
लग गये ढेर अंगारां दे ।[1]

बंसी गुनगुना रही थी !

कमाल खाँ ने झुंझला कर अपने नेफे में से शराब की बोतल निकाली और पीने लगा। फिर उसने बंसी को एक घूंट पिलाया – पिछले कितने दिनों से शराब का एक-एक घूँट पीती बंसी को अब शराब न कड़वी लगती थी, न बुरी लगती थी। अब तो जब कमाल के मुँह से शराब की दुर्गंध आती तो उसकी आँखें मुँद-मुँद जातीं, उसका सिर झूमने लगता।

ट्रक कई चक्कर काट चुके, किन्तु धमियाल के खत्रियों का सामान खतम होने में ही न आता था। अभी मोटा-मोटा सामान तो फसादी हमले के समय भी लूटते रहे थे। किन्तु उन्हें तो जल्दी होती थी, उन्हें तो अभी और बहुत से काम करने थे। दिल्ली समाचार पहुंचने से पूर्व सारे प्रदेश की सफाई करनी थी। यहाँ की पुलिस तो उनकी अपनी थी; यहाँ की पुलिस ने तो उन्हें बारूद इकट्ठा करके दिया था, हथियार मँगवाकर दिये थे, इलाके का बँटवारा किया था कि कौन-कौन लोग कौन-कौन से गांवों को लूटें।

गाँव के मुसलमानों की यह मरज़ी थी कि जब 'पुरियों' का मुहल्ला जल चुके, तो मलबे को इधर-उधर कर दिया जाय और फिर जगह को समतल करके उस पर हल चलाया जाये। यह मोहल्ला मुसलमान मोहल्ले के साथ लगता था। पटवारी उनका अपना था, उसकी क्या मजाल थी कि वह अपने भाइयों का कहा न माने !

कमाल खाँ को क्या एतराज़ हो सकता था ? वह तो बस इतना ही चाहता था कि गाँव वाले उसको लूट का माल समेट लेने दें और जो मुसलमान शहीद हो गये थे, उन्हें दफना लेने दें – फिर चाहे वे सारा गाँव नष्ट कर दें।

'मैं तो अपनी मेम के साथ छावनी का कोई बँगला संभालूंगा !" कमाल खाँ यह कहता, और बंसी के लटकते हुए बालों के साथ खेलने लगता।

अमरीका फसादियों की बड़ी सहायता कर रहा था। वह उन्हें अपने दादा के घर पकड़ ले गया और एक ट्रंक को दिखाने लगा। लोहे के उस सन्दूक का जब ताला तोड़ा गया, तो भीतर नोटों की गड्डियों-की-गड्डियाँ जलकर राख हुई पड़ी थीं। फिर एक और सन्दूक का ताला तोड़ा गया। अभी उन्होंने सन्दूक का ढक्कन उठाया ही था कि सहसा भक् से कपड़ों में आग लग गयी। उनके देखते-देखते रेशमी जोड़े, तिल्ले, ज़री और गोटे की चादरें जलकर भस्म हो गयीं। फिर अमरीका फ़सादियों को एक कोने में ले गया। एक फुट धरती उन्होंने खोदी, उसमें से गहनों से भरी एक बटलोही निकली। फ़सादियों ने अमरीके को कन्धों पर उठा लिया। 'अमरीका ज़िन्दाबाद !' 'अमरीका ज़िन्दाबाद !' 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !' 'अल्लाह-ओ-अकबर !' के नारे लगते रहे। अमरीके के दादा के पास पाँच सेर सोना था।

---

1 'अनारों के दो पत्ते
जीवन जल गया
और अंगारों के ढेर लग गये !'

कन्धों पर अमरीके को उठाकर फसादी उसे खुश कर रहे थे कि उसे 'मिरगी' का दौरा पड़ गया। उसके मुँह से झाग निकलने लगी और वह मलबे के ढेर पर धम्म से गिर पड़ा, कितनी देर तक वहीं साँप की तरह बल खाता रहा।

कोई डेढ़ घण्टे बाद कमाल खाँ ने देखा, हिचकियाँ लेता हुआ अमरीका फिर आ रहा था। एक लाश की पगड़ी उतारकर उसने सिर पर बाँध ली थी, एक लाश का उसने कोट पहन रखा था। एक और लाश के उसने बूट अड़ा लिये।

'मैं भी चलूँगा, मैं भी चलूँगा!' बार-बार अपने बूटों की ओर देखता हुआ अमरीका कमाल खाँ से सटकर खड़ा हो जाता। हर बार जब ट्रक चलता तो उसका दिल बैठ जाता।

कुछ फ़सादी कहने लगे कि वे अमरीके को भी मुसलमान बना लेंगे। कमाल खाँ उन्हें लाख-लाख गालियाँ देता। कमाल खाँ अमरीके को जानता था। अपने घरवालों के लिए हर घड़ी एक नयी समस्या खड़ी कर देता था। एक बार छुरा लेकर अपने सोते हुए दादा को कत्ल करने लगा था; अचानक उसके दादा की आँख खुल गयी, उसने शोर मचा दिया और अमरीका वहाँ से भाग गया।

लेकिन कुछ फ़सादी हठ कर रहे थे। वे कहते थे कि अमरीके ने उनकी बड़ी मदद की थी; एक बार कलमा पढ़कर वह सीधे जन्नत में चला जायेगा। फिर जब उनका काम खत्म हुआ, तो फ़सादियों में जो एक नाई था, उसने अमरीके के केश और दाढ़ी काट दी। फ़सादियों में एक सैयद था, उसने उसे कलमा पढ़ाया। और अमरीका जो सात वर्षों से सिक्ख-पागल था अब मुसलमान-पागल बन गया। और अब फ़सादी उसे गले से लगा रहे थे, तो अमरीका चुपके-से उनके कपड़ों से नाक पोंछ रहा था।

दाढ़ी और बालों के बिना अमरीका बंसी को बहुत भला लगा। और जब सारे गाँव की सफाई कर चुकने के बाद कमाल खाँ ट्रक में बैठने लगा, तो उन्होंने अमरीके को भी साथ बिठा लिया।

सारा गाँव जलकर भस्म हो चुका था। कहीं-कहीं से तनिक धुआँ उठ रहा था या मलबे के अपने-आप गिरने की आवाज़ें आ रही थीं। पड़ोसी, पास वाले गाँवों को लूटने के लिए गये हुए थे, उनकी पत्नियाँ अन्दर घरों में दुबकी पड़ी थीं। वे सब हैरान थीं कि यह हो क्या रहा है; अपनी आँखों पर किसी को विश्वास नहीं आ रहा था।

सड़क पर एक हिन्दू की लाश के पास से गुजरते हुए अमरीके ने बाहर झुककर कहा, 'बन्दगी बाबू जी!'

कमाल खाँ जानता था कि सारे प्रदेश के मुसलमान हिन्दुओं और सिक्कों को सदैव 'बन्दगी' किया करते थे। अमीर हिन्दुओं और अमीर सिक्खों ने मुसलमानों से सदा पराधीनों का-सा बर्ताव किया था। लुहार थे तो मुसलमान, बढ़ई थे तो मुसलमान, नाई थे तो मुसलमान, मज़दूर थे तो मुसलमान, किन्तु हिन्दू और सिक्ख दुकानदार थे, ज़मीनें खरीदते थे, दफ्तरों में अफसरी किया करते थे।

और अब, कमाल खाँ सोचता, ये सभी काम मुसलमान भाई किया करेंगे। मुसलमान ही

अब अमीर होंगे, मुसलमान ही अब गरीब होंगे। मुसलमान ही साहूकार होंगे, मुसलमान ही गुमाश्ते होंगे। मुसलमान ही ज़मींदार होंगे और मुसलमान ही मज़दूर होंगे। मुसलमान ही अफ़सर होंगे और मुसलमान ही चपरासी होंगे। और कोई किसी को 'बन्दगी' नहीं किया करेगा। सब एक-दूसरे से 'अस्सलाम अलैकुम' कहा करेंगे और आगे से 'वालैकुम अस्सलाम' का उत्तर सुना करेंगे।

और उस रात सोने से पहले शराब के नशे में कमाल खाँ कितनी देर तक 'बंसी' को 'अस्सलाम अलैकुम' कहना सिखलाता रहा। और इस तरह बातें करते दोनों बेसुध सो गये।

लगभग आध घण्टे बाद अमरीका उस कमरे में चुपके-से आया। पहले तो उसने कबाबों की प्लेट साफ की और फिर गिलास भरकर शराब पी, फिर तीन-चार पान उठाकर खा गया। और फिर जब नशे में धुत हो गया, तो धीरे-धीरे बंसी को कमाल खाँ की बाँहों में से निकाल-कर बाहर ले आया। रात घुप अँधेरी थी। दालान में एक बेरी से रस्सी वह पहले ही लटका आया था। जब उसके गले में रस्सी लपेटकर अमरीका गाँठ लगा रहा था, तो लड़की सोते में कुछ बुदबुदाई।

'न बहन, सोई रहो!' अमरीके ने बंसी को थपककर कहा।

अगले दिन बेरी से लटकी हुई बंसी ठंडी पड़ी थी। कमाल खाँ अमरीके को ढूँढ़ता रहा, किन्तु वह कहीं दिखाई न दिया।

10

जिस प्रकार चौधरी अल्लादित्ता खाँ ने इलाके के नम्बरदारों की बैठक में कुछ दिन पहले सबको डाँट पिलायी थी, रावलपिंडी से और न जाने कहाँ से आये हुए पीरों को जिस तरह धिक्कारा था, जिस प्रकार उसने इस्लाम की सौगन्ध दिये जाने पर सुनी-अनसुनी कर दी थी, जिस प्रकार उसने पाकिस्तान के लिए कोई कुर्बानी देने से इन्कार कर दिया था, उससे जितने भी लोग वहाँ उपस्थित थे, उनकी नज़र में चौधरी अल्लादित्ता खाँ उतना ही उनका बैरी था जितना कि कोई हिन्दू या कोई सिक्ख। और जब उसके हाथ-पैर बांध कर उसे एक कोठरी में डाल दिया गया, तो पीरों ने मिल-जुलकर यह फतवा दिया कि ऐसे गद्दारों का, जो काफिरों की सहायता करें, नामोनिशाँ मिटा दिया जाये। उस दिन से जब चौधरी अल्लादित्ता का ज़िक्र आता, मुसलमान उसे बुरे शब्दों में याद करते।

फिर जब धमियाल पर आक्रमण हुआ, तो चौधरी अल्लादित्ता का नाम भी हिन्दुओं और सिक्खों की सूची में था। उसकी संपत्ति का अनुमान भी लगा लिया गया था। उसके हथियारों की गिनती भी कर ली गयी थी, उसके घर में भी आग लगाई जानी थी। अल्लादित्ता खाँ की बेटी का भी वही हाल होना था, जो कुछ चौधरी सोहणे शाह की बेटी राजकर्णी के बारे में सोचा

गया था।

फिर भी इलाके के लोग सोचते कि किसी को साहस नहीं होगा चौधरी सोहणे शाह या चौधरी अल्लादित्ता खाँ से आँख मिला सके। पचास पठानों को यह काम सौंपा गया कि वे दोनों चौधरियों की हवेलियों को ख़त्म कर दें।

आखिर जब चौधरी अल्लादित्ता खाँ फसादियों के तूफान में टुकड़े-टुकड़े हो गया, जब प्रत्येक हिन्दू-सिक्ख चप्पे-चप्पे के लिए कट मरने लगा, जब भागने वाले भाग खड़े हुए, जब चीत्कार हो रहा था, जब चारों ओर कुहराम मचा हुआ था, तब दो आदमी मुँड़ासा बाँधे आये और चौधरी सोहणे शाह और उसके पास खड़ी सतभराई को उठा कर खेतों की ओर ले गये।

दूर, बहुत दूर, खाई में पड़े हुए सोहणे शाह और सतभराई बार-बार 'राजकर्णी-राजकर्णी' 'अल्लादित्ता खाँ' 'अल्लादित्ता खाँ' पुकारते हुए बेसुध हो हो जाते।

दो दिन सतभराई और सोहणे शाह एक-दूसरे के सीने से चिपटे हुए पड़े रहे! तीसरे दिन अभी मुँह-अँधेरा ही था कि चौधरी ईश्वर का नाम लेकर उठा, सतभराई उठी – ठोकरें खाते हुए सामने की सड़क पर वे हो लिये।

अभी उन्होंने सड़क पर क़दम रक्खे थे कि पीछे से एक मिलिट्री की लारी उनके पास आ रुकी। इसमें गोरखा सिपाही थे। एक सिक्ख और उसके साथ एक नौजवान लड़की को देखकर उन्होंने तत्काल उन्हें अपने साथ बिठा लिया। बन्दूकें ताने, खेतों में ट्रक घुमाते बन्दा की ओर से होते वे फिर धमियाल के पास आ निकले।

धमियाल जल चुका था। धमियाल के ऊँचे मीनारों वाले चौबारे औंधे पड़े थे। टूटी हुई दीवारों पर कौवे बैठे हुए थे, ऊपर गिद्ध मँडरा रहे थे। खालसा स्कूल जल कर भस्म हो चुका था। सरकारी स्कूल के दरवाजे और खिड़कियाँ लोग उखाड़कर ले गये थे।

मुसलमानों के मोहल्लों के बाहर नज़रा एक छकड़े पर मेज़-कुर्सियाँ और शीशे की अलमारियाँ लाद रहा था। गोरखे फौजी ने ट्रक रोककर बाहर झाँका।

'यह कहाँ ले जा रहो हो?' फौजी अफसर ने पूछा।

नज़रे ने गोरखा अफसर को भी मुसलमान समझते हुए कहा – 'यह थानेदार का हिस्सा है।'

फिर न जाने उनके जी में क्या आया; उन्होंने ट्रक चला दिया। सतभराई दूर तक देखती रही, नज़रा छोटी-छोटी वस्तुएं छकड़े पर लादता रहा।

सतभराई सोचती, नज़रा उसे और राजकर्णी को बेर गिरा-गिरा कर दिया करता था। नज़रा, जो नदी के किनारे खड़े होकर आवाज़ देता था – 'तुम कौन हो? जो अपने मोहल्ले की हो तो कपड़ा ओढ़ लो।' और नीचे कपड़े धो रही स्त्रियाँ नज़रे को लाख-लाख गालियाँ सुनाया करती थीं।

जब से लारी धमियाल के पास से होकर आयी थी, सोहणे शाह तब से बेसुध पड़ा था। सतभराई का ध्यान फिर उसकी ओर आकर्षित हो गया। कभी उसके तलुए मलती, कभी सिर दबाती। कभी उसे 'चचा-चचा' कहकर पुकारती।

सोहणे शाह तो बस बहाने की खोज में रहता था। जिस प्रकार उसने चौधरी अल्लादित्ता को भाले पर उछलते देखा था और जिस घड़ी राजकर्णी उससे अलग हुई थी, उन सब बातों को याद आते ही बारबार उसकी आँखों-तले अँधेरा छा जाता।

सतभराई सोचती, नज़रे से वह अपने अब्बा के बारे में पूछ लेती, राजकर्णी के बारे में पूछ लेती। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि कोई चौधरी अल्लादित्ता खाँ को इस तरह कत्ल कर सकता था जिस तरह वह मारा गया था। उसकी ओर तो कभी किसी ने आँख उठाकर नहीं देखा था। भाई-भाई का झगड़ा, पति-पत्नी का झगड़ा, जब इनका कोई निर्णय न हो पाता तो चौधरी अल्लादित्ता ही उन्हें निबटाया करता था। और उसका इतना दबदबा था कि कोई आगे से सिर नहीं उठाता था।

राजकर्णी सम्भवतः पहले ही वहाँ पहुँच चुकी होगी जहां वे जा रहे थे। सतभराई ने कहानियाँ सुन रक्खी थीं कि जब भगदड़ मचा करती थी, लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को दौड़ जाया करते थे। नादिर शाह के काल में, और फिर उससे भी पहले कई बार पंजाब में इस प्रकार की भगदड़ मची थी।

खाद्या पीता लाहे ना।
बाकी ऐहमद शाहे ना![1]

राजकर्णी की दादी उसे बताया करती थी, किस प्रकार जो कुछ भी किसी के पास होता, लोग उसे लूट लेते थे। सिक्ख लड़कियाँ भी पर्दा किया करती थीं और घूँघट निकाल कर बाहर निकला करती थीं।

सतभराई सोचती, वे मुँडेर जिन पर बैठे तारे निकल आया करते थे, वे दालान जिनमें खड़ी-खड़ी वे बड़ी हो गयी थीं, वे आँगन जिनमें हँस-हँस कर बातें कर-कर के उनका अंग-अंग दुखने लगता था, धेकों की घनी छाया जिससे लाखों यादें जुड़ी हुई थीं, वह नदी जो उलटी बहती थी, किन्तु, फिर भी कितनी प्यारी थी! लाखों लोगों की पर्दादारी करती थी! जिसके चप्पे-चप्पे पर कई नाटक खेले गये थे, 'पुरियों के कुएँ का ठंडा पानी, जमालो का मैदान, स्कूल वाली चक्की, तकिये की खानकाह, मानू का बाग, तेली मोहल्ला और शाही – वे सब उनसे दूर हो चुके थे। वह यहाँ अब कभी लौट कर नहीं आ सकेगी!

और लारी दौड़ती जा रही थी।

रास्ते में उन्हें जो भी छकड़ा मिलता, सामान से लदा हुआ होता। तेज़-तेज़ चलते हुए बैल, जैसे सामान लादने वालों से भी अधिक बेचैन हों। छछ के बाद जराही का पुल, सम्मों की चढ़ाई चढ़कर जब 'टंच' के चौक में वे पहुँचे जहाँ भेड़-बकरियों की मण्डी लगा करती थी, सतभराई ने देखा कि सड़क के दोनों ओर खेतों में वृक्षों तले और नालियों में लाशें-ही-लाशें

---

1 जो कुछ खाया-पिया है वही बस अपना है,
शेष सब अहमद शाह का है!

पड़ी थीं। क्या सड़क, क्या खेत, सारी जगह रक्त से सनी हुई थी।

दस कदम आगे चाँदमारी के पास जब वे पहुँचे, तो सतभराई को बन्दूकों की आवाज़ सुनाई दी। सिपाहियों को यहां गोली चलाना सिखाया जाता था। फौजी गोरे यूँ काम कर रहे थे जैसे कुछ हुआ ही न हो।

सोहणे शाह को अब होश आ रहा था। पहले उसने आँखें खोलीं, फिर, उसने पानी माँगा, फिर उसने उठ कर सतभराई को गले से लगा लिया। सोहणे शाह के होंठ बार-बार कँपकपाने लगते, किन्तु उसके मुँह से कोई आवाज़ न निकली। उसकी दूध जैसी श्वेत दाढ़ी बिखर-बिखर जाती। सतभराई की याद में सोहणे शाह ने कभी मैले कपड़े नहीं पहने थे। आज वह मिट्टी और कीचड़ से सने हुए कपड़ों में था। सोहणे शाह के पाँव नंगे थे, उसकी जूतियाँ न जाने कहाँ रह गयी थीं। सोहणे शाह के चेहरे पर दमकती हुई लाली विलीन हो चुकी थी। वह अस्थियों का एक कंकाल था बस। सोहणे शाह के गले में दुपट्टा आज पहली बार सतभराई को दिखाई नहीं दे रहा था। उसके हाथ काँपने लगते। वह फटी-फटी आँखों से आकाश की ओर देखता और उसकी आँखों में आँसू भर आते।

सतभराई सोचती, मैं फौजियों से पूछूं कि हम कहां जा रहे हैं? किन्तु उनकी भाषा ही और थी। उनका रंग-ढंग ही अलग था। सतभराई को बार-बार ख्याल आता कि वे पराये मनुष्य किस प्रकार उनके हमदर्द बन गये थे, किन्तु सारी आयु इकट्ठा हंसने-खेलने वाले पड़ोसी किस प्रकार एक-दूसरे के दुश्मन हो गये थे।

सोहणे शाह सोचता कि यदि इन सब बातों का परिणाम अच्छा हुआ, यदि उनका पाकिस्तान किसी काम का बन गया तो वह ईश्वर को धन्यवाद देगा और प्रत्येक कष्ट को सहन कर लेगा। फिर वह सोचता, वह पाकिस्तान भला कैसा होगा जिसकी नींव में अल्लादित्ता खाँ जैसे फरिश्तों का खून लगा हो? जिसके निर्माण में लाखों बच्चों को अनाथ किया जा रहा हो? गुरुद्वारों और मन्दिरों को धूल में मिला कर कैसी मस्जिदें खड़ी की जायेंगी? पाकिस्तान के कैसे नागरिक होंगे? उनके मुँह से लगा हुआ खून कैसे धुल सकेगा? यह लूट का माल वे लोग कितने दिनों तक खायेंगे? उसके बाद क्या करेंगे? फिर सोहणे शाह को वे लोकगीत याद आये, जिनमें हिन्दुओं और सिक्खों के साथ-साथ मुसलमानों की चर्चा थी। विवाह के गीत, विरह के गीत, मिलन के गीत, इन गीतों को याद कर-कर के सोहणे शाह बार-बार सोचता कि क्या उन गीतों में से हिन्दुओं और सिक्खों के नाम निकाल दिये जायेंगे? गाँव की पाठशाला का अध्यापक सदैव हिन्दू हुआ करता था, सरपंच हमेशा सिक्ख हुआ करते थे। नम्बरदार मुसलमान हुआ करता था। अब वे आपस में लड़-लड़ कर मर जायेंगे। और सोहणे शाह की आँखें फटी-की-फटी रह जातीं।

यूँ सोहणे शाह चिन्ता के सागर में डूबा जा रहा था कि मिलिट्री की लारी उन्हें एक नये खुले शरणार्थी कैम्प में ले आयी।

मार्च का महीना था, सर्दियाँ कुछ बीत चुकी थीं और कुछ बीत रही थीं। खुले मैदान में जहाँ ला कर उन्हें उतारा गया, तेज़ हवा जैसे उड़ा-उड़ा कर फैंक रही हो। सरकारी कर्मचारी अभी तक खेमे लगा रहे थे, शामियाने खुल रहे थे, खूंटे ठोंके जा रहे थे, रस्से बाँधे जा रहे थे, कंटीली बाड़ चारों ओर बिछाई जा रही थी। बँन्दूकें ताने हुए पहरेदार हर गेट और हर मोड़ पर खड़े थे।

मैदान के झाड़-झंखाड़, टीले और खाइयाँ, पत्थर और कंकर अभी वैसे-के-वैसे थे। कहीं-कहीं ऐसा जान पड़ता था कि वहाँ हल चलाने की कभी कोशिश की गयी थी। हाल की बनाई हुई मेंड़े वैसी-की-वैसी पथरा गयी थीं।

रावलपिंडी छावनी के हवाई अड्डे के साथ कितनी ही धरती बंजर पड़ी थी। उसके कुछ हिस्से को अलग कर के सरकार ने शरणार्थी-कैम्प बना दिया था.

शरणार्थियों की लारियाँ, जैसे मुर्गियों से भरे दड़बे की तरह हों। बन्दूक ताने हुए सिपाही गिन-गिन कर शरणार्थियों को बन्दूके ताने हुए सिपाहियों के हवाले करते, हस्ताक्षर लेते और चले जाते। लोग लारियों की छतों पर बैठे हुए होते, इंजनों पर चढ़े हुए होते, मडगार्डों से चिमटे हुए होते। लारियों के भीतर तिल रखने की जगह न होती।

लारी जब गेट में से घुसती, तो सारा कैम्प उस पर टूट पड़ता। लारियों से उतरते ही लोग कुहराम मचा देते। कभी रवात, कभी सागरी, कभी दुभेरन, कभी चकरी, कभी चौंतरा, कभी किरपा, कभी चराह, कभी किसी गाँव, कभी क़िसी गाँव के लोग कैम्प में लाये जाते। प्रत्येक गाँव वालों के दूसरे गाँव में सम्बन्धी थे; लोग दुहत्थड़ मार-मारकर गले लगते, रोते, चीखते और आकाश सिर पर उठा लेते। स्त्रियाँ विलाप करतीं, छाती पीटती थक-थक जातीं, मर्द बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोते, धरती पर लोटते, उनकी घिग्गी बँध जाती, गले बैठ जाते।

कई लोग दो-दो दिनों के प्यासे थे। कई तीन-तीन दिन के भूखे थे। भय के मारे लोगों के रंग बदल गए थे। घरबार लुटाकर सम्बन्धियों का वध होता देखकर, तड़प-तड़प कर, बिलबिला-बिलबिला कर प्रार्थनाएं कर-कर, माथे रगड़-रगड़ कर, लोगों की शक्लें और-की-और हो गयी थीं।

यदि कोई भाई आया था तो बहनों का जोड़ा खोकर। यदि कोई बहन आयी थी, तो भाइयों को गोलियों से छलनी हुआ छोड़कर। यदि कोई माँ पहुँची थी तो अपनें बच्चों को भालों से बिंधवा कर, यदि कोई पिता पहुँचा था तो अपने सारे परिवार को अग्नि की भेंट चढ़वा कर।

चीथड़ों में लिपटे हुए। बड़े-बड़े चौधरी पगड़ियों के बिना आये थे; केश बिखरे हुए, मिट्टी लटों में पड़ी हुई। वे नवयुवतियाँ आयी थीं, जिन्हें सात पर्दों में छिपाकर रखा जाता था; पाँव से नंगी, सिर पर दुपट्टा नहीं। कहीं भी कोई नवयुवक दिखाई नहीं देता था। बिरला ही कोई हिन्दू-सिक्ख नौजवान बचा था। सारा इलाका नौजवानों से खाली हो गया था। अपनी बहनों, अपनी माताओं और अपने गुरुद्वारों-मंदिरों की रक्षा करते हुए पोठोहार का प्रत्येक

नौजवान टुकड़े-टुकड़े हो गया था।

और इस कैम्प में वे लोग आ रहे थे, जिन्हें फ़सादी मार नहीं सके थे, जिनकी बारी जब आयी, तो भालों और गँड़ासों की धार मुड़ गयी, छुरियां इनकार कर गयीं, जिन्हें फौजी लारियों ने जाने कहाँ से जा कर चुन लिया था और जिन्होंने खाइयों में, झाड़ियों में, खेतों में छिप कर अपनी जान बचायी थी।

लोग आये थे भरपूर हवेलियों को छोड़कर। लोग आये थे रक्त में डूबी हुई गलियों को पार करके। लोग आये थे लाशों को रौंद कर, सुलगते हुए गाँवों की आँच से बचकर।

रात, दिन, और फिर एक रात, एक और दिन। कैम्प में आदमी-ही-आदमी दिखाई देने लगे। आदमी और औरतें, थके हुए, हारे हुए, लुटे हुए, सहमे हुए। वे लोग जो गोलियों की बौछार में से गुज़रकर आये थे, भालों और छुरियों की छाया में से निकलकर आये थे।

फिर सरकारी कर्मचारियों ने महसूस किया, उन्हें एक कैम्प और खोलना पड़ेगा।

और फिर, रावलपिंडी शहर के सरमायादार आने लगे। चादरें, कम्बल, जूतियाँ, रज़ाइयाँ, दूध, फल, दवाएँ – जो कुछ भी किसी के पास फालतू पड़ा था, ताँगों पर, गाड़ियों पर, जिस प्रकार भी सम्भव होता, वहां पहुँच जाते। कालेजों और स्कूलों के स्वयंसेवक प्रत्येक वस्तु बाँटने लगे और देखते-ही-देखते वहाँ एक गाँव-सा आबाद हो गया।

पुरुषों को पढ़ने के लिए समाचारपत्र दिये गये, स्त्रियों को बर्तन दिये गये, बच्चों को खिलौने दिये गये, किन्तु आहें, फ़रियादें और आँसुओं की नदियाँ अभी तक चारों ओर जारी थीं। बैठे-बैठे किसी स्त्री की चीख निकल जाती, अच्छा-भला खड़ा कोई बूढ़ा किसी बालक को छाती से लगाकर सिसकने लगता। लोग बैठे-बैठे सारा दिन जले फफोले फोड़ते रहते।

कैम्प में एक तम्बू के भीतर 'गुरु ग्रन्थसाहब' का पाठ प्रारंभ हो गया। कैम्प में एक तम्बू के भीतर मन्दिर की मूर्तियां सुसज्जित हो गयीं। किन्तु उस ओर जाने को किसी का मन न करता। घण्टियां बजतीं, शंख फूँके जाते। दोनों समय पुजारी लोगों की प्रतीक्षा करते-करते थक जाते, किन्तु उनके शिविरों की ओर कोई न जाता। लोग जैसे भगवान को परख चुके थे। लोगों ने ईश्वर के गुरुद्वारों को जैसे आज़मा लिया था। लोगों ने मन्दिरों की मूर्तियों का जैसे बल देख लिया था। भगवान के मन्दिरों को लुटता हुआ, बर्बाद होता हुआ लोग देख चुके थे। गुरु के गुरुद्वारों के भीतर निहत्थे लोगों का मारा जाना, स्त्रियों का सतीत्व भंग किया जाना, ये सब कुछ लोग देख चुके थे। गुरुद्वारों में आग उसी प्रकार लगी थी, जैसे चोरबाज़ारी करने वाले दुकानदारों की दुकानों में। ईश्वर लोगों की सहायता के लिए नहीं आया था और वे हाथ जोड़-जोड़कर थक गये थे। वह विधवा जिसका एक-एक बच्चा उसकी नज़रों के सामने भालों पर उछाला गया; उसकी कोई फ़रियाद उसे नहीं बचा सकी थी। वह बूढ़ा जिसके सामने उसके सात बेटे मारे गये और जिसके माथे पर अभी तक मूर्तियों के सामने सिर रगड़ने के निशान बाकी थे! वे लोग जिनके सम्बन्धी पवित्र ग्रन्थों को सीने से चिपकाये हुए थे और जिन्हें जीवित ही आग में फेंक दिया गया था! उन लोगों को ईश्वर पराया-पराया, बेगाना-बेगाना लगने लग गया था.

सरकार ने नलके लगवाये थे, स्त्रियों के लिए अलग, पुरुषों के लिए अलग। किन्तु उस पानी से केवल पीने का काम लिया जाता। न स्त्रियां नहातीं, न पुरुष नहाते, न बच्चों के शरीरों पर कभी पानी डाला जाता। स्वयंसेवक प्रत्येक तम्बू में साबुन लाकर बाँट जाते, किन्तु कोई कभी उसका प्रयोग करने की परवाह न करता।

जहां कोई बैठता, वहीं बैठा-बैठा दिन व्यतीत कर देता। कहीं कोई शिकायतें कर रहा होता, कहीं कोई सिर नवाकर चिन्ता में खोया रहता। स्त्रियां बार-बार बच्चों पर ख़फ़ा होतीं, ख़फ़ा होकर अपने बच्चों को फिर छाती से लगा लेतीं।

सारी-सारी रात बैठे-बैठे और करवटें बदलते बीत जाती। धरती पर लेटे हुए किसी को नींद न आती। जो सो जाते, उन्हें ऐसे बुरे सपने आते कि बार-बार उनकी आँख खुल-खुल जाती। दिन को भी लोगों की आँखों के सामने जलती हुई हवेलियाँ, चीख़ते हुए बच्चे, फरियाद करती हुई स्त्रियाँ, उलटे टँगे हुए नवयुवक, ये चित्र उभर-उभर कर आते रहते।

फिर एक लारी आयी और उसकी छत पर से छलांग लगा कर अमरीका हँसता हुआ नीचे आ गया। आगे-पीछे खड़े हर किसी को हँस-हँस-कर 'सत श्री अकाल' कह रहा था। कई लोग अमरीके को जानते थे। कई लोगों ने उसके पागलपन के बारे में सुन रखा था। अमरीके ने हाथ में एक डंडा पकड़ा हुआ था जिसे उसने बन्दूक की भाँति कन्धे पर रखकर शरणार्थी कैम्प का पहरा देना आरम्भ कर दिया। थोड़ी-थोड़ी देर बार 'लेफ्ट-राइट' लेफ्ट राइट करता जाता और अकड़-अकड़ कर चलने लगता।

अमरीका ही पागल नहीं था, शरणार्थी कैम्प में कई लोग अमरीके की तरह बौराये हुए रहते। जिस काम में लग जाते, उसी में खो जाते। जहां बैठते, वहीं बैठे-बैठे दिन गुज़ार देते। ज़रा-ज़रा सी बात पर झगड़ने लगते। बहुतों ने तो हकलाना आरम्भ कर दिया था, बहुतों की आँखें कमजोर हो गयी थीं, बहुतों के हाथ-पाँव हर समय काँपते रहते, बहुत-से कानों से बहरे हो गये, बहुतों की पाचन-शक्ति दुर्बल पड़ गयी और जो कुछ खाते बाहर उगल देते।

डाक्टर इलाज के लिए घूमते रहते, किन्तु कोई रोगी उनके पास न फटकता। जो लोग दवा ले आते, बाहर आकर उसे फेंक देते।

जिनके सम्बन्धी रावलपिंडी शहर में रहते थे, उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर अपने साथ ले जाते। कुछ एक के बहन-भाई हवाई जहाजों में सवार होकर आये और अपनों को कैम्प से निकाल कर ले गये। किन्तु बहुत लोग ऐसे भी थे जिनका कोई और नहीं बचा था।

फिर यह बात सुनी गयी कि मास्टर तारासिंह आ रहे हैं। फिर यह बात सुनी गयी कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू आ रहे हैं। फिर यह बात सुनी गयी कि सरदार पटेल आ रहे हैं। कोई भी नेता आता, शरणार्थियों के चेहरों पर वहशत देख कर आँखें न उठा सकता। जैसे वे आये, वैसे ही लौट गये।

'तुम ही आज दिल्ली के तख्त पर बैठे हो ?' एक शरणार्थी नारी ने जवाहर लाल नेहरू को पुकार कर कहा – तुम ही आजकल राज्य कर रहे हो ? तुम्हारा ही नाम अखबारों में छपता है ? मेरी आँखों के सामने मेरी लड़की से बलात्कार किया गया ! मैं कहती हूँ मुझे मरवा क्यों

नहीं डालते ? कौन-सा मुँह लेकर मैं किसी के पास जाऊँ ? मैं अपनी इकलौती लड़की को गाय की तरह डकारती हुई छोड़ आयी हूं ?

पण्डित नेहरू हाथ जोड़े खड़ा था, सिर झुकाये हुए था, उसकी आँखों से जैसे टप-टप आँसुओं की वर्षा हो रही थी।

'मैं कहती हूं', शरणार्थी नारी अभी तक बोल रही थी – 'मैं कहती हूं कि मुझे मेरी लड़की ला दो, मुझे कहीं से मेरी अपनी जाई ला दो !'

12

लोग धीरे-धीरे कैम्पों में से खिसकने लगे। जहां जिस किसी के सींग समाये, वहाँ-वहाँ लोग चले गये। लेकिन फिर भी हजारों ऐसे थे जिनका इस संसार में कहीं और ठिकाना न था, जिनका कोई अपना नहीं बचा था जिसकी हमदर्दी वे पा सकते।

ऐसे लोग कैम्पों में इस प्रकार रहने लगे, जैसे सदा से इन्हीं कैम्पों में रहते चले आ रहे हों, जैसे वे सदा के लिए यहां रहेंगे।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, लोगों ने आपस में कहानियाँ सुनानी आरम्भ कीं – अत्याचारों के वे नाटक जो उनकी आंखों के सामने खेले गये थे ! हर कोई अपने पड़ोसी की कहानी बड़े ध्यान से सुनता।

राजासिंह तो दिसम्बर 1946 से शरणार्थी बना हुआ था। अब उसे फिर बर्बाद होना पड़ा था। उस समय वह 'हज़ारे' के एक गाँव में रहा करता था। एक दिन एक सिक्ख युवक और एक सिक्ख लड़की को पठानों ने मार डाला। गाँव के लोग घबरा गये, किन्तु चुप रहे। फिर पता चला कि पठान छुरे तेज कर रहे थे, ढोलों की रस्सियाँ कस रहे थे, बाहर के गाँवों से गठजोड़ कर रहे थे। और राजासिंह हिन्दू-सिक्खों के कहे अनुसार दस मील दूर थाने में रिपोर्ट लिखवाने के लिए चल दिया। शाम हो रही थी जब वह घर से निकला, आधी रात को जब थाने में पहुँचा तो कोई उसकी फ़रियाद सुनने को तैयार न हुआ। रात-भर वह हाथ जोड़ता रहा किन्तु किसी ने पर्चा न काटा, और सवेरे उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया गया।

थका-हारा घर लौट रहा था कि उसने एक पहाड़ी पर से देखा उनके गाँव से धुआँ उठ रहा है। ज्यों-ज्यों वह नज़दीक होता उसे चीत्कार और गोलियों की आवाज़ें सुनायी देतीं। 'अल्लाह-ओ-अकबर' के नारे सुनायी देते। अभी वह अपने गाँव से दो फलांग की दूरी पर था कि राजासिंह ने देखा सामने से फसादी आ रहे थे; गाते हुए, नाचते हुए, हँसते हुए।

घबराया हुआ राजासिंह एक गढ़े में छुप गया।

सायंकाल हो चुकी थी, तब कहीं वह वहां से निकला। सहमा हुआ, घबड़ाया हुआ राजासिंह जब अपने गाँव पहुँचा तो उसने देखा कि उसका गाँव मिट्टी का एक ढेर था और

बस ! उसके परिवार के सत्ताईस व्यक्ति मारे गये थे; उसकी पत्नी, उसके तीन भाई, उनकी स्त्रियां और उन्नीस बच्चे । श्री गुरु ग्रन्थसाहब के अधजले पन्ने गलियों में इधर-उधर बिखरे हुए थे । कई मकान जल चुके थे, कई जल रहे थे, चारों ओर जानी-पहचानी लाशें औंधे मुँह पड़ी थीं । मासूम बच्चों के कुचले हुए सिर, नौजवान स्त्रियों की बींधी हुई छातियाँ, दुकानों में दुकानदार मरे पड़े थे और दुकानों में जैसे कोई झाड़ू दे गया था । मोर्चों में शीशम जैसे नवयुवक कटे पड़े थे, और मोर्चे टूट चुके थे । एक गली में राजासिंह ने देखा कि दो कुत्ते एक लाश को घसीटकर खण्डहर में ले जा रहे थे । उसे चक्कर-सा आ गया और बेसुध होकर वह गिर पड़ा । रात भर राजासिंह बेसुध पड़ा रहा । जब अगली सुबह वह उठा, तो पुलिस गलियों में घूम रही थी । जिले का डिप्टी कमिश्नर आया हुआ था । और बड़े-बड़े अफसर भी आ चुके थे ! राजासिंह ने थाने वालों की सारी कहानी सुनाई । अफसरों से आँख बचाकर थानेदार ने उसे ठोकर लगाई और जाते समय उसे पागल बताकर साथ बाँध कर ले गया ।

तीन साढ़े तीन मास राजासिंह हवालात में सड़ता रहा । फिर मार्च 1947 में उसकी मुक्ति हुई । वह अपने प्रान्त को छोड़कर भाग आया, मार्च में जब पोठोहार जल रहा था ।

जिस गाड़ी में राजासिंह बैठा, वह हैरान था कि गाड़ी बार-बार रुक-रुक जाती । आखिर मुसलमानों के एक गाँव के पास गाड़ी ठहरा दी गयी ! और देखते-देखते एक भीड़ उस पर टूट पड़ी । गोलियाँ बरसने लगीं । एक-एक हिन्दू और एक-एक सिक्ख को चुन-चुन कर मारा गया । स्त्रियां छीन ली गयीं, खून की नदी बह निकली । जिस-जिस डिब्बे के यात्रियों को कत्ल किया गया, उन्हें उस-उस डिब्बे में फेंक दिया गया और जब फसादियों का जी भर गया, जब उनको तसल्ली हो गयी, तो गाड़ी फिर चल दी ।

जितनी देर तक राजासिंह अपनी कहानी सुनाता रहा, हरिसिंह की आंखों से टप-टप आंसू गिरते रहे । राजासिंह तो गाँव से उस रात बाहर होने के कारण बच गया था, किन्तु हरिसिंह का भाई डाक्टर प्रीतमसिंह केवल रात-भर के लिए उनसे मिलने आया था जब यह घटना हुई । हरिसिंह के परिवार के इक्कीस सदस्य मारे गये । सरदार प्रीतमसिंह की पढ़ी-लिखी पत्नी भी उसके साथ आयी थी । बांहर सड़क पर मोटर जलती देख कर कहने लगी, थोड़े समय के लिए मुसंलमान बनना स्वीकार कर लेते हैं । डाक्टर प्रीतमसिंह ने तलवार निकाल कर अपनी पत्नी का सिर काट दिया और पड़ोस में उसे फेंकते हुए कहा — यह लो, एक तो तुम्हारा दीन स्वीकार करने वाली आ गयी । और फिर घर का एक-एक व्यक्ति शहीद हो गया । हरिसिंह अभागा था, घायल भी हुआ, किन्तु फौजियों ने वहाँ पहुँच कर उसे बचा लिया । 'और अब तो सारी आयु का रोना भाग्य में लिखा है !' हरिसिंह बार-बार यही कहता ।

कोई चाहे कैसी ही बात क्यों न कर रहा होता, अमरीका हँस देता; हँसे जाता । हँसते-हँसते उसने भी एक कहानी सुनाई — लक्खा मेहरा डर के मारे पेड़ पर चढ़ गया और जितने दिन फसादी गाँव को लूटते रहे, वह उसी पर छुपा रहा । आखिर भूख और दुर्बलता के कारण नीचे आ गिरा । अमरीके ने बताया कि गुण्डे उस पर टूट पड़े, किन्तु लक्खा पहले ही मर चुका था ।

अमरीका फसादियों के साथ-साथ कई गाँव देख चुका था । उसकी आँखों के सामने

कई अत्याचार हुए थे। अमरीके की जेब खाली कारतूसों के खोलों से भरी हुई थी। प्रत्येक कारतूस पर अंग्रेजी में लिखा हुआ था – यह कारतूस विशेष रूप से हिज हाईनेस नवाब बहावलपुर के लिए इंग्लैंड में तैयार किया गया। और अमरीका एक-एक खोल को जेब में से निकालकर लोगों को दिखाता कि उस कारतूस से कौन मारा गया था, कहाँ मारा गया था। अमरीका कैम्प में घूमता, ऊँचे स्वर में कहता रहता – 'मुसलमान भाइयो! अँग्रेजी राज्य खतम हो चुका है, पाकिस्तान बन चुका है। अब कोई हिन्दू-सिख जीवित नहीं रह सकता। ऊपर से हुक्म आया है कि इन सबको मुसलमान बना लो।'

कई लोगों को अमरीका अच्छा लगता। कई लोग उसे देखकर हैरान होते कि यह कैसा आदमी है।

'थोहे खालसे' के रहने वाले नानक चन्द को अभी तक विश्वास नहीं आता था कि वह जीवित है। थोहे पर आक्रमण करने वालों का नेतृत्व उस गाँव के नम्बरदार ने स्वयं किया। प्रदेश पब्लिसिटी अफसर भी उनके साथ था। थाने की सारी पुलिस उसकी सहायता कर रही थी। फसादी यह कहते कि लाहौर में मास्टर तारासिंह ने मुस्लिम लीग का भंडा फोड़ दिया था और तलवार निकाल कर मुसलमानों को ललकारा था। अमृतसर में मुसलमान स्त्रियां छीन ली गयी थीं और मुसलमानों के मोहल्लों के मुहल्ले जलाकर धूल में मिला दिये गये थे। मुसलमानों की मस्जिदों की बेहुरमती हुई थी। और वे कुछ ऐसी बढ़ा-चढ़ाकर बातें करते कि हिन्दुओं और सिक्खों से कोई उत्तर न बन पाता।

आखिर दस मार्च को ढाई हजार के लगभग मुसलमान गाँव पर टूट पड़े। गाँव के लोग मोर्चे बाँधकर बैठ गये। सारा दिन और सारी रात गोली चलती रही। अगले दिन सुलह की बात शुरू हुई। फ़सादियों ने सारे शस्त्र और दस हजार रुपये मांगे। यह सोच कर कि मुकाबला कठिन है, हिन्दू और सिक्खों ने ये शर्तें मान लीं। किन्तु हथियार इकट्ठे करके फसादियों ने फिर हमला कर दिया। लोग मरते रहे, मरते रहे। जो लोग हवेलियों में छिपे थे उन्हें आग में जला दिया गया। जो बाहर निकले वे गोली का निशाना बन गये। एक स्थान पर कई स्त्रियां छिपी थीं। फसादियों ने उनसे मुसलमान हो जाने के लिए कहा, किन्तु किसी ने यह बात नहीं मानी। सन्त गुलाबसिंह की पत्नी उन सब स्त्रियों का नेतृत्व कर रही थी। जब उन्होंने देखा कि फसादी किसी की बात मानने वाले नहीं तो हवेली के कुएं से पानी निकालकर स्त्रियाँ नहाईं और सत् श्री अकाल के नारे लगाती सब कुएं में कूद पड़ीं। इक्यानवे स्त्रियों ने इस प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा की और कुआं लबालब भर गया।

'भौणाँ' के मक्खनसिंह को तो कई दिन तक अपना नाम भूला रहा। उसे अपने गाँव का नाम याद न आया। मक्खनसंह के सामने उसके चचेरे भाई के परिवार को जिसमें पन्द्रह व्यक्ति थे, जंड के पेड़ से लटका कर मिट्टी के तेल से जलाया गया। आगे-पीछे घेरा डाल कर फसादी सारी रात नाचते रहे। ढोल पीटते रहे। जिसके नीचे आग की आँच कम होती, वहाँ और तेल छिड़क देते।

'मुगल पड़ी' के हरनामदास की एक आँख फसादयों ने निकाल ली थी, एक हाथ काट

दिया था। उसकी जवान लड़की को नंगा करके पहले उसे उसके सामने नचाते रहे, फिर उसका सारे गाँव में जुलूस निकाला गया और उसकी छाती पर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद गोदा गया, उसके माथे पर चाँद-तारा बनाया गया। और हरनामदास एक आँख से यह सब-कुछ देखता रहा। 'आखिर जब सातवाँ गुण्डा मेरी बेटी के सतीत्व पर हाथ डालने लगा, मैं बेसुध हो गया।' और हरनामदास अब तक अपनी कहानी सुनाता हुआ बेसुध हो जाता।

'गोरखपुर' का जैमलसिंह आजकल दिन-भर कपड़े बदलता रहता, रोटी अपने हाथ से पकाकर खाता। यदि किसी की छाया भी उस पर पड़ जाती, तो लड़ने लगता। और जब वह एक दिन अपने साथियों की कहानियाँ सुनता हुआ बहक गया, तो कहने लगा कि फसादियों ने गाय का मांस उसके अपने दालान में पकाकर संगीनों के साये-तले उसे खिलाया था। जैमलसिंह, जिसने कभी प्याज का छिलका तक नहीं खाया था, उसे गोमांस खिलाया गया। और जब कभी यह बात जैमलसिंह किसी से कहता, तो उल्टियाँ करने लगता। फिर दो-दो चार-चार दिन वह कुछ भी न पचा सकता।

'राजड़' गाँव का हुकूमत राय कहता – हम सब गुरुद्वारे में इकट्ठा हुए। सारा गाँव जलता रहा, जलता रहा, हमने परवाह न की। हमें पूर्ण विश्वास था कि गुरुद्वारे को आग नहीं लगेगी। आखिर जब फसादी वहाँ भी आ पहुँचे, तो हम दरबार साहब के कमरे में जा घुसे। गुरु ग्रन्थ साहब को कैसे आग लग सकती थी हमने सोचा, किन्तु आग फैलती-फैलती वहाँ भी पहुँच गयी। पहली 'बीड़' से जब धुआँ उठा, तो हुकूमत राय कहने लगा, उसके सारे साथी मुसलमान होने के लिए तैयार हो गये। बस, वही अकेला भीतर दुबक कर बैठा रहा और मिलिट्री ने आकर उसे बचाया। वह नहीं जानता था कि उसके अन्य साथियों पर क्या बीती, कोई उससे कहता कि वे मुसलमान बन गये थे, कोई उससे कहता कि डोगरा फौजियों ने उन्हें मस्जिद में जाकर बचा लिया।

13

सोहणे शाह जब से कैम्प में आया था, बीमार रहता था। अब वह सख्त बीमार पड़ गया।

डाक्टर एक रोग का इलाज करते तो दूसरा उठ खड़ा होता, दूसरी कल ठीक करते तो तीसरी में कोई बिगाड़ हो जाता।

और सोहणे शाह जैसे कितने ही दूसरे लोग कैम्प में थे। सतभराई हैरान होती कि इतना दूध कहाँ से आ जाता था, इतने फल कहाँ से आते थे, इतनी औषधियाँ कहाँ से आती थीं।

और वे लोग जो रोगी नहीं थे, डाक्टर से चिट लिखवा कर अपने नाम दूध और फल लगवा लेते। डाक्टर सारा दिन कैम्प में ही रहते और दोनों समय एक-एक तम्बू में जाकर रोगियों का इलाज करते। सोहणे शाह का दूध पड़ा रहता, सोहणे शाह के फल पड़े रहते; न सोहणे शाह उनकी ओर आँख उठा कर देखता, न सतभराई कोई वस्तु उठा कर मुँह से लगाती।

पड़ोस के लड़के खुश थे; सतभराई दूसरे या तीसरे दिन फल उनमें बाँट देती। उसके बदले में ये बच्चे सतभराई के छोटे-मोटे काम करते रहते।

सोहणे शाह न कुछ खाता, न कुछ पीता; अत्यन्त दुर्बल हो चुका था। सतभराई उसके सिरहाने बैठी रहती। सोहणे शाह कभी-कभी उसे हृदय से लगा कर दिल की भड़ास निकाल लेता। किन्तु कितने दिनों से सोहणे शाह की आँखों से कोई आँसू नहीं गिरा था, वह बौराया हुआ सतभराई की ओर देखता रहता, आँखें फाड़-फाड़ कर डाक्टरों की ओर देखता रहता। यह देखकर कि खुश्क दवाएँ उसके सिर को चढ़ रही हैं, सतभराई ने उसका इलाज बन्द कर दिया। डाक्टर आकर उसे दोनों समय देख जाते, दवा भी दे जाते, किन्तु सतभराई चुपके से शीशी उँड़ेल देती।

सतभराई रात-रात भर जागती, कभी सोहणे शाह के तलवे मसलती, कभी उसके पाँव दबाती। कभी उसे गर्मी लगने लगती, कभी उसे सर्दी लगने लगती।

आखिर सोहणे शाह और अधिक बीमार पड़ गया। बार-बार कपड़े फाड़ने लगता, उठ-उठ कर तम्बू से बाहर निकल जाता। खाने लगता तो खाये जाता, हँसने लगता तो हँसता ही रहता।

लोग कहते कि उसे हवा लग गयी है, सरसाम हो गया है, और डाक्टर टीकों-पर-टीके लगाये जाते। एक दिन सवेरे जब सतभराई की आँख खुली तो सोहणे शाह तम्बू में नहीं था। सतभराई अवाक् रह गयी। उसने सारा कैम्प छान मारा लेकिन सोहणे शाह कहीं भी नहीं था।

अपने तम्बू में अकेली बैठी सतभराई ने फूट-फूटकर फरियाद की, जी भर के रोयी। न जाने फिर कहाँ से एक कुत्ता उसके तम्बू के आगे आ बैठा और किसी को उस तम्बू की ओर फटकने न देता।

सतभराई रोती रही, रोती रही, फिर रात हो गयी !

दूसरे दिन पड़ोस के तम्बुओं की स्त्रियाँ उससे संवेदना जताने के लए आने लगीं। 'हाय चचा', 'हाय चचा', पुकारती हुई सतभराई को रोता देखकर एक अधेड़ आयु की महिला ने यूँ ही बात करने के बहाने पूछा, 'वह तेरा पिता है या चचा ?' सतभराई घबरा गयी। उससे कोई उत्तर न बन पड़ा।

सतभराई ने और भी फूट-फूटकर रोना शुरू कर दिया।

कैम्प के कर्मचारी आये; सोहणे शाह के लिए दूध छोड़ गये, समय पर आकर खिचड़ी दे गये, लेकिन सतभराई का किसी वस्तु की ओर आँख उठाने को मन न चाहा।

कँटीली बाड़ की चारदीवारी के साथ लगकर सतभराई सोहणे शाह की प्रतीक्षा करती रही। सायंकाल उसका मन बहलाने के लिए उसकी पड़ोसन सतभराई को अपने साथ लंगर में ले गयी जहाँ सब के लिए खाना बनता था।

सतभराई को यह काम बहुत भला लगा। कभी चूल्हों में लकड़ियाँ डालतीं, कभी आटे के पेड़े बनाती, कभी रोटियां पकाती, कभी बर्तन मलने लगती। शरणार्थी स्त्रियाँ जब मिलकर बैठतीं तो मुसलमानों को लाख-लाख गालियाँ बकतीं। उन्हें 'मुसले' कहकर पुकारतीं।

सतभराई उन्हें समझाती कि वे मुसलमान थोड़े ही थे; वे तो फसादी थे। जो पड़ोसी अपने पड़ोसी पर अकारण अत्याचार करता है वह मुसलमान क्योंकर हो सकता है ? फिर उसने अपने गाँव की बात सुनाई जहाँ फसादियों ने एक मुसलमान को भी मार डाला था, इसलिए कि वे हिन्दुओं और सिक्खों की सहायता पर तुला हुआ था।

अपने गाँव की चर्चा करते हुए सतभराई की आँखों में फिर आँसू भर आये।

जब दिन ढलता तो न जाने वह कुत्ता कहाँ से आकर सतभराई के तम्बू के आगे आ बैठता और जब तक सतभराई अगले दिन तम्बू से बाहर न निकल जाती वह अपनी जगह से न हिलता।

एक दिन 'लंगर' में काम करते-करते सतभराई ने एक-दो बार अल्लाह की कसम खायी। एक स्त्री कहने लगी, 'ये अल्लाह की कसमें तो बस वहीं रह गयीं।'

'नाखून से मांस किस प्रकार अलग होगा ?' एक और बोली।

और फिर एक लम्बी कहानी छिड़ गयी। साझी खानकाहों की, साझे गीतों की, साझे त्योहारों की, साझी भाषा की और साझे पहनावे की। वह स्नेह जो हिन्दुओं और मुसलमानों में था, वह प्यार जो सिक्खों और मुसलमानों में था।

एक कहने लगी कि उनके पड़ोसी मुसलमान ने उसे अपनी लड़की बनाया था, बचपन से उसके कपड़े इत्यादि का तमाम खर्च वही दिया करता था। उसने स्वयं लड़का ढूँढ़कर उसका विवाह करवाया। ऐसा विवाह शायद ही किसी का हुआ होगा। और उसी के गाँव के मुसलमान उसके पति के गाँव पर टूट पड़े और भालों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

लाजो ने यह बात सुनते ही हँसना आरम्भ कर दिया; बहुत देर तक वह हँसती रही, जैसे पागल हो गयी हो। लाजो अभी तक कृपाण गले में पहने हुए थी। वह फसादियों से शेरनी की तरह लड़ती हुई बचकर आयी थी। लाजो सदैव सतभराई के साथ सटकर बैठती, सतभराई उसे बहुत अच्छी लगती, उसे 'बेटा-बेटा' कहती रहती।

जब अवकाश मिलता, सतभराई कँटीले जंगले के पास आकर खड़ी हो जाती और सोहणे शाह की राह देखती रहती। खड़े-खड़े अक्सर उसकी आँखों में आँसू छलछला उठते।

एक दिन वह इसी प्रकार रो रही थी कि उसके पीछे लाजो आकर उससे प्यार करने लगी। ज्यों-ज्यों लाजो उसे हृदय से लगाती, त्यों-त्यों उसकी कृपाण सतभराई को चुभती।

उस दिन रात को सोये हुए सतभराई को ऐसे लगा कि जैसे बाल खोले हुए लाजो उसके शिविर के बाहर बैठी है और उसके हाथ में उसकी कृपाण दमक रही है। सतभराई हाँफती हुई, पसीने में तर लेटी रही, लेटी रही और उसकी आँखें लाख कोशिश करने पर भी न खुल सकीं। सतभराई उठी तो नियमानुसार काला कुत्ता उसके शिविर के बाहर बैठा था, सतभराई को देखकर वहाँ से चला गया।

अगले दिन जब बात करते हुए सतभराई के मुँह से दोबारा अल्लाह की कसम निकली तो लाजो ने कहा, 'अल्लाह के मारे हुए तो यहाँ आ गये हैं।'

और फिर लाजो ने अपने एक बुजुर्ग की कहानी सुनायी जो सदैव मुसलमानों के विरुद्ध

बोलता रहता था। वह कहा करता था कि मुसलमानों ने अपने राज्यकाल में बहुत अत्याचार किये थे। इसलिए आजकल हर सिक्ख लड़की को मुसलमान से पर्दा करना चाहिए, ताकि उनकी कुदृष्टि उन पर न पड़े। लाजो कहती कि उसे यह भी शिकायत थी कि लाजो की सहेलियाँ मुसलमान लड़कियाँ हुआ करती थीं। लेकिन उन दिनों तो लाजो अपने उस बुजुर्ग पर हँसा करती थी।

काम करती हुई कुछ स्त्रियाँ कहतीं, वह बुजुर्ग ठीक कहता था। कुछ कहतीं, यह बात ठीक नहीं है।

उस दिन सायंकाल से अकेली बैठी हुई सतभराई सोचती कि वह हिन्दू थी, सिक्ख थी या मुसलमान थी, क्या थी? कुछ उसकी समझ में नहीं आ रहा था। और फिर वह सोचती, राजकर्णी जिसे वे पीछे छोड़ आये थे उसका क्या धर्म था? राजकर्णी हिन्दू थी, सिक्ख थी या मुसलमान थी, क्या थी? फिर वह सोचती, उसके पिता का क्या धर्म था? उसका पिता जो नमाज पढ़ता था, निर्धनों की सहायता करता था, जिसने मस्जिदें बनवायीं थीं, और जो अल्लाह के नाम पर उछाले गये भालों से बिंधा गया था।

'यह मजहब क्या है?' सोचते-सोचते सतभराई उस रात फिर सो गयी।

और सोये हुए उसने बहुत बुरे सपने देखे। कभी वह देखती कि लाजो अपनी कृपाण से उसकी बोटी-बोटी अलग कर रही है, कभी वह देखती कि काला कुत्ता उसे नोच-नोच कर खा रहा है। कोई वस्तु उसकी खो गयी है, वह उसे ढूँढ़ती है, जब वह वस्तु उसे मिल जाती है तो दूसरी खो जाती है। इस प्रकार की निरन्तर खोज उसे थका रही थी कि उसकी आँख खुल गयी।

14

जमना और परमेसरी अपने तम्बू में बैठी हँस रही थीं, हँसे जातीं, हँसे जातीं!

जमना के पति और दूसरे सम्बन्धी मारे जा चुके थे। उसे एक मिलिट्री की लारी फसादियों से छीनकर लायी थी।

जमना सदैव सोचा करती कि यदि मिलिट्री वाले न पहुँचते तो...! और परमेसरी वह सब कुछ कह दिया करती जो जमना कह नहीं पाती थी।

आखिर यह कैम्प का जीवन भी कोई जीवन था! और फिर जाने कहाँ-कहाँ की ठोकरें उनके भाग्य में लिखी थीं। नये सिरे से फिर खाविंद ढूँढ़ना, फिर उन्हें विवाह के लिए सहमत कराना, फिर बच्चे पैदा करना, फिर घर बसाना, फिर चक्की पीसना!

और जब परमेसरी इतना कुछ कह चुकती तो जमना सोचती, आखिर जो उन्हें पकड़कर ले जा रहे थे, उनमें क्या बुराई थी। उन्होंने तो इतनी लूटमार की थी। पोठोहार का एक-एक

मुसलमान सात-सात पत्नियों को आजकल रोटी खिला सकता था। और फिर वे अपने पड़ोसी ही तो थे।

परमेसरी कहती – हमें तो बस बच्चे जनने हैं और रोटी खानी हैं, बच्चे पैदा करने हैं और कपड़े पहनने हैं।

और फिर वे दोनों ऊँची आवाज में हँसने लग जातीं; कितनी देर तक हँसती रहतीं। लोग इन दोनों की दोस्ती पर हैरान थे। रंग-बिरंगे दुपट्टे ओढ़तीं, धोबी के धुले हुए वस्त्र पहनतीं, बालों को टेढ़ा-सीधा करके बनातीं।

आज शाम को उनके शिविर में पहले से कुछ अधिक शोर था, वे हँसे जातीं, हँसे जातीं।

बात यूँ हुई। 1907 नम्बर के शिविर में एक बूढ़ा रहा करता था जिसकी आँखें फसादियों ने निकाल ली थीं। उसके साथ तेरह वर्ष की एक उसकी बेटी थी जो उसके छोटे-छोटे काम करती थी। कुछ दिनों से यह लड़की सख्त बीमार थी; डाक्टर हर कोशिश कर चुके थे लेकिन उसे आराम नहीं आ रहा था। पिछली रात को उसकी दशा बहुत खराब हो गयी। उसकी साँस उखड़ गयी, नब्ज डूब गयी; बूढ़े ने उसकी आवाज सुनकर कुहराम मचा दिया।

आधी रात का वक्त था।

परमेसरी और जमना कितनी देर तक एक-दूसरी के साथ खुसर-फुसुर करती रहीं। आखिर लक्ष्मी उठी और अन्धे बूढ़े के तम्बू में चली गयी।

'क्यों बाबा! क्या छोटी बहुत बीमार हो गयी है?'

बूढ़ा पहले से भी अधिक रोने लगा।

'मैं कहती हूँ, छोटी को न्युमोनिया है, लेकिन इन डाक्टरों से कोई क्या कहे!'

बूढ़ा रोये जा रहा था, रोये जा रहा था।

'बाबा धीरज धर, अब रोने से क्या बनेगा! ये दुख तो अब हमारे भाग्य में लिखे जा चुके हैं!'

बच्ची का साँस और अधिक उखड़ गया। आवाज इस तरह आती थी जैसे चक्की चल रही हो।

'बाबा, अब तो छोटी कुछ क्षण की मेहमान है, ईश्वर का नाम ले, काहे को इस तरह फरियाद कर रहे हो? किसके सामने इस तरह रो रहे हो?'

बूढ़ा और ऊँची आवाज से रो रहा था। उसका क्रन्दन और भी करुणापूर्ण हो चुका था। बच्ची का साँस धीमा पड़ने लगा जैसे रुक रहा हो। जितनी देर तक बातें करती रही, जमना ने बीमार बच्ची के ऊपर से भी कम्बल निकाल लिया, नीचे से भी कम्बल निकाल लिया, बस मोटी सी एक चादर ही उसके नीचे रहने दी। बातें करती-करती जमना कम्बल बगल में दबाकर बाहर आ गयी।

और आज परमेसरी और जमना धोबियों के क्वार्टरों में दोनों कम्बल दस-दस रुपयों में बेच आयी थीं।

वे जब से यहाँ आयी थीं कपड़े चुराकर बेचा करती थीं; लेकिन जिस प्रकार उन्होंने ये

कम्बल प्राप्त किये थे, उन्हें स्वयं विश्वास नहीं आ रहा था। परमेसरी सुखाने के लिए डाले कपड़ों को हथियाने में बड़ी अभ्यस्त थी। काँटेदार तार पर लोग कपड़े फैला देते, परमेसरी अपने कपड़े वहाँ फैलाने के लिए जाती और चुपके-से एक-दो पराये कपड़े उठा लाती। कुछ समय बाद अपने कपड़े लाने के लिए जाती तो फिर एक-दो पराये कपड़े चुरा लाती। इससे पहले कि लोग शोर मचाते, ये दोनों धोबियों के क्वार्टरों में जाकर बेच आतीं।

चार-चार बार उन्होंने नाम बदलकर सरकारी कर्मचारियों से कपड़े लिये, कभी कोई वेश बदल कर जातीं और कभी कोई, और जैसे भी होता कम्बलों के जोड़े अपने नाम लिखवाकर ले आतीं। जो कोई अमीर आदमी कैम्प में आता, उसे उन दोनों पर असीम दया आती। जिस दिन किसी का आना होता, वे चीथड़े पहन लेतीं, न जाने कैसे उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती। अड़ोस-पड़ोस और कैम्प वालों को पता था कि उनके सारे सम्बन्धी फसादों में मारे गये थे। उन्हें भी फसादी ले जाते यदि मिलिट्री की लारी समय पर उधर न पहुँच जाती।

प्रातःकाल वे सत्संग में शामिल होने के बहाने वहाँ से खिसक जातीं और फिर जब उनके जी में आता घर लौटतीं। गली-गली, बाज़ार-बाज़ार घूमती रहतीं।

फिर उन्हें एक ताँगेवाला मिल गया। सारा दिन उन्हें ताँगे में घुमाता रहता। कभी तो ये रात को भी कैम्प में न लौटतीं।

इस प्रकार होता रहा, होता रहा। आखिर एक दिन सायंकाल को परमेसरी ताँगे से उतरकर सामने एक दुकान में से कोई चीज लेने गयी, भीड़ बहुत थी। जब लौटी तो न वहाँ ताँगा था, न जमना और न ताँगेवाला था। वह इधर-उधर उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गयी, किन्तु वे उसे कहीं न मिले। आखिर हार कर वह कैम्प में चली आयी।

परमेसरी का दिल कहता था कि जमना एक दिन उसके पास अवश्य लौट आयेगी। कँटीली बाड़ के पास खड़ी हो कर वह उसकी बाट जोहती रहती।

कँटीली तार के पास खड़ी परमेसरी ने देखा कि दस खम्भे छोड़कर सतभराई भी खड़ी रहती और किसी की प्रतीक्षा कर रही होती। एक दिन परमेसरी उसके पास आकर खड़ी हो गयी।

'बहन, तू किसकी राह देख रही है ?' परमेसरी ने पूछा।

'मेरा चचा...' और शेष वाक्य उसके रुँधे हुए गले में ही अटक गया।

और फिर वे दोनों प्रतिदिन एक ठिकाने पर आकर खड़ी हो जातीं। परमेसरी कहती – 'इस बुरे शहर से जो कोई भी जाता है लौटकर नहीं आता। शहर में मोटरें चलती हैं, लारियाँ चलती हैं, ताँगे चलते हैं, तेज, बहुत तेज, जो कहीं-के-कहीं ले जाते हैं।'

परमेसरी बोलती जाती, बोलती जाती। सतभराई सोचती – यह औरत कैसी बातें करती है!

'मेरा चचा तो जरूर आयेगा!' प्रतिदिन सायंकाल को जब वे निराश होकर अपने तम्बू की ओर जाने लगतीं, सतभराई कहा करती।

रात को सतभराई सोहणे शाह का बिस्तर बिछा देती। सवेरे उसके कपड़ों का जोड़ा

झाड़-पोंछकर, सँवारकर उसकी प्रतीक्षा करने लगती। कितने दिनों से कैम्प के कर्मचारी सोहणे शाह का राशन बन्द कर देने की सोच रहे थे। सतभराई प्रतिदिन उन्हें एक दिन और देख लेने के लिए कहती।

हर रोज उस स्थान पर मिलती परमेसरी ने सतभराई पर डोरे डालने शुरू कर दिये।

अपने तम्बू के एक कोने में परमेसरी ने वे पैसे रख छोड़े थे, जो उसने और जमना ने चुराई हुई वस्तुओं को बेच-बेच कर इकट्ठे किये थे। कभी वह सतभराई के लिए कुछ खरीद लाती और कभी कुछ ला देती। वह बार-बार कहती, किन्तु सतभराई कभी उसके साथ कैम्प से बाहर न गयी।

अपने तम्बू में अकेली बैठी परमेसरी सोचती – काश! सतभराई मेरे हत्थे चढ़ जाये! कैसे गन्दे कपड़े पहने रहती है! यदि वह कहीं जमना का काला दुपट्टा ओढ़ ले! यदि वह कहीं बालियाँ पहन ले जो कभी जमना पहना करती थी, उसका चाँद जैसा रूप निखर आये! यदि वह कहीं चल कर दो दिन हलवाई की दुकान पर कलाकन्द खाये, उसके मुखड़े पर रौनक आ जाये। सतभराई जो मेरे साथ कभी शहर चले तो... एक बार, बस एक बार... अब मैं कभी ताँगे पर से नहीं उतरूँगी।

'सतभराई, आज मैंने तेरे चचा को बाजार में देखा था!' एक दिन परमेसरी शहर से लौट कर कहने लगी।

यह झूठ बोल रही है! सतभराई के दूसरे कान में जैसे किसी ने फूँका।

'तो क्या तुमने उनसे कहा, कि मैं यहाँ उनका इन्तज़ार किया करती हूँ?' सतभराई ने उसे टाल दिया।

परमेसरी ने बड़ा आग्रह किया कि सतभराई उसके साथ शहर चली चले। 'जवान लड़कियाँ हमारी ओर कभी यूँ बाहर नहीं निकला करतीं।' आखिर सतभराई ने कहा और उसकी आँखें आँसुओं से छलकने लगीं।

15

कुलदीप एक सिक्ख लड़का था।

गोरा चिट्टा, जैसे हाथ लगाने से मैला हो। जवान-जहान लड़कियाँ उसे देखने के लिए विकल रहा करती थीं। धुले हुए, उसके रेशमी बाल जब बिखरे होते, उसकी ओर देखा न जाता। उसके मुँह से कभी ऊँची आवाज नहीं निकलती थी। हर किसी को 'जी' 'जी' कहकर बुलाता। उसके फूल की पत्तियाँ जैसे ओठों से शहद बरसता रहता।

कुलदीप के बारे में कहते थे कि जब उनके गाँव पर आक्रमण हुआ और फसादियों ने एक-एक को मार डाला और जब उसकी बारी आयी तो एक ने छुरी तानी लेकिन दूसरे ने आकर

उसे थाम लिया। फिर वे आपस में झगड़ने लगे। अभी यह झगड़ा हो ही रहा था कि मिलिट्री की लारी वहाँ पहुँच गयी।

और फिर जब बचे-खुचे लोग अपना-अपना सामान ट्रकों में लादकर चलने लगे तो मिलिट्री वालों ने धर्म-पुस्तकों की एक पेटी को नीचे फेंक दिया; लारी में जगह नहीं थी। चलती हुई लारी में से कुलदीप कूद कर नीचे आ गया। कहने लगा कि वह धर्म-पुस्तकों को पीछे छोड़कर नहीं जायेगा। मिलिट्री वालों ने उसे डराया-धमकाया, किन्तु कुलदीप कहता रहा, मैं पीछे रहने के लिए तैयार हूँ, मुझे फिर आकर ले जाना, पहले इन पुस्तकों को ले जाओ।

और अब, जब से वह कैम्प में आया था, दिन-रात अपने लुटे-पिटे साथियों की सेवा में लगा रहता। किसी को 'बहन जी', किसी को 'माता जी' कहकर पुकारता। किसी को 'पिता जी' कहकर, किसी को 'भाई साहब' कहकर बुलाता। किसी को 'चाचा जी' और किसी को 'दादा जी' कहता। हर किसी से मीठा बोल बोलता। न किसी से खफा होता, न किसी को अपने से नाराज होने देता।

कुलदीप का शिविर एकान्त में था। उसका कोई सम्बन्धी नहीं बचा था। बस, एक चचेरा भाई था जो लायलपुर जमीन की देखभाल के लिए गया हुआ था।

वैसे हर काम में हाथ बँटाने के लिए कुलदीप सबसे आगे रहता था। वास्तव में उसके जिम्मे बीमार बच्चों को दूध पहुँचाने का काम था। जो लोग डिपो पर आकर दूध न ले सकें, वह उनके तम्बुओं में जाकर दूध पहुँचाया करता था।

जब से सोहणे शाह गया था, सतभराई उसके लिए दूध कभी ले लिया करती, कभी मना कर देती। उसने सोहणे शाह का नाम न कटने दिया। दूसरे स्वयंसेवक तो सोहणे शाह के लिए मिले दूध को इधर-उधर कर देते, किन्तु कुलदीप की समझ में न आता, वह कैसे अपने हिसाब को साफ रखे।

और फिर जब एक दिन कुलदीप आया, सतभराई फूट-फूट कर रोने लगी। सोहणे शाह अभी तक नहीं आया था। जवान-जहान सतभराई अपने आपको तसल्ली दे-दे कर थक गयी थी। उसे चारों ओर भयानक अन्धकार दिखाई देता। उसे ऐसा लगता, जैसे वह गीला आटा हो – कुत्ते और कौवे जिसे नोच-नोच कर खा जायेंगे। लोगों को सारी आयु कैम्प में थोड़े ही बैठे रहना था। और सतभराई को अब यह चिन्ता सताने लगी कि वह कहाँ जायेगी, उसका तो अब सोहणे शाह के अतिरिक्त कोई भी नहीं था।

सतभराई फूट-फूटकर रोती रही। कुलदीप देर तक तम्बू में खड़ा रहा, फिर जैसे उसकी टाँगें कांपने लगीं, उसकी आँखें सजल हो उठीं, वह तम्बू से बाहर निकल आया।

कुलदीप का जोड़-जोड़ जैसे जकड़ गया हो; वह चलना चाहता और उससे चला न जाता, दूध कहीं डालता और वह गिर कहीं पड़ता, न उसका डिपो में मन लगता और न अपने तम्बू में।

लगभग एक घण्टे के बाद कुलदीप फिर सतभराई के तम्बू की ओर आया। उसके तम्बू से अभी तक सिसकियों की आवाज सुनाई दे रही थी। काला कुत्ता कुलदीप को तम्बू की ओर

आते देखकर पूँछ उठाए चलने ही को था कि फिर बैठ गया। कुलदीप, तम्बू में अभी तक रो रही सतभराई की आवाज सुनकर लौट गया।

यह काला कुत्ता, जैसे इनसे मेरी जान-पहचान हो – कुलदीप सोचता, काला कुत्ता हमेशा कुलदीप की ओर प्यार-भरी नजरों से देखा करता था।

अगले दिन कपड़ों से भरे हुए ट्रक आये, कुलदीप दिन-भर उन्हें बाँटता रहा। स्त्रियों के लिए दुपट्टे थे, कमीजें थीं, पुरुषों के लिए पायजामे थे, कुर्ते थे, पगड़ियाँ थीं। एक ट्रक प्रत्येक माप की जूतियों से भरा था, एक ट्रक कैनवस के बूटों से भरा था और बनियानों के बण्डल-के-बण्डल बँधे हुए थे, जुराबों की गठड़ियाँ थीं।

दिन-भर कुलदीप काम में लगा रहा। जब शाम हुई तो वह अपने तम्बू में सुस्ताने के लिए आया। उसका जी चाहा, अपने हिस्से की कमीज को जरा पहन कर तो देखे।

कमीज पहनकर कुलदीप का हाथ अपने-आप ही कमीज की जेब में चला गया। उसमें एक पत्र था –

'अय मेरे अभागे देशवासी ! यह कमीज मैं तेरा तन ढाँपने के लिए भेज रही हूं। इस कमीज की कटाई मैंने बड़े स्नेह से की है, इसे बड़े अरमानों के साथ सिया है। मैने हर बखिये में अपनी भावनाओं को सँजोया है। यह कमीज रावलपिंडी से दूर दिल्ली में एक बेबस पोठोहारिन की ओर से है, एक नौजवान पोठोहारी के लिए, जिसके हृदय की धड़कनें मैं यहाँ बैठी सुन रही हूँ। मेरे देशवासी ! यह कमीज पहन कर तू अपने-आप को अकेला अनुभव न करना। प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व चाँदनी के द्वारा मैं तुमसे बातें किया करूँगी। जय हिंद ! अय मेरे अनदेखे साजन !'

बाहर चाँद अपने पूरे यौवन पर था। कुलदीप तम्बू से बाहर चाँदनी में आ कर खड़ा हो गया। चाँद की किरणें जैसे उसे अपनी बाँहों में ले रही थीं।

न जाने कितनी देर तक वह वैसे-का-वैसा खड़ा रहा, खड़ा रहा। कभी चाँद की ओर देख लेता और कभी अपने चारों ओर पड़ती हुई चन्द्रकिरणों को; जैसे कोई उसके कानों में कुछ कह रहा हो, जैसे धीमे-धीमे कोई उसके अंग-अंग को सहला रहा हो !

कुलदीप के पास से कैम्प के कर्मचारी गुजरते रहे, कैम्प में बसने वाले गुजरते रहे, लेकिन कुलदीप ने किसी की ओर न देखा, न किसी की कोई बात सुनी।

'मेरे अभागे देशवासी ! यह कमीज मैं तेरा तन ढाँपने के लिए भेज रही हूँ।'

और वह कमीज कुलदीप के बदन पर थी। उसे इतना भी याद न रहा था कि उसके साथ पायजामा भी था, उसके साथ साफा भी था। बाकी कपड़े उसने पुराने ही पहन रखे थे।

'मेरे देशवासी ! यह कमीज पहन कर तू कभी अपने-आप को अकेला अनुभव न करना !'

और कुलदीप कैम्प में वैसे-का-वैसा टहलने लगा। घूमते-फिरते वह सतभराई के तम्बू के पास से गुजरा। काला कुत्ता अपने पंजों में थूथनी छिपाये लेटा हुआ था। कुलदीप को लगा जैसे तम्बू में से अभी तक सतभराई की आवाज आ रही थी।

'एक बेबस पोठोहारिन की ओर से एक नौजवान पोठोहारी के लिए।' और कुलदीप

सोचने लगा आज पोठोहारिनें तड़प रही थीं, आज अप्सराओं के देश को आग लगा दी गयी थी। पोठोहार की लड़कियों के कद अब ऊँचे नहीं उठेंगे। पोठोहारिनों के झुंड-के-झुंड अब बरगद तले खेला नहीं करेंगे। नदियाँ वीरान रहा करेंगी। पोठोहारिनों के गज-गज भर लम्बे बाल, उनकी काली-स्याह आँखें आने-जाने वालों पर जादू नहीं फूंका करेंगी। पोठोहारिनों के गीत अब मर जायेंगे, मिट जायेंगे!

रात गये तक कुलदीप घूमता रहा, घूमता रहा। दूर, सड़क पर कहीं कोई माहिया की तान उड़ा रहा था –

दो पत्तर अनारां दे
सड़ गई जिन्दड़ी
लग गये ढेर अंगारां दे।

कुलदीप तीसरी बार जब उस कँटीली बाड़ के पास खड़े संतरी के पास से गुजरा, तो संतरी ने उसे बातें करने के लिए बुला लिया –

'अब यह कैम्प टूट जायेगा', फिर सँतरी ने उसे बताया 'लोग अपने-अपने घरों को लौट जायेंगे, कभी चोली-दामन का साथ भी छूटा है! क्या हुआ, यदि हिन्दू और मुसलमान यूँ आपस में लड़ पड़े, क्या कोई अपना घरबार भी छोड़ता है?'

संतरी कितनी देर तक यूं बातें करता रहा और कुलदीप सुनता रहा।

आखिर बड़े फाटक वाले संतरी की एक स्त्री के साथ झड़प की आवाज सुनायी दी। ये दोनों दौड़कर उधर पहुँचे।

परमेसरी प्रतिदिन रात गये कैम्प में लौटा करती थी; संतरी कह रहा था कि वह उसे चेतावनी दे-देकर थक चुका है।

और परमेसरी रो-रोकर अभिनय कर रही थी। बार-बार कहती, 'जब हिन्दू या सिक्ख का पहरा होता है तो कोई मुझे कुछ नहीं कहता, किन्तु ये खोटे लोग तो हमें कैम्प में भी जीने नहीं देंगे।'

16

उस रात निरन्तर कुलदीप दिल्ली शहर की गलियों में घूमता रहा। कभी वह मोटरों के नीचे आने लगता, कभी ताँगे वाले उसे गिरा कर गुजर जाते। बसों के पीछे दौड़ता-दौड़ता वह हाँफने लगता, किन्तु वह उसके लिए न रुकतीं। एक गली में से जब उसे दूसरी गली में जाना होता, उसके सामने जैसे चट्टानें आकर खड़ी हो जातीं, एकदम ऊँची चट्टानें जिन्हें फाँदकर जाने का कोई रास्ता न होता। वह कितनी-कितनी देर तक उनको अपने नाखूनों से कुरेदता रहता। कभी उसे सात-सात मंजिलों वाले मकानों की मुँडेरों पर चलना पड़ता, जिन पर से नीचे देखते ही

नजर खो-खो जाती। उसके पाँव बार-बार लड़खड़ाते। जिस रास्ते पर वह चलता, तलवार की धार की तरह वह तेज होता। कभी वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगता और चढ़ता ही जाता, सीढ़ियाँ कहीं खत्म न होतीं। कहीं सीढ़ियों पर से उतरने लगता तो उतरता ही जाता। उसकी टाँगों में दर्द होने लगता। एक गली में वह दाखिल होता, उस गली में से एक और गली निकल आती, और वह गली किसी और गली में जा पहुंचती। फिर किसी और, किसी और, किसी और, और इस तरह वह दोबारा पहली जगह पर पहुँच जाता।

दिल्ली के लोग उसे ऐसे दिखाई देते जैसे लेटरबक्स चल रहे हों! एक कालेज के पास से वह गुजर रहा था कि उसने देखा, लड़के और लड़कियाँ कागज खा रहे हैं, पैंसिलें चबा रहे हैं, स्याहियाँ पी रहे हैं। एक ताँगे में से सवारियाँ उतरीं और ताँगे वाले ने सब सवारियों के बदन से माँस की पाँच-पाँच सात-सात बोटियाँ उतार लीं। एक स्त्री आयी, उसकी पीठ पर रक्त से भरी हुई पिचकारी मार कर अपने श्वेत दांत दिखलाती खिल खिला कर हँस दी। आधी रात को एक गली में चमकती हुई मोटर आकर रुक गयी। सूट-बूट पहने हुए उसमें से एक युवक निकला और नाली में से गटागट गन्दगी पीने लगा। कुलदीप ने देखा कि उस गली में और बहुत से युवक लेटे हुए गन्दी नालियों में मुँह लगाये हुए थे। एक खिड़की में से उसने कमरे के भीतर झाँका। एक छोटे से पलंग पर एक बच्चा सोया पड़ा था, उसके ऊपर एक पालने में एक और बच्चा सोया पड़ा था, उसके ऊपर एक और चारपाई पर माँ सोयी पड़ी थी। चारपाई के ऊपर एक पलंग पर पिता सोया पड़ा था। और बड़े पलंग के सिरहाने की ओर एक पटरा था, पानी की एक बाल्टी थी, साबुन की एक टिकिया थी। पाँयती की ओर एक चूल्हा था, चूल्हे के समीप चिमटा था, एक बेलन था। पलंग की एक ओर उतनी ही बड़ी श्रृंगारमेज़ थी, जिस पर रंग-बिरंगी लिपस्टिकें पड़ी थीं, पाउडर पड़े थे, कंघियाँ थीं, ब्रुश थे, तेल थे, क्रीम थी, क्लिप थे और रिबन थे। पलंग के नीचे चारपाई पर स्त्री की सूखी-सी नंगी बाँह श्रृंगारमेज़ की ओर झूल रही थी।

एक सड़क के किनारे कोई छाबड़ी वाला खिलौने बेच रहा था। एक खिलौना खरीद कर जब कुलदीप ने हाथ में पकड़ा, तो जीता-जागता एक बच्चा खिलखिला कर हँसने लगा। एक दफ्तर में उसने देखा कि आँधी कागजों के पुलिन्दों को कभी एक ओर ले जाती और कभी दूसरी ओर जा फेंकती। दफ्तर में काम करने वाले सुर्खियां घोल रहे थे, काजल बना रहे थे, रोटियों के डिब्बे चपरासियों से साफ करवा रहे थे।

होटल के एक कमरे के पास से गुजरते हुए उसने सुना कि भीतर कुछ युवक एक बैरे को आर्डर दे रहे थे, 'तीन प्लेट कबाब, दो बोतल शराब और एक लड़की, शरणार्थिन न हो!'

मुँडेरों पर बैठी हुई लड़कियां देखते-देखते जवान हो जातीं। बाजार में घूमती हुई स्त्रियां कपड़े पहने हुए होतीं, फिर भी नंगी-नंगी दिखाई देतीं। एक चुड़ैल अपने हाथ-भर की जबान निकाल कर कुलदीप के पीछे पड़ गयी – 'मैं पोठोहारिन हूँ।' वह उसके पीछे भागने लगी।

कुलदीप हाँफता हुआ उठ बैठा। बाहर दिन निकला हुआ था। इतनी देर तक वह कभी नहीं सोया था। उसका सारा शरीर पसीने से तर था। दातुन करता हुआ सतभराई के तम्बू के

पास से गुजरा, काला कुत्ता बाहर वैसे-का-वैसा बैठा हुआ था। नहाकर फिर वह उस तम्बू के पास से गुजरा, काला कुत्ता अभी तक वहीं बैठा था।

अभी तक सो कर नहीं उठी होगी, कुलदीप ने मन में सोचा।

लगभग आध घण्टे बाद जब वह दूध देने के लिए आया, उसने देखा कि सतभराई तम्बू में नहीं थी। अड़ोस-पड़ोस में पूछने पर पता चला कि परमेसरी उसे मुँह-अँधेरे ही कहीं लेकर निकल गयी थी। सुनते ही कुलदीप को चक्कर आ गया। उसका शरीर पसीने से भीग गया, उसके हाथ काँपने लगे। फिर उसके होंठों पर एक फीकी-सी मुस्कराहट आयी और वह अपने काम में उलझ गया।

दोपहर को जब सतभराई लौटी, उसे ज्वर था। ज्वर बढ़ता गया, बढ़ता गया और उसके सिर को चढ़ गया। सतभराई की आवाज सुनकर आसपास की स्त्रियाँ उसके तम्बू में इकट्ठी हो गयीं।

'पकड़ है!' एक बूढ़ी पोठोहारिन ने कहा।

'आन की आन में पकड़ कैसे हो गयी, कोई 'छाया', होगी!' एक और ने कहा।

'मैं कहती हूँ कि उस दुष्टा के साथ आज बाहर गयी थी, कहीं उसी ने कुछ कर न दिया हो!' एक और पड़ोसन ने परमेसरी की ओर संकेत करते हुए कहा।

फिर जितने मुँह उतनी बातें। प्रत्येक अपना-अपना अनुमान लगाती। आखिर सतभराई की दशा और अधिक बिगड़ गयी।

लाजो बार-बार हाथ मलती, सोचती कहीं यदि अपना गाँव होता तो पुरियों के पीपल के गिर्द तीन चक्कर काट कर लड़की के मुँह पर पानी के छींटे मारते, भली-चंगी हो जाती।

वन्ती कहती कि उनके गाँव की बड़ी मस्जिद के मौलवी की झाड़फूँक बड़ी-से-बड़ी बीमारी काटकर रख देती थी!

'और हमारे गाँव की समाधि और घण्टियों वाला बाबा!' सद्दो हाथ मलती और बार-बार याद दिलाती। जो कोई भी आशा अपने मन में लेकर मैं जाती, पूर्ण होती, और मैं कभी खाली हाथ नहीं लौटी थी! बस, समाधि पर माथा रगड़ा, पैसा-धेला एक साफ-सुथरे चीथड़े में बाँध कर समाधि पर झुके हुए बबूल के साथ लटकाया और सभी आशाएँ पूरी हुईं।'

हरदई के गाँव में एक 'ठंडा कुआँ' था, जिस पर हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी जाते। चाँदनी रात के रविवार को प्रातःकाल कुएँ के गिर्द सात परिक्रमाएँ कर, पानी पीते और, बस सब दुःख जाते रहते। हरदई सदैव आश्चर्य किया करती कि उस कुएँ से सिक्ख भी पानी निकालते थे और मुसलमान भी, न कभी सिक्ख अपवित्र हुए थे न कभी हिन्दू!

जींतो कहती कि उसके बच्चे के मुँह पर जब कभी दाद निकल आती, 'फफरों' के गाँव का मौलवी कलमा पढ़कर मुँह पर फूँकता और दाद जाती रहती। मौलवी साहब की तावीज चौथे के बुखार के लिए सब परख चुके थे। दूर-दूर से लोग उससे 'जादू' उतरवाने के लिए आते थे।

'ठल्लियों' के गाँववालों ने तो किसी हकीम या वैद्य का नाम भी नहीं सुना था। पेट-दर्द

से ले कर तपेदिक तक का इलाज स्कूल का मौलवी किया करता था। किसी को मिट्टी फूँक कर दे देता, किसी को कुछ पढ़ कर नमक दे देता, किसी को 'हरमल' की बूटी दे देता, मन की बात जान लेता, पिछले जीवन का हाल बता देता, भविष्य की टोह लगा लेता। लोग सैयद साहब का नाम लेकर जीते, क्या हिन्दू, क्या सिक्ख, क्या मुसलमान।

'यह क्या बातें लेकर बैठ गयी हो?' आखिर सत्तो बोली, 'वह मौलवी, वह सैयद, वह कुआँ, वह बबूल, सब कुछ अब पराया हो चुका है। अब तो सत्त-बीसी नम्बर के तम्बू के पास पानी का जो नल है, कहते हैं, उसमें बड़ा चमत्कार है।' और फिर सत्तो ने बताया कि उसने एक दिन मुँह-अँधेरे सुना, कि नलके में से आरती की आवाज़ आ रही थी, और फिर एक और दिन सवेरे अपनी आँखों से उसने वहाँ देवी को नहाते हुए देखा था।

स्त्रियाँ इस प्रकार बातों में मग्न रोगिन को बिल्कुल भूल चुकीं थीं। सतभराई का ज्वर बढ़ कर एक जगह आ कर रुक गया था, उसकी टकटकी बँध गयी थी, उसके माथे पर पसीना था, उसके हाथ-पाँव ऐंठ गये, जैसे मुड़ रहे हों।

स्त्रियां अपने-आप बातें कर रही थीं कि घबराया हुआ कुलदीप डाक्टर को ले कर उधर आया, उसके कान में सतभराई की बीमारी की भनक पड़ गयी थी।

डाक्टर, नर्स और कुलदीप रात गये तक सतभराई की सेवा में लगे रहे। आखिर उसका ज्वर मन्द पड़ गया।

परमेसरी इसे अवश्य शहर की गन्दी गलियों में ले गयी होगी, बार-बार कुलदीप के मन में यह विचार आता। परमेसरी चुड़ैल ने अवश्य इस पर कोई जादू कर दिया होगा, बार-बार उसका दिल कहता। कुलदीप ने सुन रखा था कि शहरी, पान में कुछ डालकर दे देते हैं और खाने वाला बस मेमने की भाँति पीछे-पीछे घूमने लगता है। सतभराई ने अवश्य पान खाया होगा। उसे याद आया कि परमेसरी उस रात खूब पान चबा रही थी।

फिर कुलदीप का मन चाहता कि यदि नर्स बाहर जाय तो वह सतभराई से पूछ ले कि उसने पान तो नहीं खाया था। किन्तु उसके होंठ पीले पड़ रहे थे, और कुलदीप डर रहा था कि यदि उसके पूछने पर सतभराई ने 'हाँ' कर दी, तो फिर मैं क्या करूँगा। उसने सुन रखा था, पान में डालकर दिया हुआ जादू अंग-अंग में रच जाता है। यदि उसने सचमुच पान खा लिया है, तो फिर वह प्रतिदिन पान खाया करेगी। प्रतिदिन ही निकल जाया करेगी और रात गये घर लौटा करेगी। फिर एक दिन लक्ष्मी की तरह शहर की किसी गली में खो जायेगी।

कुलदीप के हाथ पसीने से भीग रहे थे।

17

अप्रैल का पहला पक्ष बीत चुका था। कइयों को कैम्प में आये एक महीना होने को था। कइयों

का यहाँ आए हुए महीना बीत चुका था। बहार की महक से भरी हवा अब नीरस-सी महसूस होने लगी थी। दोपहर को लोग घनी छाया की खोज में रहते थे।

तम्बू दिन के समय तपने लग गये। पोठोहारिनों के सिर पर से अब दुपट्टे ढुलक-ढुलक जाते, मैनाएँ, फाख्ताएँ और चिड़ियाँ जो पहले कैम्प के गिर्द कँटीली तार पर बैठी रहती थीं, अब शहतूत के पेड़ों और शीशम के वृक्षों की घनी शाखाओं में घुसी रहतीं। बेरियों के बेर पीले पड़ने लगे और छोटे-छोटे बच्चे उनसे चिमटे रहते।

सामने की जरनैली सड़क पर आजकल आवागमन बढ़ रहा था। साँझ-सवेरे ताँगों और साइकिलों की आवाज़ें आती रहतीं। अब तो दूर कहीं गाये जा रहे माहिया के बोल शरणार्थियों के कानों में पड़ने लगे :

दो पत्तर अनारां दे
सड़ गई जिन्दड़ी
लग गये ढेर अंगारां दे

छोटे-छोटे बच्चों ने नंगा रहना शुरू कर दिया। नलके की ओर से थापियों की आवाज़ अब देर तक आती रहती। स्त्रियाँ मुँह-अँधेरे ही नहा लेतीं; पुरुष जब कभी नलका खाली होता, कपड़े किसी को पकड़ा कर उसके नीचे बैठ जाते। अमरीका एक दिन एक नलका सँभाल कर बैठ गया, बार-बार साबुन मलता और बार-बार नहाता, उसने रगड़-रगड़ कर अपने सारे शरीर की मैल उतारी; नहाये जाता और साथ-साथ गाये जाता।

अप्रैल का एक ऐसा ही दिन था कि 'गर्जे', 'ठल्लियाँ', 'चौंतरे', 'ढल्ले', 'अड्डियाले' के गाँवों के मुसलमान चौधरी मिलकर कैम्प में आये। अपने गाँव के बचे-खुचे साथियों को गले लगाकर खूब रोये। मुसलमान पड़ोसियों से लाज के मारे आँख न उठायी जाती। वे अपने साथ घी के मटके भरकर लाये, सत्तू लाये, शहद लाये, बेर लाये, घर के बुने हुए खेस लाये, तिल्ले से जड़ी पोठोहारी जूतियाँ लाये। दिन-भर अपने गाँव वालों को मनाते रहे कि वे वापस अपने-अपने गाँव चलें।

सलामत शाह ने सत्तू घोले और घर की तैयार की हुई दूध जैसी श्वेत शक्कर उसमें डालकर 'कृष्ण-सुदामा' की कहानी बार-बार याद दिलाता रहा। उसका मित्र बूढ़ा महंगामल सारा समय उसके गले में बाँहें डाले हुए बैठा रहा।

सात पर्दों में लिपटा हुआ 'जपजी साहब' का एक गुटका चौधरी इकबाल खाँ लाया और उसने सावनसिंह के हवाले कर दिया। वह बार-बार कसमें खाता कि जब से वह गुटका उसे मिला था, उसने कभी उसे नापाक हाथ नहीं लगाये थे।

मुसलमान मित्र कहते कि वे हिन्दू और सिक्खों के लिए दोबारा मकान बनवा देंगे; उनकी सारी सम्पत्ति उन्हें लौटा देंगे। उनकी फसलें वैसी-की-वैसी खड़ी थीं, बल्कि वे अपनी फसलों में से भी उन्हें हिस्सा देने को तैयार थे।

फतेह मुहम्मद बार-बार कहता – 'नाखून से माँस कभी अलग नहीं हुआ। भाई-भाइयों से लाख बार उलझ जाते हैं, बर्तन-बर्तन से टकरा जाता है।'

सलामत शाह कहता, 'हमारी आँखों पर पट्टी बंध गयी थी । हम मक्कार लोगों के कहे में आ गये । हम बहुत शर्मिन्दा हैं ।'

मुसलमान कहते, अब उनके लिए दुकानें कौन चलाये ? पैसे-पैसे के लिए उन्हें हाथ फैलाने पड़ते थे । अब जरूरत के समय वे कर्ज किस से लें ? अगली फसल के लिए वे बीज कहाँ से माँगेंगे ? कई गाँवों में चिट्ठी लिखने वाला अब कोई नहीं रहा था । कई गाँवों में अब समाचारपत्र पढ़कर सुनाने वाला कोई नहीं रहा था । कितने ही स्कूल बन्द हो चुके थे । डाकखाने वालों को अब डाक का कोई मुंशी नहीं मिलता था ।

'चौतारे' गाँव की मुसलमान पार्टियों में आजकल खींचातानी जोर पकड़ गयी थी । अब कोई ऐसा नहीं रहा था, जो बीच में पड़ कर सुलह करवा दे । पिछले हफ्ते वे पिस्तौलों और बन्दूकों से लड़ पड़े और दोनों पक्षों को पुलिस पकड़ कर ले गयी थी । यह लड़ाई कितने वर्षों से चली आ रही थी, किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ था । सदैव हिन्दू-सिक्ख पड़ोसी बीच में पड़कर सुलह करवा दिया करते थे ।

सलामत शाह के गाँव की पंचायत जो कुआँ खुदवा रही थी, उसका काम वहीं-का-वहीं रुका पड़ा था । आढ़त की कमेटी टूट-फूट गयी थी । जो माल बाहर से आता था अब गाँव में उस माल को बिकवाने वाला कोई नहीं रहा था । चौपाल में लोग कूड़ा फेंक देते, मरे हुए ढोर-डंगर पटक जाते । गलियाँ मलबे और गन्दगी से अटी पड़ी थीं । किसी ने पहले कभी इतनी मक्खियाँ नहीं देखीं थीं । जिन गाँवों में मच्छर का नाम नहीं सुना जाता था, अब मलेरिया के शिकार हो गये थे ।

मजदूर कहते कि उनका रोजगार नहीं रहा । उनसे अब काम लेने वाला कोई नहीं था । मिस्त्री बेकार थे । लूट का माल जिस प्रकार आया था उसी प्रकार जा रहा था ।

फज्जा जेलदार कसमें खाता, 'मैं गाँव-गाँव जाकर लूट का माल निकाल लूँगा !' उनके दालान वीरान हो गये थे, उनकी गलियों में गहमा-गहमी नहीं रही थी, उनके गाँव उजड़ गये थे ।

फौजदार ने अपने पड़ोसी खत्रियों की कुतिया के बारे में बताया कि कैसे वह दिन भर हवेली के खण्डहरों का कोना-कोना पागलों की तरह सूँघती रहती । जब फ़सादी उस हवेली को आग लगाने के लिए आये तो कुतिया को पत्थरों से डरा कर दूर भगा दिया गया । आग लगा कर जब फसादी चले गये तो कुतिया हाँफती हुई फिर अपने दालान में आ पहुँची । चीखती रही, चिल्लाती रही । बार-बार लपटों में से गुजरकर उन कमरों में जाती, जहाँ उसके मालिक रहा करते थे, और उन्हें ढूँढ़ती । आग लगी, आग भड़की, आग बुझ गयी, लेकिन वह कुतिया उस दालान में से न हिली । शाम के समय जब उसका मालिक उसे सैर के लिए ले जाया करता था, प्रतिदिन जोर-जोर से रोने लगती । पड़ोसियों ने उसकी आँखों में लाख-लाख आँसू देखे । न वह कुछ खाती न वह कुछ पीती । एक खोज, एक तड़प उसे चैन न लेने देती । जब कोई पड़ोसी उसे आवाज़ देता, खाने के लिए कुछ देता, वह आकाश की ओर मुँह उठा कर रोना आरम्भ कर देती ।

'पिस्ती' एक शिकारी कुतिया थी,उसकी माँ और उसकी माँ की माँ,सभी उसके मालिक के यहाँ ही रही थीं। बड़े-बड़े शिकारी पिस्ती की समझ और शिकार की पहचान पर चकित होते। शिकार चाहे एक फर्लाङ्ग दूर हो,उसके कान खड़े हो जाते,वह विकल-सी हो जाती। हिरण और खरगोश को बड़ी चतुरता से घेर लेती। दौड़ती और गोली की तरह,देखते-देखते कहीं-की-कहीं पहुँच जाती। उसने अपने घेरे में आया हुआ शिकार कभी बचकर नहीं निकलने दिया था। अंग्रेज शिकारियों ने उस कुतिया का हजार-हजार रुपया उसके मालिक को पेश किया,किन्तु वह सदैव अस्वीकार कर दिया करता।

भूखी-प्यासी कुतिया प्रतिदिन अपने मालिक की खोज में रहती। पत्थरों को उलट-उलट कर देखती,मलबे को कुरेदती,आखिर एक दिन सवेरे पड़ोसियों ने देखा कि वह हड्डियों का ढाँचा बनी देहली पर सिर रखे बेजान पड़ी है।

'हराम का माल',फतेह मुहम्मद बार-बार कहता,'कभी किसी को नहीं पचा करता!' और एक-एक बदमाश को जिसने लूटखसोट की थी वह लाख-लाख गालियाँ देता! और उनके सम्बन्ध में कुदरत के न्याय की विचित्र कहानियाँ सुनाता।

चौधरी,जिसके घर में मारधाड़ के ढंग सोचे जाते रहे,आजकल फ़ालिज के कारण चारपाई पर पड़ा था। उसकी लड़की घर के नौकर के साथ मुँह-काला करके भाग गयी। उसकी बहू भी आजकल में भागने वाली है। हर रोज उनके घर में तू-तू मैं-मैं होती रहती। जिस दिन से लूट का माल अन्दर आया था,उसके परिवार में न चैन से किसी को खाने को मिलता था न पहनने को।

जिस काज़ी ने आदेश दिया था कि हिन्दुओं और सिक्खों को मारना और लूटना,उनकी बहू-बेटियों को अपमानित करना,सवाब है,आजकल पागल हो गया था। गलियों में आवारा फिरता और ऊँची-ऊँची आवाज़ में गन्दी गालियाँ बकता रहता। उसने कान खींच-खींचकर लम्बे कर लिये थे। जहाँ कहीं पत्थर देखता नाक से लकीरें खींचने लगता। दिन भर कुएँ से पानी निकालकर,गुरुद्वारे के चबूतरे को धोता रहता,मल-मल कर दोबारा उसे साफ करने लगता; कहता कि यह लहू से लिथड़ा हुआ है।

पोठोहार के कुएँ वीरान पड़े थे,अब वहाँ पुरानी चहल-पहल नहीं थी। न अब वहाँ रंग-रंग के दुपट्टे आते थे। नौजवान लड़कियों पर एक मुर्दनी-सी छायी हुई थी। अब उन्हें दर-दीवारों से डर लगता था।

अधजले बच्चे, अधजले नौजवान, अपमानित लड़कियाँ, आग में जलाये गये बूढ़े पोठोहार की धरती पर टोलियाँ बनाकर फिर रहे थे। वे शाम को खंडहरों में से निकल आते, और भूत-प्रेत बने दिखायी देने लगे थे। सोये हुए बच्चे बुड़बुड़ा कर उठते और रोने लगते, स्त्रियाँ चीखने लग जातीं,पुरुष कुहराम मचा देते।

चोरियाँ बढ़ रही थीं। आँख की लाज कहीं नहीं रह गयी थी। हर किसी ने हर किसी को नंगा देख लिया था। छुरियों ने कुछ ऐसे हाथ खोल दिये थे कि कोई किसी जगह अपने-आपको सुरक्षित नहीं पाता था। मुसलमान चौधरियों ने बड़ी मिन्नतें कीं लेकिन जब तक सरकार की

आज्ञा न होती, लोग कैसे वापस जा सकते थे ? एक-दूसरे के गले लग-लग कर, आँसू गिरा-गिरा कर, ठंडी साँस भर-भर के, पुराने प्यार की बातें याद करते आखिर वे लौट गये, एक-दूसरे को दुआएँ देते, एक-दूसरे के लिए दुआएँ माँगते ।

18

मुस्लिम लीग का एक नेता रावलपिण्डी शहर में आया हुआ था। कोई बड़ा नेता था। कायदे-आज़म मुहम्मद अली जिन्ना ने उसे स्वयं भेजा था। बहुत-सी जगहों पर उसने कायदे-आज़म के सन्देश पढ़कर सुनाये। एक विशेष सन्देश, जो उसने पोठोहार के नाम भिजवाया था, उसे भी हर जगह दुहराया गया।

मुस्लिम लीग का यह नेता शरणार्थी कैम्प देखने के लिए भी आया। भाषण देते हुए उसने कहा, 'हमारी माँग है, पाकिस्तान। हम पाकिस्तान ले कर रहेंगे। पाकिस्तान हमारा पैदायशी हक है। हिन्दुस्तान के मुसलमानों का यह अटल फैसला है, लेकिन इसका यह मतलब हरगिज़ नहीं कि पाकिस्तान में कोई हिन्दू या सिक्ख रह नहीं सकता। इसका यह मतलब नहीं कि हिन्दुस्तान के सभी मुसलमान अपने घर छोड़कर पाकिस्तान में आ बसें। पाकिस्तान एक आजाद रियासत होगी जैसी कि हिन्दुस्तान है। अंग्रेज दोनों मुल्कों से चला जायेगा। हम जैसे भी चाहेंगे अपने-आप पर आप हुकूमत करेंगे।

'पाकिस्तान एक इस्लामी मुल्क होगा, लेकिन इस्लाम हमें यह नहीं सिखाता कि हम दूसरे मज़हब के लोगों पर हमला करें, दूसरे मज़हब की औरतों की बेइज्जती करें, दूसरे मज़हब के बच्चों पर जुल्म करें।'

'हमारे मुल्क में अकबर जैसे शहनशाहों ने हुकूमत की है, जिनकी नज़र में हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं था। हमारे मुल्क में महाराजा रणजीतसिंह ने राज किया है जिसका वज़ीर एक मुसलमान था। शेरे-पंजाब की फौज के सिपाही मुसलमान थे और बागी मुसलमानों की बगावत दबाने के लिए मुसलमान अफसरों की कमान में ही फौजें भेजी जाती थीं। जहाँ महाराजा रणजीतसिंह ने गुरुद्वारों के नाम जायदाद लगवायी, वहाँ मस्जिदों के लिए भी लाखों रुपये दिये।

'हमारे सामने अनगिनत ऐसी मिसालें हैं – इन्साफ, रवादारी और प्यार की मिसालें! हमें डरना और घबराना नहीं चाहिए। अपने घर को कोई नहीं छोड़ सकता। भाई अपने भाइयों से नहीं बिछुड़ सकते, चोली से दामन कभी अलग नहीं होता।

'जो कुछ भी हुआ, उसके लिए सब शर्मिन्दा है। जो कुछ भी हुआ उस से हमें सबक सीखना चाहिए। मैं मुस्लिम लीग, जो हिन्दुस्तान के मुसलमानों की सबसे बड़ी जमात है, के एक रुकन की हैसियत से सब हिन्दू-सिक्ख भाइयों को यकीन दिलाता हूँ कि हमारा ऐसा कोई

इरादा नहीं है कि हम हिन्दू-सिक्खों से कोई ज्यादती करें। हमारी जंग पहले अंग्रेज से थी और अब जब कि अंग्रेज ने चले जाने का फैसला किया है, हम पाकिस्तान के लिए जद्दोजहद कर रहे हैं। हमें खासी कामयाबी हो रही है। इस्लाम का मुस्तकबिल शानदार दिखाई दे रहा है। एक सुखी मुल्क और एक खाती-पीती कौम कभी वहशियों जैसी कोई हरकत नहीं करती। हमारा मजहब किसी से दुश्मनी रखना नहीं सिखाता। हमारी कौम का लीडर कायदे-आजम हमें अमन का पैगाम देता है। जिस मुल्क में अमनो-अमान नहीं, वह मुल्क कभी जिंदा नहीं रह सकता। हमें पाकिस्तान बनाना है। पाकिस्तान की नींव उसी वक्त मजबूत होंगी जब यहाँ के लोग खुशहाल हों, जब यहाँ के लोग सुख-चैन से जिन्दगी बसर कर सकें।

'मुझे अपने हिन्दू-सिक्ख भाइयों से एक सवाल पूछना है – अगर हम सब मिलकर अंग्रेज के राज में जी सकते थे, व्यापार कर सकते थे तो आज मुसलमान ही आपको क्यों बुरे लगते हैं। पाकिस्तान में हिन्दू-सिक्ख उसी तरह रहेंगे जिस तरह करोड़ों मुसलमान हिन्दुस्तान में रहेंगे, जियेंगे और मरेंगे।

'आखिर में मेरी आपसे यही अपील है कि हिन्दू-सिक्ख भाई वापस अपने घरों को चले जायं। हमें जो लोग लड़ाना चाहते हैं उनकी बातों में हमें नहीं आना चाहिए। हमें खुद अपना नफा-नुकसान देखना चाहिए। जो कुछ हो चुका, सो हो चुका। अब हमें पुरानी बातों को भूलकर हँसी-खुशी पड़ोसियों की तरह रहना चाहिए।'

और फिर तालियाँ बजायी गयीं, फिर 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये गये, फिर 'क़ायदे आज़म ज़िन्दाबाद' के नारे गूंजे।

इधर मुस्लिम-लीग का नेता हिन्दू और सिक्खों को न्याय का वचन दे रहा था, उधर डोगरा पलटन को सूचना मिली कि बड़ी मस्जिद में डेढ़ सौ हिन्दू-सिक्ख पुरुष, स्त्रियों और बालकों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जा रहा है। उन्हें बन्द लारियो में इकट्ठा करके गाँव से लाया गया था।

डोगरा पलटन के जवान जिनकी ड्यूटी शहर की देखभाल की नियत हुई थी, दौड़ कर बड़ी मस्जिद में पहुंचे। वे अभी दूर ही थे कि उन्होंने गोलियां बरसानी आरम्भ कर दीं। पुलिस की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पलक झपकते मिलिट्री के जवानों ने बड़ी मस्जिद को घेरे में ले लिया। गोलियाँ चलाते कुछ लोग मस्जिद के भीतर जा घुसे और हिन्दू-सिक्ख पुरुष, स्त्रियों और बच्चों को बाहर निकाल लाये।

सारे शहर में कुहराम मच गया। फिर बाजार बन्द होने लगे। फिर छुरेबाजी आरम्भ हो गयी। मुस्लिम लीग का नेता जाने कब हवाई जहाज़ में बैठकर दिल्ली जा चुका था।

जो लोग बड़ी मस्जिद में से निकाले गये, उन्हें भी शरणार्थी कैम्प में लाया गया। सिक्खों की दाढ़ियाँ मुँड़ी हुई तीं, बाल कटे हुए थे। सिक्ख स्त्रियों की नजर ऊपर नहीं उठ रही थी।

फिर लोगों ने रो-रोकर एक-दूसरे को पहचानना आरम्भ कर दिया, फिर प्रत्येक अपनी आप बीती सुनाने लगा।

नये आये हुए पीड़ितों ने बताया कि कैसे गोमांस प्रतिदिन उनके सामने पकाया जाता था

और कैसे प्रतिदिन उन्हें खाने के लिए विवश किया जाता था। कैसे बड़ी-बड़ी हड्डियों को उनके मुँह में ठूँसा जाता था। कैसे उन्हें नमाज पढ़नी सिखलायी गयी। कैसे बच्चों की, जवानो की और बूढ़ों की 'सुन्नत' की गयी।

उन सबके नये नाम रक्खे गये – इस्लामी नाम। और कभी वे आपस में भी यदि एक-दूसरे को पुराने नाम से पुकार बैठते तो फसादी छुरे निकाल-निकाल कर उन्हें दिखाते, भाले लहराते।

अधेड़ आयु की बूढ़ी स्त्रियों ने बताया कि कैसे नौजवान लड़कियों ने फसादियों से विवाह कर लिया था। कैसे एक-एक घर में तीन-तीन लड़कियाँ बिठा दी गयीं। किस प्रकार चोरी-छिपे वे आँसू बहातीं और कैसे बिछुड़े हुए सम्बन्धियों को याद करतीं। उन्होंने कैसे नये-नये गीत सीख लिये थे –

बाबला, बर इद्द की।देता ई।[1]

जो कोई भी उनकी कहानी सुनता बिलबिला उठता।

कैसे किसी 'सत्तो' ने भागने का प्रयत्न किया तो उसे गोली से उड़ा दिया गया। कैसे 'वीरां' को छत से उलटा लटका कर काबू किया गया। कैसे 'बसन्ती' गुण्डों के हत्थे चढ़ गयी और एक दिन खेत में अधमुई पड़ी पायी गयी।

कैसे नये-नये बनाये हुए मुसलमान बच्चों से प्रतिदिन गलियों में 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहलवाया जाता। कैसे इस्लाम की प्रशंसा में स्त्रियों से गीत गाने के लिए कहा जाता कि वे अपने घरों में प्रसन्न हैं और इस्लाम स्वीकार करके जन्नत के द्वार उनके लिए खुल चुके थे।

नये आने वाले शरणार्थियों ने बताया कि गुरुद्वारों और मन्दिरों को या तो बूचड़खाना बना दिया गया था या उसमें तम्बाकू की दुकानें खुल गयी थीं। कई एक में जान-बूझ कर नीच जाति के लोगों को बसा दिया गया था।

महात्मा गांधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और मास्टर तारासिंह के कई बार नकली जनाजे निकाले गये और नये बनाये हुए मुसलमानों को आदेश दिया गया कि प्रातःकाल उठकर कायदे-आजम के चित्र को झुककर सलाम किया करें।

'टाहली मूहरी' वाली गोबिन्दी को 'ठल्लियाँ' वाला शेरा निकाल कर ले गया। गोबिन्दी के यौवन को जो कोई देखता, उसके हाथ में यदि छुरा होता तो छुरा गिर पड़ता, भाला होता तो भाला फिसल जाता। लोग लूट का माल छोड़-छोड़ कर, गोबिन्दी के पीछे भागते।

शेरे के कई साझीदार बन गये। कितनी देर तो शेरा टालता रहा; किन्तु जब दूसरे उसके सिर हो गये तो आपस में लात-जुतौवल होने लगा। गोबिन्दी सामने खड़ी देखती रही; फसादी झगड़ते हुए एक-दूसरे को मारने-काटने लगे, और देखते-ही-देखते सारे-के-सारे वहीं ढेर हो गये।

लूट के माल के हिस्से-बाँट पर अभी तक झगड़े हो रहे थे। छीना-झपटी होती। कई बार पोठोहार की गलिया में स्त्रियों ने एक-दूसरे के लूट के पहने हुए कपड़े चीथड़े-चीथड़े कर दिये

1. 'बाबुल, यह कौन-सा वर तुमने मुझे दिया है !'

थे।

प्रत्येक को पता था कि अमुक घर में क्या-क्या कुछ है, और यदि कोई एक कतरन भी फालतू निकल आती तो मोहल्ले की स्त्रियाँ एक-दूसरे पर टूट पड़तीं।

मीरासिनें रेशम पहनतीं, मुसल्लिनें रेशमी दुपट्टे ओढ़े गन्दगी साफ करतीं। कीमती-से-कीमती कालीन काट कर जाटों ने पशुओं के झोल बनाये। मेजों और कुर्सियों से ईंधन का काम लिया जाता। हिन्दुओं और सिक्खों के ढोर-डंगरों को काट-काट कर खत्म कर दिया गया।

जब नये आये हुए शरणार्थी इस प्रकार की कहानियाँ सुना रहे थे तो उनके कैम्प के ऊपर से एक हवाई जहाज गुजर रहा था जिसमें हिन्दुस्तान की फौज का मन्त्री एक सिक्ख सरदार बैठा हुआ था, जिसमें सारे हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा मन्त्री, एक अत्यन्त कोमल हृदय रखने वाला देवता इन्सान बैठा हुआ था, जिसमें सारे हिन्दुस्तान के कोष का अध्यक्ष, एक पढ़ा-लिखा कुलीन नवाब बैठा था, जिसे कभी किसी ने ऊँची आवाज में बोलते नहीं सुना था।

और ये सब ऐसे महसूस कर रहे थे जैसे एक-दूसरे से शर्मिन्दा हों। चुपके-चुपके अपने समाचारपत्र पढ़ने का प्रयत्न करते किन्तु उसमें उनका मन न लगता।

19

सतभराई कितने दिनों से बीमार थी। पहले तो वह ज्वर का सामना करती रही, किन्तु अब उसे लगता जैसे वह बहुत दुर्बल हो गयी हो।

कुलदीप दोनों समय उसे देखने के लिए आता, अस्पताल से दवा भी ले आता और उसका जो कोई छोटा-मोटा काम होता वह भी कर जाता। आजकल कैम्प के बीमारों की सेवा उसके जिम्मे थी।

छाया ढलकर जब उस तम्बू के खूँटे के पास पहुँचती तो कुलदीप आया करता था। इधर छाया वहाँ पहुँचती, उधर फाटक का सन्तरी पाँच बजे का घड़ियाल बजाता, उधर कुलदीप आ पहुँचता। कभी उसके हाथ में दवा होती, कभी उसके हाथ खाली होते।

आज छाया थी कि जैसे सो गयी हो। चलने ही में न आती। और सतभराई सोचती कि वह क्यों व्याकुल हो रही थी। क्यों बार-बार उसका मन चाहता कि वह देखे कि छाया खूँटे से कितनी दूर थी। अभी तो बाहर दोपहर थी। पहले छाया खाई को पार करेगी, फिर टूटे हुए गमले को फाँदेगी, फिर कहीं जाकर खूँटा आयेगा।

और उस ओर पीठ करके सतभराई लेट गयी। चुपचाप लेटे हुए सहसा उसकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे, वह रोती रही, रोती रही। फिर उसे लगा जैसे किसी की पदचाप उसे सुनाई दे रही हो – आँखें पोंछते हुए उसने पीछे मुड़कर देखा, कोई भी तो नहीं था। छाया

वैसी-की-वैसी थी जैसे पथरा गयी हो, उस से अभी तक खाई नहीं फाँदी गयी थी।

पहले खाई फाँदी जायेगी, फिर टूटा हुआ गमला, और फिर उस खूँटे तक छाया पहुँचेगी. . . और फाटक पर घड़ियाल बजेगा, फिर तेज़-तेज़ डग भरता हुआ कोई आयेगा। तम्बू में आजकल कितनी उमस थी। काश, कोई ठंडी-सी वस्तु हो, 'सुहाँ' की गीली रेत जैसी! धमियाल के 'पुरियों' के कुएँ जैसी ध्रेंक की छाया जैसी! सतभराई सोचती रहती, सोचती रहती। उसका दिल चाहता कि ठंडे पानी की कोई बावली हो और वह उसमें कूद पड़े। सावन की नन्हीं-नन्हीं फुहार पड़ रही हो, और वह सिर-सिर तक ऊँची खेत की फसल में खो जाय। बेरों से लदी हुई किसी बेरी में वह छिप जाय और लोग उसे ढूँढ़ते रहें, ढूँढ़ते रहें।

उसका जी क्यों चाहता था कि छाया खूँटे तक पहुँच जाये? सतभराई को अपने-आप से डर लगता। सोहणे शाह जब लौटेगा तो वह उसे क्या मुँह दिखायेगी। राजकर्णी को यदि पता लग जाय तो वह उससे क्या कहेगी? अड़ोस-पड़ोस के तम्बू वाले क्या कहेंगे?

आज जब वह आयेगा, वह सोचती, तो वह उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखेगी। उसकी आँखों में न जाने क्या था। उसके होंठों से जैसे हर घड़ी शहद टपकता हो! उसका चेहरा, जैसे उसमें कोई जादू हो।

और सतभराई हाथ फैला-फैला कर दुआ मांगती – आज कोई पड़ोसन मुझसे मिलने के लिए आ जाये; कुलदीप जब अकेला आयेगा! वह सोचती; और उसका रोम-रोम काँपने लगता, उसे अपने-आप से डर लगने लगता।

दूर, सामने के तम्बू में से निकल कर परमेसरी लपकती हुई आ रही थी।

परमेसरी को देखकर जैसे सतभराई की ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गयी हो। जैसे बिजली गिरी हो। उसकी आँखों तले अँधेरा छा गया।

या रब, यह न आये! या रब, यह न आये! उसका अँग-अँग फरियाद कर रहा था, परमेसरी यदि आ गयी तो वह उठने का नाम नहीं लेगी।

और कुलदीप आयेगा, अब तो छाया टूटे हुए गमले को फाँद रही थी। और कुलदीप आयेगा, परमेसरी यहाँ धरना देकर बैठी होगी, उससे चपर-चपर बातें करती रहेगी। और फिर उसके जाने का समय हो जायेगा। उसे और भी तो बहुत से काम करने होते थे।

तेज-तेज डग भरती परमेसरी सामने आ रही थी।

या रब, इस चुड़ैल को उधर ही रखियो! या रब, इस दुष्टा से आज मुझे बचाइयो! सतभराई अपने-आप को कोसने लगी, उसने यह क्यों सोचा था कि कोई आ जाय। वह तो चाहती थी कि कोई न हो, सारी दुनिया में कोई न हो, केवल वह हो और कुलदीप हो। एक बीहड़ हो, एक दरिया का सूना किनारा हो, एक अँधेरी रात हो, जहाँ कोई आवाज न आये, जहाँ तारे तक न झाँक सकें।

परमेसरी सामने की सड़क से मुड़कर किसी दूसरे तम्बू में घुस गयी। सतभराई की जान में जान आयी।

किन्तु क्षण-भर बाद उसे अपने-आप से फिर डर लगने लगा। छाया ज्यों-ज्यों खूँटे के

पास पहुँचती, उसके हृदय में एक चुभन-सी, एक टीस-सी उठती, उसके शरीर का सारा लहू जैसे निचोड़ लिया गया हो !

अभी छाया खूँटे तक पहुँच जायेगी, अभी बड़े फाटक का सन्तरी पाँच बजायेगा। और फिर तेज-तेज डग भरता हुआ वह तम्बू में दाखिल होगा। कुलदीप के नयन न जाने क्या-क्या कुछ कहते थे। वह जब पास होता तो सतभराई के अंग-अंग को न जाने क्या हो जाता। उसे यों लगता जैसे वह कोई सपना देख रही हो। उसके तम्बू में एक महक सी फैल जाती।

कुलदीप आज उसके सिरहाने आ कर बैठ जायेगा। कल स्वयं ही तो उसने उसे वहाँ बैठने के लिए कहा था। वह प्रतिदिन आ कर खड़ा रहता और खड़े-खड़े चला जाता था। उसके तम्बू में न कोई कुर्सी थी न कोई और चीज। वह उसके सिरहाने न बैठता तो और कहाँ बैठता ? फिर उसने वहाँ बैठने के लिए उसे साफ-साफ थोड़े ही कहा था। उसने तो बस उसकी ओर देखा था अपने मन में यह कामना लेकर। उसने तो उसे केवल सिर से पाँव तक निहारा था और फिर तकिये के पास खाली पड़ी जगह की ओर देखा था। पहले वह तकिये के साथ लग कर खड़ा रहा, खड़े-खड़े फिर उसने वहाँ घुटना टेक दिया, और जब वह थर्मामीटर उसके मुँह से निकालने लगा तो वह बैठ गया। न इसमें सतभराई का दोष था और न कुलदीप की कोई ज्यादती। जैसे पेड़ से लगा कोई फल पक जाता है, इसी प्रकार प्रतिदिन खड़े रह-रह कर कुलदीप बैठ गया था।

फिर क्या हुआ यदि वह वहाँ बैठ गया था ? कुलदीप उसे बीबी-बीबी कहकर बुलाता था। कुलदीप, जिसका कैम्प में सभी सम्मान करते थे। कुलदीप, जिसकी हर जगह चर्चा होती और सब उसके सेवाभाव, उसकी सरलता की प्रशंसा करते। कुलदीप, जिसका कोई कहा नहीं टालता था – क्या शरणार्थी, क्या कैम्प के अधिकारी ! कुलदीप, जो रात-दिन अपने काम में लगा रहता था।

किन्तु उसे इस बात का क्यों डर था कि कोई कुलदीप को उसके पास बैठा हुआ न देख ले ? उसके मन में अवश्य कोई चोर था। क्या वह कोई बुरी बात कर रही थी ? उसके मन में कोई पाप तो नहीं था ? आखिर यह सब-कुछ क्यों ? बार-बार उसकी नजर सामने खूँटे पर जा टिकती। उसका हृदय क्यों व्याकुल था ? उसका दिल क्यों चाहता था कि वह उस छाया को कोसती चली जाय – जैसे उसमें गति ही नहीं रही थी !

मैं किस रौ में बहती चली जा रही हूँ ? आखिर सतभराई ने अपने-आप से प्रश्न किय और उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

सतभराई को लगा, वह इस प्रकार इसलिए सोच रही थी, क्योंकि वह अकेली थी। वह कोई सहारा ढूँढ़ रही थी। वह किसी साथ की खोज में थी। उसे एकान्त में अपने-आप से भय लगता था। उसका दिल कह रहा था कि सोहणे शाह अवश्य आयेगा। वह उसे ऐसे छोड़ कर नहीं जा सकता था। कहीं रुक गया होगा। कहीं उलझ गया होगा। शायद राजकर्णी को ढूँढ़ रहा था।

और जब सोहणे शाह आ जायेगा तो वह अपने भेद को उस से कैसे छिपा सकेगी ?

और उसके होते जब कुलदीप आयेगा तो वह कहाँ बैठेगा ? सोहणे शाह ने यदि कुलदीप को उसके सिरहाने बैठा हुआ देख लिया तो ? कैम्प वाले क्या कहेंगे, यह लड़की कैसी है ? अड़ोस-पड़ोस में क्या-क्या बातें होंगी ? परमेसरी तो उसे संसार भर में बदनाम कर आयेगी।

छाया सामने खूँटे तक पहुँच गयी थी। बड़े फाटक का घड़ियाल एक, दो, तीन, चार, पाँच बजा रहा था।

अभी आ जायेगा, तेज़-तेज़ डग भरता हुआ। उसे किस प्रकार जल्दी होती थी ! काश, वह सतभराई से पूछे कि वह कौन है, कहाँ से आयी है, क्या-क्या कष्ट उसने झेले हैं ! काश ! कभी वह अपने सम्बन्ध में ही कुछ बताये, कौन से गाँव से वह उजड़ कर आया था !

पाँच बज चुके थे, किन्तु कुलदीप नहीं आया था। छाया खूंटे को भी पार कर चुकी थी।

हाय ! तुम जल्दी क्यों नहीं आते ? सतभराई व्याकुल हो रही थी।

शायद वह आज नहीं आयेगा, आज उसकी ड्यूटी और कहीं लग गयी होगी। अभी आ जायेगा, यूँ ही कभी देर हो जाया करती है। कहीं कल की बात पर वह नाराज़ न हो गया हो ? यदि वह आज नहीं आया ? यदि वह कहीं कैम्प ही छोड़कर चला गया तो ? कोई अन्य रोगी अधिक बीमार हो गया होगा। शायद किसी दूसरी लड़की के माथे पर वह पानी से भिगो-भिगो कर पट्टी रख रहा होगा ! उसकी नब्ज देख रहा होगा ! यदि उसकी ड्यूटी कपड़े बाँटने की हुई तो...? उस तम्बू के आगे सदा भीड़ लगी रहती थी। नहीं, उसकी ड्यूटी राशन बाँटने की होगी, दिन-रात जहाँ वस्तुएँ तुलती रहती थीं।

हाय ! मैंने क्यों सोचा था, या रब, वह आज न आये ! सतभराई फिर अपने-आपको कोसने लगी।

किसी समय की कही हुई बात तत्काल सुनी जाती है। यदि वह आज नहीं आया...यदि वह आज न आया... यदि वह आज न आया – सतभराई के कपोल लाल सुर्ख हो गये। उसकी आँखों से आँसू फूट निकले। कितनी देर तक वह मोती लुटाती रही।

छाया कहीं-से-कहीं जा चुकी थी, किन्तु वह अभी तक नहीं आया था।

सम्भवतः इसी बात में भला है कि वह आज न आये। आज यदि वह आ जाता...।

और सतभराई को यों अनुभव होता, जैसे पहाड़ की चोटी से फिसलती हुई वह खड्ड में जा पड़ी हो, एक खाई में जहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार था। दलदल और कीचड़ में जैसे वह लिपटी जा रही हो, जैसे उसका अंग-अंग मिट्टी में लथपथ हुआ जा रहा हो !

और कुलदीप उसे ढूँढ़ रहा था, ढूँढ़े जा रहा था। दूर, बहुत दूर पहाड़ियों की चोटियों पर। आसमान में जहाँ सतभराई की आवाज तक नहीं पहुँच सकती थी। और सतभराई थक चुकी थी उसे पुकार-पुकार कर।

छाया ढल रही थी, ढलती जा रही थी।

वह आयेगा, वह नहीं आयेगा, वह आयेगा, वह नहीं आयेगा। जिसकी प्रतीक्षा हो वह कभी नहीं आया करता।

सतभराई ने सड़क की ओर मुँह फेर लिया, और आन-की-आन में उसके सिरहाने का कोना भीग गया।

कैम्प का राशन डिपो अक्सर चार बजे बन्द हो जाता। पहले दस से एक तक, उसके बाद चार से छः बजे तक कुलदीप अस्पताल वालों की सहायता करता।

आज किसी बड़े नेता को कैम्प देखने आना था, इसलिए कुलदीप को न तो दोपहर को एक से दो बजे तक आराम करने को मिला, न राशन-डिपो ही बन्द किया गया। पता नहीं नेता किस समय आ जाय!

और अब पाँच बज चुके थे!

आज सवेरे पहले कुलदीप को दूध बाँटने के काम पर लगाया गया।

लेडी डाक्टर बच्चों और बीमारों के लिए दूध की पर्ची लिख देती और कुलदीप जितना दूध चिट्ठी में लिखा होता दिये जाता। बूढ़ों के लिए दूध का कोई प्रबन्ध नहीं था, कुलदीप की यह भी ड्यूटी थी कि जो बूढ़े लेडी डाक्टर को परेशान करें, वह उन्हें डाँट-डपट कर, समझा-बुझा कर लौटा दे!

एक बूढ़े का दिमाग खराब था।

'मेरी बच्ची, मेरी बेटी, ईश्वर तुझे सात बच्चे दे!' लेडी डाक्टर अभी कुँवारी थी।

एक और बूढ़ा था जिसने सारी आयु गाँव से बाहर पैर नहीं रखा था।

'रानी बिटिया! तेरा सुहाग बना रहे, तुम्हारा जोड़ा सुखी रहे।' कुलदीप और लेडी डाक्टर को पास-पास बैठा हुआ देखकर वह न जाने क्या-क्या अनुमान लगाया करता था। और लाज के मारे कुलदीप का चेहरा तमतमा उठता। लेडी डाक्टर मुस्कराती रहती।

कभी झुंझला कर कोई बूढ़ों से कहता – तुम मर क्यों नहीं जाते, तुम बच्चों और रोगियों के हिस्से का दूध आकर पीते हो, अब तुम्हारी किसी को क्या जरूरत है?

और बूढ़ों को यह सुनकर बड़ा क्रोध आता। गुलाब, जिसका इस गड़बड़ में दिमाग खराब हो गया था कुलदीप को लालच देता रहता।

'सुन, जिस दिन मेरी पत्नी मुझे मिल गयी...।' और वह प्रत्येक को वचन देता कि वह आधी सम्पत्ति उसे दे देगा। गुलाब अपने गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक था। उसके गाँव पर जब आक्रमण हुआ तो उसकी पत्नी ने अपना जेवर निकालकर पहन लिया, जितना रुपया अन्दर रखा हुआ था, उसे भी अपने नेफे में छिपा लिया। और वह स्कूल के मौलवी की अँगुली पकड़े उसके देखते-देखते फसादियों की भीड़ चीरती हुई कहीं निकल गयी। फिर गुलाब को याद आया कि तभी वह मौलवी को दही पिलाया करती थी। जब कभी गुलाब घर लौटता, तो मौलवी बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता। तभी वह गुलाब को मौलवी की-सी तुर्रे वाली पगड़ी बाँधने को कहा करती थी। तभी तो छोटा मौलवी उसे पढ़ाने के लिए उसके घर आया करता था, हर रोज उस समय जब गुलाब – प्राइमरी स्कूल का उस्ताद, डाक का काम करता था कि उसे आठ रुपये मासिक अधिक मिल जायें। तभी तो एक रात, दो रात के लिए यदि उसे बाहर रहना पड़ता तो उसकी पत्नी को कभी भय नहीं लगता था; न कभी किसी

मोहल्ले वाले के घर जाकर सोया करती और न वह किसी मोहल्ले वाले को अपने घर बुलाया करती थी। तभी तो वह 'चूरी' बनाया करती थी, तभी तो उसके घर में घी का खर्च दुगना हो गया था। तभी तो उबले हुए दूध की मलाई उसे कभी नहीं मिला करती थी। तभी पिछले दिनों छोटा मौलवी जब बीमार पड़ गया था तो उसने मन्दिर जाना आरम्भ कर दिया था। बात-बात पर झुँझला उठती; न उसे खाना अच्छा लगता न पीना। तभी तो पिछले छः महीनों से उसने कभी मायके जाने का नाम नहीं लिया था! तभी तो जब उसके भाई ने उसे मिलने के लिए आने को लिखा, तो वह टाल गयी थी। तभी तो वह हर समय 'माहिया' की तानें उड़ाती रहती थी। तभी तो वह अपने दुपट्टों में बल डालती थी! तभी तो वह कितनी-कितनी देर तक 'दंदासा' मलती रहती!

और इस प्रकार सोचते-सोचते गुलाब को चक्कर-सा आया और वह हँसने लगा!

और आज गुलाब, प्राइमरी स्कूल का अध्यापक, दो घूँट दूध के लिए मिन्नतें कर रहा था। गुलाब भी सच्चा था और सामने से इन्कार करने वाले भी सच्चे थे। दूध इतना थोड़ा होता था और रोगी कितने अधिक थे! बच्चे कितने अधिक थे!

किन्तु बूढ़ों का वहाँ बिलबिलाते खड़े रहना भी तो ठीक नहीं था। आज जबकि नेता को आना था। वे कैम्प के प्रबन्ध के विषय में भला क्या कहेगा!

और कुलदीप हाथ जोड़-जोड़ कर उन्हें अपने-अपने तम्बू में जाने के लिए कहता।

पिछली बार जब कोई मन्त्री आया, तो उसने एक रोगी से पूछा कि उसे खाने के लिए क्या मिलता था।

'खाने के लिए खाक मिलती है!' एक बुढ़िया सामने से भन्नाकर बोली। और कैम्प के सारे कर्मचारियों के हाथ-पाँव फूल गये। किन्तु कुलदीप बिल्कुल न घबराया, कुलदीप जो अपने हाथ से रोगियों की खुराक का प्रबन्ध किया करता था।

'क्यों अम्माँ, तुमको सवेरे दूध मिला था कि नहीं?'

'हाँ।' बुढ़िया ने उत्तर दिया।

'तुम्हें कल शाम को फल मिले थे कि नहीं?'

'हाँ।' बुढ़िया फिर बोली।

'तो और तुम्हें क्या दिया जाये?' मंत्री हँस कर उससे पूछने लगा। कुलदीप ने बताया कि पोठोहारिनों का खाने से मतलब है कि उन्हें जलेबियाँ दी जायें, लड्डू दिये जायें, पेड़े दिये जायें, अंदरस्से दिये जायें, बर्फी दी जाये, शकरपारे दिये जायें। और सब हँस-हँस कर दोहरे होने लगे।

जिन रोगियों को दूध नहीं मिल सकता था, लेडी डाक्टर उन्हें चावल लिखकर दिया करती थी। और कुलदीप चावल बाँटता रहता, विशेष रूप से उस दिन जिस दिन किसी अधिकारी या किसी नेता के आने की सूचना होती। इस बात पर विशेष ध्यान रखा जाता कि कोई शरणार्थी, कैम्प के कर्मचारियों से नाराज़ न दिखाई दें, किसी को कोई शिकायत न हो, सब लोग सुखी जीवन व्यतीत करते दिखाई दें। ऐसा जान पड़े कि लोग अपने घर से भी

अधिक प्रसन्न थे। चारों तरफ सफाई हो; और डाक्टर बार-बार जतलाते कि उनकी सबसे बड़ी सफलता यह थी कि उन्होंने गँवार लोगों को साफ रहना सिखला दिया था। अब जब उन्हें कूड़ा-करकट फेंकना होता तो चार कदम चल कर कूड़े वाले कनस्तर में फेंकते थे। कैम्प का कमाण्डर कहता कि उसने उन्हें साझी रसोई करना सिखा दिया था। अब प्रत्येक तम्बू का अलग चूल्हा नहीं था। इस प्रकार ईंधन की बचत भी हो जाती, परिश्रम की भी। अपनी-अपनी बारी पर लोग रोटियाँ पकाते और सब मिलकर खाते थे। दस्तकारी के कार्यालय का कर्मचारी बताता कि वह उनसे घरेलू दस्ताकारियों का छोटा-मोटा काम लेते रहते थे ताकि ये लोग बेकार न रहें। वे थोड़ा-बहुत अपने लिए कमा भी लेते थे। लेडी डाक्टर कहती कि वह गर्भवती स्त्रियों का ध्यान रखती है, बच्चों का ध्यान रखती है। इस कैम्प में पैदा होने वाला कोई भी बच्चा नहीं मरा था। प्रत्येक महीने कम-से-कम डेढ़ सौ बच्चे उसके हाथों पैदा होते थे। और देश के नेता और सरकार के अधिकारी सोचते कि इस कैम्प का प्रबन्ध कितना अच्छा है!

आज तो किसी बड़े नेता को आना था, सवेरे से सफाई हो रही थी। डी.डी.टी. और फिनायल का दिल खोल कर प्रयोग किया जा रहा था। सफाई के दरोगा का जी चाहता था कि वह भी कह सके – आप को इस कैम्प में एक भी मक्खी दिखाई नहीं देगी, रात को यहाँ एक भी मच्छर की आवाज किसी ने नहीं सुनी। मच्छर वाली बात दिन को तो शायद चल भी जाती, किन्तु ये मक्खियाँ थीं कि कहीं-न-कहीं से आ टपकतीं।

कार्यक्रम यह था कि पाठशाला के बच्चे बड़े फाटक पर सबसे पहले 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' गीत गाकर स्वागत करेंगे। बच्चे और अध्यापक एक ही रंग की पगड़ियाँ बाँधे हुए, एक ही रंग के बूट पहने हुए खड़े रहे, न दिन-भर पढ़ सके, न दिन-भर खेल सके।

फाटक के पास पेड़ों-तले प्रतीक्षा करते जब पाठशाला बन्द हो गयी तो वे अपने-अपने घरों को चले गये। नेता जी न आये। जिस से पूछा जाता वह यही कहता कि आयेंगे अवश्य, किन्तु यह पता नहीं कि कब आयेंगे?

योजना थी कि तम्बू में बैठी हुई स्त्रियाँ ढोलक-गीत गा रही हों – ऐसे मालूम हो जैसे उन्हें किसी के आने की सूचना ही नहीं थी। और दिन-भर 'राज' ढोलक पीटती रही। कोई भी तो न आया।

'भाड़ में जाये री, आता है तो आता रहे। यह अंधेर कभी नहीं किसी ने देखा, सवेरे से राह देख-देख आँखें भी थक गयी हैं।'

आखिर एक ने कहा – 'आओ बहनों, आओ चलें, रोटी की चिन्ता भी करनी है या नहीं?'

'आओ, आओ चलें!'

'आओ आओ चलें!!'

कैम्प के कर्मचारयों को बताये बिना सब स्त्रियाँ चली गयीं।

एक बूढ़े को यह कहने के लिए तैयार किया गया कि उसके पाँच बेटे मारे गये, उसका घरबार छीन लिया गया, किन्तु उसने ईश्वर की आज्ञा के सामने सिर झुका दिया था और अब उसे सरकार ने सभी सुख दे दिया है जो उसे अपने घर में प्राप्त था।

और दिन में कई बार एक कर्मचारी उसे यह बात तोते की तरह रटाता रहा। दिन भर बूढ़ा जहाँ बैठा रहा, न वह अपनी टाँगें फैला सका, न किसी और से बातें कर सका। आखिर जब पाँच भी बज गये तो कर्मचारियों की आँख बचाकर बूढ़ा चुपके-से कहीं खिसक गया।

राशन-डिपो पर बैठा हुआ कुलदीप सोच रहा था क यदि अब कोई आ भी जाये तो वह क्या देख सकेगा। राशन लेने वाले तो अपना-अपना राशन लेकर जा चुके थे। अब वह वहाँ बैठा हुआ किस का क्या काम कर रहा होगा? किन्तु कैम्प-कमाँडर का कहना था कि नेता आज अवश्य आयेंगे।

तम्बुओं में बीमारों को दवा पहुँचाना इतना आवश्यक नहीं था। अब यदि कोई आयेगा तो उसके पास इतना समय थोड़े ही होगा कि एक-एक तम्बू में झाँक सके।

बस कोई आयेगा, फूलों के हार गले में पहनवायेगा, (फूल तनिक मुरझा अवश्य गये थे किन्तु उनपर बराबर पानी छिड़का जा रहा था), कर्मचारी उससे हाथ मिलायेंगे, किसी शरणार्थी बच्चे के सिर पर वह हाथ फेरेगा, किसी शरणार्थी स्त्री को वह 'माँ' या 'बहन' कहेगा, इधर-उधर देखेगा, बच्चों के खेलने के मैदान की हरी घास की प्रशंसा करेगा और फिर चला जायेगा और घर पहुँच कर समाचारपत्र में वक्तव्य दे देगा!

कुलदीप सोचता, तम्बुओं के रोगी उसकी राह देख रहे होंगे। किन्तु क्या मालूम नेता कब आ जाये। और इस प्रकार सारा कैम्प बदनाम हो जायेगा। कुलदीप राशन-डिपो में बैठा बड़े फाटक की ओर दृष्टि जमाये देखता रहा, देखता रहा!

21

'बादशाह होते हैं, मेहरबान होगा तो देगा?'

मियाँवाली की ओर की एक तसवीर जैसी लड़की कपड़े बाँटने वाले अधिकारी के सामने खड़ी थी। उसके साथ 'घनी' की एक अधेड़ उम्र की स्त्री भी थी। इस भरपूर जवान लड़की का सुहाग पोठोहार में विवाह के दस दिन बाद उजड़ गया था। पिछले चार दिनों में यह अप्सरा जैसी लड़की आठवीं बार यहाँ आयी थी। उसके सिर पर फटा हुआ दुपट्टा उसके गज़-गज़ बालों को ढाँप नहीं सकता था।

'बादशाह होते हैं...!' काली-काली और बड़ी-बड़ी आँखों वाली लड़की ने फिर अपना वाक्य दुहराना चाहा। किन्तु बाकी शब्द उसके कण्ठ में ही अटक कर रह गये। कपड़े बाँटने वाला अधिकारी अपने ध्यान में मग्न समाचारपत्र पढ़े जा रहा था।

मियाँवाली की वह 'हीर' सोचती – यदि उसे एक दुपट्टा मिल जाये तो वह किसी-न-किसी तरह निर्वाह कर लेगी। उसकी कमीज का गिरेबान उधड़ा हुआ था, कन्धों पर से घिसी हुई थी, धुल-धुलकर इतनी कमज़ोर हो चुकी थी कि वह सिर उठाकर सीधी नहीं चल

सकती थी। यदि एक दुपट्टा मिल जाय, तो वह सोचती, अपने केशों को वह छिपा लेगी, अपने कन्धों को ढाँप लेगी और लोग उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़ कर नहीं देखा करेंगे।

कपड़े बाँटने वाला अफसर अभी तक अपना मुँह छिपाये समाचारपत्र पढ़ रहा था।

पास खड़ी 'धनी' की अधेड़ उम्र की स्त्री सोचती, काश कि अखबार अपने मुँह से उठाकर वह एक बार तो देख ले, कपड़े माँगने वाली की सूरत कैसी है।

किन्तु वह भीख थोड़े ही माँग रही थी। जितनी बार वह आयी उसके साथ कोई-न-कोई स्त्री अवश्य होती थी। और वह सदैव आकर इस प्रकार कुछ कहती – बादशाह है, उसके मन में अवश्य दया उपजेगी, वह अवश्य एक दुपट्टा दे देगा। जिस प्रकार बादल अपने भीतर पानी नहीं रख सकते और बरस पड़ते हैं, जिस प्रकार फल पक कर नीचे गिर पड़ता है, चाहे उसकी इच्छा हो चाहे न हो!

नौजवान पोठोहारिन को कपड़े बाँटने वाले अधिकारी की उदारता और मानवता पर पूरा भरोसा था। और अब वह आठवीं बार आयी थी कि कभी तो उसका दिल पसीजेगा, कभी तो वह देखेगा और मेहरबानी करेगा!

'बेटी, ईश्वर से माँग, बन्दे के आगे क्या हाथ पसारने?' पास खड़ी अधेड़ स्त्री अब फटी हुई चुनरिया वाली लड़की को समझा रही थी।

'ईश्वर से माँग, जो देकर पछताता नहीं।' अधेड़ आयु की स्त्री के वाक्य में व्यंग्य था।

'बादशाह हैं, मेहरबान होंगे तो देंगे!' नौजवान लड़की अपनी फटी हुई चुनरिया से जितना अपने को ढाँप सकती थी ढाँपे हुए थी।

और फिर अखबार के पीछे से अधिकारी ने पढ़ते-पढ़ते कहा – 'फिर आना, कपड़ा आज खत्म हो चुका है।'

और अपने गज़-गज़ भर के बालों को सँभालती, अपनी छलक-छलक पड़ती जवानी को छिपाती, अपने अधरों को सिकोड़ती, अपने कपोल समेटती, अपने कंधों को सकुचाती, वह जवान लड़की निराश होकर लौट गयी।

लोगों को इस डिपो से कम्बल मिलते थे, गद्दियाँ मिलती थीं, चादरें मिलती थीं, बर्तन मिलते थे, चरखे मिलते थे, हर प्रकार के कपड़े मिलते थे, जूतियाँ मिलती थीं। अभी तो कल ही कलकत्ते के सिक्खों की ओर से बूटों से भरी हुई तीन लारियाँ आयी थीं।

और 'पाशी' (उस लड़की का नाम) हैरान थी कि उसे दुपट्टे के लिए गिड़गिड़ाना पड़ रहा था। चल-चल कर, खड़े रह-रह कर उसके तलवे घिस गये थे।

जब 'छब्बी' की मलमल में कलफ लगाकर वह बल डाला करती थी, वह दिन याद कर-करके वह थक चुकी थी। वे दिन अब उसे पराये लगते थे, जब धोबी के दूध जैसे धुले हुए वस्त्र पहनकर वह धरती पर नाप-नाप कर कदम रखा करती थी, इस भय से कि कहीं वह आसमान की ओर ही न उड़ जाय! अब वे दिन स्वप्न बन गये थे, जब उसके शरीर से कपड़ा छूते ही फटने लगता था, और उसकी माँ लाड़ से उसकी ओर देखकर मुस्करा दिया करती थी।

उसके दहेज में उसकी माँ ने इक्कीस जोड़े दिये थे, उसके ससुराल वालों ने सात जोड़े

दिये थे और जब वह कपड़े बदलने लगती तो उसकी समझ में न आता था कि वह कौन-सा जोड़ा पहनें और कौन-सा न पहने !

उसके पास कई प्रकार के कानों के, नाक के, माथे के, केशों के गहने थे, श्रृंगार-पट्टियाँ थीं, गले के तरह-तरह के आभूषण थे, कलाइयों के लिए 'गोखरू' थे, चूड़ियाँ थीं, पैरों के लिए चाँदी की झाँझरें थीं।

अगले दिन अड़ोस-पड़ोस में किसी स्त्री को अवकाश नहीं था, पाशी अकेली ही चली आयी। आखिर डर किस बात का था ! कैम्प में शरणार्थियों का अपना डिपो था, जहाँ सरकारी अधिकारी बैठा अखबार पढ़ता रहता था या कार्डों पर हस्ताक्षर करता रहता था, और वस्त्रादि उसके अधीन काम करने वाले दिया करते थे।

पाशी बार-बार अपने से कहती, डर किस बात का है ? किन्तु फिर भी वह डर रही थी। उसके मन में एक प्रकार का आतंक-सा था। वह प्रत्येक पुरुष से डरती थी।

उस काली रात को आग की लपटों के पीछे जब एक फसादी ने उसे आकर कंधों से पकड़ लिया था– उसकी आँखों में बर्बरता थी, वासना थी, और एक ही क्षण में उसकी संभाल-सँभाल कर रखी हुई इस्मत धूल में मिल जाती यदि कहीं से आयी गोली उस पापी पशु को वहीं ढेर न कर देती। पाशी को अपनी आँखों पर विश्वास न आता था। आग की लपटें और ऊपर उठ रही थीं। बच्चों की, स्त्रियों की और बूढ़ों की चीखें एक कोलाहल बनकर रह गयी थीं।

उस दिन से पाशी प्रत्येक पुरुष से घबराती थी, मर्दों की प्रत्येक दृष्टि से सहम जाती जो उसकी ओर उठती थी, प्रत्येक कदम से काँप जाती जो उसकी ओर बढ़ता था।

और डिपो की ओर जाते हुए आज वह सोचती कि वह अकेली जा रही है, उसके साथ आज कोई नहीं है।

आज उसके साथ कोई भी नहीं था जिसको सम्बोधित करके वह कहती, 'बादशाह होते हैं, मेहरबान होगा तो देगा !' आज वह यह कैसे कह सकेगी ? जब उससे कोई पूछेगा तो वह कैसे बतायेगी कि वह क्या लेने आयी है।

उसे अपने कुंवारेपन के दिन याद आ रहे थे, जब 'छींबों'[1] की एक लड़की उनके घर कुछ माँगने आया करती परंतु हँसने, खेलने और बातें करने लग जाती। पाशी सदैव उसकी आवश्यकता को भाँप जाया करती, और किसी-न-किसी बहाने जाते हुए वह वस्तु उसे पकड़ा देती।

डिपो पर आज बेहद भीड़ थी। ऐसा जान पड़ता जैसे सारे का सारा कैम्प वहाँ टूट पड़ा था। डिपो के पास जाकर उसे पता चला कि कपड़े की कई गाँठें खुलीं थीं, और लोग अपने-अपने हिस्से का कपड़ा फड़वाकर ले जा रहे थे।

पाशी आगे होती, तो कोई पीछे धकेलकर स्वयं आगे बढ़ जाता। सारी शाम वह धक्के खाती रही, कभी पीछे से आगे, कभी आगे से पीछे।

थककर, हारकर वह तम्बू के बाहर पड़े हुए एक पत्थर पर बैठ गयी ताकि जिनको जल्दी

1. कपड़े धोने वाले।

थी,वे जब चले जायेंगे तो वह आगे बढ़ेगी।

'तुझे क्या चाहिए?' डिपो का अधिकारी पूछेगा और वह अपने दुपट्टे के चीथड़ों की ओर एक नज़र देख लेगी।

धीमा-धीमा अन्धकार होने लगा था। अब पाशी डिपो के सामने आ खड़ी हुई,खड़ी रही – खड़ी रही। उससे आगे बढ़कर कुछ माँगा न जाता। अब भीड़ बिल्कुल नहीं थी। कोई-कोई शरणार्थी अपना राशन कार्ड दिखाकर अपने नाम का कपड़ा लेता और चलता बनता। लोग बाद में आते और पहले चले जाते,किन्तु पाशी के मुँह से शब्द न निकलते। दायें हाथ में पकड़ा हुआ कार्ड उसने सीने से लगाया हुआ था। जहाँ-जहाँ से वह उसे पकड़ती वहाँ-वहाँ से पसीने के कारण वह गल-गल जाता।

आखिर जब कोई भी न रहा,डिपो के अधिकारी ने थक कर गर्दन ऊपर उठाई तो सामने पाशी खड़ी थी,तम्बू के एक बाँस के सहारे,मौन! जैसे उसे स्वयं पता न हो कि वह क्यों वहाँ आयी थी।

लालटेन के मद्धिम से प्रकाश में, हर पल बढ़ते हुए अँधेरे में डिपो के अधिकारी की थकी-माँदी आँखों ने एक शरणार्थी लड़की को देखा – जैसे किसी फूल को मसल दिया गया हो,जैसे कोई कली कीचड़ में गिर पड़े,जैसे झील के पानी में चाँद कभी डूब जाये और कभी उभर आये। डिपो के अधिकारी को ऐसा अनुभव हुआ जैसे वह कोई स्वप्न देख रहा हो, ज्यों-ज्यों वह लड़की की ओर देखता,त्यों-त्यों उसकी आँखें और-और खुलतीं।

'क्यों बेटी! कहाँ है तेरा कार्ड?' इतने में एक बूढ़े मुंशी ने आगे बढ़कर पाशी से कार्ड ले लिया।

'तुझे क्या चाहिए?'

'लड़की चुप थी।

'सलवार दूँ,कमीज दूँ,या दुपट्टा?'

लड़की अभी तक मौन थी।

'तेरा दुपट्टा बहुत फटा हुआ है!'

और बूढ़े मुँशी ने मोटी मलमल के थान में से कुछ कपड़ा फाड़ना चाहा।

इतने में डिपो का अधिकारी अलमारी की ओर उठकर गया,उसकी नजर अब शरणार्थी औरत की कमर से होती हुई नीचे तक लटकती चोटी तक जा चुकी थी।

अलमारी में से उसने एक लाल-सुर्ख रेशम का सूट निकाला और पाशी को दे दिया!

लड़की हक्की-बक्की उस अधिकारी की ओर देखने लगी।

इतने में बूढ़े मुंशी ने मलमल को फाड़ना बन्द कर दिया।

'लेकिन भाई...' रेशमी सूट अपनी ओर बढ़ता हुआ देखकर पाशी तत्काल बोल उठी। और उसकी आँखों ने कहा – 'मैं इस सूट का क्या करूँगी? मुझे तो केवल अपना तन ढाँपना है,इस सूट से तो मेरे शरीर को आग लग जायेगी।'

इतने में बूढ़े मुंशी ने मलमल का दुपट्टा फाड़कर पाशी के हाथ में दे दिया।

दूर, अन्धकार में लड़की को विलीन होता हुआ देखकर डिपो का अधिकारी सोच रहा था कि कुछ लोग न जाने किस मिट्टी के बने होते हैं। और फिर उसने अखबार के पीछे अपना मुँह छिपा लिया।

22

अभी काफी सवेरा था।

अपने तम्बू के बाहर सतभराई स्वप्नों में डूबी हुई थी। पेशावरी ताँगे में बिठाकर कुलदीप सतभराई को शहर दिखाने के लिए ले जाता है; उधर जिस ओर परमेसरी उसे ले गयी थी। जहाँ बाज़ार में बेहद भीड़ थी। पग-पग पर जहाँ हिचकोले लगते थे। जहाँ ताँगे वाला बस घंटी बजाये जाता। जहाँ घोड़ा कभी बिदकता, कभी रुक जाता, कभी दौड़ने लगता। जहाँ मंजिलों-पर-मंजिलें चढ़ी हुई थीं। जहाँ मस्जिदों पर संगमरमर के गोल गुम्बद थे। मन्दिरों के सुनहरे कलश थे। विशाल लम्बी-चौड़ी सड़कें थीं, सड़कों के किनारे घास की चादरें, और न जाने कितना कुछ नया-नया, अनदेखा-अनदेखा, अनजाना-अनजाना था। फिर वह बाज़ार, औरतें खिड़कियों में बैठी हुईं, जिन्होंने चेहरे पर पाउडर पोत रखा था, जिन्होंने होंठो पर सुर्खी की तह चढ़ा रखी थी, जिन्होंने बालों में तोता-मैना काढ़े थे और जिनके सिर पर आँचल नहीं ठहरता था, जिनकी आँखों के काजल के पीछे बेशर्मी छलक-छलक पड़ती थी, जो राहगीरों को संकेत करके बुलाती थीं और सड़क के किनारे खड़े लोगों के साथ हँस-हँसकर बातें करती थीं। ठंडी सड़क, जहाँ बाँहों-में-बाँहें डाले हुए फिरंगी जोड़ों की समझ में नहीं आता था कि वे अपने-आप से क्या करें, अपने समय से क्या करें। जहां चमकती हुई काली सड़क पर घोड़े के पाँव फिसल-फिसल जाते। तोपी रख की झील, जहाँ ऊँचे, पुराने पेड़ों-तले झुटपुटे के समय अंग्रेज महिलाएँ गिटपिट-गिटपिट किया करतीं। अंग्रेज पुरुष शराब के नशे में धुत जहाँ औंधे पड़े होते। पेशावरी ताँगे के रबड़ के पहिये, पेशावरी ताँगे की गद्दियाँ, पेशावरी ताँगे की ऊँची छत जिसमें ठंडी-ठंडी हवा आकर बालों से अठखेलियाँ करती। पेशावरी ताँगे के घोड़े के घुँघरू...।

और छन-छन करता हुआ एक ताँगा सतभराई के तम्बू के सामने आ रुका। सतभराई पसीना-पसीना हो रही थी, वह उठ खड़ी हुई।

ताँगे में सोहणे शाह था।

'चाचा!' सतभराई के मुँह से चीख निकल गयी।

सोहणे शाह के रुँधे हुए कण्ठ में से कोई आवाज़ न निकल सकी। सोहणे शाह के गले लगते हुए, रोग से अभी-अभी छुटकारा पायी सतभराई को गश आ गयी। जब उसे होश आया तो सतभराई को अपनी आँखों पर विश्वास न आता।

'यह सपना है,यह सपना है !' सोहणे शाह की दूध जैसी श्वेत दाढ़ी में वह उँगलियाँ फेरती जाती और धीरे-धीरे उसके होंठ हिलते जाते।

'यह सपना है !' सतभराई अब सोहणे शाह की उँगलियों को टोह रही थी,हाथों को छू रही थी,बाँहं को दबा रही थी।

'यह सपना है !' फिर सतभराई बिलबिलाई और सोहणे शाह के गले लग गयी। इस बार दोनों फूट-फूटकर रोये !

सोहणे शाह अब बीमार नहीं था। सोहणे शाह के वस्त्र साफ-सुथरे थे,जैसे वह सदैव अपने गाँव में पहना करता था। ताँगे में सोहणे शाह फल लाया,ट्रंक लाया जिसमें उसके अपने कपड़े थे,सतभराई के वस्त्र थे।

किन्तु सबसे पहले जो वस्तु सोहणे शाह ने सतभराई को दिखाई वह नोटों की गड्डी थी। ट्रंक के एक कोने में रखी थी। कैम्प से बीमारी की दशा में निकल जाने के बाद सोहणे शाह की कहानी अत्यन्त विचित्र थी।

सोहणे शाह को केवल इतना याद था कि अस्पताल में एक अधिकारी ने उसे पहचान लिया था। फिर उसका इलाज होता रहा। उसके लिए अलग कमरे का प्रबन्ध किया गया। प्रतिदिन टीके लगा-लगाकर,फलों के रस पिला-पिलाकर उसके मस्तक,सिर और बाकी शरीर की मालिश कर-करके उसे स्वस्थ कर दिया गया।

स्वस्थ होने के बाद उसी अफसर की सहायता से वह फौजी ट्रक में बैठकर गाँव-गाँव राजकर्णी को ढूँढ़ता रहा,किन्तु राजकर्णी का कोई पता न चला।

राजकर्णी कहीं भी नहीं थी। उसने एक-एक गाँव के सरपंच की मिन्नतें कीं। उन्हें लालच दिये,माथा रगड़ा;राजकर्णी का किसी को कुछ पता नहीं था। किन्तु अपनी हवेली के खण्डहरों में ठोकरें खाते हुए उसे मलबे के ढेर में डाकखाने की 'पास बुक' मिल गयी।

'तू ही अब मेरी 'राजी' है,तू ही अब मेरी 'सत्तो' है,तू ही अब मेरे भाई अल्लादित्ता की निशानी है।' आखिर सोहणे शाह ने सतभराई को गले से लगाते हुए सिसकना शुरू कर दिया।

और सतभराई के भीतर की नारी प्रत्येक चोट सहती जा रही थी।

सोहणे शाह ने बताया कि अल्लादित्ता की कोई कब्र नहीं बनायी गयी थी। मुसलमानों ने अल्लादित्ता को हिन्दुओं और सिक्खों की लाशों के साथ ही जलते हुए मकानों में फेंककर भस्म कर दिया गया था। अल्लादित्ता की सम्पत्ति पर भी फसादियों ने उसी प्रकार अधिकार कर लिया था जिस प्रकार हिन्दुओं और सिक्खों की सम्पत्ति पर। अल्लादित्ता के घर और उसकी हवेली को भी उसी प्रकार लूटा गया था जिस प्रकार हिन्दुओं और सिक्खों के घरों को। अल्लादित्ता,जिसने केवल इतना कहा था कि चोली-दामन का साथ नहीं छूट सकता,इस तरह एक पड़ोसी का दूसरे पड़ोसी पर हाथ उठाना इस्लाम में हराम है। जिसने काजी के इस आदेश को झुठलाने का प्रयत्न किया था कि सारे हिन्दू-सिख काफिर हैं।

सोहणे शाह ने यह भी बताया कि उनके गाँव के लोग यही समझ रहे थे कि सतभराई भी कहीं उनमें मारी गयी थी। कई नौजवान लड़कियों की लाशें पड़ी थीं,उन सब पर तेल

छिड़ककर उन्हें भस्म कर दिया गया था।

सोहणे शाह और सब कुछ भुला सकता था, किन्तु इस बात को नहीं कि बड़े गुरुद्वारे के बरामदे में तम्बाकू, सिगरेटों और बीड़ियों की छाबड़ी लगाकर वहाँ कोई बैठा हुआ था। दिन भर गुरुद्वारे की ओर पीठ करके बैठा रहता था। गुरुद्वारे की दीवार पर पान खाकर लोगों ने पीकें फेंकी थीं। दिन भर गुरुद्वारे के बरामदे में हुक्का गुड़गुड़ाता रहता था और लोग वहां बैठे अल्लाह की कसमें खाते रहते और गोमांस के मज़े गिनवाते रहते। 'पुरियों' के, इलाके के सबसे ठंडे कुएँ में, चमड़े के 'बोके' डाले जा रहे थे, सोहणे शाह ने यह अपनी आँखों से देखा था। यह कुआँ वह था, जहाँ पुरियों की पवित्रता मुसलमानों के पाँव नहीं पड़ने देती थी। सोहणे शाह ने स्वयं देखा कि मुसलमान स्त्रियाँ उन्हीं 'बोको' में से पानी पीतीं और बाकी जल से घड़े भर लेतीं, और जूठे 'बोके' फिर कुएँ में लटका देतीं!

सोहणे शाह को 'लाखी' अत्यन्त प्रिय थी। जब वह चारों ओर से निराश हो गया तो उसने अपनी गाय के बारे में लोगों से पूछा। लाखी जिसे पिछले वर्ष मण्डी से इनाम मिला था और सात सौ रुपये जिसका मोल पड़ता था।

लाखी को गड़बड़ के बाद के उत्सव में काट डाला गया था। हिन्दुओं और सिक्खों के सारे पशु इस तरह खत्म हो चुके थे। जब तक एक भी पराया पशु बाकी था, फसादियों के घर कभी दाल-सब्जी नहीं पकाई गयी थी।

और इस प्रकार छोटी-छोटी, बड़ी-बड़ी बातें सोहणे शाह करता रहा।

सवेरा हो गया। दोपहर हो गयी!

कुलदीप नहीं आया। सतभराई उचककर बाहर देख लेती, और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता वह अधिक विकल होती जाती।

चाचा की आवाज सुनकर लौट गया होगा! आखिर उसने अपने दिल को धीरज बँधाया।

सोहणे शाह ने सतभराई को बताया कि हिन्दुओं और सिक्खों के मकानों के साथ मुसलमानों का भी एक पूरा मुहल्ला जल गया था। उन्होंने रक्षा का बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु आग को न दबाया जा सका। कागजों में तो मुसलमानों ने लिखवाया था कि पहले हिन्दुओं और सिक्खों ने मुसलमानों के मुहल्ले को आग लगाई और फिर बदले में उन्होंने हाथ उठाया, किन्तु सोहणे शाह के सामने कौन झूठ बोल सकता था?

खालसा स्कूल में आजकल नट और खानाबदोश डेरा डाले हुए थे। स्कूल के कुछ कमरे जले हुए थे, शेष कमरों का सामान ईंधन बनाकर जला दिया गया था। रात-भर वहाँ गाने-बजाने का कार्यक्रम होता और तमाशाई लोग रात-रात-भर बाहर रहते।

पंचायती गुरुद्वारे में उन्होंने मस्जिद बना ली थी। इस बात की सोहणे शाह बार-बार प्रशंसा करता। पहले वहाँ गुरु का नाम लिया जाता था अब वहाँ अल्लाह का नाम लिया जाता है। इसमें क्या अन्तर है, अल्लाह और भगवान में क्या भेद है!

'मैंने तो उनसे कहा कि बड़े गुरुद्वारे में भी नमाज पढ़ लिया करो, लेकिन ससुरों ने मेरा कहा माना नहीं!'

दोपहर ढल रही थी और कुलदीप अभी तक नहीं आया था। कुलदीप, जिसके बिना सतभराई को आसपास नीरस-सा जान पड़ता। कुलदीप, कल अनजाने में जिसके स्पर्श ने सतभराई की रग-रग में बिजलियाँ दौड़ा दी थीं। कुलदीप, जिसके सामने सतभराई का जी चाहता कि वह रोती जाये, रोती जाये, रोती चली जाये! कुलदीप अभी तक नहीं आया था। ये मर्दज़ात कैसी कठोर होती है! फिर वह मन-ही-मन झुँझलाने लगती।

सोहणे शाह ने सतभराई के लिए खरीदे हुए कपड़े उसे दिखाये। नया जोड़ा पहनकर जब वह तम्बू से बाहर आयी तो उसके कपोलों पर उसका पुराना यौवन कौंधने लगा। गोरी-गोरी, गुलाबी-गुलाबी और प्याज़ी रंग का उसका सूट – सतभराई जैसे आसमान से उतरी हुई अप्सरा हो!

'बेटा, तुझे कहीं नज़र न लग जाये!' सतभराई को देखते हुए सोहणे शाह ने कहा। शरणार्थी कैम्प में कोई ऐसे कपड़े नहीं पहना करता।

प्याजी रंग का रेशमी सूट पहनकर और मन में कुलदीप की याद लिये नज़र अवश्य लग जायेगी; किन्तु सतभराई सोचती कि वह क्या करे। आजकल उसका जी चाहता कि वह बाल सँवारती रहे, हाथ धोती रहे, पैर मलती रहे। जबसे वह बीमारी से उठी थी; जीवन न जाने उसे क्यों प्यारा लगने लगा था। कुलदीप ने आकर जैसे उसके सपनों में रंग घोल दिया हो!

फिर सोहणे शाह ने सतभराई को बताया कि अब वह शरणार्थी कैम्प को छोड़ देगा। वह सोचता कि रावलपिण्डी से दूर, बहुत दूर जा कर फिर जमीन लेगा। वहाँ, जहाँ सोहणे शाह ने सुन रखा था, खेत सोना उगलते हैं, कहीं लायलपुर की ओर।

सतभराई सुनती जा रही थी, सुनती जा रही थी, किन्तु सोहणे शाह की हर बात पर उसका दिल बैठ-बैठ जाता था। वे कैम्प छोड़ जायेंगे! उस कैम्प को छोड़ जायेंगे जहाँ कुलदीप रहता है। उस कैम्प को छोड़ जायेंगे जहाँ उसने एक सपना देखा है। जहाँ उसके हृदय में एक लहर-सी उठी है।

किसी बहाने उठकर सतभराई तम्बू से बाहर टहलने लगी। वे कैम्प छोड़ जायेंगे, आखिर क्यों? उसकी आँखों में आँसू आते-आते सूख गये।

किन्तु आज कुलदीप को क्या हो गया था? दिन-भर में एक बार भी नहीं आया था और अब तो शाम हो चुकी थी। एक तो वह उसकी व्यस्तता से तंग थी। 'लट्टू की तरह जहाँ कोई लगा देता है लग जाता है!' अपने-आप से कितनी देर तक यूँ बड़बड़ाती रही। कल वह कितना प्यारा लग रहा था; सवेरे आया, फिर दोपहर को आया, फिर शाम को आया और इकट्ठे बैठे-बैठे रात हो गयी।

यदि चाचा और एक दिन बाद आता। सतभराई सोचती, सोहणे शाह तब नहीं आया था, जब रातें उसे काट खाने को दौड़ती थीं। ये दिन, जब उससे कोई बात करने वाला नहीं होता था। वे सप्ताह, जब उसे 'सतभराई' कहकर कोई आवाज़ देने वाला नहीं होता था। और अब जबकि उसे कैम्प भला लगने लगा था, अब जबकि तम्बू में उसे रौनक दिखाई देने लगी थी, सोहणे शाह अब आ गया था।

'चचा तुम क्या कह रहे हो कि हम यहाँ से चले जायेंगे ?'

'हम चले जायेंगे।' हृदय की प्रत्येक धड़कन से उसे यह आवाज आती सुनाई दे रही थी।

23

कुलदीप अभी तक नहीं आया था।

और रात हो गयी।

लेटे हुए सतभराई ने आकाश की ओर देखा। चार दिन का यह चाँद बेचारा अभी छिप जायेगा। एक लजीली-सी, एक मौन-सी सनसनाहट उसके कानों में मुखरित हो रही थी।

कैम्प में लोग बहुत जल्दी सो जाया करते थे। दिन होते ही खाने-पकाने से छुट्टी पा लेते। शाम को चारों ओर सन्नाटा छा जाता। कई दिन का थका-माँदा सोहणे शाह तम्बू के बाहर खुले मैदान में चारपाई बिछा कर कब का खर्राटे भर रहा था।

और चाँदनी न जाने क्या-क्या कुछ सतभराई के कानों में फूँक रही थी। कल भी उससे कुछ कहती रही, कहती रही, जब तक उसकी आँख न लग गयी। आज भी उसने वही रट लगा रखी थी; हल्की-हल्की-सी चुटकियाँ, जैसे पवन का कोई झोंका फूल की पत्तियों को सहलाकर चला जाय। अभी तो चौथी रात है। यदि चौदहवीं रात हो, सतभराई सोचती, मैं तो कपड़े फाड़कर शायद आकाश में उड़ जाऊँ! उसे ऐसे लगता था जैसे कोई चन्द्रकिरणों में धुला हुआ, रचा हुआ, उसके अंग-अंग में, उसके रोम-रोम में विलीन होता जा रहा हो। फिर उसे यों लगा जैसे वह थक-सी गयी। प्याज़ी रंग के सूट में लिपटी हुई, दूध ऐसी श्वेत चादर पर, चाँदनी से खेलती-खेलती आखिर वह सो गयी।

अभी उसकी आँख लगी थी कि तम्बू के पिछवाड़े से एक छाया उसके पैरों पर पड़ी, एक साफे की छाया। कितनी देर तक वह छाया वहीं खड़ी रही। फिर आगे बढ़ी। एक साफे और दो कन्धों की छाया। फिर कितनी देर तक वह छाया जैसे वहाँ जमकर रह गयी। और फिर आगे बढ़ी। अब छाया सतभराई के सीने पर पड़ रही थी।

धीरे-धीरे चौथी रात का चाँद पीला पड़ना आरम्भ हो गया। चाँद छिपता गया, छिपता गया – छाया मिटती गयी, मिटती गयी। और रात अँधेरी हो गयी!

सतभराई की चारपाई के किनारे बैठा हुआ कुलदीप सोचता, वह कैसे सो सकती थी, उसके भीतर आग का अलाव जलाकर कैसे सो सकती थी। वह क्योंकर सो सकती थी? इस प्रकार चाँदनी में दूध जैसी श्वेत चादर पर चाँद की किरणों ने उसे कोई सन्देश नहीं दिया था, यह कैसे हो सकता है था? यह क्योंकर हो सकता था?

सतभराई सोयी पड़ी थी, पलकों-से-पलकें जुड़ी हुई। काले स्याह केशों की एक लट

पेशानी पर ढुलकी हुई। धीमे से मिचे हुए होंठ थे। अंधकार के धुँधलेपन से उलझती हुई कपोलों की कोमलता यों जान पड़ती थी जैसे ताजा शहद मिट्टी में समा रहा हो !

सोये-सोये सतभराई ने करवट बदली। उनकी बाँह उस किनारे पर आकर जहाँ कुलदीप बैठा हुआ था, तोरी की तरह झूलने लगी। लम्बी-लम्बी उँगलियाँ ! कुलदीप ने सोचा, बाँह यों झूलती हुई थक जायेगी। धीरे से, झिझकते हुए, पसीना-पसीना हुए अपने हाथों से उसने उसका हाथ उठाया ही था कि सतभराई की आँख खुल गयी। इस प्रकार, जैसे वह कभी सोयी ही नहीं थी। ऐसे जैसे किसी ने झूठमूठ आँखें बन्द कर रखी हों। ऐसे जैसे कोई किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो और वह ठीक समय पर आ जाय। सतभराई तनिक न घबरायी। उसे यह बात तनिक भी विचित्र न लगी। कुलदीप ने उसे देखा। उसके अधरों पर मुस्कान बिखर गयी। 'मैं जानती थी तुम आओगे ?' जैसे उसकी आँखें कह रही थीं। 'तुम दिन-भर नहीं आये। मैं तुम्हें बुलाऊँ और तुम न आओ, यह कैसे हो सकता है ? तुम्हें मेरा सन्देश किसने दिया, चाँदनी ने ?' और इस प्रकार सतभराई न जाने क्या-क्या कुछ कह गयी।

फिर सतभराई उठी, कुलदीप उठा, और वे दोनों तम्बू के एक कोने में बैठकर बातें करने लगे।

'आज सवेरे मेरा चचा लौट आया है।' सतभराई ने सबसे पहले अपने रेशमी सूट पहनने का कारण बताया, और फिर उसने सारी कहानी कह सुनाई।

'फिर तो तुम मुझे छोड़ जाओगी ?' कुलदीप की नज़र सतभराई से प्रश्न कर रही थी।

'हाँ कुलदीप ! मेरा शरीर तुमसे दूर हो जायेगा !' सतभराई के मौन ने उसे समझाया।

तारों की छाया में कुलदीप शिकायतें करता रहा, सतभराई सुनती रही।

घड़ियाल वालों ने एक बजाया। नींद में डूबे कैम्प में कितनी देर तक घड़ियाल की आवाज़ गूँजती रही, कभी उधर से आती और कभी इधर से।

दूर, नलके के पास अपने पंजों पर थूथनी टिकाये सोया हुआ काला कुत्ता उठा, सीधे सतभराई के तम्बू की ओर दुम हिलाता हुआ आया। पहले उसने कुलदीप को सूँघा और फिर सतभराई को, और फिर जिस राह आया था उसी राह लौट गया।

आकाश पर एक तारा टूटकर किसी दूसरे तारे की ओर जा रहा था।

'मेरे साजन !' आखिर सतभराई के मुँह से निकला, 'हम मिलेंगे, हम जरूर मिलेंगे। इस दुनिया की कौन-सी चीज हमें मिलने से रोक सकती है ? यदि ज़िन्दगी रही तो मेरा जान, मैं कहती हूँ, हम जरूर मिलेंगे। मेरी ओर देखो। ये हाथ, ये होंठ, ये गर्दन, मेरा अंग-अंग, मेरा रोम-रोम तेरा है। तारों की जब घनी छाँव होगी, चाँदनी जब मेरी पलकें खोल-खोल देगी, जब शीतल पुरवैया आकर मुझसे कानों में बातें करेगी, मैं तुम्हें बुला भेजूँगी, दुआएँ माँग-माँगकर, हाथ जोड़-जोड़कर !

'तुम आओगे न ? इकरार करो कि तुम आओगे। देर तो नहीं करोगे ? तुम मर्द लोग किसी को भुला तो नहीं देते ? मैं तुम्हें हमेशा याद करूँगी। मैं वायदा करती हूँ कि मैं तुम्हें हमेशा दिल के तख्त पर बिठाकर रखूँगी। तुम्हारी याद, तुम्हारी मीठी याद, हमेशा अपने सीने

में ताज़ा रखूँगी।

'उस दिन तुमने कहा था कि मैं तुम्हें 'माहिये' के बोल सुनाऊँ और मैंने तुम्हें टाल दिया था। अब मैं सवेरे फसलों में घूमती हुई हर रोज़ माहिया गाया करूँगी, हर रोज़ शाम को ठण्डे-ठण्डे पानी में पाँव डालकर ऊँची आवाज में ढोला गाया करूँगी। तुम चाहो तो कभी आकर सुन लेना।

'हाय! यदि तुम दो दिन कहीं पहले आये होते, मैं इतने दिनों यहाँ अकेली पड़ी रही। रात को रो-रोकर जब मैं औंधे मुँह गिर पड़ती थी, इस तम्बू की दीवारें मुझे काट खाने को दौड़ती थीं। उस वक्त न चचा आया और न तुमने कभी इधर का मुँह किया!

'अब तुम खुद ही बताओ कि मैं चचा को क्या मुँह दिखाऊँ? कैसे उसे बताऊँ? क्या उसे बताऊँ?'

'तुम्हें अपने चचा को कुछ बताने की जरूरत नहीं।' तम्बू के पीछे से सोहणे शाह चुपचाप सतभराई और कुलदीप के सामने आकर खड़ा हो गया। उसने सब कुछ सुन लिया था। जब से घड़ियाल बजा था, सोहणे शाह उसी समय से जाग रहा था। उसने काले कुत्ते को उनकी ओर आते हुए देखा था, दोनों को सूँघकर लौटते हुए देखा था। उसने आकाश पर तारे को टूटकर दूसरे तारे से मिलते हुए देखा था, और फिर सतभराई ने बोलना आरम्भ कर दिया था।

सतभराई और कुलदीप दोनों सोहणे शाह के सामने पलकें झुकाये हुए खड़े थे।

तीनों उसी प्रकार देर तक चुपचाप खड़े रहे। आखिर एक झटके से सोहणे शाह सतभराई को पकड़कर तम्बू में ले गया।

सामने खड़े कुलदीप ने आकाश की ओर देखा। तारे वैसे-के-वैसे झिलमिला रहे थे। वैसी-की-वैसी एक फीकी-सी हँसी हँस रहे थे। उसके चारों ओर जैसे अंधकार और गहरा होता जा रहा था। काला कुत्ता न जाने कहाँ से निकल आया और कुलदीप के पाँव सूँघने लगा। आखिर आगे-आगे काला कुत्ता सीधे उसके तम्बू की ओर गया, वहाँ उसे उसमें दाखिल होते देखकर लौट आया। कुलदीप कपड़े बदलकर बाहर अपनी चारपाई पर आ पड़ा। उसने बहुतेरी कोशिश की, किन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी।

मैं भी पटियाला चला जाऊँगा। आखिर उसने फैसला कर लिया। पटियाला और फ़रीदकोट के महाराजाओं ने कहा था कि पोठोहार के लुटे-पिटे हिन्दू और सिक्ख उनकी रियासतों में आकर बस सकते हैं। और उन्होंने अपने अफ़सर भी भेज दिये थे कि वे लोगों को आमंत्रित करें। उनके साथ ही तो कुलदीप तम्बुओं में घूमता हुआ दिन-भर सूचियाँ तैयार करता रहा था।

और अब कुलदीप ने सोचा, पटियाला या फरीदकोट, जहाँ-कहीं भी उसके सींग समाएँ वह अवश्य चला जायेगा। रियासतों के अधिकारियों ने तो उससे कई बार कहा था कि वह लोगों की पूरी गाड़ी भरकर वहाँ ले आये। जमीन वालों को जमीन का वचन दिया गया था, कुएँ वालों के लिए वहाँ कुएँ थे, दुकानदारों के लिए दुकानें खाली की गयी थीं। नये मकान बनवाये जा रहे थे, पुराने मकान शरणार्थियों के लिए विशेष रूप से खाली रख दिये गये थे।

पटियाला की सरकार ने नये आने वाले लोगों के लिए लंगर खोल दिया था। रोगियों के लिए अस्पताल था और बच्चों के लिए दूध का प्रबन्ध किया गया था। दस्तकारों के लिए कई धन्धे पैदा किये गये थे, छोटी-छोटी वस्तुएँ बनाने के लिए दस्तकारी के केन्द्र खोले गये थे।

कितने लोग तो वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे, कितने लोग तो अपने-अपने ठिकानों पर बैठ भी चुके थे।

कुलदीप सोचता, फ़रीदकोट या पटियाला जाकर वह भी नौकरी कर लेगा, किसी दफ्तर की क्लर्की। अब और पढ़ना उसके लिए कठिन था। वह सोचता – किसी पाठशाला का साधारण-सा अध्यापक बनकर मैं लड़कों के होस्टल में पड़ा रहा करूँगा।

कुलदीप को अपने आप पर हँसी आयी। वह कैसे सपने देखने लगा था? कभी शहरों में घूमता था, कभी मोटर में सवार होता था, कभी लम्बी और कभी बल खाती सीढ़ियों पर से उतरता था! उसे फूल अच्छे लगते थे, चाँदनी भली लगती थी, तारों की छाया प्यारी लगती थी। उसका जी चाहता था कि घास के मैदान हों। मन्द-मन्द शीतल पवन में गिरेबान खोलकर खड़ा होना उसे अच्छा लगता था।

और यों सोचते-सोचते कुलदीप ने देखा, आकाश से एक और तारा टूटा, लेकिन यह तारा दूसरे तारों से न जुड़ सका। कहीं रास्ते में ही विलीन हो गया।

24

सोहणे शाह सोचता, सतभराई उसके बुढ़ापे का सहारा थी। सतभराई को देखकर उसे राजकर्णी का दुख भूल जाता था। सतभराई अल्लादित्ता खाँ की निशानी थी। अल्लादित्ता खाँ जिसने सोहणे शाह के लिए अपनी जान दे दी थी।

सतभराई यदि उसे छोड़कर चली गयी, सोहणे शाह को ऐसा जान पड़ता, वह दीवारों से अपना सिर फोड़ लेगा। एक क्षण के लिए उसे ऐसे लगा जैसे दोबारा उसे उसी तरह से चक्कर आ रहे हों जिनसे अस्पताल वालों ने टीके लगा-लगाकर उसका पिण्ड छुड़ाया था।

यदि उसे इसका पता होता, सोहणे शाह का रोम-रोम शिकायत करता, तो वह क्यों कड़वी दवाएँ पीता? वह दिन में तीन-तीन बार क्यों टीके लगवाता? वह क्यों भटकता? वह दोबारा गाँव लौटकर क्यों जाता? यदि उसे पता होता कि उसकी यह दशा होने वाली थी तो वह डाकखाने वालों की क्यों मिन्नतें करता?

सोहणे शाह की आँखों में आँसू न रुकते। रात-भर वह सतभराई को समझाता रहा, पुचकारता रहा, लाड़ करता रहा। आखिर विवश होकर सतभराई ने कह दिया, 'ले चलो चाचा! जहाँ तुम्हारा दिल चाहे ले चलो।'

सतभराई ने सोचा कि वह कुलदीप को भूल जायेगी, एक सपने की तरह जो आकर बीत

जाता है। जैसे कोई राही दूसरे राही से मिलता है और फिर उसकी राह अलग हो जाती है। आँधी में जैसे दो तिनके आप-ही-आप इकट्ठे हो जाते हैं और फिर एक झटके से बिछुड़ जाते हैं!

बचपन से वह जो विरह-गीत गा रही थी, उनकी तल्खी सतभराई को आज पहली बार अनुभव हुई। आज पहली बार सतभराई ने 'माहिया' के गीतों को अपनी पूरी शिद्दत के साथ हृदय को नोचता हुआ अनुभव किया।

चूने दियाँ दरजाँ नीं,
निक्के-निक्के दुख माहिया,
बन जाँदियाँ मरज़ाँ नीं।[1]

इस प्रकार के बोल सतभराई के अधरों पर आकर थिरकने लगते।

अभी काफी सवेरा था कि सोहणे शाह सड़क पर जा रहे एक ताँगे को ले आया। चुपके से सारा सामान उसमें रखकर सतभराई और सोहणे शाह कैम्प से बाहर निकल आये।

'यहाँ हम अजनबियों की तरह आये थे और अजनबियों की तरह जा रहे हैं।' जब कैम्प के फाटक में से किसी के कुछ कहे-सुने बिना ताँगा गुज़र गया तो सोहणे शाह ने कहा। पोठोहार के किसी मोहल्ले, किसी गाँव में ऐसा नहीं हो सकता था। किसी की बेटी पूरे गाँव की बेटी समझी जाती थी! गाँव में यदि कोई पथिक भी दो दिन के लिए ठहरकर चलने लगता तो गाँववाले दो-चार कदम उसे छोड़ने के लिए अवश्य उसके साथ जाते। सोहणे शाह को याद था कि उसके गाँव से कौन-कौन लोग लायलपुर गये थे। जाते समय, गाँव के हर परिवार ने उन्हें कोई-न-कोई भेंट दी थी; मठरियाँ, लड्डू और न जाने कितना-कुछ लोगों ने तलकर उनकी टोकरियों में रख दिया था। आज सोहणे शाह लायलपुर 'मुरब्बों' पर जा रहा था। किसी ने उसे आशीष नहीं दी थी। पानी का घड़ा लेकर कोई उसे मोड़ पर नहीं मिला था। किसी ने उसे फूलों के हार नहीं पहनाये थे।

किन्तु सतभराई अजनबी की तरह नहीं जा रही थी। सोहणे शाह के बोल तीर बनकर उसके दिल में उतर गये।

इस कैम्प में वह अधमरी-सी आई और एक कली की तरह खिल उठी। उसने इस कैम्प में पहली बार अपने भीतर आँखमिचौनी खेलती हुई प्यार की तरंगों का अनुभव किया था। उसे लगा था जैसे कोई पथिक अपनी मंजिल पर पहुँच गया हो!

सतभराई सोचती, वह कहाँ अजनबी-सी जा रही थी। एक संसार, जैसे उसके जाने पर बीहड़ बन गया था — कैम्प का एक छोर जहाँ कभी वह लौटकर नहीं आयेगी। उस तम्बू में अब कोई तेज़-तेज़ डग भरता हुआ नहीं आयेगा। कोई आँख उसकी राह नहीं देखा करेगी!

और सतभराई की आँखों में आँसू बार-बार छलकने लगते।

चूने में दरारें हैं,
छोटे-छोटे दुख साजन,
रोग बन जाते हैं।

पेशावर के ताँगे रावलपिंडी की सड़कों पर अत्यन्त तेज़ चलते हैं। अभी सतभराई अपने-आपको कैम्प के बन्धनों से मुक्त भी नहीं कर पायी थी कि ताँगा स्टेशन पर आ रुका।

मुसलमान कुली हिन्दुओं और सिक्खों से सामान उठाने का भाड़ा कुछ और लेते, और मुसलमानों से कुछ और! सोहणे शाह को अब पैसे से प्यार नहीं रहा था। पानी की तरह पैसा बहाता और सतभराई को अपनी बाँहों में छिपाये हुए वह प्लेटफार्म पर जा कर बैठ गया। गाड़ी के आने में अभी समय था।

प्रतीक्षा करते-करते सवेरा हो गया। धूप निकल आयी। भीड़ बढ़ती गयी। बिजली के एक खम्बे के पास खड़ी सतभराई ने देखा कि सलाखों वाले दरवाजे के बाहर ताँगों के अड्डे के पास कोई गुलाबी साफे वाला इधर-उधर घूम रहा था जैसे किसी को खोज रहा हो।

'शायद कुलदीप है!' सतभराई के दिल से जैसे तड़पकर फरियाद निकली। किन्तु अगले ही क्षण वह ठण्डी पड़ गयी। ताँगों के अड्डे की ओर पीठ करके ट्रंक पर बैठी; उसने अपने दुपट्टे का छोर पकड़ लिया, और बार-बार उसे मरोड़ने लगी। सोहणे शाह सिर झुकाये अपने विचारों में डूबा हुआ था।

वह कितनी देर तक पल्लू का छोर मरोड़ती रही। एक लट बार-बार खिसककर उसके माथे पर आ गिरती, सतभराई बार-बार उसे पीछे करती। सामने पटरी पर रेल के कुछ डिब्बे यूं ही बेकार खड़े थे। एक मैना छोटे-छोटे तिनके चुनकर उनमें से एक पर अपना घोंसला बना रही थी। एक खुजली का मारा कुत्ता प्लेटफार्म के सिरे पर खड़ा था जैसे गाड़ी की प्रतीक्षा में विकल हो! सोचते-सोचते सतभराई का दिल जैसे धड़कने लगा, उसके सिर के ऊपर लगी हुई स्टेशन की घड़ी की टिक-टिक जैसे और तेज़ हो गयी हो!

आखिर उसने गर्दन घुमाकर देखा। गुलाबी साफे वाला कहीं भी नहीं था। फिर उसने एड़ियाँ उठा-उठाकर किसी को ढूँढ़ना आरम्भ कर दिया, और वह पगड़ी जो कुलदीप ने बाँधी थी कहीं दिखाई न दी।

सामने सलाखों वाले द्वार में से परमेसरी आ रही थी। उसके साथ अमरीका था। अमरीका सिर पर दो ट्रंक उठाये हुए था। वह कुछ समय के लिए परमेसरी की ओर ललचाई हुई नज़रों से देखता रहा और फिर पगड़ी उतारकर खुजली के मारे कुत्ते के पीछे भागने लगा। दौड़-दौड़कर आखिर वह पगड़ी से कुत्ते को बाँध कर ले आया। बार-बार उसे 'डब्बू-डब्बू' कहकर पुकारता और पुचकारता।

परमेसरी पूड़ियाँ खा चुकी, तो मिठाईवाले के पास जा खड़ी हुई। मिठाई से जब उसका जी भर गया तो फल खाने लगी। रेवड़ी वाले के साथ हँसती भी जाती और तड़ाख-तड़ाख बातें भी करती जाती।

आखिर परमेसरी ने एक पैसे की गंडेरियाँ देकर अमरीके को विदा कर दिया। अमरीका हँसता हुआ कुत्ते को गले लगाये भाग गया।

इतनी देर में गाड़ी आ गयी। सतभराई और सोहणे शाह ज[illegible]ो में नौकरों के एक डिब्बे में जा घुसे। अन्दर बैठा हुआ किसी अंग्रेज का अर्दली बहुत भन्नाया, शिकायत करने की

धमकियाँ देता रहा। सोहणे शाह ने आखिर उस से कहा – 'भलेमानस ! हम क्या कभी किसी गाड़ी में चढ़े हैं ?' और वह चुप हो गया। फिर बैरे ने उन्हें समझाया कि वे द्वार और खिड़कियाँ बन्द कर दें वरना और यात्री आ जायेंगे, और डिब्बा पहले इतना छोटा था ! उसने केवल एक खिड़की खुली रहने दी; फिर उस पर भी शीशा चढ़ा दिया। 'हम अब बाहर वालों को देख सकते हैं पर बाहर वाले हमें नहीं देख सकते।' अर्दली ने सोहणे शाह को बतलाया।

सोहणे शाह उसकी बातों पर आश्चर्य करता रहा ! सतभराई भी सोचती कि ये शहरी लोग कितने चतुर होते हैं। कोई और मुसीबत का मारा उस डिब्बे में घुसे तो उसका क्या बिगड़ता था। चाहे जगह कम थी, किन्तु क्या किसी को गाड़ी में घर बसाना था। रात ही काटनी थी, कष्ट में भी गुजर जाती और आराम में भी।

सतभराई सोच ही रही थी कि वह क्या देखती है, उसके सामने तेज-तेज डग भरता, मछली की तरह तड़पता हुआ कुलदीप किसी को ढूँढ रहा है। खोजता हुआ आगे निकल गया। इनका डिब्बा कोई आम यात्रियों का डिब्बा थोड़े ही था। कुलदीप ने उस डिब्बे की ओर ध्यान न दिया। और यदि वह ध्यान भी देता तो अर्दली ने अभी तो कहा था कि बाहर वाले उसके भीतर नहीं देख सकते थे। उस शीशे में से अन्दर वाले लोग ही बाहर की वस्तु देख सकते थे। पूरी गाड़ी देखता कुलदीप फिर वापस आया। सतभराई कुछ इस तरह बैठी थी कि खिड़की में से बाहर घूमते हुए लोगों को केवल वह देख सकती थी, अन्दर के अन्य लोग नहीं। सोहणे शाह अब फिर अपने विचारों में डूब गया था। सिर झुका कर न जाने क्या कुछ सोच रहा था।

तेज-तेज कदम, फटी-फटी आँखें, अत्यन्त विकलता में कुलदीप फिर पास से गुज़र गया। इस बार तो खिड़की से उसका कंधा भी छू गया।

सतभराई वैसी की वैसी अपनी जगह पर बैठी रही।

कुलदीप के वहाँ से गुज़र जाने के थोड़े समय बाद सतभराई ने सोचा – यदि वह फिर इस ओर आया, यदि वह इस खिड़की के पास से फिर गुजरा तो मैं चुपके-से द्वार खोलकर बाहर चली जाऊँगी और उसे समझा दूँगी।

'कुलदीप ! मुझे माफ़ कर दो। मैं चचा का कहा नहीं टाल सकती। तुमसे बेहद शर्मिंदा हूँ, चोरों की तरह भाग कर चली आयी !'

और फिर सतभराई फूट-फूटकर रोने लगी।

आखिर वह खिड़की के पास जा बैठी।

कुछ समय बाद उसने शीशे का पट भी खोल दिया, किन्तु कुलदीप फिर उधर से न गुजरा। घण्टी बजी, सीटी हुई, झंडी हिली और गाड़ी चल दी।

कुछ दिन और फिर लोग पटियाला और फरीदकोट जाने को तैयार हो गये।

कैम्प में बूढ़े थे जिनके बिस्तर किसी को बाँधने थे। विधवाएँ थीं जिन्होंने दोबारा चीथड़े इकट्ठे कर लिये थे, भला औरत कब कोई कपड़ा पीछे छोड़ सकती है ? कई शरणार्थी सरकारी वस्तुएं लौटा देना चाहते थे, उन वस्तुओं को लेकर जमा करवाना था। कई शरणार्थी सरकारी वस्तुएँ साथ ले जाना चाहते थे, उनसे वे वस्तुएँ प्राप्त करनी थीं।

पोठोहार की हवा छोड़ते हुए, पोठोहार का पानी छोड़ते हुए, पोठोहार की मिट्टी छोड़कर जाते हुए, पोठोहार में बसने वालों के हाथ-पाँव ठण्डे होने लगे।

सारे कैम्प में एक कोलाहल था, एक शोर-सा था। लोग एक-दूसरे को आवाज़ें दे रहे थे, झुँझला रहे थे। बच्चों ने चीत्कार मचा रखा था। कोई सरकारी अफसर प्रसन्न थे कि चलो मुसीबत से छुटकारा हुआ, किन्तु कई सोचते कि जिस प्रकार भी सम्भव हो इन लोगों को यहाँ रख लिया जाये। शरणार्थी होने के कारण उनकी जीविका भी बनी हुई थी, कैम्प में काम करने के कारण उन्हें कई प्रकार की सुविधाएँ मिली हुई थीं; कपड़ा मिल जाता था, दूध मिल जाता था, अनाज मिल जाता था, दवा मिल जाती थी।

रावलपिण्डी के राजनीतिक दलों के नेता सोचते कि जाने से पहले एक जलसा किया जाये।

किन्तु गाड़ी सायंकाल जाने वाली थी और अलग-अलग जलसे करने की सरकार भी आज्ञा नहीं देती थी। इसलिए डिप्टी-कमिश्नर से मिलकर यह निर्णय हुआ कि जलसा एक ही किया जाय, जिसमें हर संस्था के प्रतिनिधि बोलें। प्रत्येक नेता कह रहा था कि जलसा अवश्य होना चाहिए, विदाई के भाषण दिए जायें।

आखिर जलसा हुआ। रावलपिण्डी के ज़िले का डिप्टी कमिश्नर इस जलसे का सभापति था। वही डिप्टी-कमिश्नर जिसके कार्यकाल में प्रलय आई, यह तूफ़ान उठा।

सबसे पहले मुस्लिम लीग का एक नेता बोला। अपने भाषण में मौलवी साहब ने बार-बार इस बात पर ज़ोर दिया – 'मुस्लिम लीग पाकिस्तान जरूर बनाना चाहती है किन्तु पाकिस्तान में प्रत्येक धर्म के लोग रह सकेंगे। पाकिस्तान ऐसी इस्लामी रियासत नहीं होगी जिसमें गैर-मुस्लिमों को केवल मुस्लिम बन कर रहने का अधिकार हो।...लेकिन अब क्योंकि तुमने जाने का संकल्प कर लिया है, इसलिए मेरे हिन्दू और सिक्ख हमवतनो ! मेरी यह दुआ है कि तुम जहाँ भी जाओ खुश रहो ! जहाँ जाकर तुम आबाद होओ, वहाँ तुम्हें अपने वतन की हवा आती रहे। नाखून से माँस कभी अलग नहीं होता, चोली दामन का साथ कभी नहीं छूटता, हम फिर मिलेंगे, मुझे यकीन है कि हम जरूर मिलेंगे। खुदा हाफिज़ !'

उसके बाद हिन्दू महासभा का एक नेता बोला, जिसकी राय में हिन्दू और सिक्ख कम गिनती वाले प्रदेश से जा रहे थे। वे अपने पीछे रहने वाले भाइयों के लिए उस जगह रहना और कठिन बना रहे थे। पर क्योंकि अब उन्होंने वहाँ से चले जाने का फैसला कर लिया था,

इसलिए उसकी शुभ कामनाएँ उनके साथ थीं।

अकाली नेता ने कहा – 'जहाँ हम जायेंगे वहीं पोठोहार बन जायेगा। जिन लोगों में हम जाकर रहेंगे, वहाँ अच्छे रहन-सहन, सुथरे जीवन का उदाहरण बनकर रहेंगे। हमें वक्ती मुसीबतों से ऊपर उठना चाहिए। हम तो साँझ-सवेरे यही गाते हैं – राज करेगा खालसा, आकी रहे न कोय! हम गुरु गोविन्दसिंह के इस स्वप्न पर फूल चढ़ाते हैं, हम सम्पूर्ण संसार का भला चाहते हैं।'

कांग्रेस का नेता अन्त में बोला। उसने गाँधी जी की अहिंसा की चर्चा की, प्रसिद्ध काँग्रेसी नेताओं के भाषणों में से सुन्दर उद्धरण सुनाये, हिन्दुस्तान के प्रति श्रद्धा प्रकट की। यह बताया गया कि अमुक प्रसिद्ध नेता की इन फसादों के सम्बन्ध में क्या सम्मति थी। यह बताया गया कि हिन्दुस्तान कितना महान् देश है; बाहर के देश इस देश की ओर किस तरह गर्व भरी आँखों से देख रहे थे। हिन्दुस्तान को संसार-भर में शान्ति-स्थापना के लिए क्या-क्या कुछ करना था!

और डिप्टी-कमिश्नर ने फिर जलसे की समाप्ति की।

सारा दिन कैम्प के कामों में व्यस्त कुलदीप जैसे सब-कुछ भूल जाता, किन्तु जब उसे अवकाश मिलता, वह फिर उन्हीं उलझनों में डूब जाता।

लायलपुर किसी और दिशा में है और पटियाला किसी और दिशा में। फिर किसी को यह भी तो पता नहीं कि सतभराई लायलपुर ही गयी है। सोहणे शाह ने चाहे राय बदल ली हो! यदि वह मुझे स्टेशन पर मिल जाती तो मैं उसका दिल टटोलकर देख लेता, फिर चाहे मुझे उम्र-भर उसकी प्रतीक्षा करनी होती।...इस प्रकार केवल एक रात में कोई क्योंकर बदल सकता है? कोई अपने वचन क्योंकर भूल सकता है? मैंने सोचा था, राख में से फूल-पत्ते उग पड़ेंगे, मैंने खंडहरों की वीरानी में गीत सुनने की चेष्टा की, मैंने नक्षत्रों की गति बदलनी चाही।

नहीं, नहीं, नहीं, मैं उससे अवश्य मिलूँगा। मैं पटियाला नहीं जाऊँगा, पटियाला में मेरा कौन है? मैं लायलपुर जाकर भी वही कुछ कर सकता हूँ जो पटियाला में। मैं लायलपुर की गली-गली, गाँव-गाँव ढूँढूगा, लायलपुर में मेरा चचेरा भाई...

किन्तु मैं फिर वही क्यों सोच रहा हूँ जो शायद सतभराई को पसंद नहीं? यदि कुछ कहना होता तो वह एक पल के लिए आकर मुझसे अवश्य मिल जाती, मुझे समझा जाती, मुझे अपनी बेबसी से सूचित कर जाती।

इतनी देर में लारियाँ आ गयीं। लोग उन पर चढ़ गये। उन्हें लाख समझाया गया कि जाना तो सभी को है, लारियाँ किसी को छोड़कर नहीं जायेंगी, किन्तु कैम्प से उकताए हुए लोग कब मानने वाले थे। लारियों ने कई फेरे लगाये। कुलदीप और उसके साथी स्वयंसेवकों ने दुर्बलों की, बूढ़ों की हर प्रकार से सहायता की – सामान चढ़ाने में, उतारने में। कन्धों पर उठा-उठाकर बहुतों को लारियों में बिठाया गया और उतारा गया।

जाते समय शरणार्थी जैसे अपने-अपने तम्बू में झाड़ू दे गये। टूटे हुए हुक्के, पुराने पंखे, गोरों की बैरकों में से उठाए हुए टीन के डिब्बे, बोरियों के फटे हुए टुकड़े, तम्बू के कुतरे हुए

टाट, रस्सियाँ, बेकार खूँटे, अखबारों की रद्दी, घिसे हुए बर्तन, टूटे हुए चूल्हे, फूँकनियाँ, चिमटे जो कुछ नज़र आया, उठाकर ले चले । एक अधेड़ आयु की औरत को कुलदीप ने देखा, गोबर अपने साथ बाँध रही है, ताकि ठिकाने पर पहुँचकर चौका लीप-पोत कर रोटी पका सके ।

और ऐसे शरणार्थी भी थे जो चलते समय पोठोहार की मिट्टी साथ ले चले । अपने देश की मिट्टी ! सोहणे शाह ने भी यूँ ही किया था ।

लोग अपने देश की यादगार, पोठोहार की जूतियाँ साथ ले जा रहे थे, पोठोहारी लुंगियाँ साथ ले जा रहे थे । पोठोहार की यादगार, मधुर पोठोहारी बोली अपने साथ ले जा रहे थे, मालवा में संगीत का-सा जादू करने के लिए ।

पोठोहारिनें अपना प्रदेश छोड़कर जा रही थीं, ऊँचे क़द की बड़ी-बड़ी आँखों वाली, जिनके सिर से दुपट्टे ढुलक-ढुलक पड़ते थे । पोठोहारी पुरुष जा रहे थे – पुनर्जीवित होने के लिए, दोबारा आबाद होने के लिए, महान् धारणाएँ लिये हुए ! पोठोहारी बालक जा रहे थे, छोटे से बड़े होने के लिए, बड़े होकर बड़े-बड़े काम करने के लिए ।

गाड़ी रात गये आयी । पोठोहारिनों का कैम्प स्टेशन पर इस प्रकार इकट्ठा था जैसे किसी ने शहद की मक्खियों का छत्ता छेड़ दिया हो । मिठाई वालों के थाल खाली हो गये, आलू-चने वाले कभी के अवकाश पा चुके थे, फलों की रेढ़ियाँ, अखबार, मक्खियों की गन्दी की हुई पुरानी पुस्तकें, प्रत्येक वस्तु पर शरणार्थी भूखों की तरह टूट पड़े ।

'भापा, क्या हाल है ?'

'मज़ा है, यार !'

'अरी ! मैंने मूँगफली मँगवाई थी, लेकिन उसने अच्छी भुनी हुई नहीं दी !'

'हाँ री ! मेरे चनों में भी कंकर-ही-कंकर थे, मैंने तो कौवों को खिला दिये !'

'ओ रामिआ ! ओ यार इधर आ, अड्डी-टप्पा खेलें !'

'जा बे जा ! मैं लड़कियों के खेल नहीं खेलता !'

और इस प्रकार की बातें सुनकर आते-जाते लोग सोचते ये किस प्रकार के शरणार्थी थे, पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे !

26

सतभराई हैरान थी, गाड़ी कैसे चलती थी ! कुछ समय चलती और फिर रुक जाती ।

रावलपिंडी से तो ठीक चली । कई स्टेशनों पर रुकी और कई स्टेशनों पर न रुकी । जेहलम तक बेखटके आ गयी । जेहलम से निकलते ही लगभग चार मील की दूरी पर रुक गयी । लोगों ने बाहर झाँककर देखा । किसी की समझ में कुछ न आता । दस मिनट तक खड़ी रहकर फिर चल पड़ी । कोई पाँच मील के बाद फिर रुक गई । यात्रियों ने देखा कि गार्ड दौड़ता

हुआ एक डिब्बे की ओर आया; वहाँ एक भीड़ लगी हुई थी। इस प्रकार कोई आध घंटे तक कोलाहल मचा रहा। गाड़ी फिर चल पड़ी। लगभग पचास गज ही चल पायी होगी कि फिर 'चीं-चीं' करती हुई रुक गयी। फिर शोर उठा। फिर लोग दौड़-दौड़कर उस डिब्बे की ओर गये, फिर गार्ड उधर दौड़ता हुआ आया।

सतभराई के होश उड़ गये, जब उसने 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे सुने। गाड़ी रुकी रही, रुकी रही, नारे और ऊँचे होते रहे। सोहणे शाह के चेहरे पर ठीक वही आतंक छा रहा था जो उसके पागल हो जाने के दिन सतभराई ने देखा था। अंग्रेज़ अफ़सर का अर्दली जब साथ के डिब्बे में अपने मालिक से मिलने गया तो सोहणे शाह पसीने-पसीने हो गया। सोहणे शाह ने क्या कुछ नहीं देखा था! ईश्वर उसे और क्या दिखाना चाहता था? दिल-ही-दिल में ईश्वर से प्रार्थनाएँ कर रहा था, हाथ जोड़ रहा था।

गाड़ी किसी बीहड़ में खड़ी थी। 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे ज्यों-ज्यों ऊँचे होते जाते, त्यों-त्यों भीड़ बढ़ती जाती।

सतभराई के चेहरे पर आतंक की छाप देखकर सोहणे शाह पछताने लगा कि वह उसे कुलदीप से क्यों छीनकर ले आया था। सतभराई कितनी भारी ज़िम्मेदारी थी।

इतने में एक हाथ में पिस्तौल पकड़े हुए मुसलमान अर्दली लौट आया।

'चचा, तुम रत्ती-भर फिक्र न करो और बहन, तुम भी निश्चिन्त रहो। इंशाअल्लाह तुम्हारी ओर कोई आँख उठाकर नहीं देख सकेगा।' और फिर उसने बताया कि उसके मालिक के पास राइफ़ल है जिसे भरकर वह साथ की खिड़की में बैठा हुआ है, और जो पिस्तौल उसके हाथ में है उसमें पूरी सात गोलियाँ हैं, और कितनी ही गोलियाँ उसकी जेब में हैं।

वह खिड़की के पास सतभराई वाली जगह पर आकर बैठ गया।

'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे और ऊँचे होते जा रहे थे। 'ले के रहेंगे पाकिस्तान' के नारे और ऊँचे उठ रहे थे। फिर कुहराम मच गया।

'खिज़र-वज़ारत तोड़ दो! खिज़र-वज़ारत तोड़ दो!!'

और अर्दली ने सोहणे शाह और सतभराई को समझाया, 'कहते हैं आजकल कोई खिज़र पंजाब का बड़ा वज़ीर है और मुस्लिम लीग वाले उसकी जगह पर किसी दूसरे को बड़ा वज़ीर बनाना चाहते हैं। सुसरों से यह पूछो कि हम गरीबों को इससे क्या? हमें क्यों खराब करते हो? एक नवाब गद्दी से उतरेगा और दूसरा नवाब उस गद्दी पर बैठ जायेगा! हमें क्या?'

सोहणे शाह को याद आया, इस प्रकार का झगड़ा उसने भी अखबार में पढ़ा था।

'एक जागीरदार नहीं रहेगा तो दूसरा आ जायेगा। एक रईस नहीं रहेगा तो दूसरा आ जायेगा, लोगों की लूट-खसोट तो ज्यों-की-त्यों बनी रहेगी।'

सतभराई हैरान थी कि बड़े लोगों में रहकर अर्दली की आँखें किस प्रकार खुल गयी थीं।

इतनी देर में कोलाहल ठंडा पड़ गया। गाड़ी ने सीटी दी और फिर चल पड़ी।

सोहणे शाह ने ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दिया। सतभराई ने सन्तोष की साँस ली।

गुजरात पहुँचने तक शाम हो गयी। न जाने कितनी बार गाड़ी को रुकना पड़ा, कितनी

बार बिल्कुल वैसा ही शोर मचा। कितनी बार डिब्बों में बैठे हुए सवारियों के दिल धड़के, पसीने आए, ईश्वर के आगे हाथ पसारे गये।

बात वास्तव में यह थी कि रास्ते में स्टेशनों पर गाड़ी में कुछ ऐसे लोग आकर बैठ गये, जो जब जी चाहता गाड़ी की ज़ंजीर खींच कर उसे रोक लेते। न किसी के समझाने पर वे समझते, न किसी के रोकने पर वे रुकते, सारा समय इस तरह की बाधा डालते रहे।

गाड़ी गुजरात स्टेशन पर खड़ी रही, खड़ी रही। पुलिस आयी, रेलवे के कर्मचारी आये। ज़ंजीर खींचने वालों से लोग कुछ इस प्रकार भयभीत थे कि कोई यह बताने का साहस न करता कि ज़ंजीर किसने खींची थी। पुलिस ने डराया, धमकाया, किन्तु व्यर्थ।

कई गाड़ियाँ उधर से आयीं और गुज़र गयीं केवल इस गाड़ी को रुके हुए रात हो गयी।

आखिर पूछते-पूछते, खोज लगाते-लगाते पुलिस को पता चल गया और शरारत करने वालों के तीन-चार व्यक्तियों को उन्होंने बंदी बना लिया। इस बार बहुत शोर मचा, कई नारे लगाये गये, किन्तु बन्दूक ताने हुए सिक्ख थानेदार उनको पकड़कर ले गया। अभी शोर कम नहीं हुआ था कि गाड़ी चला दी गयी।

शरारत करने वाले मुसलमान युवकों को सन्देह था कि हिन्दू या किसी सिक्ख ने शिकायत की है। ज्यों-ज्यों गाड़ी चलती गयी उनका सन्देह क्रोध में बदलता गया। स्टेशन से गाड़ी निकली ही थी कि परस्पर तू-तू मैं-मैं हो गयी। लगभग दो मील तक खिंचाव बढ़ गया। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगने लगे और इन नारों के जवाब में सिक्ख गाने लगे – 'राज करेगा खालसा, आकी रहे न कोय!'

गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे में पार्टियाँ बन गयीं। यदि मुसलमान खिज़र हयात खाँ को बुरा कहते तो हिन्दू और सिक्ख ममदोट को गालियाँ देने पर उतर आये। सेकण्ड क्लास के डिब्बे में उसूल पर विवाद छिड़ गया। मुसलमान कहते थे कि पंजाब में मुस्लिम लीग ही अकेली बड़ी पार्टी है। हिन्दू और सिक्ख कहते कि लोगों की अधिक संख्या तो खिज़र हयात के साथ है। मुसलमान न्याय पर ज़ोर देते; हिन्दू-सिक्ख बार-बार सिद्धांत की बात करते। इंटर क्लास और थर्ड क्लास के डिब्बे में गाली-गलौज आरम्भ हो गयी।

रात हो गयी, काली और अँधेरी रात!

आखिर लाइन के साथ मुसलमानों के एक गाँव के पास पहले गाड़ी धीमी हुई और फिर रुक गयी।

गाड़ी के रुकते ही 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के गगनभेदी नारे लगने आरम्भ हुए। साथ के मुसलमानी गाँव में से पहले एक आवाज़ आयी, फिर एक और, फिर एक और, आखिर धीरे-धीरे सारा गाँव गँड़ासे, भाले, बेलचे, बन्दूकें और बारूद लेकर गाड़ी पर टूट पड़ा। मार-धाड़ आरम्भ हो गयी।

अंग्रेज़ अफसर अपने कमरे में बन्दूक ताने बैठा रहा। अंग्रेज़ अफसर का मुसलमान अर्दली सात गोलियों वाला पिस्तौल पकड़े सोहणे शाह और सतभराई को हौसला देता रहा।

सोहणे शाह ने फिर बच्चों के क्रन्दन सुने, बूढ़ों का चीत्कार सुना, नौजवानों की

हृदयविदारक 'हाय' उसके कानों में पड़ी, स्त्रियों की दया के लिए भीख की आवाज़ बार-बार ऊँची उठती और बार-बार डूब जाती।

ऐसा मालूम होता था जैसे फसादियों ने सारी गाड़ी का अनुमान लगाया हुआ था। कोई भी व्यक्ति अंग्रेज़ अफसर और उसके अर्दली के डिब्बे की ओर न फटका।

सतभराई ने बन्दूकें चलती हुई सुनीं। सतभराई ने आवाज़ों से, चीत्कार से अनुमान लगाया कि कब किसी पर छुरे से वार किया गया था, कब किसी को गँडासे से काटा गया था, कब किसी स्त्री के सतीत्व पर हाथ डाला गया था, कब किसी बच्चे को उसकी माँ की छाती से अलग करके धरती पर पटका गया था, भाले पर उछाला गया था!

मारधाड़ के पश्चात् फसादियों ने आराम से हिन्दू व सिक्ख यात्रियों का माल-असबाब उतारा। लाशों के टुकड़ों को दोबारा गाड़ी के डिब्बों में फेंका। अच्छी तरह सफाया करने के बाद 'खुदा हाफिज़' करते हुए उन्होंने ड्राइवर को गाड़ी चलाने के लिए कहा! सदा की भाँति पहले गाड़ी ने सीटी दी और फिर भक्-भक् धक्-धक् करती हुई चल पड़ी। अभी गाड़ी लगभग पचास कदम गयी होगी कि सतभराई की नज़र सहसा गाड़ी के बाहर जा पड़ी – दुपट्टे से मुँह और हाथ बाँधे हुए एक नौजवान लड़की को कन्धों पर डाले एक फसादी गाँव को वापस जा रहा था। रक्त में रंगे हुए उसके फौजी बूट उसके पीछे चिह्न छोड़ते जा रहे थे, बड़े-बड़े, ताज़ा खून के निशान। कन्धों पर रूप का बोझ उठाए हुए फसादी किस हौसले से कदम उठा रहा था!

फसादी सोच रहा था कि उस कुँवारी लड़की को अपने घर ले जाये, जैसे अन्य फसादी अपना-अपना माल अपने-अपने घर ले गये थे। पर उसके घर में उसके बच्चों की माँ थी, उसके बच्चे थे, बिल्कुल उस लड़की जैसी एक भरपूर नौजवान बेटी थी। फसादी सोच रहा था, उसके पल्ले अपने बच्चों, अपनी पत्नी का पेट भरने के लिए कुछ नहीं था। एक और मुँह वह अपने घर में क्योंकर ले जाये? फसादी सोच रहा था कि सारी आयु वह बच्चे पैदा करते थक गया था। फौज में जहाँ कहीं भी वह गया, उसने पराई स्त्रियों का स्वाद जी भरकर चखा था। अन्त में वह इसी नतीजे पर पहुँचा कि यह काम कुत्ते की हड्डी के समान है। इसका परिणाम लज्जा और अपमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और वह सोचता उस लड़की को उसने क्यों उठा लिया था? उसका गँड़ासा उस लड़की की गरदन पर क्यों नहीं चला था? उस लड़की की आँखों में क्या था, जिसे देखकर उसके हाथ-पाँव फूल गये थे? फिर उसने उसका मुँह बाँधा, फिर दुपट्टे से उसने उसके हाथ बाँधे। जब लोग सोना, वस्त्र और तरह-तरह की दूसरी वस्तुएँ लूटते रहे, वह उस लड़की को कन्धों पर उठाये हुए देखता रहा, देखता रहा। गाड़ी ने सीटी दी, गाड़ी चल पड़ी, फिर भी वह लहू के एक गढ़े में खड़ा था। फिर सहसा वह घर की ओर चल पड़ा। उसके खून से लिथड़े पाँवों के निशान धरती पर अंकित हो रहे थे। उसके कन्धों पर वह बोझ था या उसके हृदय का बोझ था कि वह नपे-तुले कदम उठा रहा था, सोच-सोचकर, फूँक-फूँककर।

फसादी सोचता कि वह उस लड़की का क्या करे।

उसको बेटी बना ले ?

उसके तो पहले ही कई लड़कियाँ थीं ।

उसे अपनी पत्नी बना ले ?

अब वह अपनी सफेद दाढ़ी में कहाँ धूल डाले !

उसे वहीं फेंक दे ?

एक दुखियारिन को एक फौजी क्योंकर अकेली छोड़ सकता है ?

फिर वह क्या करे ?

फिर वह क्या करे ?

फिर वह क्या करे ?

क्या करे ?

क्या करे ?

आखिर उसे मस्जिद के मौलवी के बोल याद आये – काफिरों की दौलत लूटना, काफिरों की बेटियों और बहनों को छीनना, काफिरों के घरों को आग लगाना, काफिरों का नामोनिशाँ मिटाना सवाब है । फसादी ने फैसला किया कि वह उस लड़की को मौलवी साहब के हवाले कर देगा ! और आप-ही-आप उसके कदम मस्जिद की ओर चल पड़े ।

27

अगले दिन लाहौर के इस्लामी अखबारों ने इस प्रकार की खबरें प्रकाशित कीं –

एक मुसलमान अर्दली की वीरता !

मुसलमान कैसे अपनी जान पर खेल सकते हैं !

मुसलमान अर्दली ने अपने अंग्रेज मालिक के पिस्तौल से एक सिक्ख लड़की और उसके बूढ़े बाप को रात-भर जागकर बचा लिया ।

रावलपिंडी की ओर से आने वाली गाड़ी में जब हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे को हर डिब्बे में कत्ल कर रहे थे, एक-दूसरे का माल लूट रहे थे, एक मुसलमान पिस्तौल पकड़े हुए एक सिक्ख लड़की और उसके बाप की रक्षा कर रहा था । रावलपिंडी से आती हुई एक गाड़ी में पाकिस्तान ज़िन्दाबाद के नारे लगाने पर विरोध किया गया । एक और हिन्दू-मुस्लिम फसाद ! सिक्खों ने मुसलमान यात्रियों पर तलवारों से हमला कर दिया । अपने सामने अपने मुसलमान भाइयों का कत्ल होता हुआ देखकर पाकिस्तान के एक परवाने का दिल डाँवाडोल न हुआ, एक भरपूर जवान सिक्ख लड़की और उसके बाप को बचा लिया गया ।

सतभराई, सोहणे शाह और उस अर्दली के चित्र सब मुसलमान अखबारों ने प्रकाशित किये ।

हिन्दू और सिक्ख अखबारों ने सत्य पर जितना रंग चढ़ सकता था, चढ़ाया।

पोठोहार की घटना फिर दोहरायी गयी –

मुस्लिम लीग की गुंडागर्दी का एक नग्न चित्र !

हिन्दू और सिक्खों से भरी हुई गाड़ी को लहू से रंग दिया गया। रात के अँधेरे में गुजरात के पास मुसलमानों के गाँव ने एक 'डाउन ट्रेन' को लूट लिया। हिन्दू और सिक्ख यात्रियों को एक-एक करके कत्ल कर दिया गया। अनुमान लगाया जाता है कि लगभग पाँच सौ निर्दोष हिन्दू और सिक्ख शहीद हुए ! बच्चों को भालों पर उछाला गया। मुस्लिम लीगियों के गुंडों ने स्त्रियों का नंगा नाच फिर देखा। सारी गाड़ी में एक भी हिन्दू-सिक्ख न बच पाया। पंजाब के हिन्दुओं की गैरत की परीक्षा ! सिक्खों को मुस्लिम लीगी गुण्डागर्दी ने फिर ललकारा ! ! क्या हम चूड़ियाँ पहनकर बैठे रहेंगे ? हिन्दू और सिक्ख अपनी रक्षा के लिए सजग हो जायें ! ! !

इन खबरों के साथ हिन्दू-सिक्ख समाचार पत्रों ने अपने महान नेताओं के वक्तव्य भी प्रकाशित किये, जिनमें उन्होंने लोगों को भड़काया था।

ये समाचार-पत्र लोगों के हाथों में पहुँचे ही थे कि लाहौर में छुरेबाजी आरम्भ हो गयी, अमृतसर में आग लगायी जाने लगी।

सोहणे शाह और सतभराई को लाहौर में उतरना पड़ा था। सोहणे शाह ने सोचा कि 'शहीदगंज' के दर्शन कर चलें। और फिर शहीदगंज से वह न निकल सके।

सोहणे शाह को शहीदगंज में वह कुआँ दिखलाया गया, जिसमें मुसलमानी राज्य के समय सिक्खों को जीवित फेंक दिया जाता था ! कुएँ की तह में से बच्चों, बूढ़ों और जवानों की निकाली हुई अस्थियों को शीशे की अल्मारियों में रखा गया था। एक बड़े से तख्ते पर सिक्खों के चर्खियों पर चढ़ाये जाने, आरों से चीरे जाने, गँडासों से अंग-अंग कटवाने और भट्ठियों में जल कर भस्मीभूत हो जाने की कहानी चित्रित थी।

लाहौर में फसाद के भयानक समाचार सुनकर सारा दिन गुरुद्वारे के द्वार बन्द रहते और नंगी तलवारें लिये हुए पहरेदार पहरा देते रहते।

कभी खबर आती कि अमुक बाजार में एक हिन्दू तड़प रहा है, कभी सूचना आती कि अमुक नुक्कड़ पर कोई कत्ल हुआ पड़ा है। डब्बी बाजार में लगातार चार घण्टों तक मुसलमान और सिक्ख, तलवारों से, बन्दूकों से लड़ते रहे, दोनों और मुर्दों के ढेर लग गये, तब जाकर पुलिस वहाँ पहुँची।

हिन्दू अखबारों में कहा जाता कि हिन्दू और सिक्ख अधिक मर रहे हैं। मुसलमान अखबारों में कहा जाता कि मुसलमानों का अधिक जानी नुकसान हो रहा है। और दोनों पक्षों के गुण्डे बराबर उतरने का प्रयत्न करते रहते। मुसलमान-आबादी में यदि पाँच सिक्खों का वध किया जाता, तो हिन्दू-सिक्ख-आबादी में दस मुसलमानों को समाप्त करने की कोशिश होती।

गुरुद्वारे का सबसे बड़ा ग्रन्थी बार-बार हाथ मलता और कहता कि लाहौर में यह बीमारी

अमृतसर से आयी है। अमृतसर में कितने समय से छुरेबाजी हो रही थी, लाहौर वाले शान्त रहे, किन्तु अमृतसर के गुण्डों ने लाहौर के गुण्डों को चूड़ियाँ भिजवाईं, और जिस दिन से वे चूड़ियाँ आयी थीं यहाँ भी आग लग गयी थी। गुजरात वाली गाड़ी का तो यूँ ही बहाना था।

शाम को एक दिन सतभराई गुरुद्वारे की छत पर खड़ी सामने की सड़क पर बच्चों को खेलते देख रही थी। कुछ समय बाद एक सिक्ख डाकिया डाक लिये तेज़-तेज़ कदम उठाता हुआ आया। खेलते-खेलते बच्चे रुक गये और एक-दूसरे की ओर आँखों-ही-आँखों में संकेत करने लगे। फिर नेफों में से उन्होंने चाकू निकाल लिये और सिक्ख डाकिये पर टूट पड़े। पलक झपकते में डाकिया जैसे लहू के जोहड़ में पड़ा हुआ था, सामने दुकानदार देख रहे थे, बच्चे खून से लिथड़े हुए चाकू पकड़े भाग गये।

जैसे किसी ने चींटी को मसल दिया हो! सतभराई ने नीचे आकर सोहणे शाह को सारी बात सुनायी और बार-बार कहती, जैसे किसी ने चींटी को मसल दिया हो!

पहले कुछ दिन यूँ ही छुरेबाजी होती रही। अखबार वालों ने कुछ संख्या प्रकाशित की, किन्तु पुलिस वाले कुछ और ही कहते, बाहर लोगों की जबान पर कुछ और था, और सचाई कुछ और ही थी।

और फिर आग लगाई जाने लगी। शहर के बाहर की झोंपड़ियों से चलती-चलती यह आग शहर के गली-कूचों में आ गयी। लोग दिन में छतों पर चढ़-चढ़कर देखते। रात को बच्चों की चीत्कार, गोलियों की तड़-तड़, बमों के धमाके, आकाश से बातें करती हुई लपटें किसी को सोने न देतीं। मोहल्लों के मोहल्ले जलने लगे, दुकानों की पंक्तियाँ जलकर भस्म हो गयीं, चारों ओर आग बुझाने वाली लारियाँ दौड़ती रहतीं, घण्टियाँ बजती रहतीं। पुलिस की सीटियों और घण्टियों का शोर, बमों के धमाके, मोटरों की सरसराहट और इनमें सबसे ऊँचे 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे, 'सत-श्री-अकाल' के नारे दिल दहला देते।

एक दिन यह समाचार आया कि साथ की आबादी 'मिसरीशाह' से शहीदगंज पर हमला होगा। जितना लोग बाहर कम निकलते उतनी अफवाहें अधिक फैलतीं। 'शहीदगंज' वालों ने टेलीफोन करके पुलिस मँगवा ली। फिर किसी ने उनके कानों में फूँका कि शेष सभी स्थानों पर पुलिस से मिलकर ही तबाही हुई थी। जब फसादी आते तो पुलिस वाले उनके साथ मिलकर गोली चलाते। किन्तु मुसलमान पुलिस अब तो आ चुकी थी। 'शहीदगंज' के चारों ओर संगीनें चमकती रहतीं, बन्दूकें ताने हुए पुलिस के सिपाही चारों ओर मँडरा रहे थे और भीतर गुरुद्वारे के लोगों को ऐसे अनुभव होने लगा कि ज्यों ही अँधेरा होगा, बन्दूकों की नलियाँ उनकी ओर कर दी जायेंगी।

सन्ध्या से सवेरे तक कर्फ्यू लगा रहता। कभी-कभी किसी इलाके में दिन को भी कर्फ्यू लगा दिया जाता। जब से पुलिस को यह सूचना मिली थी कि मिसरीशाह और शहीदगंज वाले लड़ने की तैयारियाँ कर रहे थे, तीन दिन का कर्फ्यू लगा दिया गया था। लोग न बाहर सब्जी लेने के लिए जा सकते और न बाहर पानी भरने के लिए। जिन लोगों के घर में राशन खत्म था, खत्म ही रहा। बच्चों के लिए दूध न आ सका। डाकिये पत्र न पहुँचा सके।

पाठशालाएँ बन्द थीं। विद्यालय बन्द थे। बाजार बन्द थे। रेडियो-स्टेशन वाले या रिकार्ड बजाते रहते या नेताओं से शान्ति की अपील करवाते रहते, या फिर यह बताते रहते कि कहाँ फसाद हुआ था, कितने हिन्दू, कितने सिक्ख और कितने मुसलमान मारे गये थे।

सड़कें सुनसान थीं, वीरान पड़ी थीं। कहीं-कहीं पुलिस की या मिलिट्री की लारी तेज़ी से गुजर जाती; कभी-कभी कहीं लारी रुकती और पुल के नीचे या नाली में पड़ी लाश को उठाकर ले जाती।

फिर मुसलमान आबादी पर जीपों में जाकर हिन्दुओं और सिक्खों ने आक्रमण कर दिया। मुसलमान अफसरों ने खफा होकर हिन्दुओं के एक बाजार पर कर्फ्यू लगाकर और पुलिस बिठाकर गुण्डों को लूट की खुली छूट दे दी और आग लगवा दी। सारी रात यह बाजार लुटता रहा, जलता रहा। दुकानों और दुकानों के ऊपर मकानों में फँसे हुए दुकानदार चिल्लाते रहे, किन्तु किसी ने उनकी फरियाद न सुनी, कोई भी सहायता के लिए न पहुँचा। सामने पुलिस खड़ी थी। जो कोई दौड़ने का प्रयास करता, उसे गोली से उड़ा दिया जाता। बताने वालों ने बताया कि इलाके के मजिस्ट्रेट ने यह सब कुछ स्वयं वहाँ खड़े होकर करवाया था।

और मजिस्ट्रेट रात-दिन दाँत पीसता रहा, अपने भीतर का विष घोलता रहा। उसके इकलौते नौजवान लड़के पर हिन्दू-सिक्ख फसादियों ने हमला किया था। जब वह उसे अस्पताल देखने के लिए जाता, रास्ते में हिन्दुओं और सिक्खों का कुछ-न-कुछ नुकसान करवा जाता। जब वापस आता आँख के इशारे से आग लगवा देता। न जाने कितने 'काफिरों' को उसने अपने पिस्तौल से ढेर कर दिया था। न जाने कितने ही मकानों को उसके इशारे पर जला दिया गया था।

मुसलमान गुण्डे बंगले-बंगले घूमते, पेट्रोल इकट्ठा करते। जो लोग पेट्रोल न दे सकते, वे पेट्रोल खरीदने के लिए पैसे देते। एक कोठी में ताँगेवाले ने सवारियाँ उतारीं, सामने गराज में खड़ी उसे मोटर दिखाई दी, झट ताँगे में से वह पेट्रोल का डिब्बा उठा लाया और मोटर की ओर इशारा करके डिब्बा भरने के लिए उसने कहा। सिविल लाइन में रहनेवाले उस मुसलमान घराने को यह बात अजीब लगी, उन्हें तो फसादों से घृणा थी। उन्होंने तो हिन्दू और मुसलमान में कभी कोई भेद नहीं जाना था। मुसलमानों से अधिक उनकी दोस्ती हिन्दू और सिक्खों से थी। और ताँगेवाले को शायद पता नहीं था कि अब भी उनकी बैठक में एक सिक्ख मित्र और उसकी पत्नी बैठे हुए बातें कर रहे थे। ताँगेवाले ने जब घरवालों का व्यवहार देखा तो उसने ज़ोर-ज़ोर से बोलना आरम्भ कर दिया – 'हम लोग तुम्हारे लिए जान की बाजी लगा रहे हैं, हम लोग तुम्हारे लिए पाकिस्तान बना रहे हैं, हम लोग जाग-जागकर रातें काटते हैं ताकि तुम इन कोठियों में रह सको, लेकिन तुम इतनी-सी कुर्बानी नहीं कर सकते ?'

बाहर शोर सुनकर भीतर बैठा हुआ सिक्ख अतिथि खिड़की में से झाँकने लगा और ताँगेवाला शर्मिन्दा होकर चला गया।

हिन्दू और सिक्ख लड़के कालेज की विज्ञानशालाओं से तेज़ाब; और न जाने क्या-क्या कुछ ले आते और बम बनाते रहते। कई प्रकार के बम बनाना उन्होंने सीख लिया था। वे

सोचते थे कि मुसलमानों में इतनी बुद्धि नहीं थी कि वे ऐसे बम तैयार कर सकें। बड़े-बड़े सेठों ने उन्हें हज़ारों रुपये दे रखे थे।

सिक्ख घरानों में अखण्ड पाठ हो रहा था। और सिक्ख नौजवान तलवारें चमकाते रहते, कृपाणें तेज़ करते रहते, बन्दूकों के कारतूस इकट्ठे करते रहते, बहुतों ने गुप्त रूप से कई पिस्तौल मँगवा लिये थे, राइफलें मँगवा ली थीं।

जब कर्फ्यू उठाया गया, तो सोहणे शाह सतभराई को छिपाए हुए लायलपुर की गाड़ी में जा बैठा। अखबार पढ़ने वाले बताते थे कि उस ओर शान्ति थी।

28

जब वे गाड़ी से लायलपुर के स्टेशन पर उतरे तो सामने कुलदीप खड़ा था। सतभराई घबरा ही रही थी कि सोहणे शाह ने आगे बढ़कर कुलदीप को गले से लगा लिया –

'बेटा तुम कहाँ ?'

और फिर सतभराई को, कुलदीप को, और सोहणे शाह को ऐसा लगा जैसे सारी दुनिया फूल की समान हल्की हो गयी हो। चारों ओर जैसे धीमी-धीमी फुहार पड़ रही हो।

बाहर एक मुसलमान ताँगेवाले ने बन्दगी कह कर उनका सामान थाम लिया।

सोहणे शाह और सतभराई हैरान थे कि यह कैसा देश है जहाँ हाथ-भर की दूरी पर हिन्दू और मुसलमान हँस रहे हैं, खेल रहे हैं, मुसलमान मज़दूर हिन्दुओं को सलाम कर रहे हैं और उधर लाहौर में एक-दूसरे का वे नाम नहीं सुन सकते हैं।

बाज़ार में हिन्दू और सिक्ख मुसलमानों की दुकानों से सब्ज़ी खरीद रहे थे, मिर्च-मसाले की दुकानें भी मुसलमानों की थीं। चारों ओर लेन-देन और चहल-पहल वैसी-की-वैसी दिखाई देती थी। रास्ते में एक गुरुद्वारा आया; स्त्रियाँ और बच्चे अकेले गुरुद्वारे में आ-जा रहे थे। गुरुद्वारे में से कीर्तन की आवाज़ लाउड स्पीकर द्वारा बाहर सड़क पर भी सुनाई दे रही थी। सोहणे शाह के मुसलमान ताँगेवाले ने गुरुद्वारे के सामने से गुज़रते हुए क्षण-भर के लिए सिर झुका लिया, आँखें बन्द कर लीं।

कुलदीप के चचेरे भाई कुलवंत का मुसलमान आबादी में अकेला घर था।

वे अभी ताँगे से उतर ही रहे थे कि पड़ोस के मुसलमान बालक नये आये हुए मेहमानों को पास हो-होकर देखने लगे। कोई पाँच मिनट नहीं बीते होंगे कि पड़ोस की स्त्रियाँ सतभराई से मिलने के लिए आ गयीं। और जब फसादों की चर्चा छिड़ी तो सतभराई को विश्वास न आया, जो कुछ वह सुन रही थी :

'खुदा उन्हें ग़ारत करे। इन गोरों ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा।'

'यह सब कुछ अंग्रेज़ का किया-धरा है, यही हमको लड़ा रहे हैं।'

'पड़ोसी तो माँजाये होते हैं। हमारा रहन-सहन एक है, हमें कौन अलग कर सकता है ?'

'पाकिस्तान हो चाहे हिन्दुस्तान हो, हमें क्या मिल जाना है ? हमारे मर्दों को तो दफ्तरों में काम करके रोटी कमानी है।'

'और मैं जमींदारों से कहती हूँ कि क्या पाकिस्तान की धरती से ज्यादा अनाज उगा करेगा ?'

'अल्लाह, हमारे शहर वालों को सुमति दे !'

'हमारा डिप्टी कमिश्नर तो हीरा है, फरिश्ता है।'

'कल मेरा मर्द कह रहा था कि आग़ा साहब ने सब फसादियों से कहा है कि चाहे कोई हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, चाहे सिक्ख, शरारत करने वाले को गोली से उड़ा दिया जायेगा।'

सतभराई को लगता, जैसे वह स्वप्न देख रही हो, कई दिनों बाद उसके ओठों पर मुस्कान खेलने लगी, बात-बात पर उसके सिर से दुपट्टा ढुलक जाता।

सामने दालान में कुलदीप पीठ किये हुए बैठा था, सोहणे शाह बैठा हुआ था, कुलदीप का चचेरा भाई कुलवंत बैठा हुआ था, तीनों आपस में बातें कर रहे थे।

सतभराई सोचती – सोहणे शाह से कहकर वह उसी मोहल्ले में कहीं घर खरीद लेंगे, शहर के बाहर ज़मीन मोल लेंगे। लायलपुर में जहाँ कुलदीप होगा, जहाँ हिन्दुओं को यहि मालूम नहीं था कि वे हिन्दू हैं, जहाँ मुसलमानों को इसका अभिमान नहीं था कि वे मुसलमान हैं। सतभराई सोचती कि वह उसी मोहल्ले में रहेगी जहाँ मुसलमान औरतें सिक्ख पड़ोसियों के घरों में आकर हँस सकती हैं, बैठ सकती हैं। जहाँ के सिक्ख मुसलमान पड़ोसियों को 'बहन' 'बहन' कह कर पुकारते थे।

सतभराई ने देखा, कुलदीप के चचेरे भाई के घर वाले अपने मुसलमान पड़ोसियों से एकजान थे। दिन को गर्मी थी, पड़ोसियों के घर से बिजली का फालतू पंखा आ गया। एक चारपाई की आवश्यकता थी, वह सामने के घरवाले दे गये। किसी घर से छाछ आ गयी, ताज़ा अखबार पढ़ने के लिए आ गया।

यह सब कुछ देख-देख कर संतभराई को अपना गाँव याद आता, राजकर्णी याद आती, अपना अब्बा याद आता, वे खेत याद आते, वे गीत याद आते, वे दालान याद आते, वह छाँव याद आती, झूले याद आते, सावन की झड़ियाँ याद आतीं और उसका जी चाहता कि उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगें और वह जी भर के रो ले। वह आँसुओं से छलकती अपनी आँखों को ओट में जाकर पोंछने लगती। बार-बार हँसती और अपने आपको भुला देने का प्रयत्न करती।

सोहणे शाह, कुलदीप और उसका चचेरा भाई शाम को ताँगा लेकर बाहर ज़मीन देखने के लिए गये। सोहणे शाह फलों से लदे हुए बगीचों और सब्जियों से भरी हुई नहरी-भूमि को देख-देख कर अवाक् रह गया। कई स्थानों पर बिकाऊ ज़मीन के विज्ञापन पढ़ कर सोहणे शाह का जी चाहता – काश ! ज़मीन कभी गुड़-चीनी के समान बिक रही होती, तो वह रात से पहले ही उसे अपने सारे सरमाये से खरीदकर दोबारा वैसे-का-वैसा हो जाता, जैसा कि वह

अपने गाँव में था।

लोगों ने सोहणे शाह को समझाया-बुझाया कि देश में गड़बड़ है और किसी को कुछ नहीं मालूम कि क्या होने वाला है, इसलिए उसे सोच-समझ कर पैसा लगाना चाहिए, किन्तु सोहणे शाह के दिल को कोई बात न भाती। दलाल आकर उसे और ही पट्टी पढ़ाते। हिन्दुस्तान यदि स्वतन्त्र हो भी गया तो लायलपुर का इलाका जिसे सिक्खों ने परिश्रम से आबाद किया था, कैसे मुसलमानों को दे दिया जायेगा ? कई बड़े-बड़े आदमी उजड़कर लायलपुर में आबाद हो चुके थे।

सोहणे शाह सोचता कि एक बार लायलपुर की ज़मीन खरीद कर, एक बार उस पर खड़े होकर चाहे फिर उसकी आँखें बन्द हो जायें। और वह एक नशे में, एक मस्ती में सारा दिन इधर-से उधर और उधर-से-इधर घूमता रहता।

लायलपुर के खेतों को देखकर सोहणे शाह अपना सब दुःख भूल गया। उसका दिल कहता कि इस बर्बादी में भी कोई भेद है। वह बार-बार अपने आपको समझाता और बार-बार आकाश की ओर देखकर मुस्करा उठता। उसके पास इतना रुपया पड़ा था। वह उसे सँभाल-सँभालकर थक गया था। वह सोचता, सारी की सारी ज़मीन वह सतभराई के नाम कर देगा और फिर सतभराई के हाथ पीले कर देगा।

और उधर सतभराई और कुलदीप एक दूसरे के पास बैठे सपने देखते रहते।

बैठे-बैठे कभी कुलदीप उदास हो जाता। उसको तो शरणार्थियों की गाड़ी को पटियाला पहुँचाना था, उसे तो लोगों को अपने-अपने ठिकानों पर भिजवाना था। और यहाँ वह कुछ और ही सपने देख रहा था।

बिल्कुल इसी प्रकार की एक उलझन सोहणे शाह के हृदय में कभी-कभी सिर उठाती। सतभराई उसके मित्र की धरोहर थी और वह इस प्रकार के विचारों में डूबा हुआ कभी-कभी कुलदीप से डरने लगता। कुलदीप की आँख से आँख न मिलाता। दिन भर में एक बार भी उससे बात न करता। उससे मिलने से कतराता रहता।

सतभराई सयानी हो गयी थी। वह कुलदीप की कठिनाइयाँ भी समझती थी और सोहणे शाह की उलझनों को भी पहचानती थी।

कुलदीप साँझ-सवेरे पाठ करता। कुलदीप जितना अधिक सहारा पूजा-पाठ में ढूँढ़ता, उतना ही सतभराई को उससे भय लगने लगता।

यदि कुलदीप को पता चल गया कि सतभराई का अब्बा कौन है !

यदि मोहल्ले वालों को बता दिया जाये कि सतभराई सोहणे शाह की लड़की नहीं है !

क्या ये पड़ोस वाले इतने विशाल-हृदय होंगे ?

ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते, त्यों-त्यों कुलदीप सतभराई के समीप आता जाता।

कभी-कभी कुलदीप को ऐसा जान पड़ता — सतभराई उससे खिंची-खिंची-सी रहती है। कभी-कभी कुलदीप को ऐसा लगता, सोहणे शाह उससे खिंचा-खिंचा रहता है। ऐसे समय में कुलदीप का दिल बार-बार पटियाला भाग जाने को चाहता। पटियाला के शरणार्थियों में रह

कर उनकी सेवा में, वह सोचता, वह अपने आपको भुला देगा।

किन्तु, सतभराई का प्यार कितना प्रबल था!

29

लोग सोहणे शाह को रोकते रहे, किन्तु उसने ज़मीन और मकान खरीद लिया। कुलवन्त विस्मित होता कि बूढ़े को ज़मीन से कितना मोह है।

ज़मीन लेकर सोहणे शाह सारा दिन बाग में व्यतीत करता। बूढ़े का परिश्रम और साहस देख-देखकर पड़ोसी हैरान थे।

पीछे सतभराई घर की देख-भाल में लगी रहती। उसका कुछ समय कुलदीप की प्रतीक्षा में कट जाता, कुछ समय उसके साथ बैठकर बातों में बीत जाता।

फिर कुलवन्त से सतभराई ने पढ़ना आरम्भ कर दिया। सायंकाल जब सोहणे शाह घर लौटता और सतभराई को पुस्तकें पढ़ते देखता तो उसका मन खिल उठता।

पढ़ाते-पढ़ाते कुलवन्त सतभराई को नयी-नयी बातें बताता। किसानों और मजदूरों के अधिकार क्या थे, धर्म के बन्धन और नये समाज़ की कीमतें!

सतभराई सोहणे शाह को नित्य नयी बातें बताती, कितनी देर तक उससे विवाद करती रहती। जब कुलदीप आता तो उसके पूजा-पाठ की हँसी उड़ाती।

सोहणे शाह सतभराई के बढ़ते हुए ज्ञान और चंचलता पर प्रसन्न भी होता और आश्चर्य भी करता। कुलदीप को कभी-कभी उससे भय लगने लगता।

कुलवन्त सतभराई को धर्म के नाम पर किये गये अत्याचारों की बार-बार याद दिलाता। कुलवन्त इस बात पर हँसता रहता कि धर्म के नाम पर हिन्दुस्तान को बाँटा जा रहा है। एक भाग हिन्दुओं को मिल जायेगा और एक भाग मुसलमानों को दिया जायेगा। एक भाग का नाम होगा हिन्दुस्तान और दूसरे का पाकिस्तान! मस्जिदें बाँटी जायेंगी, मन्दिर बाँटें जायेंगे, बुरके बाँटे जायेंगे, लहंगे बाँटे जायेंगे, नथें बाँटी जायेंगी, बिंदियाँ बाँटी जायेंगी।

और यह 'बंदरबाँट'; कुलवन्त उसे बताता, कुछ दिनों में ही होने वाली है। कुलदीप कहता कि धर्म में कोई बुराई नहीं है। ईश्वर को एक मान लेना और एक ईश्वर से भय खाते रहना, अपने पड़ोसियों सें प्रेम करना और भाईचारा रखना, सत्य बोलना, यह सब कुछ धर्म की शिक्षा है। और इनमें से कोई बात भी तो बुरी नहीं है।

और जब सतभराई कुलदीप की बात सुनती, उसे ऐसा लगता, जैसे जो कुछ वह कह रहा है गलत नहीं है।

एक दिन सतभराई ने छत पर खड़े हो कर पड़ोसियों के घर में देखा कि चटाई बिछाये एक वृद्ध नमाज़ पढ़ रहा था। कितने समय तक वह वहां स्थिर खड़ी देखती रही।

उस दिन दोपहर को सतभराई कुलवन्त के पास पढ़ने नहीं गयी। बात-बात पर उसकी आँखों में आँसू भर आते। सायंकाल कुलदीप से वह छोटी-छोटी बातें पूछती रही, उसके पाठ के बारे में, उसके गुरुद्वारे के बारे में।

सतभराई को ऐसा लगता कि जैसे वह एक कोमल पक्षी हो, जिधर से हवा आती उधर ही उड़ कर चली जाती। उसे अपने आप पर दया आने लगी।

और फिर एक दिन अखबारों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि अंग्रेज़ ने हिन्दुस्तान छोड़ कर जाने का फैसला कर लिया है। हिन्दुस्तान को दो भागों में बाँट दिया जायेगा और लायलपुर पाकिस्तान में ही रहेगा।

सोहणे शाह की सम्पत्ति का मूल्य दो कौड़ी रह गया। समझदार हिन्दू और सिक्खों ने अपना कारोबार समेटना आरम्भ कर दिया। अपनी सम्पत्ति के ग्राहक ढूँढ़ने शुरू कर दिये।

सोहणे शाह कहता कि पाकिस्तान में क्या बुराई है। लेकिन फिर उसका दिल डाँवाडोल हो जाता।

फिर सुनने में आया कि अपील की जा रही है। लाहौर भी हिन्दुओं और सिक्खों को मिल जायेगा। लायलपुर का मुरब्बों का इलाका भी हिन्दुओं और सिक्खों को मिलेगा और 'ननकाणा साहब' भी हिन्दुस्तान में आयेगा।

अखबारों में नित्य नयी खबरें छपतीं। लायलपुर का ईमानदार डिप्टी कमिश्नर नित्य-नये ढंग से हिन्दू-मुस्लिम एकता बनाये रखने की सोचता रहता। मुहल्लों में 'शान्ति सभाएँ' बनाई गयीं, कहीं तनिक सी शरारत होती तो पल भर में उसे वहीं-का-वहीं दबा दिया जाता। साम्प्रदायिक नीति वाले अखबारों का नगर में प्रवेश रोक दिया गया। हर गुंडे पर ध्यान रखा जाने लगा। बहुत से बदमाशों को नजरबन्द कर लिया गया।

फिर भी प्रत्येक अखबार में इतने भड़काने वाले वक्तव्य छपते, इतना विष होता कि पाठकों का लहू खौलने लगता, चाहे वह हिन्दू हो, सिक्ख हो या मुसलमान। किन्तु डिप्टी कमिश्नर ने पक्का निश्चय कर लिया था कि मैं अपने शहर में खून की एक बूँद भी नहीं गिरने दूँगा।

जुलाई का महीना, कुछ वर्षा, कुछ कोलाहल और कुछ आतंक में बीत गया।

अगस्त का महीना आरम्भ हुआ। पन्द्रह अगस्त को देश-विभाजन होना था, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की नयी सरकारें स्थापित की जानी थीं, जिन पर अंग्रेज़ का बिल्कुल अधिकार नहीं होगा।

अगस्त के पहले पांच दिन तो शान्ति से गुजर गये। सरकारी दफ्तरों के हिन्दू-सिक्ख तबदील होकर हिन्दुस्तान जा रहे थे और उधर से मुसलमान इधर पाकिस्तान आ रहे थे।

अगस्त की छः तारीख को दिन के समय भी सारी सड़कें सूनी-सूनी-सी थीं। रात को रेडियो पर बताया गया और फिर प्रातःकाल लोगों ने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि सारे पंजाब में फसाद की आग भड़क उठी थी। लाहौर में खून के दरिया बह रहे थे, अमृतसर में लाशों के अम्बार लगे हुए थे।

लायलपुर का फरिश्ता-सा डिप्टी कमिश्नर सवेरे से सड़कों पर घूम रहा था। स्थान-स्थान

पर सिपाहियों का पहरा लग रहा था, उचित आदेश दिये जा रहे थे।

लायलपुर तो बचा रहा, किन्तु उसके आस-पास गड़बड़ शुरू हो गयी। आरम्भ में तो इक्के-दुक्के आक्रमण होते रहे, किन्तु कुछ दिनों में गाँव; गाँव पर टूट पड़े! मारधाड़ और लूट-खसोट शुरू हो गयी।

पाँच अगस्त के बाद सोहणे शाह को उसके खेतों पर न जाने दिया गया। पाँच अगस्त के बाद कुलवन्त कुछ ऐसा अपने काम में उलझा कि उसने कभी इधर मुँह न किया। पाँच अगस्त के बाद दिन भर गुरुद्वारे में बैठा हुआ कुलदीप न जाने क्या-क्या सोचता रहता।

लाहौर और अमृतसर से तो बहुत ही भयानक समाचार आ रहे थे। मोहल्लों के मोहल्ले जलाये जा रहे थे, परिवारों के परिवार मारे और काटे जा रहे थे। और लायलपुर के लोग जो जाना भी चाहते, अब किसी रास्ते से नहीं निकल सकते थे।

फिर गाँव के गाँव उजड़कर शहरों में आ गये। ग्रामीणों ने आकर अपनी आपबीती गुरुद्वारों और मन्दिरों में सुनाई। सारे शहर में कुहराम मच गया। चोरी-छिपे तलवारें तेज़ की जाने लगीं, छुरे चमकाए जाने लगे। बमों का मसाला एकत्र किया जाने लगा, बन्दूकें और पिस्तौलें साफ़ की जाने लगीं।

लायलपुर के खालसा कालेज में एक शरणार्थी कैम्प खोल दिया गया। वहाँ इलाके भर के लोग आकर अपना सिर छिपाते।

शहर के बड़े-बड़े रईसों ने हवाई जहाजों में बैठकर भागना आरम्भ कर दिया। पाठशालाएँ बन्द हो गयीं। मुसलमान आबादी को हिन्दू और सिक्खों से भय था, और हिन्दू-सिक्ख आबादी मुसलमानों से भय खाती थी।

और फिर समाचार आने लगे उन मुसलमान सम्बन्धियों के, जिन्हें पूर्वी पंजाब में लूटा गया, जिनके घरों को, जिनकी सम्पत्ति को जलाया गया, जिनकी पत्नियों, बहनों और बेटियों का सतीत्व भंग किया गया, जिनके बच्चों को काटा गया, नोचा गया।

फिर समाचार आये, मस्जिदों को भ्रष्ट किया गया जा रहा है, खानकाहों को बरबाद किया जा रहा है, सैयद, पीर और मौलवी शहीद हो रहे हैं।

फिर समाचार आये, कैसे मुसलमान गाड़ियों में लदे हुए पाकिस्तान आ रहे थे, कैसे गाड़ियों पर सिक्खों के जत्थे टूट पड़ते और चींटियों की तरह निराश्रित लोगों को काट डालते थे।

और सतभराई अकेली दिन-भर अपने घर में पड़ी रहती। सोहणे शाह दिन-भर रात-भर दालान में बैठा रहता, बरामदे में बैठा रहता। ज्यों-ज्यों बुरे समाचार आते, त्यों-त्यों मुसलमान पड़ोसी सोहणे शाह और कुलवन्त के घर कम आने लगे और फिर उन्होंने आना-जाना बिल्कुल बन्द कर दिया।

पुलिस का चारों ओर कड़ा पहरा था। डिप्टी कमिश्नर अपने ईमान पर अभी तक दृढ़ था कि वह अपने शहर में कोई दुर्घटना नहीं होने देगा। रात-दिन वह मोटर लिये चक्कर काटता रहता।

जहाँ हिन्दू-सिक्ख 'आगा-साहब', 'आगा साहब' कहते हुए न थकते, वहाँ मुसलमानों ने परस्पर खुसुर-फुसुर आरम्भ कर दी।

फिर समाचार आये, मुसलमान पड़ोसियों ने आगा साहब पर आक्रमण करने की योजना बनायी है और उनमें से एक आगा साहब के बंगले में छिपा हुआ पकड़ा गया था।

और फिर मुस्लिम लीग का एक बड़ा नेता आया, उसके सम्मान में एक जलसा किया गया। जलसे में उस प्रसिद्ध नेता ने यह कहा कि पाकिस्तान में कम संख्या वाली जातियों की पूरी-पूरी रक्षा की जायेगी। इस्लाम हमें पड़ोसियों से प्यार सिखाता है। किन्तु जब वह व्यक्तिगत रूप से स्थानीय नेताओं से मिला तो उनके कान में कुछ और ही फूँक गया।

लायलपुर के मुसलमान नेता डिप्टी कमिश्नर से प्रसन्न नहीं थे, यह बात भी बड़े नेता को नोट करवा दी गयी।

जिस रात जलसा हुआ, उससे अगले दिन शहर की नालियों में हिन्दुओं और सिक्खों की छः लाशें मिलीं। डिप्टी कमिश्नर ने आदेश दिया कि कोई गुंडा यदि शरारत करता हुआ पकड़ा जाये तो उसे उसी समय गोली से उड़ा दिया जाये। पाकिस्तान बनने से दो दिन पूर्व आगा साहब की पुलिस ने इस प्रकार के दस मुसलमान गुंडों को गोली का निशाना बना दिया।

30

चौदह अगस्त का सवेरा!

हर घर के ऊपर चाँद-तारे वाले हरे झंडे लहरा रहे थे। हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान गले लग-लग कर 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे, शहनाइयाँ बज रही थीं, बच्चों में मिठाइयाँ बाँटी जा रही थीं, जलसे हो रहे थे, पाकिस्तान पर मर-मिटने की प्रतिज्ञाएँ ली जा रही थीं, सड़कें बिल्कुल साफ थीं, हर स्थान पर पानी का छिड़काव किया गया। गली-गली में, हर दुकान पर रेडियो हर्ष के गीत सुना रहे थे, मस्जिदों में शुक्राने की नमाजें पढ़ी जा रही थीं। मोहल्लों के बाहर लोगों ने हरी पत्तियों के दरवाज़े बनाये, घरों के सामने रंग-बिरंगी झंडियाँ लगायीं।

औरतें, बच्चें, मर्द, बूढ़े और जवान सज-धज कर, शहर के मैदान में होने वाले जलसे में गये, जहाँ झंडा लहराने की रस्म अदा की जाने वाली थी।

डिप्टी कमिश्नर ने झंडा लहराते हुए अल्लाह और लोगों को लाख-लाख धन्यवाद दिया कि एक मामूली सी दुर्घटना के अतिरिक्त लायलपुर में ऐसा कुछ नहीं हुआ था जिसके कारण उन्हें आज लज्जित होना पड़े।

फिर हिन्दू नेताओं ने वचन दिये कि वे पाकिस्तान के वफादार नागरिक बनकर रहेंगे।

फिर सिक्ख नेताओं ने वचन दिया कि वे पाकिस्तान को अपना घर समझकर रहेंगे। और मुसलमान नेताओं ने काबा की ओर मुँह करके कसम खायी कि वे अपने पड़ोसियों का पूरा-पूरा ध्यान रखेंगे।

जलसे के पश्चात डिप्टी कमिश्नर आगा साहब प्रसन्न-चित्त घर पहुँचे ही थे कि लाहौर से टेलीफोन आया कि आगा साहब को तबदील कर दिया गया है। टेलीफोन पर यह भी कहा गया कि वे अपना काम किसी दूसरे को सौंप कर चौबीस घंटों के भीतर लायलपुर से लाहौर पहुँच जायें।

अभी तो दोपहर के बाद उनको हिन्दुओं और सिक्खों की ओर से किये जाने वाले जलसे का सभापतित्व करना था, और रात को उनको सिक्खों की ओर से दी जाने वाली दावत में सम्मिलित होना था, शाम को उन्होंने लोगों को चाय पर बुलवाया था।

बात उड़ाने वालों ने आग की तरह यह समाचार सारे शहर में फैला दिया कि आगा साहब को नौकरी से हटा दिया गया है। पाकिस्तान बनने के बाद सबसे पहले एक विद्रोही को दण्ड दिया गया। पाकिस्तान बनने से पहले दस गुंडों पर गोली चलाने वाले बददिमाग डिप्टी कमिश्नर को सज़ा – इस प्रकार की सुर्खियों से स्थानीय अखबारों ने समाचार प्रकाशित किए।

गली-गली में गुंडों ने 'आगा साहब मुर्दाबाद' के नारे लगाने आरम्भ कर दिये। लड़कियों के विद्यालय के होस्टल के बाहर एक सिक्ख लड़की को छेड़ा गया। फिर मन्दिर से आती हुई एक हिन्दू औरत पर हाथ उठाया गया। मुसलमान मोहल्लों में 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के साथ-साथ 'हिन्दुस्तान मुर्दाबाद' के नारे लगने भी आरम्भ हो गये। एक-एक मुसलमान बच्चा हिन्दू-सिक्ख राहगीर का मुँह चिढ़ाने लगा। देखते-ही-देखते कदम-कदम पर खड़ी पुलिस न जाने कहाँ गायब हो गयी।

दोपहर के बाद हिन्दुओं की ओर से किये जाने वाले जलसे में आगा साहब सोच में डूबे हुए चुपचाप आये। मंच पर चढ़ते ही सबसे पहले उन्होंने घोषणा की कि उस जलसे का सभापतित्व वे एक साधारण नागरिक के रूप में कर रहे हैं, डिप्टी कमिश्नर की हैसियत से नहीं। इस पर हिन्दू-सिक्खों ने 'आगा साहब जिन्दाबाद' के नारे लगाने आरम्भ कर दिये। मुसलमान फसादी जो चारों ओर से आकर न जाने कब से वहाँ खड़े थे, यह सहन न कर सके। हिन्दू-सिक्खों के नारों के जवाब में उन्होंने आगा साहब को लाख-लाख गालियाँ बकनी आरम्भ कर दीं। जिन गुंडों को गोलियों से उड़ाया गया था, उनके नाम ले-लेकर नारे लगाने आरम्भ कर दिये, उन्हें शहीद कहना शुरू कर दिया।

नारे ऊँचे उठते गये। ज़लसे में खलबली मच गयी। जलसे के प्रबन्धकर्ता लोगों को बैठे रहने का अनुरोध करने लगे, किन्तु आतंक इतना फैल चुका था, कोलाहल इतना बढ़ चुका था कि जलसे का जारी रहना कठिन हो गया। हिन्दू, जलसे के घेरे से निकलने का प्रयत्न करने लगे, मुसलमान फसादी जलसे के घेरे के अन्दर भगदड़ मचाने लगे और इस खींचातानी में लोग हाथापाई पर उतर आये।

पलक झपकते बम फटने लगे, गोली चलने लगी, छुरे घोंपे जाने लगे, कृपाणें म्यानों से

बाहर आ गयीं, तलवारें निकल आयीं। 'सत श्री अकाल' और 'हर-हर महादेव' के नारे लगने लगे। 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगे और लाशों के ढेर बिछने लगे। जैसे तूफान के आगे बाँध लगा हो, बिल्कुल इसी तरह मुसलमान हिन्दू-सिक्खों पर टूट पड़े, न पुलिस आयी, न फौज आयी। पुलिस के थोड़े बहुत व्यक्ति जो पहले दिखाई देते थे, वे भी न जाने कहाँ गायब हो गये।

आगा साहब के नाराज होने पर भी पाँच सिक्ख उन्हें उठाकर गड़बड़ से बाहर ले आये और मोटर में डालकर उन्हें लाहौर की सड़क पर छोड़ दिया।

सायंकाल जब लोगों को आगा साहब के घर के खुले मैदान में चाय पीनी थी, उस समय सिपाही लाशें इकट्ठी कर रहे थे।

सामने अँगीठी पर से चाय का निमंत्रण-पत्र उठाकर कुलदीप ने खिड़की से बाहर फेंक दिया और खिड़की बन्द कर दी।

रात को सिक्खों की ओर से निमंत्रण था। दावत के स्थान पर वे गुरुद्वारे में एकत्रित होकर मौत की घड़ियाँ गिन रहे थे। दोपहर को जो लोग घर से निकले थे, फिर वापस न आ सके। किसी को यह पता न था कि पीछे उनके बच्चों के साथ, उनकी पत्नियों के साथ क्या बीत रही थी। सारे शहर में कर्फ्यू लगा दिया गया था। जलसे से दौड़कर कई लोग गुरुद्वारे में आ छिपे थे; और फिर वहाँ से निकलना कठिन हो गया।

अंधकार होते ही आग लगनी आरम्भ हो गयी। बारी-बारी हर मोहल्ले को लूटा गया। लाहौर रेडियो स्टेशन से पाकिस्तान की स्थापना में हर्ष-गीत; बच्चों और जवान लड़कियों की चीखों में विलीन हो-हो जाते।

फसादियों ने पेट्रोल के टीन प्राप्त कर लिये थे, लारियाँ उनकी आज्ञा-पालन के लिए मौजूद थीं, बन्दूकों और पिस्तौलों को बताशों की तरह बाँटा गया। पुलिस साथ जाकर आग लगवाती। यदि कोई हिन्दु या सिक्ख बाहर निकलने का प्रयत्न करता, नीचे आग लगी देखकर ऊपर से छलांग लगाने की कोशिश करता, तो ऐसे पुरुषों और स्त्रियों को कर्फ्यू के कानून के अनुसार गोली से उड़ा दिया जाता।

कई मोहल्लों में लोगों को लूट कर पुरुषों को गोली से उड़ा दिया गया, स्त्रियों को उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया, चाहे वे इस्लाम स्वीकार कर लें चाहे अपनी आँखों के सामने अपने बच्चों को कटते-मरते देखें।

सोहणे शाह मन-ही-मन में सोचता कि यदि उनके घर पर आक्रमण हुआ तो वह सबको बता देगा कि सतभराई उसके मुसलमान दोस्त की निशानी है। सतभराई को अपमानित होता देखकर, वह सोचता, उसकी आँखें फटकर बाहर आ जायेंगी।

और सतभराई दिल-ही-दिल में सोचती, यदि कहीं सोहणे शाह से उसे अलग किया गया तो वह अपने सीने में छुरी भोंक लेगी।

फसादियों ने पहले सिविल लाइन की ओर से सफाया करना आरम्भ किया। आग के अलाव आकाश से बातें कर रहे थे। फायर ब्रिगेड वालों को आज पाकिस्तान की स्थापना के

सम्बन्ध में छुट्टी थी।

कपड़े सीने वाली मशीनें,रेडियो सेट,ग्रामोफोन,सोफा सेट,चाँदी के बर्तन,कपड़ों से भरे सन्दूक,दीवारों पर टाँगने वाली घड़ियाँ,साइकिलें,पलंग,श्रृंगार मेजें,कुर्सियां,घरों का अन्य सामान कन्धों पर,सिरों पर उठाये हुए लुटेरे चींटियों की तरह सड़कों पर घूम रहे थे।

बाजारों में हिन्दुओं और सिक्खों की दुकानें तोड़कर माल लूटा गया; लोग कपड़ों के थानों के थान उठाकर ले गये,बूटों की गठरियाँ बाँधकर दौड़ते मिले,घड़ियों और फाउन्टेन पेनों से जेबें भरकर ले गये। मिठाई वाली दुकानों में मिठाई वालों को काटकर स्वतन्त्रता का त्योहार मनाया गया। रंगारंग मिठाइयाँ जी भर कर खायी गयीं और मुर्दों के मुँह में बलात् ठूँसी गयीं।

नौजवान लड़कियों को पकड़-पकड़ कर साथ के मन्दिरों और गुरुद्वारों में ले जाया गया, और वहाँ मूर्तियों के सामने मूर्तियों के उपासकों का अपमान किया गया। माताओं के सामने बेटियों का और बेटियों के सामने माताओं का सतीत्व भंग किया गया।

बूढ़ों के मुँह में गोमांस लगाया गया और फिर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहलवाया गया। बच्चों को उनके माँ-बाप के सामने भालों पर उछाल दिया जाता।

बहुतों को मारकर,बहुतों को धमकाकर,बहुतों को लालच देकर माल-असबाब का पता लगाया जाता और हाथोंहाथ उस माल को बाँट लिया जाता।

आधी रात को जब लूटमार का बाजार गर्म था तो नये डिप्टी कमिश्नर का लड़का पुलिस की एक लारी लेकर कुलवन्त के घर आया। कुलवन्त और रशीद कालेज के मित्र थे।

जिस प्रकार वे तीन कपड़ों में थे,बिल्कुल उन्हीं तीन कपड़ों में कुलवन्त,कुलदीप और उनका बाकी परिवार लारी में बैठ गया। मार्ग में उन्होंने सोहणे शाह और सतभराई को भी लारी पर चढ़ा लिया।

और रात के लगभग एक बजे लारी सबको खालसा कालेज के शरणार्थी कैम्प में ले आयी। कुलवन्त और उसके घरवालों की समझ में नहीं आता था कि शरणार्थी कैम्प में वे कहाँ खड़े हों और कहाँ बैठें ?

सोहणे शाह और सतभराई लारी से उतरते ही एक स्थान पर अधिकार जमा कर बैठ गये।

31

उस मुर्गी की तरह जिस पर पहले भी बिल्ली झपटी हो,एक ओर सतभराई और एक ओर कुलदीप को बिठाये बूढ़ा सोहणे शाह चिन्ताओं में डूबा हुआ था। सामने कुलवन्त अभी तक रशीद से बातें कर रहा था।

कुलवन्त और रशीद किस तरह तेज़-तेज़ बातें कर रहे थे !

कुलदीप सोचता – रशीद का अब्बा जिस दिन से डिप्टी कमिश्नर बना था, इस शहर में जैसे प्रलय आ गयी हो। उधर लोगों को उसकी नियुक्ति का पता चला, इधर छुरे चलने शुरू हो गये, जगह-जगह आग लगनी शुरू हो गयी। शोलों से बचकर जो लोग भागने की कोशिश करते, उन्हें गोलियों से उड़ा दिया जाता। कहने वाले कहते – ये सब कुछ उसकी मर्जी से हो रहा था, ये सब कुछ उसकी अगवानी में हो रहा था।

और उसका बेटा रशीद, गली-गली घूमकर, चिंघाड़ती, दहाड़ती गोलियों में से गुजरकर अपनी अब्बा की मोटर में हिन्दू-सिक्खों को निकाल-निकाल कर शरणार्थी कैम्पों में पहुँचा रहा था।

उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

झुण्ड के झुण्ड शरणार्थियों को कैम्प में आते देख, बूढ़ा सोहणे शाह सोचता – ये लोग कैसे उसके अपने थे, ये लोग जिनका पहरावा अलग था, जिनकी बोली अलग थी ? और वे लोग कैसे पराये हो गये थे, जिनके साथ वह खेलकर बड़ा हुआ था, जिनसे उसने लाख सम्बन्ध बनाये हुए थे, जिनके साथ लाख स्वप्न उसने मिलकर देखे थे ?

उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

और सतभराई सोचती – लोग तम्बुओं में बंटते जा रहे थे; एक तम्बू उनका था जो भगवान को अल्लाह के नाम से याद करते थे। एक तम्बू उनका था, जो भगवान को ईश्वर के नाम से याद करते थे। एक तम्बू उनका था जो पाकिस्तान के दीवाने थे। एक तम्बू उनका था जो भारत के शैदाई थे। और सतभराई सोचती, उसके नमाज़ी अब्बा का क्या मज़हब था ? वह तो जान पर खेल गया था अपने पड़ोसी हिन्दुओं के लिए। और सतभराई सोचती, राजकर्णी किस देश की इच्छुक थी – पाकिस्तान की ? हिन्दुस्तान की ? राजकर्णी तो कई बार अपने पड़ोसियों के साथ 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों में शरीक हो जाया करती थी ताकि किसी हमसाये का दिल न दुखे। और सतभराई सोचती, उसका अपना मन किस ओर था ? किस तम्बू में रहने को उसका जी चाहता था ? उसने तो सारी आयु सोहणे शाह को अपने अब्बा की तरह समझा था। और सोहणे शाह ने भी कभी सतभराई और राजकर्णी में फरक नहीं जाना था। और अब उसके दायें कुलदीप बैठा था। कुलदीप यदि कहे, सतभराई सोचती, वह तो कहीं भी जा सकती है। चाहे जन्नत में ले जाये, चाहे दोज़ख में ले जाये। कुलदीप की नज़र में न पाकिस्तान था न हिन्दुस्तान था। उसकी पलकों में जो कुछ था, वह हिन्दू-मुसलमानों के तंग-नज़र झगड़ों से बहुत ऊपर था। कुलदीप यदि कहे तो वह आकाश में उड़ सकती थी, आग में कूद सकती थी।

लेकिन कुलदीप कहे तो सही। वह तो चुपचाप उसके पास बैठा हुआ था। जब वह अकेला होता, एक नशे-नशे में खोया-सा उन्मत उसकी ओर देखता रहता। उसके होंठ मीठे शहद के मज़े में जैसे भिंचे हों, जैसे किसी पर जादू-सा हुआ हो। एक शब्द मुँह मे निकाले बिना घंटों उसके पास बैठा रहता; न यह थकती, न वह थकता। सुबह दोपहर में बदल जाती,

दोपहर शाम में परिवर्तित हो जाती।

कितनी काँव-काँव थी ! जो ज़ख्मी थे उन्हें तो फरियाद करनी ही थी,जो बचकर निकल आये थे,वे भी हाहाकार मचा रहे थे। एक दूसरे को पुकारे जा रहे थे। इतना चिल्ला-चिल्लाकर क्यों बोल रहे थे ? सामने लट्ठे की चादर का तहमद लपेटे,सिर पर तुर्रेवाला साफा बाँधे एक सरदार कैसे ऊँचा-ऊँचा अपनी पत्नी को आवाज़ें दे रहा था ! और चार कदमों की दूरी पर बैठी वह नलके में से बूँद-बूँद गिर रहे पानी को देख रही थी। 'ठाकरी ! ठाकरी !' सरदार आवाज़ें दिये जा रहा था। और अब सामने से उसकी पत्नी बोली थी 'मुझे बुलाया है ?' कुएँ में से आ रही आवाज़। 'काँव-काँव भी कितनी मची हुई है !' और अब जैसे सरदार की खुद समझ में नहीं आ रहा था,क्यों वह अपनी ठाकरी को आवाज़ें दे रहा था। किस कारण उसने उसे पुकारा था। पलटकर जब जवाब नहीं मिला तो वह पुकारने लग गया। आवाज़ें देने की फिक्र में फिर वह यह भूल गया कि क्यों वह ठाकरी को बुला रहा था। और अब उसकी पत्नी पूछ रही थी – और वह टुकुर-टुकुर उसकी ओर देख रहा था।

एक नज़र कुलदीप की ओर देखती,सतभराई को लगता जैसे उस ओर से भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही हो। कुलदीप जब सतभराई के पास बैठा होता तो सतभराई को हमेशा एक खुशबू-सी आस-पास में बिखर रही महसूस होती;गेहूँ के पके हुए खेत की खुशबू। कुछ दिनों से कुलदीप उससे दूर-दूर रह रहा था। जब से फसाद शुरू हुए थे वह सारा-सारा दिन,सारी-सारी रात गुरुद्वारे में बैठा पाठ करता रहता। ज़िन्दगी के रेले ने उन्हें फिर इकट्ठा कर दिया था। एक स्थान पर। चारों ओर आग लगी हुई थी और सतभराई सोचती – इस आग में एक गुलज़ार खिला हुआ था उसके लिए।

सामने जीप से वह आदमी उतर रहा था,जिसने सोहणे शाह के हाथ अपना बगीचा बेचा था। सोहणे शाह उसे देखते ही उसके पास उठकर गया। 'उधार दे सकता हूँ,लौटाकर एक कौड़ी भी नहीं दूँगा।' सोहणे शाह को देखकर वह खुद-ब-खुद बोलने लगा। बार-बार यूँ कहता और एक हाथ से अपनी गठरी को पीठ के पीछे छुपाये जाता।

सोहणे शाह ने कहा – 'बाल-बच्चे तो सही-सलामत हैं ? मैं तो ये पूछने आया हूँ।'

'सब खत्म कर दिये गये',उसने इशारा करते हुए बताया,'लेकिन पैसा बचा लाया हूँ, सारा सोना,सारी नगदी,एक कानी कौड़ी भी पीछे नहीं छोड़कर आया हूँ।'

सोहणे शाह को सहसा महसूस हुआ – यह तो पागल हो गया है। बूढ़े जमींदार का सिर फिर गया था और उसके पास इतना सारा धन गठरी में बँधा हुआ था ! यहाँ तो लोग इसका तिक्का-तिक्का,बोटी-बोटी कर देंगे। और सोहणे शाह उसको सँभालकर अपने पास ले आया और इधर-उधर की बातें करके उसका मन बहलाने लगा।

कुछ देर हुई थी,कुलदीप उठकर कुलवन्त के पास चला गया था। जब कुलदीप उसके पास न होता तो सतभराई को यूँ लगता जैसे कोई सुनसान कोठरी हो, जिसके दरवाजों, खिड़कियों,झरोखों में से लोग आँखें फाड़-फाड़कर अन्दर देख रहे थे और वह यह समझ न पाती, अपने आपको वह कैसे लपेट-लपेटकर रखे। सोहणे शाह के पास बैठी हुई वह

ढँकी-ढँकी लगती। लेकिन उसे लगता जैसे उसका दम घुट रहा हो, जैसे किसी कमरे के दरवाज़ों, खिड़कियों, झरोखों के परदे गिरा दिये जायें।

सामने पीपल के नीचे एक टटपूँजिया, कितनी देर से अपनी गठरी के सहारे बैठा पीपल के पत्तों में झाँक रहा था। कभी कोई पत्ता टूटकर उसके बायें आ गिरता, कभी कोई पत्ता टूटकर उसके दायें आ गिरता। हवा तेज थी। पीपल के पत्ते शायद पुराने थे, शायद पुराने नहीं थे, लेकिन झड़े जा रहे थे। यूँ पीपल के पत्तों की ओर देख-देखकर थके मरियल-से उस टटपूँजिये ने अपनी गाँठ को टटोलना शुरू किया, और फिर एक-एक गठरी निकालकर अपने सामने सजाने लगा। किसी में भुने हुए चने थे, किसी में मूँगफली थी, किसी में रेवड़ियाँ थीं, किसी में मुरमुरे थे। पीपल के नीचे बैठा अपनी सामग्री को सजाकर बूढ़ा शरणार्थी मक्खियाँ उड़ाने लगा। कई बार उसने आवाज़ लगाने को मुँह खोला, किन्तु यूँ लगता था जैसे उसकी आवाज़ मर गयी हो। और फिर इधर-उधर के बच्चे उसे घेरकर खड़े हो गये। टुकुर-टुकुर आँखें, टटपूँजिये की रेवड़ियों की ओर देखते, पट्टी की ओर देखते। टटपूँजिया खामोश बैठा हुआ था; उसे जरा भी भय नहीं लग रहा था कि वे भूखे बच्चे उसकी पूँजी पर हमला कर देंगे। उनके माता-पिता उसको आकर लूट लेंगे। टटपूँजिये को शायद इस बात का विश्वास था कि इन बच्चों के माता-पिता के पास कोई नारा नहीं, जिसे लगाकर वह उसकी संपत्ति पर टूट पड़ें।

'कुलदीप तुम यूँ मत करो, मुझे गुदगुदी होती है।' सतभराई ने कुलदीप को टोका। कितनी देर से वह एक तिनके के साथ फर्श की दरारों को कुरेद रहा था। उसके तिनके की घसर-घसर पर सतभराई का जी जैसे मितलाने लगता। कुलदीप ने सतभराई की ओर देखा, उसकी नजरें कह रही थीं, और मैं करूँ भी तो क्या? फिर करने के लिए कुछ भी नहीं रहा था। इन लोगों, जिनकी बोली का स्वरूप और का और था, इन लोगों, जिनका पहरावा और का और था, इनकी सेवा उससे न हो सकेगी। और यदि इन हाथों, इन बाजुओं को किसी काम में न खो दे तो उसे डर था, उसका मन पता नहीं क्या-क्या सोचने लग जाता था। वह और के और स्वप्न देखने लग जाता। इन हाथों का वह क्या करे? इन बाजुओं का वह क्या करे? इन बाँहों का वह क्या करे?

संफेद दाढ़ीवाला सरदार बरामदे की एक नुक्कड़ में बैठा अपनी कृपाण को पत्थर से लगा रहा था, बार-बार वह उसकी धार को सिल पर घिसता और बार-बार हाथ लगाकर देखता कि तेज़ हो गयी है कि नहीं। उसका कोई सात साल का बेटा उसके पास आया। 'बापू, मुझे भूख लगी है।' बार-बार वह उससे कहता। हर बार बच्चा शिकायत करता, बूढ़ा सरदार एक नज़र उसकी ओर देखकर फिर धार को तेज़ करने लग जाता। बूढ़ा सरदार अपनी कृपाण की धार को तेज़ कर रहा था। फिर उसकी नौजवान लड़की उसके पास आयी। 'बापू, तुम मेरी चुनरी की फिक्र करो।' उसके सिर पर एक चिथड़ा-सा था, जिससे उसके बाल नहीं ढक रहे थे। कभी उस चिथड़े को कंधे पर रख लेती, कभी उसको सिर पर टिका लेती। 'बापू, तुम मेरी चुनरी की फिक्र करो।' फसादियों ने उसकी चुनरी उतार ली थी। चुनरी उनके हाथ आ गयी और लड़की बच आयी थी। और सरदार अपनी कृपाण की धार को तेज़ कर रहा था। एक

नज़र ऊपर देख लेता और फिर रगड़ने लगता। कितनी देर से वह धार को तेज़ कर रहा था और फिर उसकी पत्नी आयी। 'मैं कहती हूँ यहाँ बरामदे में रात कैसे कटेगी ? मुझे तो बार-बार 'छोटी' आती है और नल कितनी दूर है यहाँ से !' बूढ़ा सरदार कृपाण की धार को तेज़ कर रहा था। बार-बार हाथ लगा कर देखने लगता और फिर पत्थर की सिल पर रगड़ना शुरू कर देता। 'मैं कहती हूँ कोई उपाय सोचो। इन ईंटों पर रात कैसे कटेगी ?' और बूढ़ा सरदार कृपाण की धार को और तेज़ करने लगता। उसकी दाढ़ी हवा में हिल रही थी।

हवा के झोंके से सतभराई की दायीं ओर के कान के पास की एक लट बार-बार आगे गाल पर आन पड़ती, बार-बार सतभराई उसको पीछे करती, बार-बार खिसककर जैसे वह उसे छेड़ने लगती। सतभराई बेचैन हो रही थी। कुलदीप कितनी देर से उसकी इस उलझन को देख रहा था। उसकी नज़रें जैसे कह रही थीं, कुछ कठिनाइयाँ ऐसी होती हैं, जिन्हें आदमी को खुद सुलझाना होता है। किसी और का दखल मुमकिन नहीं होता। और फिर तुम्हारे हाथों को मेंहदी थोड़े ही लगी है! बार-बार लट उलझती है, बार-बार उसे तुम सुलझाओ।

घड़ियाल समय की सूचना दे रहा था। वक्त अभी खड़ा नहीं हुआ था। सारे काम रुक गये थे। इन्सान की अक्ल पीछे चली गयी थी, लेकिन वक्त अपनी चाल गुज़र रहा था। हर बार घंटा बजता, भगवे कपड़े पहने एक साधू करवट बदल लेता। बेसुध सोया पड़ा था। कभी उसके खर्राटे ऊँचे हो जाते, कभी उसके खर्राटे धीमे हो जाते। साधू की चादर के एक कोने पर बार-बार एक मक्खी जा बैठती। भगवे रंग की चादर पर एक गहरा दाग था। कुलदीप सोचता, यह दाग खून का है शायद। सतभराई की नज़रें कह रही थी, भगवे पर लहू का दाग कैसे ? मक्खियाँ तो यूँ ही साँस नहीं लेने देतीं।

'पता नहीं, अब फिर कितनी देर हम इस कैम्प में बैठे रहेंगे। तुम फिर कभी हँसा नहीं करोगे ? कुलदीप की ओर देखती सतभराई की नज़रें कह रही थीं। अब फिर तुम मेरी ओर यूँ नहीं देखा करोगे जैसे कह रहे हो, आज मेरी सुबह खाली है। आज का दिन मुझे कहीं नहीं जाना है। आज शाम मुझे कोई काम नहीं है। आज की रात तारों की छाँव में तुझे देखते काट दूँगा।

दूर कहीं से फिर 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों की आवाज आ रही थी। हर बार उधर से नारों की आवाज आती, इधर भगवे कपड़े पहने बेसुध पड़े साधू के होंठ काँपने लगते। उसके मुँह से 'हर हर महादेव, हर हर महादेव' की आवाज फूट-फूट निकलती। बार-बार उधर 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों की आवाज़ आती, सामने बरामदे में सिल पर कृपाण की धार को तेज़ कर रहे सफेद दाढ़ी वाले सरदार के हाथ और तेज़ी से चलने लगते। हर बार 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' की आवाज आती, पीपल के नीचे बैठा टटपूँजिया अपनी पोटलियों को एक-एक करके समेटना शुरू कर देता। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों की आवाज़ ऊँची हो रही थी और सामने से सोहणे शाह आ रहा था। उसके साथ वह जमींदार भी था, जिसने कुछ दिन हुए अपना बाग सोहणे शाह को बेचा था। जमींदार की कमर में वह गठरी थी, जिसमें वह सारा धन था, जो कुछ दिन पहले सोहणे शाह का था। और हर बार उस ओर से 'पाकिस्तान

ज़िन्दाबाद' की आवाज़ आती, जमींदार अपनी गठरी को और भींचता। कभी गठरी को अपनी छाती से चिपकाता, कभी खुद गठरी के साथ चिपकता जाता। ज्यों-ज्यों 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे ऊँचे होते, सामने गेट से आ रहे शरणार्थियों की भीड़ बढ़ती जाती।

कुलदीप टुकुर-टुकुर आँखों से सतभराई को देख रहा था। सतभराई टुकुर-टुकुर आँखों से कुलदीप को देख रही थी। और उधर रात हो रही थी – अँधेरी रात! 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारों की आवाज़ और ऊँची हो रही थी और सतभराई का दिल कहता, अगर मरना ही है तो आज वह मर जायेगी! यूँ हल्के-हल्के अँधेरे में कुलदीप के पास बैठे, मन्द-मन्द चलती हवा में, सतभराई की एक लट बार-बार उसके गाल पर आ पड़ती! अगर मरना ही है तो मै आज मर जाऊं, सतभराई सोचती।

32

पाकिस्तानियों का पाकिस्तान बन चुका था, हिन्दुस्तानयों का हिन्दुस्तान आज़ाद हो चुका था। कितने दिन हो गये थे! हर घड़ी, हर पल झुण्ड के झुण्ड शरणार्थी बैलगाड़ियों में लदे हुए, ट्रकों में भरे हुए, पुलिस के पहरे में, फौजी-संगीनों के साये में खालसा कालेज के इस कैम्प में इकट्ठा हो रहे थे। दिन-रात, दिन-रात यह क्रम जारी रहता।

कालेज के अहाते में तिल धरने की जगह नहीं बची थी, और कालेज के बाहर कोई कदम नहीं रख सकता था। जो लोग निहत्थे, बेआसरा निकले वे लौटकर नहीं आये थे। किसी ने किसी को कहीं दम तोड़ते देखा था, किसी ने किसी की लाश कहीं पड़ी पायी थी।

कुछ-एक लोग पुलिस के साथ सांठ-गांठ कर के कैम्प के बाहर आते-जाते थे। फिर पता लगा, उनके ज़रिये व्यापार होने लगा था। आटा दस रुपये सेर, नमक एक रुपया सेर। लोग जेवर देकर साइकिलें खरीद रहे थे, छकड़े खरीद रहे थे, बैलगाड़ियाँ खरीद रहे थे। मालूम हुआ था, लायलपुर से हिन्दू-सिक्खों को निकालने का एक ही तरीका था कि वे लोग काफिला बनाकर पैदल चल दें। रेल गाड़ियों का कोई भरोसा नहीं था, और फिर रेलगाड़ियों में किसानों के बैल और जमींदारों की घोड़ियाँ कैसे लादी जा सकती थीं?

कालेज का सरदार प्रिंसिपल दिन-रात, दिन-रात बेघरों को छोटे-छोटे लालच देकर, कालेज के पुस्तकालय की पुस्तकों को पेटियों में बन्द करवाता रहता। लोग हैरान होते, कोई कुछ समेट रहा था, कोई कुछ छाती से लगाये हुए था और कालेज का यह सरदार प्रिंसिपल कालेज की पुरानी पुस्तकों को सँभाल रहा था! कौन इनको उठाकर ले जायेगा? कैसे कोई इन्हें इतनी दूर पहुँचायेगा?

सवेरे-शाम रेडियो बजता रहता। पाकिस्तान के रेडियो स्टेशन, हिन्दुस्तान के रेडियो स्टेशन। खुशियों के नगमें और आजादी के गीत। और खबरें उन अत्याचारों की जो हिन्दुस्तान

में मुसलमान जनता पर ढाये जा रहे थे, और समाचार उस जुल्म के जिसका शिकार पाकिस्तान में हिन्दू-सिक्ख बन रहे थे।

और फिर दोनों ओर से रेडियो पर सन्देश ब्राडकास्ट होने लगे। पहले दिन पन्द्रह मिनट, फिर आधा घंटा, फिर एक घंटा और फिर दो घंटे, फिर तीन घंटे, फिर या खबरें होतीं या सन्देश। हिन्दुस्तान छोड़कर आये, पीछे रह गये अपने सम्बन्धियों को सन्देश देते, पाकिस्तान छोड़कर हिन्दुस्तान चले गये राह में बिछुड़े अपने रिश्तेदारों के लिए सूचनाएं ब्राडकास्ट करवाते। बेटियाँ माँ-बाप को पूछ रही थीं, माँ-बाप बेटियों को ढूँढ़ रहे थे।

और फिर हिन्दुस्तान से भेजे हवाई जहाज़ शहर-शहर पहुँचने लगे। लोग अपने सम्बन्धियों के लिए सीटें आरक्षित करके हवाई जहाज़ भेजते और रेडियो से सन्देश ब्राडकास्ट करवाते, फलाँ-फलाँ का बेटा फलाँ-फलाँ का सन्देश देता है कि एक हवाई जहाज़ फलाँ-फलाँ दिन, फलाँ-फलाँ शहर में आ रहा है, जिसमें फलाँ-फलाँ सीटें उनके परिवार के लिए रिजर्व कर दी गयी हैं। हवाई अड्डे पर वे समय पर पहुँच जायें।

लायलपुर के इस कैम्प में कुछ-एक लोगों को ऐसे सन्देश आये, और सारा-सारा दिन कैम्प वाले रेडियो सुनते रहते। लम्बे-लम्बे ब्योरे नामों के। जिनके संबंधी उधर थे वे भी सुनते, जिनका कोई नहीं था, वे भी सुनते।

और फिर पता लगा कि कई बार जिनके लिए हवाई जहाज में सीटें आरक्षित होती थीं, वे हवाई अड्डे पर पहुँच नहीं पाते थे और खाली सीटें दूसरों को मिल जाती थीं। इस तरह सीटों के लिए पैसेवाले लोग टूट-टूट पड़ते। कैम्प से हवाई अड्डे पर पहुँचने के लिए ब्लैक होती। हवाई अड्डे के बाहर से अन्दर सामान ले जाने के लिए ब्लैक होती। हवाई जहाज का टिकट दस गुना, बीस गुना कीमत पर मिलता और फिर हवाई जहाज़ में सामान चढ़ाने के लिए अलग से रकम। सामान का किराया इससे अलग। जिन्होंने आज़ादी वाले दिन खून की होली खेले जाते देखी थी, वे किसी कीमत पर जान बचाने के लिए तैयार थे।

जब से कुलदीप ने सुना कि वहाँ से जान बचाने के लिए कोई वसीला बन सकता था, वह सारा-सारा दिन इसी धुन में खोया रहता। कभी किसी से मिलता, कभी किसी को टेलीफोन करता। कुलदीप, कुलवन्त और उनका दोस्त रशीद। रशीद फिरकनी की तरह अपनी मोटर को दिन-रात घुमाता रहता।

आखिर एक हवाई जहाज़ में दो सीटें मिल गयीं। सबकी यही मर्ज़ी थी कि सोहणे शाह और सतभराई चले जायें। सोहणे शाह बूढ़ा बहुत था और सतभराई का यौवन, उसकी सुन्दरता छुपाये नहीं छुपती थी। सोहणे शाह का बुढ़ापा और सतभराई की जवानी दोनों बड़ी भारी जिम्मेदारियाँ थीं। जब चिन्ताओं में डूबा होता सोहणे शाह के हाथ काँपने लगते। जो कोई उस ओर से गुज़रता एक बार उसकी नज़र उचककर सतभराई पर ज़रूर पड़ जाती।

और यह फैसला हुआ कि सोहणे शाह और सतभराई पहले निकल जायें।

यह कैसे हो सकता था? कुलदीप को पीछे छोड़कर सतभराई कैसे जा सकती थी? सारी रात सतभराई की आँख न लगी। अविरल उसके अश्रु बहते रहे।

अगले दिन जो कोई भी सुनता,सतभराई की ओर,सोहणे शाह की ओर ईर्ष्या भरी नज़रों मे देखता। किस्मत वाले हैं,इस गड़बड़ से निकल चले हैं। और सतभराई का जी चाहता,वह पुकार-पुकार कर कहे कि वह नहीं जाना चाहती। कुलदीप के बिना वह तो जन्नत में भी नहीं जाना चाहती थी।

अभी सतभराई इसी उलझन में थी कि कैम्प के एक कोने में हाहाकार मच गयी। कुछ गुण्डे एक मोटर में बैठकर आये और नल पर कपड़े धो रही एक नौजवान हिन्दू लड़की को उठाकर ले गये। जब तक मोटर चल न दी,दो गुण्डों ने पिस्तौल तान कर आगे-पीछे खड़े लोगों को रोके रखा। लड़की के भाई और बाप देखते रह गये और गुण्डे लड़की को उठाकर चलते बने। हमेशा नल के पास पुलिस के सिपाही का पहरा रहता था। बस,आज नहीं था।

सतभराई ने सुना तो जैसे उसका दिल बैठ गया। और फिर जैसे एक तिनका अपने आपको तूफान के हवाले कर देता है;उसने आँखें मींच लीं और अपने आपको तूफान के हवाले कर देता है उसने आँखें मींच लीं और अपने आपको हालात पर छोड़ दिया। उसने अपने दिल से कहा – अब मैं कभी सोचा नहीं करूँगी, अब मैं किसी चीज़ की आकांक्षा नहीं किया करूंगी। यदि सोच-सोच कर कोई होनी के बहाव को रोक नहीं सकता,अगर कोई चाहत-चाह कर किसी को पा नहीं सकता,यदि अनगिनत मील दूर सितारों की गति पर आदमी का सुख-दुख निर्भर है तो वह अपने आपको इस गर्दिश के रहम पर छोड़ देगी।

और कपड़ों की गठरी की तरह उसे जीप में बिठा लिया गया। बेजान मशीन की तरह वह हवाई अड्डे पहुँची,जीप से उतरकर सामने इन्तजार कर रहे हवाई जहाज की ओर चल दी। माँस का एक लोथड़ा,उसे नहीं महसूस हो रहा था कि धूप तेज़ है या नहीं,हवा ठंडी है या गरम है? आगे-पीछे लोग उसको बस धुँधली-धुँधली परछाइयों जैसे लगते थे,जिनसे बच-बच कर वह आगे बढ़ती जा रही थी।

'हैं! यह चाचा क्यों खफा हो रहा है?' सतभराई ने पीछे मुड़कर देखा। कुलदीप और सोहणे शाह एक-दूसरे से कुछ कह सुन रहे थे।

काफी देर लग गयी थी सतभराई को यह समझने में कि वे क्यों झगड़ रहे थे। सतभराई के कानों में एक शोर सुनाई दे रहा था और बस।

और फिर सतभराई की समझ में आया कि सोहणे शाह [illegible] कर रहा था कि हवाई जहाज में पहले कुलदीप जाये। कुलदीप और सतभराई चले जायें,सोहणे शाह बाद में आ जायेगा।

जैसे घोर काली घटाओं के पीछे से सहसा सूरज फूट निकले,सतभराई की पलकें खुलीं की खुली रह गयीं। यह वह क्या सुन रही थी?

'बेटा,तुम मेरा कहा न टालो। मैं कहता हूँ,तुम चले जाओ। मेरी उम्र हुई तो मैं भी पहुँच जाऊँगा। अमृतसर कोई दूर नहीं। तुम चलो,मैं भी कोई रास्ता निकाल कर आ जाऊँगा। ईश्वर ने वियोग जो किस्मत में लिख दिया है' यह कैसे हो सकता था? सतभराई का दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। यह कैसे हो सकता था? सोहणे शाह के बिना वह कैसे जा सकती थी? अपने अब्बा के बिना वह जी सकती थी,पर सोहणे शाह चाचा के बिना वह कैसे चल सकती

थी, फिर सकती थी, खा सकती थी, पी सकती थी ? कुलदीप के साथ अकेली ! नहीं, नहीं, नहीं !

और सतभराई सिर से लेकर पाँव तक थर-थर काँपने लगी । उसने अल्लाह से ये क्या माँग लिया था । ईश्वर अनन्त है । उससे दस फरमाइशें करो, दस में से कौन सी मान लेगा, यह किसी को नहीं पता । चाहे एक भी न माने, चाहे दस की दस स्वीकार कर ले । और किसी का आँचल फूलों के भार से फटने लगे ।

नहीं, नहीं, नहीं । सोहणे शाह के बिना उसे चारों ओर अँधेरा-अँधेरा लगेगा ।

'मेरा क्या है !' अब कुलदीप बोल रहा था, 'मैं तो गोलियों की बौछार में से निकल आऊँगा, तलवारों की छाया में से गुज़र जाऊँगा । मेरा क्या है ! मैंने तो कई-कई बार तेग़ों की झंकार सुनी है, एक बार और सुन लूँगा । मेरी बाँहों में अभी दम है ।'

सांप्रदायिक घृणा की काली घटाएँ अभी तक चारों ओर छायी थीं । अब भी लोग नारे लगाते थे और आगे-पीछे ज़हर फैल-फैल जाता । मुँह का स्वाद फीका-फीका हो जाता था ।

कुलदीप को इस तरह के लपकते शोलों में छोड़ कर वह कैसे जा सकती थी ? वह तो कुलदीप को छोड़कर नहीं जायेगी । कुलदीप के बिना उसे दुनिया खाली-खाली लगती थी । कुलदीप के बिना उसे आसपास खाने को दौड़ता था । कुलदीप के बिना वह एक कदम आगे नहीं बढ़ेगी । कुलदीप के बिना वह जहाज़ में नहीं चढ़ेगी ।

सोहणे शाह कुलदीप को पोटली में बंधे कुलदीप के कपड़े दिखा रहा था । सोहणे शाह ने तभी निश्चय कर लिया था कि हवाई जहाज़ में कुलदीप बैठेगा, सोहणे शाह नहीं । लायलपुर से भारत की सीमा तक सड़क के रास्ते पहुँचना, बड़ी दूर की बात थी, और जो सूचनाएँ चारों ओर से आ रही थीं, कोई नहीं समझता था कि यह कहीं संभव भी हो सकेगा । चाहे एक महीना, चाहे दो महीने और शरणार्थी कैम्प में पड़े रहें ।

यदि यह बात थी, सतभराई का मन कहता, तो वह सोहणे शाह के साथ जायेगी । सोहणे शाह के बिना इतने दिन वह कैसे रह सकती थी ! और फिर पीछे, खुदा न करे सोहणे शाह को कुछ हो जाये, वह तो कहीं मुँह भी न दिखा सकेगी । न इस दुनिया में, न उस दुनिया में । अपना अब्बा गँवा कर उसे सोहणे शाह मिला था, और अब वह इसे भी खो दे !

रशीद की भी यही राय थी कि पहले सोहणे शाह को जाना चाहिए । हवाई जहाज में जाने के लिए बाकी लोग जो आये थे, या तो नौजवान लड़कियाँ थी, या सफेद बालों वाले बूढ़े । नौजवान लड़का तो कोई भी नहीं जा रहा था । लड़कों का क्या ! चलना हो तो चल लें, भूखे रहना पड़े, भूखे रह लें, लड़ना हो तो लड़ भी सकते थे ।

सैकड़ों मील दूर कुलदीप को पैदल चलना होगा – सतभराई सोचने लगी । कई-कई दिन खाने को नहीं मिलेगा । भूखे-प्यासे सारा-सारा दिन चलना, और रात को तारों की छाया में लेट जाना । रास्ते के कुओं में, सतभराई ने सुना था, पाकिस्तानियों ने ज़हर मिला दिया था । सड़क के किनारे बैठे-बैठे खोमचेवाले मिट्टी मिलाकर पकौड़े बेचते थे । पैसे भी लेते थे, प्राण भी लेते थे । कुलदीप को कुछ हो गया, तो सतभराई सोचती वह तो नहीं बच सकेगी । कुलदीप

की प्रतीक्षा में वह पागल हो जायेगी। वह तो कुलदीप के बिना जी नहीं सकेगी।

कुलदीप, सोहणे शाह; सोहणे शाह, कुलदीप, आखिर वह क्या चाहती थी? सतभराई की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। और उसके आँसू उसकी पलकों पर ढुलकने लगे। सीटें तो केवल दो थीं। यदि सतभराई को जाना था तो केवल एक ही आदमी उसके साथ जा सकता था। सतभराई फैसला कर सकती थी। सोहणे शाह और कुलदीप आपस में फैसला कर सकते थे।

अभी कोई फैसला नहीं कर सका था कि सतभराई को हवाई जहाज़ में बिठा दिया गया। हवाई जहाज के उड़ने का समय हो गया था। छलछल सतभराई के अश्रु बह रहे थे। एक शोर था हवाई जहाज़ के भीतर। एक शोर था हवाई जहाज के बाहर। छल-छल अश्रु बहाती सतभराई ने पलटकर खिड़की की ओर देखा तो वह चकित-सी रह गयी, वह तो आकाश में उड़ रही थी। धरती नीचे थी – दूर, बहुत दूर।

सतभराई की ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गयी। पागलों की तरह घबरा कर वह आगे-पीछे ढूँढने लगी। एक कोने में सोहणे शाह बैठा हुआ था। कुलदीप कहीं भी नहीं था।

फटी-फटी आँखों से वह इधर-उधर देखने लगी। सब सीटें भरी हुई थीं। पीछे सामान रखने का स्थान लदा-फंदा हुआ था – ट्रंक और पेटियाँ। सतभराई ने देखा सामान में उपलों की एक बोरी भी रखी थी, एक साइकिल थी जिसके पैडलों के रबर निकले हुए थे। सीट धागों धज्जियों से बँधी हुई थी। बान की दो खाटें थीं। एक ओर दो सुराहियाँ पड़ी थीं।

कुलदीप नहीं आ सका था, सतभराई सोचने लगी, और किसी के उपले ढोये जा रहे थे, किसी की टूटी हुई खाटें ढोयी जा रही थीं, किसी की सुराहियाँ ढोयी जा रही थीं।

33

जैसे कोई आंख मींचे और पलकें खोलने पर और के और देश पहुँच जाये, न सोहणे शाह को विश्वास होता, न सतभराई को, और वे अमृतसर पहुँच गये। अभी धूप वैसी की वैसी थी, हवा वैसी की वैसी थी, न गरम, न बहुत ठंडी। हवाई अड्डे पर जहाज़ जाकर उतरा और लोग टूट कर उस पर लपक पड़े। चीत्कार करते हुए रिश्तेदार, रिश्तेदारों से मिल रहे थे, संबंधी संबंधियों से मिल रहे थे। सोहणे शाह का कोई नहीं था, सतभराई का कोई नहीं था। जब सब की सब सवारियाँ निकल चुकीं, तो वे उतरे।

लोग अपने-अपने संबंधियों को मोटरों में बिठाकर ले गये। सोहणे शाह और सतभराई एक ओर खड़े टुकुर-टुकुर देख रहे थे कि हवाई अड्डे का एक कर्मचारी आया और उन्हें एक ट्रक में बिठाकर शरणार्थी कैम्प तक पहुँचा आया।

'मेरे काम तो वही करता है !' ट्रक से उतरते हुए सोहणे शाह ने अपने होंठों में कृतज्ञता पूर्वक कहा।

ट्रक से उतरे सोहणे शाह और सतभराई को शरणार्थी कैम्प के दफ्तर में ले जाया गया। अभी वे खड़े ही थे कि दूध-सी सफेद धोती में लिपटी एक लड़की आयी और किसी रजिस्टर में उनसे पूछ-पूछ कर उनका नाम, पता और इस तरह की बाकी जानकारी दर्ज करने लगी।

नाम : सोहणे शाह।

पिता का नाम : चौधरी ज्वाला शाह।

पिछला पता : गांव धमियाल, जिला रावलपिंडी।

फिर धर्म ? पीछे कितनी जायदाद छोड़कर आये ? घर के कितने प्राणियों का नुकसान हुआ ? अब कहाँ जाना है ? भारत में कोई संबंधी है ? क्या-क्या काम कर सकते हो ? क्या काम करना चाहते हो ? और इस तरह के कितने ही प्रश्न, जिनका उत्तर सोहणे शाह से माँगा गया।

सोहणे शाह सवालों के जवाब दे रहा था और सतभराई थर-थर काँप रही थी, वह क्या जवाब देगी ? अपने बाप का नाम, अपना धर्म, वह क्या बतायेगी ?

और फिर उसकी बारी आयी। सतभराई के मुँह से एक शब्द न निकल सका। किन्तु सोहणे शाह ने परिस्थिति को सँभालते हुए झट बोलना शुरू किया।

'मेरी बेटी है, नाम सतभराई।'

शेष विस्तार में पूछने की आवश्यकता नहीं थी, वही ब्योरा होगा जो पिता ने दिया था।

'लड़की का नाम सतभराई है, पर इसका कोई भाई नहीं है ?' कैम्प की कर्मचारी लड़की अपनी दूध-सी सफेद धोती जैसी मुस्कान बिखेरती हुई चली गयी।

अभी वह लड़की गयी ही थी, अभी सोहणे शाह और सतभराई यह फैसला भी नहीं कर पाये थे कि पास रखे बेंच पर जरा देर बैठकर वे सुस्ता लें कि एक कर्मचारी आया और कहने लगा, 'माफ कीजिए, इस कैम्प में तो जगह नहीं है, आप अगले कैम्प में जाकर पूछ लें।'

और सोहणे शाह को अगले कैम्प का रास्ता दिखा दिया गया। चाहे हवाई जहाज में आये थे, सोहणे शाह और सतभराई थके-थके महसूस कर रहे थे। तो भी जिस ओर उन्हें बताया गया, दोनों उस ओर चल दिये। सतभराई का तो जैसे सारा शरीर जकड़ा हुआ था, जैसे अपने आप को वह नोच कर कहीं से ले आयी हो। उसका अंग-अंग दर्द कर रहा था।

सोहणे शाह सोचता, आगे-पीछे ये कितने लोग हैं ! मोटरें, ताँगे, साइकिलें, बैलगाड़ियाँ, मर्द, औरतें, बच्चे, दौड़ रहे हैं, पैदल चल रहे हैं, बैठे हुए हैं। जिस कैम्प से वे अभी-अभी आये थे, कितने ही लोग वहाँ थे, हुजूम का हुजूम। दफ्तर के हर दरवाज़े, हर खिड़की पर टूट-टूट पड़ते। रोते-चिल्लाते बच्चे, मर्द-औरतों को आवाज़ें दे रहे थे, औरत मर्दों को पुकार रही थीं। और सोहणे शाह को अपने गाँव का शांत वातावरण याद आने लगा। कई-कई मील सोहणे शाह चलता चला जाता था और उसे किसी का मुँह देखने को नहीं मिलता था। कई बार तो परेशान होकर वह अपनी घोड़ी से बातें करने लगता था। आप ही सवाल करता, आप ही

जवाब देता।

'सड़कें-सड़कें जांदिये मुटियारे नी,
कंडा चुभा तेरे पैर बाँकिये नारे नी।'[1]

किसी सिनेमा के पास से गुज़रते हुए सतभराई को पंजाबी गाने के ये बोल सुनाई दिये, और जैसे तीर की तरह ये गीत उसकी छाती में आ चुभे। हाँ, काँटा तो चुभा था, लहूलुहान हुई पड़ी थी वह। कलेजे में एक शूल लेकर वह चलती जा रही थी। कौन-सा शूल था यह ? फिर सतभराई सोचने लगी : अपने अब्बा का शूल ? राजकर्णी का शूल ? अपने गाँव का शूल ? कुलदीप का शूल ? कितने काँटे थे जिन्दगी में ! जीवन छोटे-बड़े दुःखों की माला बन कर रह गया था। बड़े दुःखों को भुलाने के लिए कोई छोटे दुःखों को याद कर ले; और बस।

सोहणे शाह सोचता, वे तो गुरु की नगरी में हैं। और कहीं स्थान न मिला, तो वे गुरु रामदास की सराय में जा टिकेंगे। माईसेवाँ बाज़ार। यहाँ से उसने एक बार अपने गाँव के गुरुद्वारे के लिए श्री गुरुग्रंथ की दो प्रतियाँ खरीदी थीं। एक मोटे अक्षरोंवाली, एक छोटे अक्षरोंवाली ! और चलते समय अपने साथ लाये देसी घी का आधा कनस्तर वह दुकानदार को तोहफे के तौर पर दे गया था। और कुछ न हुआ तो वह उस व्यापारी का ही दरवाज़ा खटखटायेगा। भूला तो नहीं होगा। भूल कैसे सकता था ? देसी घी का आधा कनस्तर उसने उसको दिया था।

बहुत दूर नहीं गये थे कि एक जगह सोहणे शाह और सतभराई को रोक लिया गया। सामने मुसलमान मुहाजिरों का काफिला जा रहा था। जब भी इस तरह का कोई काफिला शहर में से गुज़ारना होता, तो पुलिसवाले अक्सर उस इलाके में कर्फ्यू लगा देते, या कम से कम उस सड़क पर बाकी ट्रैफिक को रोक दिया जाता था, ताकि जाने वाले आसानी से जा सकें। सड़क के दोनों ओर पुलिस के सिपाही खड़े हो जाते, ताकि कोई किसी से ज्यादती न करे। लेकिन तब भी सहमे हुए, मुसीबतों के मारे, भूखे-प्यासे, कमज़ोर मुहाजिरों को देख कर शहरी लाले और उनके बच्चे उनका मखौल उड़ाते, उनको चिढ़ाते रहते। गरीब मुहाजिर कान लपेटे सुनी-अनसुनी कर जाते।

सड़क पर मुहाजिरों का काफिला जा रहा था। बैलगाड़ियाँ सन्दूकों, पेटियों और ट्रंकों से लदी हुई थीं। उनके ऊपर चारपाइयाँ, पलंग, बिस्तर, टाट की बोरियां, बोरियों को लिए बैठे बीमार बूढ़े-बूढ़ियों की गोदी में मुर्गियाँ, नयी बियाई बकरियों के मेमने, बैलगाड़ियों पर इधर-उधर लटके हुए हुक्के, टोकरियाँ, पिटारियाँ, छाज, मुसल्ले। बैलगाड़ियों के पीछे-पीछे एक कल्पित सहारे के लिए गाड़ियों को पकड़े चल रही अधेड़ औरतें, जोंकों की तरह उनकी छातियों से चिपटे बच्चे, तेज़-तेज़ कदम चलती जा रही थीं। लाख पर्दों में पलीं मुसलमान औरतें पराये मर्दों की नज़रों की बर्छियों में से अपने आपको जैसे घसीटकर लिये जा रही थीं। निहत्थे किये हुए, हारे हुए मर्द, जिनके घरों को आग लगा दी गयी थी, जिनके साथियों को यमदूतों की तरह भागते फसादियों ने कृपाणों से टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। सारे के सारे

1. सड़क-सड़क जा रही ओ गोरी, काँटा चुभा हुआ है तुम्हारे पाँव में, अरी ओ बाँकी नार।

काफिले में जवान लड़का कोई नहीं था। ये जवान लड़के कहाँ चले गये थे ? बच्चे थे, पाँवों से नंगे, सिर से नंगे, फटेहाल, कभी तेज़-तेज़ चलते, कभी हौले-हौले, कभी क्षण भर के लिए खड़े होकर सामने हलवाई की दुकान पर तली जा रही जलेबियों की ओर एक नज़र देख लेते। गरम-गरम जलेबियों को वह तलकर सजा रहा था। सबसे ज्यादा मुहाजिरों की नज़र सामने अविरल बह रहे नल की ओर जाती। पानी कोई नहीं भर रहा था, तो भी नल चल रहा था। और काफिला प्यासा था। सुबह के वे चले थे और अब समय कौन-सा हो रहा था ? सुबह से वे प्यासे थे। एक मुहाजिर लोटा ले कर नल की ओर बढ़ा था और आगे-पीछे खड़े हिन्दू-सिक्ख उसको काटने के लिए दौड़े थे। और फिर जैसे सारे काफिले में बेतार-बर्की से यह खबर फैल गयी। हिन्दू-सिक्खों के नल से कोई मुसलमान एक घूँट पानी लेने का साहस न कर पाता। लेकिन नज़रों को तो कोई नहीं रोक सकता था। और तेज़-तेज़ बह रहे नल के शीतल ठंडे जल की ओर ललचायी हुई आँखों से देखते मुहाजिर चले जा रहे थे – मर्द, औरतें, बच्चे।

कमेटी के लगाये नल की धार अटूट बह रही थी। कभी कोई बच्चा चलते-चलते अपने बाप की बाँह पकड़ कर खड़ा हो जाता – 'अब्बा; मुझे प्यास लगी है।' और सहमा हुआ मुहाजिर उस बच्चे को समझा कर; झिड़क कर आगे बढ़ जाता। माँओं की छातियों से लगे मासूम; सामने बह रहे नल के पानी की ओर देख कर अपनी कमज़ोर बाँहें उठा-उठा कर इशारा करते, लेकिन डर की मारी माँयें, और तेज़ कदम आगे निकल जातीं, और बच्चे चीखने लगते।

लगातार बह रहे नल के पास पहुँचकर काफ़िले की गति जैसे धीमी पड़ जाती। परन्तु किसी की हिम्मत नहीं थी कि एक कदम नल की ओर बढ़ सके। हिन्दू पानी की पवित्रता को नापाक करने के लिए जो मुसलमान हाथ बढ़ेंगे, उन हाथों का कीमा कर दिया जायेगा। पहले क्या नहीं किया था इस मज़हब के जुनून ने ? और प्यासा काफिला चला जा रहा था।

'ये लोग प्यासे हैं।' एक सफेद दाढ़ीवाले सिक्ख ने अपने आपसे जैसे कहा।

'मूज़ी प्यासे हैं, किसना !' साइकिल की गद्दी पर बैठे, धरती पर पाँव टिकाये एक हिन्दू बाबू ने अपने साथी से कहा।

'माँ के यार पानी के लिए बेज़ार हैं।' मूँछों पर ताव देते हुए शहर दूध बेचने आया एक जाट सामने नाली में थूकते हुए बोला।

'जो गुज़रता है ससुरी का नलके की ओर ही देखे जाता है।' साइकिल की दुकान वाले ने एक चिमटे को हथोड़े की चोट से सीधा करते हुए कहा।

'प्यास लगी है इनको, पाकिस्तान के बच्चे न हों तो !' एक अमृतसरी लाला बड़बड़ाते हुए धोती उठाकर पेशाब करने के लिए बैठ गया।

'प्यासे हैं, प्यासे हैं मुसले !' सोडेवाले की दुकान के पास खड़े ट्रक के एक सिक्ख ड्राइवर ने खुद ही सामने से एक बोतल उठायी और खोलकर उसे पीने लगा। फिर ट्रक का सरदार ड्राइवर एक के बाद एक ठंडे मीठे सोडे की बोतलें पीता रहा – एक-दो-तीन-चार।

कितनी देर से काफ़िला गुज़र रहा था। खड़े-खड़े देख रहे सोहणे शाह और सतभराई थक गये थे। भूखे-प्यासे मर्द-औरतें बच्चे। पानी के अविरल बह रहे नल को ललचाई हुई

नज़रों से देखते चले जा रहे थे।

'इनको क्यों पानी नहीं पीने देते, नल बेकार बह रहा है ?' एक हिन्दू स्कूल मास्टर ने अपने साथी से कहा।

'अगर हिन्दू-सिक्ख अपने नलों से; अपने कुओं से मुसलमानों को पानी भरने देते तो यह मुसीबत ही क्यों आती ?' उसके साथी ने जवाब दिया और एक गहरी ठंडी साँस ली।

'नल से पानी नहीं लेने देते, और अपने दरिया छिनवा आये हैं !' पास खड़े एक शरणार्थी ने कहा।

'पानी बेकार बह रहा है। और मासूम बच्चे बिलखते हुए चले जा रहे हैं।' हिन्दू स्कूल मास्टर अपने होठों में बुड़बुड़ाया।

'धीरे बोल ! धीरे बोल ! अगर किसी ने सुन लिया तो उनको तो बाद में कुछ कहेगा, पहले कृपाण तेरे गले पर फिर जायेगी।' उसके साथी ने समझाया।

काफिला अपनी चाल चला जा रहा था। ऐसी चाल कि चाहे किसी वक्त दम तोड़ दे।

दो दिन के भूखे हैं। सुबह से तो इन्हें पानी भी नहीं पीने दिया गया।' काफिले के साथ जा रहे एक पुलिस के सिपाही ने गुज़रते-गुज़रते लोगों को बताया।

'पानी अब अपने पाकिस्तान ही जाकर पियेंगे ! बाव कौन-सा दूर...।' सुनने वालों में से एक ने कहा, और अभी ये शब्द उसके मुँह में ही थे कि सामने जा रहे क़ाफिले की बैलगाड़ी से नीला बुर्का पहने एक लड़की छलाँग लगाकर नीचे उतर आयी और लोगों के देखते-देखते नल की ओर दौड़ी। आसपास खड़े हिन्दू-सिक्ख एक आवाज़ होकर चीखे – 'मारो-मारो, नल भ्रष्ट करने लगी है।' हिन्दू-सिक्ख चीखे और क्रोध में लड़की की ओर लपके।

यूँ एक रेला हुजूम का अपनी ओर आता हुआ देखकर लड़की औंधी जा गिरी। उसका बुर्का उसके मुँह से हट गया। जैसे चाँद का टुकड़ा हो। गोरी-चिट्टी हाथ लगाने से मैली होती। प्यास में विह्वल लड़की का जैसा साँस रुक रहा हो।

'पानी।' लड़की ने एक बार सिर उठाकर जैसे इल्तजा की।

'मूतो इसके मुँह में ! अरे लड़को, देख क्या रहे हो ?' एक बूढ़े अमृतसरी ने ज़हर उगला।

सात परदों में रहने वाली; सच्चे मोती जैसी उस लड़की ने सुना और जैसे उसका लहू सूख गया हो। उसका सिर बेसुध होकर एक ओर लटक गया।

'मर गयी ! मर गयी...!' आगे-पीछे खड़े हिन्दू-सिक्ख कसमसाये।

काफिला सहमा हुआ, डरा हुआ अपनी चाल चला जा रहा था, और फिर सड़क पर ढेर हुई लड़की में जैसा सहसा शक्ति आ गयी हो। अभी लोग उसे घेरे हुए थे, अभी भूखी नजरों से आगे-पीछे खड़े हुए नौजवान हिन्दू-सिक्ख उस मुसलमान लड़की को देख ही रहे थे कि लड़की की पलकें फिर खुलीं, सामने उस ओर जिस ओर काफिला जा रहा था, लड़की ने एक नज़र देखा, एक नज़र उस ओर जिस ओर सूरज डूब रहा था और उसके होंठों में से आवाज आयी – 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !' और फिर वह परी जैसी लड़की खत्म हो गयी।

सोहणे शाह ने सारा यह नाटक, अपनी आँखों से देखा। उसके पास सतभराई खड़ी थी।

'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !' सोहणे शाह के साथ सड़क पर चल रही सतभराई के कानों में परी जैसी उस सुन्दर लड़की की आवाज़ बार-बार गूँजती। जब उसने पलकें उठाकर उस ओर देखा था, जिस ओर काफिला जा रहा था, उसकी आँखों में क्षण भर के लिए एक चमक-सी आ गयी थी। उस चमक को सतभराई ने देखा था। सतभराई को वह चमक याद आती और उसकी आँखें मुँद जातीं, जैसे किसी अत्यन्त सुन्दर दृश्य को वह अपने नयनों में बंद कर लेना चाहती थी। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !' प्राण छोड़ रही उस लड़की के बोल सतभराई के कानों में गूँजते और उसका अंग-अंग काँप-काँप जाता, उसके कदम लड़खड़ाने लगते।

और फिर सतभराई को जूता काटने लगा। जूता नया था। और वह कब से चल रही थी ! जूता काट रहा था। रास्ता खत्म होने में नहीं आता था और सतभराई चिड़चिड़ाने लगी। उसकी आँखें सजल हो गयीं। उससे अपनी पोटली नहीं उठायी जा रही थी। उसको यह भी पसंद नहीं था कि उसकी गठरी सोहणे शाह उठाये। गठरी उठायी नहीं जा रही थी, सतभराई इसलिए भी चिड़चिड़ाती। गठरी सोहणे शाह बार-बार उससे माँगता, सतभराई इस पर भी खीझती।

जगह इस कैम्प में भी नहीं थी, लेकिन ऊपर से समय कौन-सा होनेवाला था। सोहणे शाह ने कैम्प-कर्मचारियों से मिन्नत-समाजत करके आज की रात वहाँ रहने की इजाजत ले ली।

बात-बात पर सतभराई की आँखें भर आतीं। जब से अँधेरा हुआ, वह रोये जा रही थी। कोई भी तो कारण नहीं था, फिर भी वह रोये जा रही थी। कुछ देर से सोहणे शाह किसी काम से गया हुआ था और सतभराई ने जी भर रो-रो कर अपने अरमान निकाल लिये।

और फिर सोहणे शाह लौट आया। उसके साथ अपने इलाके का एक और शरणार्थी था। ये लोग तो पहले हल्ले में ही आ गये थे। जब इस ओर से मुसलमान गये तो इनमें से कइयों ने उनके घर सँभाल लिये थे, उनका सामान लूट लिया था। पोठोहार के इस शरणार्थी ने सोहणे शाह को पहचान लिया था। पोठोहार में सोहणे शाह का नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर था। और वह आदमी ज़िद करने लगा कि सोहणे शाह और सतभराई उसके घर चलें। कैम्प के साथ ही बस्ती में उसका घर था। एक वह था और एक उसकी घरवाली थी। अभी बच्चा नहीं हुआ था। 'बच्चा भी हो जायेगा। जिसने बीवी दी है वह बच्चा भी देगा !' पोठोहारी शरणार्थी सोहणे शाह को अपने साथ घर ले जाते हुए बातें करने लगा। और फिर उसने बताया, उसकी पत्नी मुसलमान लड़की थी। उसकी अपनी बीवी और बच्चे तो सब उस ओर पहले हल्ले में ही मारे गये थे। इस ओर आकर कितनी देर वह तलाश करता रहा, लेकिन उसकी सफेद दाढ़ी देखकर कोई हामी न भरता। और घर में पत्नी के बिना खाने-पकाने का उसे बड़ा कष्ट था। एक दिन उसने सुना कि हिन्दू-सिक्ख मिलकर मुसलमान शरणार्थियों की एक गाड़ी को रोक रहे थे। वह भी उनमें जाकर शामिल हो गया। 'वह मार मारी, वह बदले लिये

पाकिस्तान से कि बस ईश्वर का नाम ! लहू की नदियाँ बह निकलीं ! चारों ओर लाशों के ढेर लग गये ।' कोई कुछ लूट रहा था, कोई कुछ उठाकर ले जा रहा था, लेकिन उसे एक पत्नी की तलाश थी और तेरह-चौदह साल की एक लड़की को पकड़कर वह साथ ले आया ।

'लड़की बड़ी सुन्दर है । गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से जैसे मैली हो जाये ।'

और चार दिन अपने पास रखकर पोठोहार से आये इस शरणार्थी ने उस लड़की को अमृतपान करवाया और साथ ही चार फेरे ले लिये । सवा रुपया 'परसाद' का लेकर गुरुद्वारे के ग्रन्थी ने दोनों काम कर दिए । हाँ, उस रात ग्रन्थी और उसके चार साथियों को भोजन भी करवाया गया था । लड़की ने अपने हाथों से खाना पकाकर उनकी खातिर की ।

'बड़ी भोली लड़की है, इतनी प्यारी तरह, सुबह उठकर सतनाम श्री वाहगुरु, सतनाम श्रीवाहगुरु करती है ।'

लड़की की माँ के सात बच्चे थे । और पोठोहारी शरणार्थी खुश था कि सात बहन-भाइयों वाले घर से आयी चार-पाँच बच्चे तो जरूर उसके लिए पैदा कर सकेगी । क्या हुआ जो पोठोहारी शरणार्थी अब बूढ़ा हो गया था ? मर्द भी कभी बूढ़ा हुआ है ? उसके बाल सफेद थे, दिल तो वैसे का वैसा काला था !

'बस एक नुक्स है उसमें । घर तलवार नहीं रखने देती । मैंने एक छोटी सी कृपाण लेकर अपने कंधे से बाँध रखी है । धरम का तो ख्याल रखना ही होगा ।'

जिस दिन से यह मुसलमान लड़की पोठोहारी शरणार्थी के घर आयी, तलवार वह पड़ोसियों के घर रखता था । जब बाहर जाना होता तो उनसे माँग लेता । घर आने से पहले फिर उनके यहाँ रख आता । लड़की कहती थी, तलवार के साथ उसके बहन-भाइयों, उसके माँ-बाप का वध हुआ था; और तलवार देखकर उसका दिल बैठने लगता था । तलवार अपने घर में नहीं घुसने देगी ! न तलवार, न बन्दूक । तलवार और बन्दूकों से लोगों ने क्या-क्या सितम नहीं ढाये !

सोहणे शाह बार-बार कोशिश करता – पोठोहारी शरणार्थी किसी और बात का ज़िक्र करे, पर वह तो घूम-फिरकर अपनी पत्नी का ही किस्सा छेड़ देता ।

'इस अपनी बच्ची से भी दो बरस छोटी होगी ।' सतभराई की ओर संकेत करते हुए उसने फिर अपनी घरवाली की कहानी शुरू की ही थी कि सतभराई पत्थर की ठोकर खा कर सामने पड़े कंकरों के ढेर पर औंधी जा गिरी ।

सतभराई का मुँह-सिर लहूलुहान हो गया ।

मैं तो पहले ही सोचता था, यह कोई मुसीबत खड़ी करेगा । सतभराई को अपनी बाँहों में लेते हुए सोहणे शाह की नज़रें कह रही थीं । वे फिर लौटकर शरणार्थी कैम्प चले गये । शरणार्थी कैम्प के अस्पताल में सतभराई की मरहम-पट्टी हुई । और फिर न सोहणे शाह और न सतभराई ही पोठोहारी शरणार्थी के घर जाने के लिए राज़ी हुई । पोठोहारी शरणार्थी मिन्नतें ही करता रहा ।

न इस कैम्प में कोई जगह थी, न अमृतसर के किसी और कैम्प में कोई जगह थी । कितने

दिन सोहणे शाह और सतभराई भटकते रहे। आखिर एक ट्रक में डाल कर उन्हें जालंधर भेज दिया गया। अमृतसर लबालब भर चुका था।

रास्ते में स्थान-स्थान पर मुसलमान मुहाजिरों के काफिले अपना घरबार छोड़-छोड़ कर जाते हुए उनको मिले। दूर से ही हिन्दू-सिक्खों की लारी को देखते और रास्ता छोड़ देते, खुद मिट्टी-धूल में चलने लगते। सोहणे शाह सोचता ये वे ही मुसलमान थे जो रावलपिण्डी में सड़क पर चल रहे होते तो हिन्दू या सिक्ख किसी की मजाल नहीं होती थी कि पीछे से आकर इनके आगे गुज़र जाये। जहाँ मुसलमानों के ढोर-डंगर चरते, वहां हिन्दू-सिक्खों के किसी मवेशी की मजाल नहीं होती कि वहाँ मुँह मार सके। बाज़ार में मुसलमान की मर्जी होती तो ठीक भाव देता, न मर्ज़ी होती तो न देता। हिन्दू-सिक्ख टटपूंजिये हाथ जोड़ सकते थे, मिन्नत कर सकते थे, शिकायत तक करने की किसी की मजाल नहीं होती थी। रास्ते में एक स्थान पर ट्रक रुका। सतभराई ने देखा, सिक्ख ड्राइवर तलवार पकड़े नीचे उतरा और पैदल जा रहे एक मुसलमान मुहाजिर से कपड़े सीने वाली एक मशीन छीन कर उसने ट्रक में ला रखी। और फिर ट्रक चलाकर आगे चल दिया। सतभराई ने देखा और हैरान रह गयी। मुसलमान मुहाजिर मशीन को सिर पर उठाये जा रहा था। सिक्ख ड्राइवर ने बिना कुछ बोले मशीन उसके सिर से लेकर ट्रक में रख ली, न मशीन के मालिक ने कुछ कहा, न उसके साथ चल रहे उसके साथियों ने कोई एतराज़ किया। किसी के होंठों पर शिकायत का एक बोल भी सुनाई नहीं दिया। कइयों ने तो आँख उठा कर भी सिक्ख ट्रक ड्राइवर की ओर न देखा जो अपने हाथ में तीन फुट लम्बी तलवार थामे था।

और फिर ट्रक रास्ते में कई बार रुका। धीरे से सिक्ख ड्राइवर उतर जाता और जो चीज़ उसके मनपसंद होती, पकड़कर ट्रक में रख लेता जैसे कोई बेगानी बेरी से बेर तोड़ ले।

'बेटा तुम यूँ क्यों करते हो? तुम्हें किसी को जवाब नहीं देना?' सोहणे शाह ने आखिर ड्राइवर को समझाते हुए कहा।

'बाबा, शुक्र करें कि इनकी बेटियाँ छीनकर मैं ट्रक में नहीं डाल रहा हूँ।' ट्रक के सिक्ख ड्राइवर ने बेपरवाही से कहा और ट्रक को चला दिया।

कितनी देर उसके बाद सतभराई देखती रही। सोहणे शाह के होंठ हिलते रहे। पता नहीं वह क्या पढ़ रहा था, पता नहीं वह क्या बोल रहा था।

ट्रक एक पुल के ऊपर से गुज़र रहा था। नीचे नदी थी। सतभराई सोचने लगी कि कई बार ट्रकों की टक्कर हो जाती है, कई बार फिसल कर लारियाँ नदियों में जा गिरती हैं। आखिर कौन-सा पाप वे ड्राइवर किये होते थे, जो यह सिक्ख ड्राइवर नहीं कर रहा है। और इस ट्रक को क्यों नहीं कुछ होता था? काश, यह ट्रक भरा-का-भरा उलटकर दरिया की लहरों में जा गिरे।

नहीं, नहीं! इस दुनिया का कोई तिरस्कार कर सकता है, इस दुनिया को कोई कैसे छोड़ सकता है जिसमें कुलदीप रहता है। उसकी जब याद आती, सतभराई उन्मत्त-सी हो जाती। उसको अपना आस-पास अच्छा-अच्छा लगने लगता, जैसे अपने आगे-पीछे सुगंधियां बिखर

रही हों। वह तो लाख लोगों के ऐब माफ कर सकती थी, उस दुनिया के लोगों के ऐब,जिसमें उसका कुलदीप रहता था।

ट्रक अब तेज दौड़ता हुआ जा रहा था। हल्का-हल्का अँधेरा हो गया था। आकाश में बादल घिर आये थे और फिर काली घटा बरसने लगी। कितनी देर से पानी पड़ रहा था। अँधेरा और ज्यादा गहरा हो गया था।

और फिर ट्रक सड़क के दोनों ओर लगे वृक्षों के एक झुण्ड में आकर रुक गया। अचानक किसी ने अपनी बैलगाड़ी ट्रक के सामने लाकर खड़ी कर दी और फिर बैलगाड़ी में से और इधर-उधर के वृक्षों के तनों के पीछे से पाँच-सात जाट तलवारें लिये ट्रक पर टूट पड़े। आते ही उन्होंने सवारियों को नीचे उतार लिया।

ड्राइवर ने समझाया, ये तो किराये पर लिया हुआ सरकारी ट्रक है। ये सवारियाँ तो हिन्दू-सिक्ख शरणार्थी हैं जिन्हें अमृतसर के कैम्प में जगह नहीं मिली। लेकिन लारी की छत जितने ऊंचे जाट ने ड्राइवर को ठोकर मारकर एक ओर कर दिया और ड्राइवर की हिम्मत न पड़ी कि एक शब्द भी वह बोले। और जाटों ने कपड़े सीने की मशीन और ढेर सारा वह सामान जो ड्राइवर मुसलमान मुहाजिरों से छीन-छीन कर ट्रक में रखता आ रहा था, और ड्राइवर का अपना निजी सामान, और शेष सवारियों का थोड़ा-बहुत, जो कुछ भी उनके हाथ आया, नीचे उतार लिया।

जाटों की ऐंठी हुई मूँछें और दारू में मदमस्त अकड़े हुए उनके पुट्ठे देखकर किसी सवारी की मजाल नहीं हुई कि सामने से बोल सके। एक ठोकर खाकर ड्राइवर यूँ अलहदा होकर खड़ा हो गया, जैसे कोई तमाशबीन हो। इन जाटों के मुँह से दारू की कैसी बू आ रही थी। सतभराई ने अपनी नाक को ओढ़नी के पल्लू से ढँक लिया।

जब ट्रक का बिल्कुल सफाया हो चुका तो एक जाट ट्रक के ऊपर चढ़ गया और ट्रक का फालतू पहिया उठाकर नीचे ले आया। 'अरे यार हम इसे क्या करेंगे ?' उसके साथी ने जाट को समझाया। 'मैं अपनी बैलगाड़ी में लगाऊँगा।' शराब से मदमस्त वह पहिये को सिर पर रखे खड़ा था। 'एक पहिये से तुम्हारी बैलगाड़ी कैसे चलेगी ?' उसके साथी ने फिर उसे समझाया। 'दूसरा चक्का अगले ट्रक को रोक कर उतार लेंगे। अभी तो रात अपने हाथ में है।' उसने हिचकी लेते हुए कहा और फिर बाकी उसके साथी हँस दिये।

हँसते हुए एक जाट आगे बढ़ा और सिक्ख ड्राइवर को लात जड़ते हुए कहने लगा – 'अब तुम चलते क्यों नहीं ? रसीद लेकर जाओगे ?'

सवारियों ने शुक्र किया, सिक्ख ड्राइवर ने शुक्र किया और वे कान लपेट कर वहाँ से निकल आये।

जालंधर शहर में प्रवेश करते ही सीधे हाथ गाँधी नगर शरणार्थी कैम्प था। कैम्प के सामने सरकारी लारियों का अड्डा था। अड्डे पर ट्रक रोककर ड्राइवर अन्दर रास्ते में हुए हादसे की रपट लिखवाने गया। जाने से पहले उसने सवारियों से कहा – मेरे आने तक कोई न जाये। शायद किसी की गवाही की जरूरत हो। लेकिन उधर ड्राइवर ने पीठ की, इधर सब की सब सवारियाँ खिसक गयीं। ऊपर से समय कौन-सा होनेवाला था ? मुश्किल से तो कहीं पानी रुका था। चाहे फिर पड़ना शुरू हो जाय। अकेला सोहणे शाह ड्राइवर की प्रतीक्षा करता रहा। जब देर अधिक हो गयी, सतभराई भी उससे चलने के लिए कहने लगी। सतभराई को तो सिक्ख ड्राइवर ज़हर लगता था। जब तक जाटों ने रास्ते में उसकी मरम्मत न की, कैसे घूर-घूरकर सतभराई की ओर देखता था। हर बार सतभराई की ओर देखता, हर बार जबान को अपनी दाईं मूँछ पर फेरता, और फिर मूँछ को बल देने लगता। कितनी बार तो उसने रास्ते में ट्रक रोका था। सतभराई को लगता कि हर बार वह उसकी ओर देख कर मूँछ पर ज़बान फेरने के लिए लारी रोकता था। या फिर गरीब, बे-आसरा मुहाजिरों का बोझ हल्का करने के लिए।

और फिर सोहणे शाह और सतभराई भी रास्ता पूछते शरणार्थी कैम्प में पहुँच गये।

इस कैम्प में सोहणे शाह और सतभराई के लिए जगह थी।

कैम्प क्या था जैसे कोई शहर बसा हो। जहाँ तक नज़र काम करती, तम्बू ही तम्बू थे। तम्बुओं के घर, तम्बुओं के गुसलखाने, तम्बुओं के दफ्तर, तम्बुओं का अस्पताल, तम्बुओं का स्कूल, तम्बुओं का गुरुद्वारा, तम्बुओं का मन्दिर, तम्बुओं का डाकखाना, तम्बुओं की दुकानें।

कैम्प की सड़कें दूर-दूर तक निकल जातीं। सड़कों में से गलियाँ, गलियों में से और गलियाँ, उनमें से आगे गलियाँ, निकलती चली जातीं। सड़कों पर बिजली के लट्टू, सफाई का प्रबन्ध, चौकीदारी का इन्तजाम। हर गली में एक-एक लाउडस्पीकर लगा था, जिसमें सवेरे-शाम रेडियो का प्रोग्राम सुनाया जाता। दिन में भजन और कीर्तन के रिकार्ड बजते रहते या फिर शरणार्थियों के लिए हर प्रकार की सूचनाएं ब्रॉडकास्ट की जातीं।

सबसे अधिक समय बिछुड़े हुए, पीछे रह गये लोगों की सूचनाओं को दिया जाता था। फलाँ राम फलाँ मल को खबर देता है कि वह फलाँ जगह पहुँच गया है, उससे फलाँ-फलाँ की मार्फत मिल लिया जाये। सरदार फलाँ सिंह सुपुत्र फलाँ सिंह, मौज़ा फलाँ, डाकखाना फलाँ, ज़िला फलाँ, बाबू फलाँ दास को सूचना देते हैं कि वह फलाँ शरणार्थी कैम्प में पहुँच गया है, उनसे फौरन मिल लिया जाये। भाई फलाँ, अपने परिवार की तलाश में है, जो फलाँ गाँव में आक्रमण के समय कहीं बिछुड़ गये। कुमारी फलाँ, जो फलाँ गाँव से उठायी गयी थी, फलाँ आश्रम में पहुँच गयी है, जहाँ आजकल उसका इलाज हो रहा है। एक शिशु, फलाँ काफ़िले में हमले के समय माता-पिता से बिछुड़ गया, अब फलाँ बाल विनय मंदिर में पहुँच गया है। बच्चे के माता-पिता अगर सुन रहे हों तो उसे आकर ले लें।

और सतभराई मन ही मन सोचती, एक दिन आवाज़ आयेगी – कुलदीप...।

सतभराई खिल-सी जाती। किन्तु कुलदीप क्या कहेगा? वह किससे बिछुड़ा था? किससे मिलना चाहता है? सतभराई सोचती रहती।

और सारा-सारा दिन बैठी वह लाउडस्पीकर में से आ रही आवाज को सुनती रहती। अनगिनत नाम बोले जाते। वह सुनती रहती, सुनती रहती। कभी न थकती, कभी न ऊबती। एक नाम सुनने की प्रतीक्षा में वह हजारों नाम सुनती, उन्मत्त सी बैठी रहती।

अजीब लोग थे। सोहणे शाह का दिल कैम्प में नहीं लगता था। भाँति-भाँति की बोलियाँ बोलते थे, भाँति-भाँति के वस्त्र पहनते थे। अपनी ओर का कोई उसे नज़र आ जाता तो सोहणे शाह उसे ललचाई-ललचाई नज़रों से देखता रहता था। कभी किसी को खड़ाकर लेता और उससे पूछने लगता—

'कहाँ से आये हो?'

'कब पहुँचे हो?'

'जानें तो बचा लाये हो?'

'अब कहाँ बैठे हो?'

जहाँ आकर बैठे थे, उस जगह से कोई भी खुश नहीं था। गाँव वालों को इस ओर के गाँव सूने-सूने लगते थे। शहर वालों को इस ओर के शहर वीरान-वीरान लगते थे। जो लोग कैम्पों में रहते थे, वे भी खुश नहीं थे। जिनको घर अलाट हो गये थे वे भी खफा-खफा थे। कोई सरकार का कोई नुक्स निकालता था, कोई सरकार का कोई कसूर गिनवाता था। और स्थान-स्थान पर टोलियाँ बनाये लोग अपनी सरकार की नुक्ताचीनी करते रहते। सरकार ने शरणार्थी कैम्प में लोगों के खाने का प्रबन्ध किया था, रहने का प्रबन्ध किया था। उधर मुहाजिरों के घर खाली होते, इधर अलाट कर दिये जाते। जहाँ कहीं भी किसी को काम मिल सकता था, सरकारी कर्मचारी शरणार्थियों की सहायता के लिए हाज़िर थे। स्कूल-कालिजों में दो-दो शिफ्टों में पढ़ाई शुरू हो गयी। कारीगरों के लिए दस्तकारियाँ खोल दी गयीं। जरूरतमन्दों के बच्चों की सिखलाई के लिए केन्द्र स्थापित किये गये। जहाँ सिविल वालों से कोई योजना न सँभाली जाती, वहाँ मिलिट्री की मदद ले ली जाती।

जालंधर में तीन शरणार्थी कैम्प थे। गाँधी नगर कैम्प, पटेल नगर कैम्प और गढ़ा कैम्प। गढ़ा कैम्प फौजी अधिकार में था। इस कैम्प का प्रबन्ध अत्यन्त सुव्यवस्थित था। लोगों को बुला-बुलाकर वह कैम्प दिखाया जाता। साफ घर, साफ गलियाँ, साफ गटर, कहीं मक्खी, मच्छर का नाम दिखायी नहीं देता था। गढ़ा कैम्प में अस्पताल के डाक्टरों को सबसे कम काम होता।

हर प्रकार से शरणार्थियों की सेवा हो रही थी, तब भी लोग खुश नहीं थे। जिनको जमीन मिल गयी थी, वे जमीन से खुश नहीं थे। जिनको मुहाजिरों के घर मिले थे, वे उन घरों से खुश नहीं थे। जिन्हें कैम्पों में स्थान दिया गया, वे कैम्पों के जीवन से बेज़ार थे। और जो सड़क पर पड़े थे, सिर छिपाने के लिए जिन्हें कोई ठिकाना नहीं था, वे तो खफा थे ही।

दिन-रात रेड़ियो पर आँकड़े ब्रॉडकास्ट होते रहते, उस धन के जो सरकार शरणार्थियों के

लिए पानी की तरह बहा रही थी। दिन-रात रेडियों पर उन योजनाओं का ज़िक्र होता, जो सरकार ने शरणार्थियों को फिर से बसाने के लिए तैयार कर ली थीं। दिन-रात रेडियों पर शरणार्थियों के लिए निर्देश सुनाये जाते कि फलाँ शहर से आये लोग, फलाँ शहर में जायें। किस काम के लिए कौन-सा दफ्तर सहायता कर सकता है। कौन सी शिकायत कहाँ सुनी जायेगी। 'शरणार्थी कौम का सरमाया हैं।' देश के प्रधानमंत्री जवाहर लाल ने कहा था।

और हर रोज़ साझँ को रेडियो से गाँधी जी के भाषण सुनवाये जाते। वे भजन, जो राष्ट्रपिता को प्रिय थे। वे भाषण, जो बापू अपनी प्रार्थना-सभा में देते रिकार्ड कर लिये जाते और फिर ये रिकार्ड रेडियो पर सुनवाये जाते।

'ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम।' इस भजन को सतभराई ने एक बार सुना और वह जहाँ खड़ी थी, वहीं खड़ी रह गयी। और फिर जैसे कोई प्यासा पानी की तलाश में तालाब की ओर चल देता है, हर शाम जहां-कहीं भी हो, सतभराई लाउडस्पीकर के पास आकर बैठ जाती और एक उन्माद में बापू की वाणी को सुनती रहती। बापू की वाणी सुनते हुए सतभराई को यूँ लगता जैसे जल रही धरती पर रिमझिम-रिमझिम फुहार पड़ने लगी हो। बापू की वाणी सुनते हुए सतभराई को यूँ लगता जैसे मोतियों के से सफेद जल में किसी का मैल धुल रहा हो। 'तू ही राम, तू ही रहीम, तू ही कृष्ण, तू ही करीम।' यह कैसा आदमी है, जो आजकल भी इस तरह के भजन गाता था! खुद गाता था, लोगों को गाने की प्रेरणा देता था। और सतभराई हर शाम आँखें मूँदे लाउडस्पीकर के सामने बैठी सुनती रहती, सुनती रहती।

कई बार दिन को जब शरणार्थी कैम्प के आँगन से ऊबकर बैठी औरतें अपने मुसलमान पड़ोसियों को कोसतीं, कितनी-कितनी देर सतभराई सुनती रहती। फिर उनको वह याद दिलाती वे मुसलमान नहीं थे, वे तो फसादी थे। लेकिन सतभराई की बात किसी औरत की समझ में न आती। हर कोई उसकी सुनी-अनसुनी कर देता। कई बार जब शरणार्थी औरतें बैठीं मुसलमानों के रहन-सहन को, मुसलमानों के खुदा को बुरा-भला कह रही होतीं, सामने लाउडस्पीकरों से आवाज़ आने लगती – ईश्वर अल्लाह तेरे नाम...तब सतभराई टुकुर-टुकुर आँखों से इन औरतों के मुँह की ओर देखती, बार-बार लाउडस्पीकर की ओर देखती। लाउडस्पीकर की ध्वनि ऊंची होती, शरणार्थी औरतें उससे भी अधिक ऊँचा बोलना शुरू कर देतीं और फिर लाउडस्पीकर की आवाज जैसे डूब-डूब जाती।

एक शाम सतभराई ने सुना – साथ के तम्बू में इकट्ठे हुए कुछ नौजवान शरणार्थी मुसलमान मुहाजिरों के एक डेरे को लूटने की योजना बना रहे हैं। जालंधर शहर के बाहर मुहाजिरों के एक काफिले को एक रात के लिए रोक लिया गया था। यह काफिला होशियारपुर वाली सड़क से आ रहा था। इससे पहले लुधियाना की ओर से पहुँचा काफिला सारा दिन शहर से गुज़रता रहा था। सड़क एक थी और जाने वाले काफिले कितने ही थे। पुलिस वाले प्रबंध करते थक-थक जाते। इस तरह कभी एक दिन, कभी दो दिन कभी इससे भी अधिक दिन किसी काफिले को शहर के बाहर रोक लिया जाता, ताकि पहले गुज़र रहा काफिला आराम से गुज़र जाये। कैम्प के शरणार्थी नौजवान जो उस शाम उस तम्बू में इकट्ठा हुए थे, इस तरह

के एक काफिले पर हमला करने की तैयारी कर रहे थे, किसी को औरत की जरूरत थी, किसी को धन की ज़रूरत थी, किस को गरम कपड़ों की ज़रूरत थी – ऊपर से जाड़ा आ रहा था। हिन्दू-सिक्ख शरणार्थी मुसलमान मुहाजिरों को बुरा-भला कहते। गाली दिए बिना तो कोई बोलता ही नहीं था। और साथ के तम्बू में बैठी मुसलमान सतभराई सब-कुछ सुन रही थी। फिर सतभराई उठकर तम्बू के बाहर टहलने लगी। यहां से वह अन्दर बैठे गुण्डों को देख सकती थी। उनको भी पता था कि बाहर कोई टहल रहा उनकी सब बातें सुन रहा है। परन्तु हिन्दू-सिक्ख शरणार्थी कैम्प में मुसलमान मुहाजिरों के काफिले पर आक्रमण करने की सोचना, कोई पाप थोड़े ही था। मुसलमानों को लूटने के लिए चाहे वे ढोल बजाकर जायें, उनको कोई भी रोकने वाला नहीं था.

और सतभराई सोचती – इनको नहीं पता कि एक मुसलमान लड़की उनकी सारी साज़िश सुन रही है। एक मुसलमान लड़की वे सारी गालियाँ सुन रही है, जो हिन्दू-सिक्ख मुशटण्डे गरीब निःसहाय मुसलमानों के लिए बक रहे थे। बात-बात पर भगवान की कसम खाते और गरीब मुहाजिरों के प्रति कैसे कुबोल बोल रहे थे! कैसा बुरा-बुरा सोच रहे थे! सतभराई सोचती – कितना समीप होता है वह कोई जिससे हम चोरी कर रहे होते हैं। कभी पास खड़ा सुन रहा होता है, कभी सामने बैठा मुस्करा रहा होता है। कभी दिल में छुपा होता है। नज़र नहीं आता, लेकिन है तो सही कोई। वह जिसे बापू – तू ही राम, तू ही रहीम, तू ही कृष्ण, तू ही करीम – कहकर याद करते हैं। है तो जरूर। लेकिन कइयों को नज़र नहीं आता, जैसे अन्दर बैठे हिन्दू-सिक्ख नौजवान गुण्डों को, जो बेघर-बेआसरा मुसलमान मुहाजिरों को लूटने की सोच रहे थे, सतभराई में एक मुसलमान लड़की नज़र नहीं आ रही थी। यूं ही वह सुनता है, और यूँ ही बेचैन होकर टहलता है। यूँ ही वह सुनता है और यूँ ही वह दिल को पकड़कर बैठ जाता है। एक पिता जिसका एक बेटा उसके दूसरे बेटे को बरबाद करने के लिए तैयारियाँ कर रहा हो। है तो वह एक ही, जिसे बापू – ईश्वर, अल्लाह तेरे नाम – कहकर याद करते थे। है तो वह एक ही। सतभराई सोचती रही – सोचती रही। साँझ घनी अँधेरी रात में परिवर्तित हो गयी।

36

कुलदीप की कोई खबर नहीं थी।

कभी-कभी उसकी याद इस तीव्रता से आती कि सतभराई सोचती, कुलदीप के बिना मैं एक सूखी सुराही होकर रह जाऊँगी। और वह जहाँ बैठती, वहीं बैठी रहती। लेटी होती तो कितनी-कितनी देर लेटी रहती। खड़ी होती तो खड़ी रहती... स्मृतियों में खोई हुई, पाक मुहब्बत का दर्द सीने में सँभाले हुए।

और फिर एक दिन – जब शाम को सोहणे शाह लौटा, अपनी चादर के एक पल्लू में लिपटी कुरान-शरीफ़ की एक जिल्द उसने सतभराई को ला दी। पाक कुरान की यह प्रति एक ओर कीचड़ से लथपथ थी। उस ओर से कई पृष्ठ गीले हो रहे थे। सोहणे शाह को यह बताने की आवश्यकता नहीं थी कि कुरान की वह जिल्द उसने जालंधर शहर की किसी गली में पड़ी पायी थी। सतभराई अपनी चुनरी से कितनी देर उसको साफ करती रही। फिर उसने कुरान को अपने सीने से लगाया, चूमा और एक रेशमी रूमाल में बाँध सँभाल कर रख दिया।

अब जब कभी उसका दिल उदास होता, जब भी कभी अकेली बैठी बेचैन-सी होती, सतभराई कुरान शरीफ लेकर बैठ जाती। और फिर कितनी-कितनी देर बैठी-बैठी पढ़ती रहती। अब्बा की याद आती, कुरान शरीफ का सहारा होता, राजकरणी की मुहब्बत तड़पाती, वह कुरान शरीफ पढ़कर अपने मन को समझा लेती। और यह नया रोग जो उसने कुलदीप का लगा लिया था, कुरान शरीफ पढ़ कर उसे एक धीरज-सा बँध जाता।

पिछले कुछ दिनों से कैम्प में बड़ा शोर था – शरणार्थी टोलियाँ बना कर कुछ फैसला करते और फिर इकट्ठे होकर जुलूस निकालते। जुलूस शरणार्थी कैम्प के कर्मचारियों के दफ्तर के सामने से होता हुआ 'फिर बसाने वाले महकमे' के बड़े दफ्तर के सामने आकर कितनी-कितनी देर ज़िन्दाबाद-मुर्दाबाद के नारे लगाया करता। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, आज एक सप्ताह से शरणार्थी यूं ही कर रहे थे। शरणार्थियों के कुछ नेता भूख-हड़ताल का धरना दिये बैठे थे।

लेकिन ये लोग क्या माँगते थे ?

इसका ठीक-ठीक किसी को भी पता नहीं था। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ कहता था। जिनकी बहन या बेटी उधर रह गयी थी वे कहते हमारी बहनें, हमारी बेटियाँ हमें ला दी जायें। जिसकी ज़मीन उधर रह गयी थी, वह कहता था हमें ज़मीन के बदले ज़मीन दी जाये। जिनके घर छूट गये थे, वे घर माँगते थे, तम्बुओं में कोई कब तक रह सकता है ? जिनका रोज़गार नहीं था वे रोज़गार माँगते थे। कइयों की शिकायत थी, राशन पूरा नहीं पड़ता। कोई शरणार्थी कैम्प के कर्मचारियों से ख़फ़ा था। बूढ़े कहते, हमें दूध मिलना चाहिए, बच्चों के स्कूल बाकायदा नहीं थे। पेड़ों के नीचे भी कभी पढ़ाई हुई है ? सारा दिन लड़के-लड़कियाँ खेलते रहते थे। किसी के तम्बू की रस्सी छोटी थी, कह-कहकर वह थक गया था और कोई बदलने वाला नहीं आता था। किसी के तम्बू के सामने कोई पेड़ था और वह उससे बेज़ार था। किसी के तम्बू के सामने पेड़ नहीं था और उसे इस बात की शिकायत थी। धूप सारी अन्दर तक आ जाती थी और दिन में तम्बू के भीतर बैठा तक न जाता। किसी के तम्बू के पास से नाली नहीं गुजरती थी, वह नाली बनाने के लिए कहता था, ताकि पानी के निकास का कोई प्रबन्ध हो जाये। हर सुबह, हर शाम जब नल आता तो कीचड़ हो जाता और कैम्प के कर्मचारी कहते – लोग कीचड़ करते ही क्यों हैं ? कैम्प के कर्मचारियों की कोई बात भी शरणार्थियों को नहीं भाती थी।

और फ़िर एक दिन शरणार्थियों का प्रति दिन प्रदर्शन कर रहा जुलूस बेकाबू हो गया।

और उन्होंने कैम्प के दफ्तर का फर्निचर तोड़ डाला। जिन अफसरों ने रोकने की कोशिश की, उन्हें लाठियों से पीटा गया और फिर बड़े दफ्तर की खिड़कियों, दरवाज़ों, रोशनदानों के शीशों को बरबाद किया गया। आखिर पुलिस आयी, पुलिस पर भी शरणार्थियों ने पत्थर फेंके। फिर गोली चली। कुछ पुलिस के सिपाही ज़ख्मी हुए, कुछ शरणार्थी गोली का निशाना बने।

गोली चलने पर स्थिति और बिगड़ गयी। लोग पहली बातें भूलकर नयी शिकायतें ले बैठे। पुलिस ने तशद्दुद किया था, निहत्थे शरणार्थियों पर गोली चलायी थी, जो मरे वे शहीद थे, जो बच गये वे अपने शहीदों का बदला लेकर रहेंगे।

सारा-सारा दिन, सारी-सारी रात एक शोर मचा रहता। भूख-हड़ताल वालों को लोग चोरी-छिपे दूध पिला आते। और कई कहते, सरकारी कर्मचारियों को भी यह पता था, पुलिस को भी यह पता था, तभी तो कोई परवाह नहीं कर रहा था। और भूख-हड़तालियों को कोई बहाना नहीं मिल रहा था कि वे किसी तरह भूख-हड़ताल खत्म कर दें। पीपल के नीचे बैठे-बैठे, लेटे-लेटे उनका अंग-अंग दुखने लगा था। शरणार्थियों में से ही कई लोग सरकार के मुखबिर थे। और हर बात उनकी अफसरों तक पहुँच जाती। अगले दिन जिन्हें जुलूस निकालना होता, उन्हें सुबह-सुबह ही पुलिस पकड़ कर ले जाती। जहाँ प्रदर्शन करने को जुलूस को जाना होता, वहाँ पहले ही पुलिस जा पहुँचती और सब प्रबन्ध पक्के कर लेती।

अब जुलूस में शामिल होने वाले लोग कम हो गये थे। हर रोज़ सौ-पचास इधर-उधर हो जाते। अब जुलूस के नेतृत्व के लिए भी कोई नहीं मिलता था। इधर भूख-हड़ताली सन्देश भेज रहे थे कि किसी तरह उपाय करके उन्हें खुद की मोल ली इस कैद से छुड़ाया जाये, नहीं तो वे अपना भी; और सारे कैम्प का मुँह काला करके उठ आयेंगे।

मुँह तो काला हो रहा था। हर खबर हड़तालियों की ऊपर पहुँच रही थी। तभी तो सरकार टस से मस नहीं होती थी।

और फिर खबर आयी, प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू पंजाब दौरा करने आ रहे हैं। एकदम सरकार भी संभल गयी और शरणार्थी भी होश में आ गये। कुछ देश के प्रधानमंत्री से डरते, कुछ इसलिए कि अपने प्रिय नेता का दिल न दुखाया जाये, सब स्वागत की तैयारियों में लग गये। पहले ही उसके फिक्र इतने थे, और उसकी समस्याएँ नहीं बढ़ानी चाहिएं। और शरणार्थी सब-कुछ भूल गये।

भूख-हड़तालियों ने भूख-हड़ताल समाप्त कर दी। प्रदर्शनकारियों ने प्रदर्शन करना बंद कर दिया और कैम्प की सफाई होने लगी। दफ्तर की खिड़कियों के टूटे हुए शीशों को बदला जाने लगा। और फिर शरणार्थियों के चौधरी तैयार हो गये अपनी कौम के दुलारे नेता को यह कहने के लिए कि वे कैम्प में खुश थे, बहुत खुश थे – उनका पूरा-पूरा ख्याल रखा जाता था। धीरे-धीरे उन्हें फिर से स्थापित किया जा रहा था। शहर में रहने वालों को घर अलाट किये जा रहे थे, कइयों को काम चलाने के लिए कर्ज़ मिल गये थे, कइयों को मिलनेवाले थे। पहले एक-एक कम्बल मिला था, अब एक-एक और मिलने वाला था। राशन पर्याप्त था। किसी को कोई शिकायत नहीं थी।

सतभराई हैरान थी – कैसा जादू था जवाहरलाल का इस देश के लोगों पर। यदि नेहरू कहे तो सारे का सारा देश भूखों मर जाये और होंठों पर शिकायत न लाये। नेहरू कहे और लोग हथेली पर जान रखकर उसके कदमों पर लुटा दें।

कैम्प के बच्चों ने अपने प्रिय नेता के लिए गीत याद करने शुरू कर दिये। औरतें बैठी सोचती रहतीं, कहाँ-कहाँ से वे फूल चुनकर हार पिरोयेंगी, फूलों की चादरें राहों में बिछायेंगी।

एक बुढ़िया जहाँ बैठती, यही कहती – मैं तो उसका प्यार लूँगी। मेरा तो वह बेटा है।

एक नौजवान जिसका सारा कुनबा पीछे पाकिस्तान में मारा गया था, बार-बार कहता, पंडित जी की मोटर के सामने जाकर खड़ा हो जाऊँगा और कहूँगा – तुम हमारे लीडर हो। तुम हमारी जान ले लो।

और जिस दिन जवाहरलाल को कैम्प का निरीक्षण करने के लिए आना था, उस दिन सुबह सवेरे से ही उठकर सोहणे शाह कहीं बाहर निकल गया था। शहर में एक ग्वाले के यहाँ उसने चाँवरी भैंस देखी थी, अपने सामने उसका दूध दुहाकर, सेर पक्का दूध सोहणे शाह ले आया। साथ ही वह उपले भी खरीद लाया और सारा दिन सतभराई उपलों की हल्की-हल्की आँच पर दूध को उबालती रही।औट-औट कर दूध लाल-सुर्ख हो गया। चप्पा-चप्पा उस पर मलाई जम गयी और शाम को जब लोगों के हुजूम के हुजूम जरनैली सड़क की ओर चले तो सोहणे शाह भी दूध का गिलास लेकर उनके साथ हो लिया।

'मैं आगे बढ़कर रोकूँगा। और बेटी तुम उसे दूध का गिलास पकड़ा देना।' बार-बार सोहणे शाह सतभराई को समझाता। सोहणे शाह के हाथ में दूध का गिलास था और दुपट्टे के छोर में उसने छुहारे बाँध रखे थे। वह सोचता, एक-एक करके छुहारे खिलाऊँगा और फिर दूध पिलाऊँगा। इन कैम्पवालों को तो इतनी समझ नहीं। हार अपनी जगह हैं, फूल अपनी जगह हैं, गाने अपनी जगह हैं। दूध तो जरूर पिलाना चाहिए। किसी के घर कोई आये और मुँह जूठा किये बिना चला जाय! उस ओर कभी यह आता, सोहणे शाह बार-बार सोचता, जवाहरलाल को वह दूध में नहला देता, पोठोहार की भैंसों के चिकने दूध में।

और दूध का गिलास पकड़े सड़क पर प्रतीक्षा कर रहे सोहणे शाह को जो कोई देखता, उस पर हँसने लगता।

'बाबा, जवाहरलाल तो महाराजा है, बादशाहों का बादशाह! वह तुम्हारा दूध कहाँ पियेगा?' एक नौजवान वालंटियर ने आकर सोहणे शाह को समझाया।

'मेरा तो बेटा है।' सोहणे शाह ने अपने दूध से सफेद दुपट्टे को कंधे पर डालते हुए कहा।

'चौधरी, वे तो मुआयना करने के लिए आ रहे हैं। उनके पास दूध पीने का टाइम कहाँ?' उसके पास खड़े हुए एक शरणार्थी ने सोहणे शाह से कहा।

सोहणे शाह ने सुनी अनसुनी कर दी।

'वह दूध कहाँ पियेगा। वह तो चाय पीता है। उसकी चाय की पत्ती चीन से आती है।' एक अधपढ़े शरणार्थी ने नाक चढ़ाते हुए कहा। सोहणे शाह ने सिर हिलाया जैसे कह रहा हो – मैं सब समझता हूं!

'उसके कपड़े विलायत से धुलकर आते हैं। वह भला इसका दूध कहाँ पिएगा?' एक और कच्चे-पक्के पढ़े शरणार्थी ने अपनी राय दी।

सोहणे शाह ने एक नज़र सतभराई की ओर देखा। सतभराई की पलकों के नीचे उमड़ रहे विश्वास ने जैसे उसे हौसला दे दिया हो।

फिर जवाहरलाल नेहरू ज़िन्दाबाद के नारों से जैसे आकाश फटने लगा। सामने मोटर आ रुकी थी और उसमें से गुलाब के खिले फूल की तरह मुस्कानें बिखेर रहा जवाहरलाल उतर रहा था। ये लोग क्या कर रहे थे? उसे हारों से लाद देंगे! फूलों की जैसे चारों ओर से वर्षा हो रही थी और उसके कदमों में चमेली की, मोतिया की चादरें बिछाई जा रही थीं। जवाहरलाल देख-देखकर हँस रहा था – गोरा-गोरा, गुलाबी-गुलाबी, काली-काली, बड़ी-बड़ी आँखें। दूध-से सफेद खादी के कपड़े। यह इन्सान थोड़े ही है, यह तो फरिश्ता है। चारों ओर से लोगों ने उसे घेर लिया था। कोई उस ओर हाथ बढ़ा रहा था, कोई उसकी बाँहों को अपनी आँखों से लगा रहा था। 'जवाहरलाल नेहरू ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते लोग उछल-उछल पड़ते। सोहणे शाह सोचता, वह तो जवाहरलाल तक नहीं पहुँच सकेगा। उसके आगे-पीछे कितने लोग आ खड़े हुए थे! ये लोग क्या कर रहे थे! इन्होंने तो जैसे उसे सिर पर उठा लिया हो। सोहणे शाह का दिल जैसे बैठने लगा। हैं! जवाहरलाल अब इधर आ रहा था। हाँ, इधर ही तो आ रहा था। एक मिनट और, वह आगे निकल जायेगा। फिर सोहणे शाह ने आगे होकर अपने दोनों बाजुओं को उठा लिया। मुझसे मिले बिना न जाना, जैसे वह कह रहा हो। जवाहरलाल के आगे-पीछे पुलिस वाले लोगों को हटा रहे थे, ताकि प्रधानमंत्री के चलने के लिए रास्ता खाली हो सके। हुजूम के रेले में सोहणे शाह को लगता, वह तो कहीं का कहीं पहुँच जायेगा कि इतने में नेहरू जी की नज़र बूढ़े सोहणे शाह पर पड़ी। वह तो सबको हटाकर इधर आ रहा थे। जवाहरलाल खुद सोहणे शाह की ओर आ रहा था! सब लोग हैरान देख रहे था। कृष्ण ने सुदामा के सत्तू खाये थे। सोहणे शाह ने जवाहरलाल के कंधे पर हाथ रख लिया और सतभराई ने आगे बढ़कर, हिन्दुस्तान के महबूब नेता के हाथ में दूध का गिलास थमा दिया।

जवाहरलाल ने सोहणे शाह की श्रद्धा का प्रतीक वह दूध सारे का सारा पिया, उसके छुहारे खाये। लोग टुकुर-टुकुर सोहणे शाह की ओर देख रहे थे। दूध पीकर जवाहरलाल ने सोहणे शाह से इज़ाजत ली, सतभराई को अपने हाथ का सबसे सुन्दर एक हार भेंट किया और आगे चला गया!

37

तम्बू के एक ओर कुरान शरीफ टँगा था। दूसरी ओर मोतिया का वह हार जो सतभराई को

जवाहरलाल ने दिया था और सतभराई को अपना आसपास भरा-भरा लगता।

हार टँगा-टँगा सूख गया था, तो भी सतभराई उसे वैसे का वैसा संभाले हुए थी। कभी-कभी वह उसे आँखों से लगा लेती और फिर उसे अपना आप अच्छा-अच्छा लगने लगता। अड़ोस-पड़ोस अजनबी-सा, रूखा-रूखा, वीरान-वीरान सा लगता।

खासकर पिछले कुछ दिनों से जब वह सारा-सारा दिन खाली होती, अकेली होती थी, सोहणे शाह सुबह निकल जाता, शाम को अँधेरा पड़े घर लौटता।

गाँधी नगर कैम्प के आँचल में एक ओर गाँधी वनिता आश्रम था। यहीं पाकिस्तान में से निकाली हुई लड़कियों को रखा जाता था। पीछे पाकिस्तान में रह गयीं औरतों को निकालनेवाले महकमे के कर्मचारी यहाँ लाते थे। बूढ़ा सोहणे शाह इन लोगों से आजकल मित्रता गाँठता रहता। किसी तरह उसे कोई राजकर्णी की खबर ला दे। कइयों को उसने अपनी कहानी सुनायी। कइयों को उसने नाम लिखवाया था, अपना पता नोट करवाया था। पुलिस के अफसर उससे कहते यदि वह जीवित हुई तो वह ज़रूर उसको निकाल लायेंगे।

सोहणे शाह गांधी वनिता आश्रम के छोटे-छोटे काम करता रहता। सन्देश ले जाता, जवाब ले आता। कुछ दिन के बाद उसने सतभराई को भी अपने साथ लाना शुरू कर दिया।

'एक बेटी आ गयी है, एक उधर ही रह गयी है।' सोहणे शाह ने कर्मचारियों को बताया। जो कोई भी सोहणे शाह को और उसकी आयु को देखता वह सोचता, कैसे यह अन्दर ही अन्दर घुलता जा रहा है। हर किसी को उस पर दया आती।

गाँधी वनिता आश्रम में सतभराई की भी ड्यूटी लग गयी। पाकिस्ताम से निकाल कर लायी गयी लड़कियों के साथ बैठी; उनका यह मन बहलाये रखती। जवान लड़कियाँ, जवान लड़की के साथ बैठकर खुश होतीं और उससे अपने ऊपर बीती सारी व्यथा की कहानी सुनातीं। सतभराई का काम यह था कि हर नयी आयी लड़की की कहानी सुनकर उसे वह एक रजिस्टर में दर्ज कर ले। सतभराई इन लड़कियों की आप बीती सुनकर अविरल आँसू बहाती रहती। कई बार रात को जब वह अपने तम्बू में सोने के लिए आकर लेटती, उसके कानों में अजीब-अजीब आवाजें गूँजने लगतीं :

'हमने कमेटी बनायी, जो बाहर निकलेगा उसका दाना-पानी अलग कर दिया जायेगा। क्यो फसादियों से डर कर हम अपने घर छोड़ जायें?'

'कई सिक्खों की दाढ़ियों, बालों को पहले आग लगाते और फिर उन्हें गोली से उड़ाते।'

'ट्रक में जगह नहीं थी। मेरी बच्ची को मुझसे छीन कर बाहर फेंकने लगे पर मैंने मुकाबला किया और मेरी बच्ची मेरे साथ आ गयी।'

'मुझे मेरे भैया की गोदी से खींच कर दो फसादियों ने निकाल लिया।'

'मेरे पिता गांधी वनिता आश्रम में भरती हो गये ताकि मुझे पाकिस्तान से निकलवा सकें। अब हम यहाँ से चले जायेंगे।'

'पठानों से बचने के लिए मैंने एक सिपाही की शरण ली, वह मुझे मुसलमान बनने के लिए कहने लगा।'

'मैं आठ दिन भूखी रही। बाकी तो उनका जूठा खा लिया करते थे, पर मुझसे न खाया जाता।'

'कुंजाह कैम्प। कुंजाह, जहाँ की औरतों की सुन्दरता प्रसिद्ध है।'

'थानेदार ने मेरे बयान लिये। मैंने कहा कि अगर मेरी राय पूछते हो तो जैसे हस्तखान ने मेरे भाई को गोली से उड़ाया है इसको भी गोली से उड़ा दिया जाये। थानेदार हँसा और साथ के सिपाही से कहने लगा, काफिर का हौसला तो देखो।'

'एक दिन पानी भरकर जो मैं लौटी तो मैंने देखा मेरी बेटी की आँखें निकली हुई थीं। मैं पड़ोसियों के पास जाकर रोयी-धोयी और वे कहने लगे, जो हो गया सो हो गया।'

'जब सुनते कि पुलिस आने वाली है, तो हमें भेड़-बकरियों की तरह खेतों में छुपा दिया जाता।'

'बच्चियां भूख-प्यास से रोतीं और उनके मुँह में कपड़े दे-देकर चुप करवाती, बाहर शहर नष्ट हो रहा था।'

'लुक-छिपकर रोती, क्योंकि मार का डर था।'

'जब हमने देखा हमारे घर को आग लगा रहे हैं तो हमने शुक्र किया कि जलकर मर जायेंगे, पर मेरी तेरह साल की बच्ची रो पड़ी और हम लकड़ियों में छुपी हुई पकड़ी गयीं।'

'गाल खींच-खींच पठान, लोगों को बताते यह मज़े की पट्ठी है और इस तरह हमें बेचते।'

'लड़कियाँ अपनी शक्लों को कोयले, मिट्टी और कीचड़ से खराब कर लेतीं। मुझे भी पकड़ा गया पर पसन्द न आने पर छोड़ दिया गया।'

'अगर कोई बच्चा कैम्प में पेशाब-पाखाना कर देता तो उसे उसकी माँ के समेत मारते।'

'मैं दरिया की ओर चल दी, पर बच्चे का ख्याल करके आत्मघात न कर सकी।'

'पानी की हमें परवाह नहीं थी। कलगी वाले के बच्चे भी तो पानी के लिए तड़प-तड़प कर मरे थे। हमें चिन्ता थी तो अपनी इज्जत की।'

'एक दिन भारतीय जहाज को देखकर मैंने कहा; वारी जाऊँ इस जहाज के, जिसमें सिक्ख मेरे भाई हैं। पीछे एक फसादी ने सुन लिया और मेरे बच्चे को उठाकर जमीन पर दे पटका।'

'जहाँ चाहते, हमें ठहरा कर हमसे बुरा-भला करते।'

'मैंने अपने देवर से कहा – तेरे भाई को मरे छः साल हो गये हैं। अभी तक मैं उसके 'सत' में रही हूँ। भाई की इज्जत के लिए हम माँ-बेटी को तू मार दे। उसने मेरी बेटी का गला तो काट दिया पर मुझे न मार सका और वहाँ से भाग गया।'

'अपनी बारह साल की बच्ची को लँगड़ी बनाकर उसकी इज्ज़त बचाती रही।'

'गुजरात में कुछ लड़कियाँ पीर को भेंट की गयीं। पीर ने चार लड़कियों से निकाह किया और बाकी को रोटी पकाने के लिए रख लिया।'

'मैं एक सैयद के पास बेची गयी।'

'मैंने समझा कि मुझे मुसलमान बना रहे हैं, पर मेरा तो ब्याह हो रहा था।'

'मुहल्ले में एक सहेली बन गयी।'

'पाकिस्तानी पड़ोसिनें हम पर जादू-टोने करके वहाँ रखने की कोशिश करतीं।'

'वह कहता, जब तू मेरे लिए नहीं रहेगी तो मैं तुम्हारी चमड़ी की जूतियाँ सिलवा दूँगा।'

'कत्ले-आम के बाद उन्होंने औरतों को बाँटना शुरू कर दिया। कहीं दस पठान और छः औरतें।'

'हमने सलाह की कि जेहलम से गुज़रते हुए दरिया में कूद जायेंगी।'

'फिर मैंने एक से ब्याह कर लिया और अब एक की वासना के लिए रह गयी।'

'जब पठान को पता लगा कि पुलिसवाले मुझे निकाल कर ले जायेंगे तो उसने मुझे एक फौजी कप्तान के हाथ बेच दिया, जिसके मैं बरतन माँजने लगी।'

'अब मेरा इलाज हो रहा है।'

'अगर कोई सुन्दर लड़की होती तो उसका सत भंग करते। जब वह रोती तो हँसते। पता नहीं भगवान कहाँ गया था!'

'उसने जब मुझे देखा तो पहचान लिया। वह हमारे गाँव का ही तो था।'

'एक मुसलमान जो मेरा भाई बना हुआ था, मुझे संभाल कर अपने घर ले गया।'

'चारपाई के पायों के नीचे मेरे हाथ रखकर ऊपर बैठ जाता और मुझे नमाज पढ़ने के लिए कहता।'

'मेरा खाविन्द और मैं दोनों मुसलमान हो गये। मेरे खाविन्द का कई परायी औरतों से सम्बन्ध था और हर रोज़ हमारे यहाँ लड़ाई-झगड़ा होता। फिर उसने पुलिस को इत्तला दी और मुझे निकाल कर इधर भेज दिया और आप उधर मज़े कर रहा है।'

'हम एक खाई में चले गये, जहाँ मेरे भाई के सामने मेरा बच्चा हुआ।'

'बूढ़ी औरतों को न मारते क्योंकि ऊपर से हुक्म आया था। अगर इधर से औरतें न गयीं तो उधर से न आ सकेंगी।'

'कहते, सिक्खों के जत्थे आ रहे हैं। हमने अपने बच्चे भेज दिये हैं। तुम हमें उनसे बचाना।'

'पहले स्कूल मास्टर जो ब्राह्मण था मुसलमान बनाया गया। फिर हम सब मुसलमान बने।'

'गाय का माँस जिनसे न खाया जाता, उनको गाय के माँस का पुलाव खिलाते।'

'मेरा घर उधर रह गया, जिसके बाहर मैंने कभी कदम नहीं रखा था।'

'मुहल्ले वालों ने मेरे बच्चे की सुन्नत कर दी।'

'हिन्द में नमक दस रुपये, आटा पन्द्रह रुपये सेर। हिन्द में जाकर क्या करोगी?'

'कैम्प में चूना मिला हुआ आटा मिलता था, जिसे खाकर कई मरे।'

'मेरा लड़का, दो दामाद और तीन भाई मारे गये!'

'वहां पिछली रात मेरे बच्चा हो गया। मैंने उसे वहीं रहने दिया। मैं तो पहले दो को संभालने से परेशान थी।'

'जैलदार की बीवी मेरी शक्ल बदलना चाहती थी। एक दिन उसने मेरे हाथ पकड़े और

एक पड़ोसिन ने मेरे गज़-गज़ लम्बे बाल काट दिए। मैं रोई-पीटी। जब घर वाले कपड़े पहनती जो मेरी माँ की निशानी थे, तो वह मुझे पीटती। आखिर उसने मेरे कपड़े जला दिये।'

'हमने कहा अगर सात दिन हमारा पिता न आया तो हम मुसलमान हो जायेंगी। पर हमारा पिता न आया।'

'मेरा पिता जिन्दा रहने के लिए वहाँ मुसलमान हो गया। पर उसका उधर जी न लगता।'

'उसके घर एक बूढ़ी थी। मैं दौड़ कर बूढ़ी को माँ कहते हुए उसके गले लग गयी। और उस बूढ़ी ने मुझे अपने बेटे के ज़ुल्म से बचाये रखा।'

'मेरा जी सेना में भरती होने को चाहता है। अगर हमारे पास बन्दूकें होतीं तो हम पर इतने अत्याचार न होते। मैं पाकिस्तान में से अपनी बहनों को निकालने जाऊँगी।'

'मेरे माता-पिता हाथ जोड़ते, अगर ले जाना है तो हम सबको ले चलो लेकिन वह बूढ़ा सिर्फ मुझे ही पकड़कर ले गया।'

'मुझे इधर कैम्प में आये डेढ़ महीना हो गया है। अभी तक मुझे कोई संबंधी लेने के लिए नहीं आया!'

'मुझे धीरे-धीरे प्यार से अपनाने लगा। पर मैं सोचती, मेरे माता-पिता, मेरे भाइयों को मारने वाले, मुझे अनाथ बनाने वाले, जबरदस्ती मांस खिलाने वाले, मुझसे बलात्कार करने वाले, मेरा जीवन नष्ट करने वाले मुझे प्यार नहीं कर सकते, यह सब धोखा है!'

'मैंने मुश्किल से अपनी मरी हुई माँ को सलवार पहनाई, अपनी बच्ची की छातियों को ढका!'

'कभी-कभी वहाँ आटा न होता और हमें बाहर जंगल में ले जाते और बेरियों के बेर खाने के लिए कहते।'

'मेजर के घर मैं सत्याग्रह करके बैठ गयी!'

इस तरह की ध्वनियाँ उसके कानों में गूंजतीं। इन आवाज़ों के साथ कई भयानक चित्र सतभराई की आँखों के सामने आते और वह सोई-सोई फूट-फूट कर रोना शुरू कर देती। सोहणे शाह उसके पास बैठा उसे समझाता रहता।

इस तरह की किसी रात; सतभराई के सामने बैठा सोहणे शाह मन ही मन सोचता – अब यदि कुलदीप आ जाये तो वह सतभराई की ओर से सुर्खरू हो जायेगा। कुलदीप की अमानत उसके हवाले कर देगा। पर वह आयेगा कैसे? उसे क्या पता कि हम लोग कहाँ पड़े हैं?

38

राजकर्णी की कोई खबर नहीं थी।

ट्रकों के ट्रक भरे हुए, लोगों की बहू-बेटियाँ सरकारी अफसर लाते, पाकिस्तान के

कोने-कोने में जाकर लड़कियाँ बरामद की जा रही थीं। राजकरणी की कोई खबर नहीं थी। जब ट्रकें आतीं, आश्रम के सब कमरे भर जाते, एक-एक कमरे में कई बार चार-चार लड़कियों को रखना पड़ता और फिर उनके माता-पिता, उनके पति, उनके भाई, उनके सम्बन्धी उनको आकर ले जाते और आश्रम खाली-खाली हो जाता। आश्रम में ही अस्पताल था। निकालकर लाई गयी लड़कियों का वहाँ अच्छी तरह निरीक्षण किया जाता और फिर कइयों का कितने-कितने दिन तक इलाज होता रहता। टीके लगते, कीमती से कीमती दवाइयाँ पिलाई जातीं। सोहणे शाह हैरान होता, कैसे सरकार पानी की तरह पैसे को बहा रही थी। और फिर सोहणे शाह सोचता – शायद आज़ादी का यही मतलब है। अपने देश की सरकार अपने लोगों के दुःख में दुखी थी, उसके भले के लिए हर कोशिश कर रही थी।

कई लड़कियाँ ऐसी भी थीं, जिनका कोई भी बचा नहीं था। ऐसी लड़कियों के रहने का प्रबन्ध आश्रम में ही था, उन्हें उनकी मर्ज़ी के मुताबिक शिक्षा दी जाती, काम सिखाया जाता, ताकि वे अपने पाँव पर खड़ी हो सकें। जिनकी मर्जी विवाह करने की होती उनके लिए योग्य वर ढूँढ़कर विवाह कर दिया जाता।

सोहणे शाह इस आश्रम की अभागी लड़कियों के छोटे-छोटे काम करता रहता था। सबका बाबा बन जाता। फिर उनके माता-पिता आते, उनको आश्रम में से ले जाते और फिर वह खाली हो जाता। जिन दिनों सोहणे शाह को चारों ओर से बाबा-बाबा कहकर पुकारा नहीं जाता उन दिनों वह उदास-उदास बैठा रहता, राजकर्णी की याद उसे तड़पाया करती। सतभराई तो इतनी खामोश थी, उसे तो किसी चीज की जैसे ज़रूरत ही न हो। कभी उसने कोई फरमाइश नहीं की थी और अब जब से कुलदीप उसके जीवन में आया था वह तो जैसे और भी बंद हो गयी हो। उसके दिल पर क्या गुजरती थी, कोई नहीं जानता था। आठों प्रहर किसी न किसी काम में व्यस्त रहती या फिर तम्बू को अन्दर से बन्द कर, पाक कुरान का पाठ करती रहती।

एक दिन सोहणे शाह आश्रम के बाहर खड़ा था कि लड़कियों से भरी एक ट्रक सामने आ रुकी। अगली सीट पर बन्दूकें लिये दो सिपाही बैठे थे। ड्राइवर को अन्दर आश्रम में कोई चिट्ठी देनी थी। ट्रक में लदी लड़कियाँ छल-छल अश्रु रो रही थीं। सोहणे शाह ने सिपाहियों से पूछा तो उसे पता चला कि ये लड़कियाँ मुसलमान थीं। इनको इस ओर से निकालकर उस ओर भेजा जा रहा था। और इतने दिनों से यहाँ बस-चुकीं लड़कियाँ अब उधर जाना नहीं चाहती थीं, उन्हें क्या पता कि वहाँ उन्हें लेने के लिए भी कोई तैयार होगा कि नहीं? इतने दिन पराये लोगों के पास रहकर अब वे किस मुँह से अपनों के सामने जायें?

सोहणे शाह ने सुना तो जैसे उसके दिल पर छुरी चल गयी। लड़कियों की पलकों से गिरा एक-एक अश्रु, उसके हृदय को गोली की तरह छलनी कर गया।

'सब के पांव भारी हैं बाबा।' सिपाही के ये बोल सोहणे शाह को जैसे झुलसा कर रख गये।

चाहे किसी की मर्जी हो चाहे न हो, इधर रह गयी हर लड़की को पाकिस्तान जाना था और उधर से हर हिन्दू-सिक्ख लड़की को इधर आना था। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान सरकार

के कर्मचारी दोनों ओर गाँव-गाँव; शहर-शहर घूम कर इस तरह की लड़कियों को अपने कब्जे में कर लेते। फसादों में ब्याही किसी लड़की की अपने धर्म के बाहर शादी कानून की नज़र में परवान नहीं थी; न हिन्दुस्तान में, न पाकिस्तान में।

सोहणे शाह सोचता – ये किस तरह की बातें वह सुन रहा है ! कैसे दिन आ गये थे ! और मन-ही-मन अपने गाँव के शान्त जीवन को याद कर-कर लहू के अश्रु रोता रहता। इस तरह की बातें तो उसने कभी नहीं सुनी थीं। इस तरह की बातों का तो उसने कभी अनुमान ही नहीं किया था। और अब हर रोज़ कोई नयी कहानी उसे सुननी होती। हर रोज़ कोई नया तजरबा उसे करना होता। यह जीवन कैसा था ? यह जीवन जीने के योग्य था भी कि नहीं।

सोहणे शाह सोचता – कहीं राजकर्णी भी इधर आने से इन्कार तो नहीं कर रही थी। उसे तो उधर रहते हुए कई मास हो गये थे। और सोहणे शाह के पाँव तले से जैसे धरती निकल जाती। उसकी आँखों के सामने अन्धकार छा जाता। इससे आगे उससे कुछ सोचा न जाता।

नहीं ! नहीं ! ! नहीं ! ! ! सोहणे शाह को महसूस होता कि कहीं उसको फिर पुरानी बीमारी तो नहीं हो गयी। फटी-फटी आँखें; वह अपने आसपास इस तरह क्यों ताकता रहता था। फिर वह गाँधी वनिता आश्रम की लड़कियों की सेवा में अपने आप को खो देता।

बेटी-बेटी कह कर हर किसी को पुकारता। अपने पल्ले से खर्च करके उनकी जरूरतों को पूरा करता रहता। उधर बाजार से हो कर आता कि फिर किसी की फरमाइश पर लौट पड़ता। 'बाबा-बाबा' पुकार कर जब कोई उससे कुछ कहती तो उससे इन्कार न किया जाता।

विशेष कर सीता तो पिछले कई दिनों से सोहणे शाह के बहुत नजदीक आती जा रही थी। बेचारी थी भी तो कितनी बदनसीब ! ब्राह्मण लड़की थी। उसके माता-पिता इधर पहुँच गये थे। एक से अधिक लोगों से पता चला था कि वे इधर आ गये थे। लेकिन आज दो महीने लड़की को कैम्प में आये हो गये थे और उसे लेने के लिए कोई नहीं आया था। पहले तो उसके पिता का पता ही नहीं लगता था, जब पता चला – उसे कई चिट्ठियाँ लिखी गयीं, तार दिये गये, उसने कोई जवाब न दिया। लड़की कहती – मुझे जाने दो, मैं अकेली चली जाऊँगी, परन्तु आश्रम के नियम इसकी आज्ञा नहीं देते थे।

आखिर उसका बूढ़ा पिता आया। सोहणे शाह कैम्प में ही था जब बिछुड़ी हुई बेटी की उसके पिता के साथ मुलाकात करवायी गयी। बूढ़ा बाप लड़की का बढ़ा हुआ पेट देख कर मारे गुस्से के लाल-पीला हो गया। कहता, यह मेरी बेटी नहीं है। लाख-लाख लड़की को गालियाँ बकता। इससे तो यह मर जाती। अपना धर्म भ्रष्ट करवा कर यह कैसे जिन्दा रही।

बूढ़े को लाख मनाने की कोशिश की गयी, लेकिन वह लड़की को साथ ले जाने के लिए राज़ी नहीं हुआ। एक नज़र वह उसे देख कर पीछे हट गया। और उसने उससे कोई बात नहीं की। बेचारी बेटी गऊ जैसी मासूम, हाथ जोड़ती, बार-बार अपने बाप के पाँव पड़ने की कोशिश करती, किन्तु बाप पीछे-पीछे हटता जाता। लड़की छल-छल अश्रु रो रही थी और बिलख-बिलख कर फरियाद कर रही थी, मेरा कोई कसूर नहीं, मुझसे जबरदस्ती हुई, मुझसे छल किया किया, मेरे साथ अन्याय हुआ। लेकिन बूढ़े बाप के कोई भी बात समझ में नहीं आ

रही थी।

जिसे अपनी बेटी की विवशता पर दया नहीं आयी, उसे हमारे समझाने पर कहाँ समझ आयेगी और आश्रमवालों ने बूढ़े ब्राह्मण के साथ और मगजपच्ची करना मुनासिब न समझा।

सीता बरामदे के बाहर सीढ़ियों पर बैठी लहू के आँसू रो रही थी कि उसका पिता उसको तड़पता छोड़ लौट गया।

उधर उस लड़की का बाप बाहर निकला, इधर सोहणे शाह ने उसे अपने गले से लगा लिया। 'चिन्ता न करो बच्ची, तुम मेरी बेटी हो ! तुम मेरी राज हो।' और फिर कितनी देर वह उस अनाथ लड़की को गले लगाये रहा।

वह दिन, अगला दिन और फिर प्रतिदिन सोहणे शाह सीता को बेटी कहकर पुकारता। उसने उसे नया जोड़ा बनवा दिया। जो चीज़ सतभराई के लिए बाजार से खरीदता, वही सीता के लिए भी लाता। फिर उठते-बैठते आश्रम के कर्मचारियों से कहता रहता – 'सीता मेरी बेटी है। इसे तो मैं अपने साथ ले जाऊँगा।'

और आश्रमवाले कहते – 'बाबा, पहले तुम अपनी जमीन अलाट करवाओ। शरणार्थी कैम्प में रहनेवालों को इस तरह बेटियाँ देकर हम एक ओर से जिम्मेदारी कम करें, दूसरी ओर बढ़ा दें।'

सोहणे शाह ने आश्रमवालों की यह बात पल्ले बाँध ली। और उसने रावलपिंडी की ढेर-सी जमीन के बदले और लायलपुर की जमीन के बदले यहाँ जमीन अलाट करवाने की ओर ध्यान दिया। ' फिर बसाने वाले महकमे' का दफ्तर सामने ही तो था। आश्रम से फुरसत होती तो सोहणे शाह वहाँ जा बैठता।

एक दिन हर रोज की तरह सोहणे शाह 'फिर बसाने वाले महकमे' के एक क्लर्क के पास बैठा हुआ था कि उधर से महकमे का सबसे बड़ा अफसर आ निकला। सोहणे शाह के बुढ़ापे को देख कर अफसर के दिल में कुछ ऐसी दया आयी कि खड़े-खड़े उसने इसके कागज देखे और जालंधर शहर में गढ़ के पास आरज़ी अलाटमेंट का हुक्म दे दिया। जमीन में अपना कुआँ था और छोटा-सा बगीचा भी था।

जमीन की अलाटमेंट का कागज अपनी चादर के पल्लू के साथ बाँधे उस रोज जब सोहणे शाह 'फिर बसाने वाले महकमे' के कार्यालय से बाहर निकल रहा था – उसका रोम-रोम जैसे पुलकित था। बार-बार वह सोचता – शायद सीता के ही भाग्य से उसे इतनी जल्दी जमीन मिल गयी है। थोड़ी, ज्यादा, जितनी भी थी, उसका गुज़ारा तो हो जायेगा।

और सोहणे शाह सोचता – वह सतभराई और सीता को लेकर अपनी जमीन पर जा रहेगा। हलधर काम तो वहाँ पहले से ही कर रहे थे।

आश्रम में पहुँच कर सोहणे शाह ने अलाटमेंट की पर्ची को सीता के हाथ में दे दिया। और फिर कितनी देर सतभराई और सीता को अपनी बाँहों में लेकर वह खुशी के आँसू रोता रहा।

इसके बाद सोहणे शाह अधिक देर शरणार्थी कैम्प में नहीं रहा। सीता और सतभराई को

ले कर वह अपनी जमीन पर चला गया। सोहणे शाह की जमीन आश्रम से कोई तीन मील की दूरी पर थी।

पहले की तरह अब भी सोहणे शाह और सतभराई आश्रम में सारा-सारा दिन काम करते। पीछे सीता घर को सँभालती।

सोहणे शाह के दिल में किसी कोने में अभी भी एक तड़प छिपी हुई थी – राजकर्णी की याद। और सतभराई जब फारिग होती, अकेली होती – कुलदीप की मुहब्बत जैसे आकर उसे घेर लेती। उसे यूँ लगता जैसे कोई आग अन्दर ही अन्दर उसे भस्म कर रही हो। और जहाँ तक संभव होता – सतभराई किसी न किसी काम में अपने को व्यस्त रखती, कभी बेकार न बैठती, कभी अकेली न रहती।

39

साँझ हो रही थी। आज सोहणे शाह और सतभराई को गाँधी वनिता आश्रम में अधिक देर हो गयी थी। पाकिस्तान से पाँच ट्रकें लड़कियों से भरी हुई आयी थीं और उनकी देखभाल करने में सोहणे शाह और सतभराई सारा दिन मसरूफ रहे थे।

अभी वे आश्रम से निकले ही थे कि हल्के-हल्के अँधेरे में सतभराई ने देखा सामने एक जीप आ रुकी है। फिर जीप में से छलाँग लगा कर एक नौजवान बाहर निकला। यह तो कुलदीप था।

इस तरह की अचानक मुलाकात – कुलदीप गदगद होकर सोहणे शाह से लिपट गया। सतभराई हक्की-बक्की, टुकुर-टुकुर देख रही थी। यह स्वप्न था या सचमुच उसका कुलदीप उसे आ मिला था।

कुलदीप कहता – वह पहली बार ही तो जालंधर आया था। वह तो जब से इस ओर पहुँचा, अपने महकमे के कार्य में कुछ इस तरह व्यस्त हो गया था कि उसे सिर खुजलाने की भी फुरसत नहीं मिली।

कुलदीप की जीप पर अपहृत स्त्रियों को निकालने वाले महकमे का नाम लिखा हुआ था।

और सोहणे शाह कहता – 'मुझे मालूम था तुम ढूँढ़ने से कभी नहीं मिलोगे। जरूरतमन्दों और अनाथों की सेवा में ही तुमसे मुलाकात होगी – और वही बात हुई।'

सतभराई के होंठ काँप रहे थे। उसकी पलकों में आँसू पिरो गये थे। अपलक वह कुलदीप की ओर देखे जा रही थी। वही है। वही है। ऊँचा-लम्बा, गोरा-चिट्टा, गुलाबी-गुलाबी गाल, बड़ी-बडी आँखें, नरम मक्खन के पेड़ों की तरह मुलायम हाथ। और लम्बा हो गया है। कुछ कमज़ोर लगता है। इसे भी कोई याद तड़पाती रही होगी। कैसे निकला होगा उस आग के

अलाव में से जो लायलपुर उन दिनों में था। शरणार्थी कैम्पों में भटका होगा, कई-कई दिन भूखा रहा होगा, यह तो किसी से कुछ नहीं माँग सकता। भूखा रह ले, प्यासा रह ले, इसने तो कभी शिकायत नहीं की होगी। आँखों में रौनक वैसी-की-वैसी है। वैसे के वैसे होंठ रस से छलक रहे हैं, शहद की तरह मीठे।

सतभराई ने सहारे के लिए बिजली के खम्भे को पकड़ रखा था। सोहणे शाह कुलदीप को छाती से लगाये लाख-लाख असीस दे रहा था! उसके अश्रु अविरल बह रहे थे।

कुलदीप की सरकारी जीप में बैठी सतभराई की चुनरी आज सँभाले नहीं सँभल रही थी, उसके बाल उड़-उड़ कर कभी उसके कानों पर आ पड़ते, कभी उसके मुँह पर आ पड़ते। सतभराई को नहीं पता था कि वह कहाँ बैठी है। सतभराई को नहीं पता था कि वह कहाँ से गुज़र रही है कि जीप सोहणे शाह के घर आ पहुँची।

सोहणे शाह के घर, कुलदीप की मुलाकात सीता से हुई। सीता की कहानी तो सोहणे शाह ने उसे रास्ते में ही बता दी थी। एक नजर सीता को देखकर कुलदीप की आँखें भर आयीं।

अपहृत स्त्रियों के क्लेश को कुलदीप से ज्यादा कौन जानता था! पाकिस्तान से इस ओर आने से पहले ही उसका इस महकमे से सम्बन्ध हो गया था – उसका और कुलवन्त का। इसमें भी रशीद ने उनकी सहायता की थी। महकमे के लोग रशीद के अब्बा के पास मदद के लिए गये थे और रशीद ने किसी प्रकार कह-कहलवा कर कुलदीप और कुलवन्त को उनके साथ लगवा दिया था। यह सोचकर कि यदि और कुछ नहीं तो इस महकमे की बदौलत वे भारत तो सुरक्षित पहुँच जायेंगे।

कुलदीप जिस काम में लगता, उसी का होकर रह जाता। कुलदीप ने तो जैसे अपने आपको पूरा-पूरा इस महकमे की सेवा में डुबो दिया था। एक बार फिर पाकिस्तान हो आया था और दूर-दूर गाँवों में से उसने मज़लूम हिन्दू-सिक्ख लड़कियों को अपनी जान खतरे में डाल कर बरामद कर लिया था। कई बूढ़े जिन्हें भागते समय लारियों में जगह न होने के कारण पीछे ही छोड़ दिया गया था, कई बच्चे जो मुसीबत के समय माता-पिता से बिछुड़ गये थे।

कश्मीर में लड़ाई छिड़ जाने के कारण कुलदीप रावलपिण्डी के इलाके में जा नहीं पाया था, नहीं तो वह कहता – वह कई चक्कर वहाँ के काट आता। कोई न कोई खबर राजकर्णी की मिल गयी होती। इस महकमे के कर्मचारियों को अधिकार प्राप्त थे कि किसी गाँव में अपहृत को वहाँ की पुलिस की मदद से अपने कब्जे में कर लें।

कुलदीप की बातें सुन रहे सोहणे शाह की आँखों में एक रोशनी-सी आती जा रही थी। वह सोचता – कुलदीप के साथ उसका जो मेल बार-बार हो रहा था; वह बिना कारण के नहीं था। शायद यह पिछले जन्म के संयोग थे, और बार-बार वह कुलदीप को बेटा-बेटा कह कर पुकारता। जब भी उससे बातें करता, बूढ़े सोहणे शाह की सारी आयु की सँभाल-सँभाल रखी मुहब्बत उसके होंठों पर नाचने लगती। सोहणे शाह सोचता – यह लड़का उसकी सब मुसीबतों का जवाब बनकर शायद उसकी जिन्दगी में आया था। कभी न कभी किसी न किसी तरह वह राजकर्णी को अवश्य निकाल लायेगा।

'राजकर्णी के बदले चाहे मुझे सौ मुसलमान लड़कियाँ इस ओर से भेजनी पड़ें, मैं भेजूँगा, और एक बार उसे बरामद करके रहूँगा।' कुलदीप बार-बार कहता और सोहणे शाह की जान में जैसे जान आ जाती।

कितनी देर बाद सोहणे शाह आज पहली बार हँसा था। कोई बात नहीं थी, यूँ ही कोई बहाना करके हँसने लगा। हँसते-हँसते उसकी आँखों में आँसू आ गये।

सतभराई हैरान होती, यह कैसा लड़का था – खाना खाने बैठा, सीता के पकाये साधारण खाने की बार-बार प्रशंसा करना शुरू कर देता। उँगलियाँ चाट-चाट कर खा रहा था। हर ग्रास मुँह में लेकर वाह-वाह करने लगता था। जिन्दगी से कितनी मुहब्बत थी उसकी। प्यार का कितना भूखा था। कितनी देर तक कुएँ के पानी को अच्छा-अच्छा कहता रहा – 'ठंडा-ठंडा, मीठा-मीठा। यह पानी पीकर भूख खूब लगती होगी। जालंधर शहर का पानी यूँ भी बहुत बढ़िया सुना है।' सतभराई का बनाया 'आबी अचार' उसे कितना अच्छा लगा था। कितनी देर 'आबी अचार' के गुण गिनवाता रहा। 'तेल का अचार गले के लिए अच्छा नहीं होता। आबी अचार में अदरक हो, नींबू हो, हरी मिर्च हो और नमक अंन्दाज़े का हो...'

और सतभराई बार-बार अपनी उँगलियों की ओर देखती, जिन उँगलियों ने यह अचार बनाया था।

सोचती, आज रात मैं भी अचार खाकर देखूँगी। कितना मजे का है, आज मैं भी आजमाऊँगी।

कुलदीप तो दीवाना है ! दुनिया कहीं की कहीं जा पहुँची है और यह नहीं बदला। और सतभराई के होंठों पर मुस्कान खेलने लगी।

यह तो दीवाना है।

चौके में सतभराई की एक बार ठोकर पानी के भरे गिलास से लगी, गिलास औंधा जा गिरा, दूसरी बार आयी उसका पाँव बेलन पर पड़ा और वह खुद गिरते-गिरते बची। जब मर्द खाना खा चुके, दोनों हाथों में एक-एक थाली उठाये आ रही, मन में इस बात की उतावली कि वह शीघ्र ही हाथ धुलाने के लिए लौटे, दोनों के दोनों थाल सतभराई के हाथों से गिरे और घर में हर कोई चौंक गया।

सतभराई बड़ी शर्मिन्दा हुई।

उस रात सतभराई सोचने लगी – वह जिसकी याद उसे पल-पल तड़पाती थी, जिसके लिए हर क्षण वह हाथ जोड़ा करती थी, दुआएँ माँगा करती थी, वह जिससे मिलने के लिए वह हर कीमत देने के लिए तैयार थी, वह आ गया था और एक बात भी उन्होंने एक दूसरे के साथ नहीं की थी। उसने तो पलकें उठा कर शायद इसकी ओर देखा था, शायद नहीं !

और सतभराई इस तरह के विचारों में डूबी सो गयी।

'सत !'

'सत्ती !'

'सत्तीए !'

वह कौन उसे बुला रहा था। सस्सी को उसका पुन्नूँ पुकार रहा था।

और फिर उसके चेहरे पर फैली हुई एक लट को धीरे से उठा कर किसी ने उसके गालों पर हाथ रख दिया। वह मज़े-मज़े में लेटी रही। जैसे जल रही धरती पर रिमझिम-रिमझिम फुहार पड़ने लगे। जैसे नीले आकाश में उड़ रहा कोई पक्षी आँखें मूँद ले।

और फिर एक गोरी बाँह ने जैसे सहारा देकर उसे उठा लिया। गोरी और प्रेम में पुलकित बाँह उसकी कमर के गिर्द लिपटी हुई थी।

और चलते-चलते कोई उसे बाहर ले जा रहा था, कमरे से बाहर, बरामदे से बाहर, आँगन से बाहर। सामने खेत की नुक्कड़ में अमराई के पेड़ के तले वे खड़े थे। अमराई के तने के साथ सटकर। गोरे-गोरे, कोमल-कोमल दो हाथों ने उसे समूचा अपने बाहुपाश में ले लिया था। उसकी उंगलियाँ काँप रही थीं, उसके होंठ थिरक रहे थे, उसका अंग-अंग बेताब था। अमराई के पेड़ के साथ सटे खड़े उन्हें कितनी ही देर हो गयी। आकाश में चाँद कहाँ जा पहुँचा था।

सतभराई को महसूस हुआ – जैसे चाँद की चाँदनी कुएँ में उतरती जा रही है। और जैसे नहा-नहा कर बाहर निकल रही हो। रश्मियों के साथ तैरता चाँद जैसे खुद नीचे उतर आया था। सामने कुएँ में डूबता जा रहा था। हौले-हौले कदम चाँद सारे का सारा कुएँ में छुप गया। चाँद उनके कुएँ में उतर गया था और सतभराई गोरी-गोरी बाँहों में लिपटी टुकुर-टुकुर उसे देख रही थी।

और फिर सतभराई ने देखा – एक रंगबिरंगी तितली, कभी किसी फूल पर बैठती, कभी किसी फूल पर बैठती, उसके प्रियतम के होंठों पर आ जमी थी और कैसे एक साँस में जैसे सारे का सारा रस चूस रही थी।

'आज तुम सोई ही रहोगी।' सतभराई को सीता ने आकर उठाया। सतभराई पसीना-पसीना हो रही थी। खिड़की में से छन-छन कर आ रही सूरज की किरणें कितनी देर से उसके मुँह पर पड़ रही थीं।

सोहणे शाह और कुलदीप कभी के उठकर, उसकी प्रतीक्षा करते बाहर निकल गये थे।

'सपना था!' सतभराई ने दिल ही दिल में कहा और मुस्कराने लगी। 'सपना था! सपना था! बार-बार सतभराई अपने आपको समझा रही थी।

और फिर सतभराई सोचने लगी – नहीं, नहीं शायद यह जिन्दगी ही एक ख्वाब है और वह स्वप्न एक सच्चाई था। गोरी-गोरी बाँहों में लिपटे हुए खो जाना, वही सच्चाई थी।

40

दोपहर हो गयी। शाम हो गयी। अँधेरा होने लगा था। न सोहणे शाह लौटा, न कुलदीप

सतभराई हैरान थी – इनको हो क्या गया है ? दिन को रोटी पकी वैसी की वैसी रखी थी। शाम का भोजन उसने स्वयं अपने हाथों से बनाया था, और खानेवालों की कोई खबर नहीं थी। प्रतीक्षा में सतभराई ने न दिन में कुछ खाया था, न अब रात को। भूखी-प्यासी, बेचैन, आँगन से बरामदे में, बरामदे से कमरे में और कमरे से फिर आँगन में घूम रही थी। यूँ एक बार वह जब कमरे में आयी, उसकी नजर सामने ताक में रखे, रेशमी रूमाल में लिपटे पाक कुरान पर पड़ी। किसी ने रेशमी रूमाल की गाँठ खोल कर देखा था और फिर वैसे का वैसा उसे धर दिया था। न रेशमी रूमाल में गाँठ दो थी, न उसे सलीके से रखा था, जैसे हमेशा सतभराई सँभालकर रखा करती थी। जवाहरलाल की निशानी, उसका दिया हार जो ताक के पास एक खूँटी से लटका रहता, आज नीचे फर्श पर गिरा, मसला हुआ था।

और सतभराई की ऊपर की साँस ऊपर और नीचे की साँस नीचे रह गयी। यह तो वही था और कोई नहीं हो सकता। उसकी एक-एक चोरी पकड़ी गयी। सतभराई के कुरान को न कभी सोहणे शाह ने हाथ लगाया था, न कभी सीता ने पलट कर उसकी ओर देखा था। यह तो वही था। कुलदीप की उँगलियों ने उसे खोला था। वह देखकर हक्का-बक्का रह गया होगा और फिर वैसे का वैसा उसने ताक पर रख दिया होगा। यह तो वही था। कुलदीप, जिसके बारे में लोग कहते थे, जब अपने आग में जल रहे गाँव से निकला तो इस बात की जिद करने लगा कि वह अपने साथ धार्मिक पुस्तकों की पेटी जरूर ले जायेगा। मिलिट्री की ट्रक में आदमियों के लिए तो जगह थी नहीं और वे इसकी पेटी को कैसे ले जाते। ये देखकर कुलदीप लारी से छलांग लगा कर उतर गया। कहा, पहले मेरी धार्मिक पुस्तकों की पेटी रखो, फिर मैं चलूँगा। उधर गाँव में फसादियों की गोलियाँ तड़-तड़ चल रही थीं। कुलदीप कहता, मेरी धार्मिक पुस्तकें ले चलो, मैं बाद में आऊँगा। आखिर हार कर फौजी सिपाहियों ने ट्रक में उसकी पेटी रखी और फिर कुलदीप चलने के लिए राजी हुआ था।

यह कुलदीप ही था जो लायलपुर में जब फसाद हुए, सारा-सारा दिन गुरुद्वारे में बैठा पाठ करता रहता था।

यह कुलदीप ही था जिसने कल ही बातों-बातों में कहा था, चाहे सौ मुसलमान लड़कियाँ बदले में देनी पड़ें वह राजकर्णी को जरूर निकाल लायेगा। यह सोचते-सोचते वह चारपाई पर जा गिरी।

वही बात थी जिसका सतभराई को डर था। बल्कि स्थिति उससे भी बदतर थी। सोहणे शाह जब रात को अकेला लौटा, उसने सतभराई को सारी व्यथा कह सुनाई।

कुलदीप कहता, सरकार का कानून है, कोई मुसलमान लड़की इस ओर नहीं रह सकती, जिस इलाके में से मुसलमान निकाले गये हों। जैसे हर हिन्दू-सिक्ख लड़की को जो चाहे किन परिस्थितियों में उधर रह गयी थी इधर आना जरूरी था।

सोहणे शाह ने सतभराई को बताया, कुलदीप लहू के अश्रु रोता था। कहता, किस मुँह से वह इस ओर रह गयी लड़कियों को उस ओर भेजा करेगा और उस ओर रह गयी लड़कियों को इस ओर लाया करेगा। जिस दिन से वह इस महकमे से संबंधित हुआ था, उसने किसी

का भी लिहाज नहीं किया था। वह तो अपने काम को अपना धर्म समझता था। अपने मजहब से कोई कैसे फिर सकता है ?

सीता आ गयी थी, जिसे इधर लेने वाला कोई नहीं था। सीता जैसी कई उसकी बहनें अपनी कोख में अत्याचार की निशानियाँ सँभाले इधर आ गयी थीं, जिन्हें पता नहीं चलता था कि अपना मुँह कैसे वे किस को दिखायें।

सोहणे शाह ने उसकी लाख-लाख मिन्नतें की, सतभराई की सारी कहानी उसने सुनाई – वह तो अपने अब्बा की एक ही एक बेटी थी और फसादियों ने किस तरह उसके बाप को भालों पर उछालकर टुकड़े-टुकड़े कर दिया था। सतभराई के बाप के घर को उसी तरह जलाया गया था, जैसे हिन्दू-सिक्खों के घरों को। अब सतभराई जो उधर गयी तो किस के पास जायेगी। सतभराई का पाकिस्तान के साथ क्या सम्बन्ध था ?

लेकिन कुलदीप की समझ में एक भी बात नहीं आ रही थी। और छल-छल आँसू बहाता हुआ बिना बताए कि वह कहाँ जा रहा है, कब लौटकर आयेगा, सोहणे शाह को सड़क पर खड़ा छोड़ कहीं चला गया। सारा दिन सोहणे शाह उसे ढूँढ़ता रहा। छावनी से शहर, शहर से छावनी कई चक्कर उसने लगाये, लेकिन उसे कुलदीप का कुछ पता नहीं चला।

'मुझे यह पता नहीं था कि यह लड़का हमें यूँ डंक मारेगा।' आखिर बूढ़े सोहणे शाह ने फरियाद की।

सतभराई ने आगे बढ़कर उसके मुँह पर हाथ रख दिया।

'न चाचा, न चाचा।' वह तड़प उठी। सतभराई की अथाह मुहब्बत कुलदीप के खिलाफ कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं थी।

और सतभराई बाहर बरामदे में गयी, कुहनियों-कुहनियों तक उसने अपने बाजू धोये, टखनों-टखनों तक अपने पैर धोये। कानों-कानों तक अपना मुँह धोया, कुल्लियाँ कीं और अन्दर आकर चुनरी का पल्लू सिर पर लिये कुरान शरीफ का पाठ करना शुरू कर दिया। छल-छल उसकी आँखें बह रही थीं। परन्तु वह एक-एक आयत को बार-बार पढ़ रही थी।

सोहणे शाह उछल-उछल पड़ता, उसके पाँव ज़मीन पर नहीं लगते थे। 'मेरे आँगन में किसी ने पाँव रखा, मैं उसकी टाँगे तोड़ दूँगा।' बार-बार कहता। फिर अपनी विवशता का ख्याल करके दीवारों के साथ सिर मारता, खिड़कियों की सलाखों पर सिर पटकता।

सतभराई वैसी की वैसी कुरान-शरीफ का पाठ कर रही थी। रो-रो कर, लाल हो रही आँखें – पर वह एक-मन पढ़े जा रही थी।

सोहणे शाह सोचता, भगवान ने उसका घरबार छीन लिया था। भगवान ने उससे उसकी राजकर्णी छीन ली थी, भगवान ने उससे अल्लादित्ता छीन लिया था, जिसकी मित्रता उसकी उम्र जितनी पुरानी थी, उसकी दाढ़ी के सफेद बालों जैसी बेदाग थी और सोहणे शाह ने भगवान की आज्ञा को शीश नवा कर मान लिया था। अब यदि सतभराई उससे छीन ली गयी, वह तो नहीं बच सकेगा। कभी आँगन में जा खड़ा होता, कभी बरामदे में जा खड़ा होता, कभी अन्दर कमरे में आकर बोलने लग जाता।

सतभराई वैसी की वैसी कुरान का पाठ कर रही थी। रो-रो कर सूज गयी पलकें, पर वह एक मन पढ़ती जा रही थी।

सोहणे शाह सोचता, ये कानून तो पंडित नेहरू के ही बनाये हुए हैं, वह खुद उनसे जाकर बात करेगा। अभी तो उस दिन उसने उसे दूध पिलाया था। उसका दिया मोतिया का हार, उसकी निशानी, सामने खूँटी से लटक रहा था। ताक में सतभराई का कुरान रखा रहता; ताक के बाहर खूँटी पर नेहरू की देन – मोतिया का हार टँगा रहता था। जैसे सतभराई के ईमान की रक्षा कर रहा हो और ये किस तरह के लोग थे उसके देश में ! उसकी आँखों के सामने उसके घर को लूट रहे थे।

सतभराई वैसी की वैसी पाक कुरान का पाठ कर रही थी। रो-रो कर काली पड़ गयी आँखें; पर वह एक मन पढ़ती जा रही थी।

सोहणे शाह सोचता, गाँधी क्या कहता था ? देश का पिता कैसे सोचता था और ये लोग क्या कर रहे थे ? 'मुसलमान मेरा भाई है।' उस दिन उसने रेडियो पर कहा था। उसने तो मौन-व्रत रखकर करोड़ों रुपये पाकिस्तान भिजवाये थे, कोयला भिजवाया था, जिसकी कमी के कारण उस देश की रेलगाड़ियाँ रुक गयी थीं। कल तक जो अपने थे, वे यूँ एक क्षण में कैसे पराये हो गये थे ? अल्लादित्ता खान उसका भाई था। अल्लादित्ता खान से तो उसने पगड़ी बदली थी। सतभराई को देखर उसे अपनी राजकर्णी का दु:ख भूल जाता था। सतभराई को कैसे वह छाती से नोचकर दे सकता था ? क्योंकि वह मुसलमान थी, वह सोहणे शाह की बेटी नहीं हो सकती थी ! यह घोर अन्याय है। और सोहणे शाह ने अपने बाल नोचने शुरू कर दिये। उसके चेहरे पर वही वहशत आ गयी जो पहले भी एक बार आयी थी, जब रावलपिंडी के शरणार्थी कैम्प से वह कहीं निकल गया था।

सतभराई वैसी की वैसी पाक कुरान का पाठ कर रही थी। रो-रो कर नीली पड़ गयी आँखें, पर वह एक-मन पढ़ती जा रही थी।

सोहणे शाह सोचता, अब मैं नहीं बचूँगा। आखिर क्या रह गया था जिसके लिए मैं और जीवित रहूँ ? उसका जी चाहता कि पाँव से अपना जूता उतारकर वह अपने सिर को पीटे। वह क्यों ज़िन्दा था ? किसी से किसी की जान का टुकड़ा छिन जाय और फिर भी कोई ज़िन्दा रहे ! किसी से किसी की ज़िन्दगी का सारा सरमाया लुट जाय और फिर भी कोई ज़िन्दा रहे ! नहीं ! नहीं ! ! नहीं ! ! ! और अब वह ज़िन्दा नहीं रहेगा। और बूढ़े सोहणे शाह की आँखों के सामने चक्कर आने लगे। उसका सिर चकराने लगा। उसे ऐसे लगता जैसे उसके आगे-पीछे अन्धकार की दीवारें खड़ी हो गयी हों। उसका दम घुटता जा रहा था। उसके अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ते जा रहे थे। और फिर सोहणे शाह सामने चारपाई पर औंधा जा पड़ा।

सतभराई वैसी की वैसी पाक कुरान का पाठ कर रही थी। रो-रोकर उसकी आँखें मुँद गयी थीं। एक ही आयत का वह बार-बार विर्द करती जा रही थी।

चारपाई पर गिरे सोहणे शाह की बत्तीसी भिंच गयी थी, उसके हाथ-पाँव मुड़ गये थे, उसका रंग नीला-पीला हो गया था।

सोहणे शाह यूँ बेहोश पड़ा था कि बाहर एक जीप आ रुकी। इस जीप में कुलदीप था। उसके साथ पुलिस के अफसर थे। जीप के पीछे-पीछे एक ट्रक थी – ट्रक में पुलिस के सिपाही थे।

सतभराई ने पुलिस को अन्दर आते हुए देखा तो पाक-कुरान को रेशमी रूमाल में लपेट कर छाती से लगाये खड़ी हो गयी। सिर पर दूध-सी सफेद चुनरी की बुक्कल, छाती से कुरान लगाये, सतभराई ऐसी लगती जैसे आसमान से उतरी परी हो।

'सतभराई तुम्हारा ही नाम है लड़की?' पुलिस के सबसे बड़े अफसर ने पूछा।

अभी सतभराई का जवाब उसके होंठों पर ही था कि पुलिस वालों की नज़र चारपाई पर बेहोश पड़े सोहणे शाह पर पड़ी। कोई उसके पाँव के तलवे मलता, कोई उसकी हथेलियाँ मलता, कोई उसकी बत्तीसी खोलने की कोशिश करने लगा। बत्तीसी भिंच जाने से सोहणे शाह की जबान दाँतों में आकर लहू-लुहान हो गयी थी।

सोहणे शाह की हालत खतरे से खाली नहीं थी। कितनी देर से पुलिस के कर्मचारी उसमें व्यस्त रहे। सतभराई वैसी की वैसी शान्त, अडिग, संगमरमर के बुत की तरह चलने के लिए तैयार खड़ी थी। सोहणे शाह में व्यस्त; बार-बार पुलिस का अफसर सतभराई से कहता, 'लड़की तुम तैयार हो जाओ।' और बार-बार सतभराई अपने कुरान को छाती के साथ भींच लेती और वैसी की वैसी खड़ी रहती, जैसे कह रही हो, मैं तो तैयार हूं, मेरी जायदाद मेरे सीने के साथ लगी है। और फिर एकदम कमरे में एक बदबू आयी। किसी चीज के जलने की दुर्गन्ध इस तेज़ी से आ रही थी कि कमरे में खड़ा रहना मुश्किल हो रहा था। और फिर सबकी नज़र कमरे के एक अँधेरे कोने में खड़े कुलदीप पर पड़ी। ताक में रखे जल रहे दीये की लौ पर उसने अपनी हथेली रखी थी और वह अचल खड़ा था। उसके हाथ की खाल जल रही थी। सतभराई की पीठ के पीछे खड़ा टुकुर-टुकुर वह उसकी ओर देख रहा था, पलकों में आँसुओं के मोती पिरोये हुए।

घबराये हुए पुलिस के अफसर ने कुलदीप को उसके कन्धे से आकर पकड़ा और वह पुलिस अफसर की बाँहों में ढेर हो गया।

41

सतभराई को गये हुए कई दिन हो चुके थे।

सोहणेशाह अभी तक अस्पताल में था। कभी पलकें खोल लेता। फिर कितनी-कितनी देर आंखें मूंदे पड़ा रहता।

"चाचा। सतभराई लायलपुर रशीद के पास पहुंच गई।" कुछ दिनों बाद जब उसने पलकें खोलीं, उसके सिरहाने बैठे हुए कुलदीप ने सोहणेशाह को बताया।

सोहणेशाह वैसे का वैसा पड़ा था।

"चाचा। सतभराई और रशीद का निकाह हो गया है।" फिर कुछ दिनों बाद जब सोहणेशा ने पलकें खोलीं, कुलदीप ने उसको बताया और कुलदीप की आंखें छलछला उठीं।

सोहणेशाह की हालत में कोई फरक नहीं पड़ा। डाक्टर अपना सिर खपा-खपा कर थक गये।

"चाचा। रशीद और सतभराई, राजकर्णी को ढूंढ़ने पिंडी चले गये हैं।" कुछ और दिनों के बाद जब सोहणेशाह की पलकें खुलीं, कुलदीप ने उसको बताया। जिस दिन से गई थी, कुलदीप को हर दूसरे रोज सतभराई की खबर आ रही थी।

सोहणेशाह की पलकें, आज पहली बार खुली की खुली रह गईं। जैसे आगे-पीछे, अपने आस-पास को वह पहचान रहा हो।

हर चौथे दिन, सतभराई की चिट्ठी आती, रशीद की चिट्ठी आती। छोटी-छोटी बातें सतभराई की नई ज़िंदगी की। राजकर्णी को ढूंढ़ने के लिए उसके प्रयास, सोहणेशाह के प्रति उसकी श्रद्धा। हर चिट्ठी में लिखती - चाचा। अगर मैं उधर नहीं रह सकती, तू तो इधर आ सकता है। कुलदीप को अलग चिट्ठियां, सोहणेशाह को अलग चिट्ठियां, सीता को अलग चिट्ठियां। कुछ दिन और बीत गए, और फिर सोहणेशाह को अस्पताल से छुट्टी मिल गई।

जिस दिन से सतभराई गई थी, कुलदीप अपने आ में खोया रहता। जैसे हाथ लगते ही फूट पड़ेगा। सीता उसकी खातिर करती रहती, उसकी हर छोटी-छोटी जरूरत का ध्यान रखती; कभी उसकी कमीज़ के बटन टांक रही है तो कभी उसके नहाने के लिए पानी गर्म कर रही है, कभी कुछ और कभी कुछ।

एक दिन मुंह-अंधेरे कुलदीप को अपने काम पर जाना था। सीता रात को सोच कर सोई, कि वह सुबह सुबेला में उठ जायेगी, और कुलदीप को कुछ खिला-पिला कर विदा करेगी, पर जवानी को नींद, वह सोई रही। बाहर आंगन में जीप का हार्न सुनकर उसकी आंख खुली। और घबराई हुई सीता उठकर रसोई की ओर गई। रसोई में उसने कदम रखा ही था कि उसका पांव फिसल गया और जल्दी में वह मुंह के बल औंधी जा पड़ी।

भोर होने से पहले का अंधेरा, सीता की चीख सुनकर सोहणेशाह भी दौड़ता हुआ आया, कुलदीप भी। एक चीख, और फिर सीता को गश आ गई। कुलदीप और सोहणेशाह ने उसे उठाकर चारपाई पर डाला। और फिर उसके तलवे रगड़-रगड़ कर, उसके मुंह पर पानी के छींटे मार-मार कर, बड़ी मुश्किल से उसे होश में लाया गया।

सीता एक असील गाय की तरह खामोश पड़ी थी। पर उसकी आंखों से लगता जैसे गहरी पीड़ा झेल रही हो। मुंह से नहीं बोल रही थी पर ऐसा लगता जैसे उसका पोर-पोर पीड़ा से तड़प रहा हो। और फिर देखते-देखते सीता का बिस्तर लहू-लुहान हो गया। सीता फिर बेहोश हो गई थी। उसी जीप में डालकर उसे हस्पताल भिजवाया गया।

गिरने से सीता को सख्त चोट आई थी। लेडी डाक्टर को डर था, शायद उसके पेट का

बच्चा ज़ाया हो गया था। दोपहर से पहले-पहले सीता का आपरेशन कर दिया गया।

सोहणेशाह सोचता, कोई बुरी बात होनी हो, जरूर होकर रहती है, कभी नहीं टाली जा सकती। और अच्छी बात कोई होती ही नहीं थी। उसकी ज़िंदगी में कभी कोई अच्छी बात नहीं होती थी। और चिन्ताओं में डूबा हुआ सोहणेशाह कितनी-कितनी देर सोचता रहता, सिर हिलाता रहता।

दस दिन, और सुर्खरू होकर सीता अस्पताल से लौट आई। उदास-उदास, खुश-खुश। लेडी डाक्टर ने कहा था, उसे एक हफ्ता और आराम करना चाहिए। पर सीता कब आराम करने वाली थी। आते ही चूल्हे-रसोई की चिन्ता करने लगी।

घर में सीता थी, कुलदीप था, सोहणेशाह को ऐसा प्रतीत होता जैसे उसके सारे काम अपनी चाल चल रहे हों, पर सतभराई की याद, राजकर्णी का बिछोह, उससे भूलते नहीं बनता था। और आजकल फिर उसे यह धुन सवार थी कि वह राजकर्णी को ढूंढ़ने जायेगा। उठते-बैठते इसी बात की चर्चा करता रहता। कुलदीप, लाख उसे समझाता – जब तक कश्मीर के बारे में समझौता नहीं होता, किसी हिन्दू-सिक्ख का रावलपिंडी की ओर जाना संभव नहीं था। पर सोहणेशाह के कोई बात समझ में न आती। कभी-कभी लगता पुराना दौरा जैसे उसको फिर पड़ने लगा हो।

और फिर एक शाम, गठरी बांध कर सोहणेशाह पाकिस्तान जाने के लिए तैयार हो गया। कुछ भी हो, कोई भी कीमत देनी पड़े, वह राजकर्णी को ढूंढ़ कर लायेगा।

चुपचाप, बिना किसी को बताये, सोहणेशाह तैयारी कर रहा था कि रात्त को खबर आई कि तीन गोलियां महात्मा गांधी की छाती में दाग कर किसी ने राष्ट्रपिता की हत्या कर दी थी। सोहणेशाह ने सुना और उसकी गठरी उसके हाथों से गिर गई। वह जहां खड़ा था, वहीं बैठ गया। जैसे बैठा था उसका सिर एक ओर लुढ़क गया। सोहणेशाह को लगता, जैसे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा हो। इस अंधेरे में न कोई सोहणेशाह था, न कोई राजकर्णी थी। न कोई दूर था न कोई पास। न कोई बिछुड़ा था, न कोई मिला था। अंधेरा, बस अंधेरा, और कुछ नहीं।

दूसरा खंड

"रोक लो, रोक लो, रोक लो", ट्रक बाघा बार्डर से गुजरा ही था कि गुरांदई के घर वाले ने अचानक वावेला मचाना शुरू कर दिया। ट्रक रुका और शरणार्थियों के लदे-फँदे ट्रक में से छलांग लगा कर गुरांदित्ता उतर गया। और दस कदम दूर जाकर उसने पुकारना शुरू कर दिया:

'हिन्दुस्तान जिन्दाबाद !'
'महात्मा गांधी जिन्दाबाद !'
'जवाहरलाल नेहरू जिन्दाबाद !'

कान पर हाथ रखे, चीख-चीख कर जब वह थक गया तब गुरांदित्ता ट्रक में आ बैठा। जोश में आकर नारे लगाने से उसका साफा उतर गया। उसके बालों की सफेद लटें खुल गयीं। गुरांदित्ता ट्रक में आकर बैठा, और ट्रक फिर चल दिया। गुरांदेई उसके बालों को समेट कर फिर से साफा बांधने के लिए कह रही थी। गुरांदित्ता जो पिछले कई दिनों से हक्का-बक्का दीवानों की तरह खामोश था, फिर सिमटकर बैठ गया।

"ल्हैजी ! साफा बाँध लो", उसके बच्चे ने कुछ देर बाद गुरांदित्ता को याद दिलाया।

ट्रक में हर किसी को बूढ़े गुरादित्ता पर बड़ा तरस आ रहा था। जब से उसकी जवान बेटी फसादियों ने उसकी बांहों से छीन ली थी, वह न सुनता था और न बोलता था। बिट्-बिट् आंखें, केवल देखता रहता। कितने दिन हो गए और एक शब्द उसके मुँह से नहीं निकला था। अब आजाद हिन्दुस्तान में कदम रखते ही जब वह यूं अचानक बोलने लगा तो गुरांदेई ने लाख-लाख शुक्र किया, जैसे मनों बोझ उसके सिर से उतर गया हो। उसकी आँखें मुंद गयीं। गुरांदेई सोचती, अब वह आजाद देश में थी। दो बड़े बेटे उसके पहले ही इधर आ चुके थे। गड़बड़ शुरू होने से पूर्व ही उसने उन्हें इधर भेज दिया था। सबसे छोटा उसके पास बैठा था, और ईश्वर ने चाहा तो उसकी बेटी भी उसे फिर मिल जाएगी। अब वे आजाद देश में थे – गांधी के देश में, नेहरू के देश में।

और गुरों सोचती, और कुछ न हुआ तो वह जवाहरलाल से जा मिलेगी। उसका अपना भाई था। भाई, बहनों का कहा कभी नहीं टालते। गुरांदेई ने तो अपने सुहाग की चूड़ियां, मेंहदी-रंगे हाथों से उतारकर उसके हवाले कर दी थीं।

और कई वर्ष पहले का वह एक चित्र गुरांदेई की आँखों के सामने घूमने लगा। अभी तीन महीने उसके ब्याह को हुए थे कि सुनने में आया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू उनके शहर आ रहे हैं। जिस राह से उन्हें गुजरना था, उसे फूलों और हरे पत्तों के द्वारों से सजाया जा रहा

था। जिन बाजारों से उनकी मोटर को निकलना था, उनमें गलीचे और रेशमी चादरें बिछाई जा रही थीं। और जवाहरलाल केवल कुछ घण्टों के लिए आ रहे थे।

हवाई अड्डे से सीधे कम्पनी बाग जलसे में आयेंगे। जलसे में भाषण देंगे और लौटकर हवाई अड्डे चले जाएंगे। गुरांदेई ने यह सुना, और उसके मन में उमंग भर उठी। मैं तो जाऊंगी, मैं जलसे में जरूर जाऊंगी, जब भी गुरांदित्ता के पास वह अकेली होती, उसके कानों में यही फूंकती रहती। जवाहरलाल को शाम के ठीक चार बजे जलसे में भाषण देना था। और उस दिन सुबह दो बजे गुरांदेई और गुरांदित्ता, अठारह मील दूर अपने गाँव से चल पड़े। उनके पास एक घोड़ी थी जिस पर कभी पत्नी बैठती, कभी पति बैठ जाता। वह पंडित जी की कई बातें, जो उसने अपने कांग्रेसी पिता से सुनी थीं, गुरांदित्ता को सुनाती रही – विलायती मेंमें पंडित जी के घर नौकरी किया करती थीं। बड़े-बड़े अंग्रेज, पंडित जी के पिता की मातहती करते थे। पर पंडित जी ने देश के लिए सब कुछ कुर्बान कर दिया। जिस महल में वह रहते थे, वह भी कांग्रेस को सौंप दिया। फिर फिरंगी ने पंडित जी को कैद कर लिया और जेल में बन्द करके भी उनसे थर-थर काँपता था। गुरांदेई के पिता ने पंडित जी को देखा था। वह ऊंचे हैं, गोरे हैं, लम्बे छरहरे बदन के, फर-फर अंग्रेजी बोलते हैं...। ये इधर-उधर की बातें करते अभी चार बजने में दो घण्टे थे कि वे शहर पहुँच गए। गुरांदेई कहीं न रुकी, सीधी कम्पनी बाग आई और अच्छे से एक स्थान को चुनकर बैठ गई। कई लोग गुरांदेई से भी पहले आकर बैठे हुए थे। ज्यों-ज्यों समय गुजरता, भीड़ बढ़ती जाती। चारों ओर तिल धरने की जगह न रह गई थी। लोग दरख्तों पर चढ़ गए थे, बिजली के खम्भों पर चढ़ बैठे थे। लारियों की छतों पर धरना जमाए हुए थे। 'पंडित जवाहरलाल नेहरू जिन्दाबाद !' 'महात्मा गांधी जिन्दाबाद !' 'इन्कलाब जिन्दाबाद !' के नारे जैसे आकाश को चीर रहे थे। फिर ऊपर से एक हवाई जहाज गुजरा। जहाज की आवाज सुनते ही लोग बांहें उठा-उठाकर चीख-चीखकर नारे लगाने लगे। गुरांदेई भी बाकी लोगों के साथ 'पंडित नेहरू जिन्दाबाद !' जवाहरलाल जिन्दाबाद !' पुकारती रही, पुकारती रही।

कुछ देर बाद पंडित जी जहाज जितनी बड़ी एक नई मोटर में बैठे हुए आए। यूं लगता था जैसे नारे लगा-लगाकर लोगों के गले बैठ जाएंगे। फिर पंडित जी मंच पर आए। उन्होंने हाथ जोड़े। नारों के शोर से चारों दिशाएं गूँजने लगीं। फूलों की, हारों की, सेहरों की वर्षा से चप्पा-चप्पा धरती ढक गई। फिर पंडित जी ने एक हाथ उठाया। लोग यूं शान्त हो गए जैसे वहां कोई बैठा-तक न हो।

पंडित जी बोलते गए, बोलते गए – आजादी बड़ी नेमत है। आजादी दी नहीं जाती, आजादी ली जाती है। गुलामी दूर करने के लिए हमें हर कुर्बानी करनी होगी – तन की, मन की, धन की। आज मैं अपनी आजादी की जंग के लिए चन्दा इकट्ठा करने आया हूँ...।" बस फिर क्या था, लोगों ने नोटों की गड्डियां, चैक, अशर्फियों के हार, रुपयों-पैसों के मंच पर ढेर लगा दिए। औरतें चुप थीं, मरदों के मुँह की ओर देख रही थीं कि गुरांदेई उठी। वह अपने सुहाग की चूड़ियां उतारती हुई मंच की तरफ लपकी। और गोरी-गोरी कलाइयों से सोने की

चार चूड़ियां उतार कर उसने पंडित जी की हथेलियों पर जा रखीं। पंडित जी ने चूड़ियों को देखा, चूड़ियों वाली के मेंहदी-रंगे हाथों को देखा, और उनकी आँखें डबडबा आईं। उन्होंने गुरांदेई को उसके सुहाग की निशानी एक चूड़ी लौटा दी। और फिर हर औरत ने अपने गहने उतार-उतार कर मंच पर फेंकने शुरू कर दिए– बालियां, झुमके, अंगूठियां, कंगन, गुलूबन्द।

इस बात को हुए कई वर्ष बीत चुके थे, किन्तु गुरांदेई के हृदय-पटल से, पंडित जी की नजदीक से देखी वह मोहिनी मूरत कभी न मिट सकी। हर रोज गुरांदेई उस दिन की प्रतीक्षा करती, जब उसका भाई जवाहर भारतमाता की गुलामी के बन्धन तोड़ डालेगा।

और फिर 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया। आजादी आई, पर लहू की नदियों में से तैरकर, दंगों की भयानक लपटों से झुलसी हुई। गुरांदेई का घर-बार दंगों में जलकर राख हो गया। जमीन छिन गई। रुपया-पैसा और गहने सब लूट लिए गए। जवाहर भाई की निशानी, केवल अपनी एक चूड़ी वह बचा लाई थी, कभी मुट्ठी में और कभी नेफे में छिपाकर। कितने दिन गुरांदेई और उसका घरवाला, कैम्प में भटकते फिरे– भूखे, प्यासे और फिर फटेहाल आजाद हिन्दुस्तान में आ पहुँचे।

ट्रक अमृतसर आकर रुका। अमृतसर में खालसा कालेज से लेकर शरीफपुरा तक किसी भी शरणार्थी कैम्प में कोई जगह नहीं थी। सब भर गए थे। जहाँ तक नजर जाती, तम्बू-ही-तम्बू दिखाई देते। रहने की जगह नहीं थी, लेकिन एकाध-दिन वह गुरु की नगरी में टिक तो सकते थे। गुरांदेई सोचती, एक बार जवाहर भाई के दर्शन हो जाएं, फिर चाहे वह मर ही जाए। आजाद देश में आखें मींचे और फिर आंखे न खुलें। बार-बार उसका बच्चा परेशान होने लगता। गुरांदेई उस पर हंसती। अमृतसर की बड़ी-बड़ी इमारतें उसे दिखाती। चौड़ी-चौड़ी शीशे की तरह चमकती हुई सड़कों की ओर उसका ध्यान दिलाती, बड़े-बड़े दफ्तरों पर लहराते हुए तिरंगों की ओर संकेत करती और कहती, "इन सब पर जवाहर भाई का राज है। ये मोटरें, तांगे, पानी के नलके, बिजली के लट्टू, रेलगाड़ियाँ, हवाई जहाज सब कुछ मेरे भाई जवाहर के हुक्म में है।" कभी-कभी आँखें मूंदे मस्ती में जैसे वह गा उठती। जवाहरलाल का राज उसका अपना राज था।

और फिर सरकारी ट्रक उन्हें अमृतसर से जालन्धर ले आई। गाँधीनगर कैम्प, जैसे तम्बुओं का एक शहर बसा हो। चारों ओर तम्बू-ही तम्बू – तम्बुओं में दफ्तर, तम्बुओं में अस्पताल, तम्बुओं में स्कूल, तम्बुओं में गुरुद्वारा, तम्बुओं में मन्दिर। लेकिन गुरांदेई और उसके पति के लिए यहाँ भी कोई जगह नहीं थी। जालन्धर में और भी शरणार्थी कैम्प थे। जब वे पटेलनगर कैम्प में पहुंचे तो सांझ हो चुकी थी। गुरांदेई थक गई थी, ट्रक में से निकली, हल्के-हल्के अंधेरे में उसने देखा, जैसे कोई लश्कर कहीं आ उतरा हो। इतने लोग बेघर हो गए थे। इतने लोग बरबाद हो गए थे। फसादियों ने तो कुछ भी नहीं रहने दिया था। पहले घरों को लूटा, फिर घरों में आग लगा दी और घर वालों को इधर भगा दिया।

चींटियों की तरह तम्बुओं की कतारें लगी हुई थीं, जैसे टिड्डी दल खेतों पर आकर बैठ जाता है। इतनी जनता का भार कौन उठाएगा? गुरांदेई यह सोच ही रही थी कि एकदम बत्तियाँ

जल उठीं। और बिजली के जगमग-जगमग करते लट्टुओं की रोशनी में सारे का सारा कैम्प जैसे लहक उठा। गुरांदेई ने देखा, बच्चे वैसे के वैसे खेल रहे थे जैसे हर गांव में शाम को खेलते हैं, चूल्हों पर रखे पतीलों में सब्जियाँ पक रही थीं, शरणार्थियों की नई खरीदी बकरियां, गायें, भैंसें अपने-अपने ठिकाने पहुंच गई थीं, कहीं कोई ढोरों का चारा तैयार कर रहा था, कहीं कोई दूध दुह रहा था, कहीं बछियों को दूध पिलाया जा रहा था। सारा दिन शहर में मशक्कत करके कई शरणार्थी अपनी रेढ़ियां वापस ला रहे थे, छाबे सिर पर उठाए आ रहे थे। कोई मजदूरी करके लौटा था, जेबों में अपनी मेहनत के कमाए पैसों को छनछनाते हुए। लेकिन गुरांदेई और उसके पति के लिए इस कैम्प में भी कोई जगह नहीं थी। कैम्प की सोशल वर्कर ने मुस्कराते हुए उससे कहा – "माता जी आप आई भी तो कितनी लेट हैं? पूर्वी पंजाब तो शरणार्थियों से भर चुका है, अब तो शरणार्थी दूसरे सूबों में भेजे जा रहे हैं।"

अभी वे यूं बात कर ही रहे थे कि उधर से कैम्प-कमाण्डर आ निकला। एक शरणार्थी कुनबे को यूं मुसीबत में देख, उसने अपने हाथ का काम वहीं का वहीं रहने दिया, और एक से अधिक बार टेलीफोन करके, गुरांदेई और उसके घर वाले को गढ़ा-कैम्प में भिजवा दिया।

रात को गुरांदेई और उसका पति अपने ठिकाने पर जा पहुंचे। गढ़ा-कैम्प फौज के प्रबन्ध में था। अगली सुबह अभी गुरांदेई की आँख ही खुली थी कि उसने देखा, उनका इन्तजार हो रहा है। और वह देख-देखकर हैरान होती, खाकी वर्दियाँ पहने फौजी, जिन्हें देखकर, वह डर-डर जाती थी, कैसे उनकी सेवा में हाजिर हैं। उनके नाम रजिस्टर में दर्ज हो रहे हैं। उनके लिए राशन-कार्ड बन रहे हैं, उनके लिए कपड़े लाए जा रहे हैं, डॉक्टर उनका निरीक्षण कर रहे हैं, उनको टीके लगाए जा रहे हैं। नहाने के लिए, कपड़े धोने के लिए साबुन, उनके बच्चे के लिए कैनवस के जूते, कुनबे के हर आदमी के लिए, दो-दो कम्बल, रसोई के बर्तन।

सबसे बड़ी बात यह थी कि गढ़ा-कैम्प में तम्बू नहीं थे, मकान थे। जालन्धर शहर से कोई दो मील की दूरी पर 'गढ़ा' मुसलमानों का एक गाँव था। मुसलमानों के जाने के बाद सारे का सारा गाँव शरणार्थी कैम्प बना दिया गया। गुरांदेई और उसके घरवाले को एक कमरेवाला घर मिला। एक और कमरा था लेकिन उसकी छत गिरी हुई थी। सामने खुला आंगन था। बाहर गली से चार कदम की दूरी पर पानी का नल था।

घर का छोटा-मोटा काम निपटाकर, अगले दिन गुरदित्त सिंह कैम्प कमाण्डर के पास जा बैठा। उसकी पहली फरमाइश थी कि उसके दो बेटों को ढूंढ़ा जाए। गुरमीत और गुरचरन कहीं इस ओर ही थे। दंगे शुरू होने से पहले उसने अपने गांव के स्कूल-मास्टर के साथ बच्चों को इधर सैर के बहाने भेज दिया था। और दूसरी फरमाइश यह थी कि उनकी बेटी को पाकिस्तान से निकालकर लाया जाए। उसके बड़े बेटे मिल जाएं, तो वह कहता, वह खुद लौटकर पाकिस्तान जाने को तैयार है, अपने दिल के टुकड़े को तलाश करने के लिए। 'रो-रोकर मर जाएगी अपने ल्हैजी को याद करते हुए और गुरदित्त सिंह के अन्दर का पिता लहू के आँसू बहाने लगता, 'हाथ लगाने से मैली होती थी। उसका ऊंचा बोल कभी किसी ने नहीं सुना था। मेरी बाँहों से छीनकर उसे ले गए। और तीसरी फरमाइश थी कि उसे जमीन दी जाए ताकि वह अपनी रोटी कमा सके।'

अगले रोज,उससे अगले रोज,उससे भी अगले रोज गुरांदेई के बड़े दो बेटों की कोई सूचना नहीं मिली। सबसे छोटा गुरनाम स्कूल में दाखिल कर दिया गया। स्कूल वाले,उसे खुद ही आकर ले गए। उसे पढ़ने के लिए बाल-बोध,तख्ती,कलम और दवात दी गई।

गुरांदित्ता को अपनी बेटी की याद,एक घुन की तरह अन्दर-ही-अन्दर खाए जा रही थी। सुबह-सुबह वह घर से निकल जाता,और सांझ हुए कहीं शहर से लौटता। सारा दिन अपहृत स्त्रियों को निकालने वाले महकमे के अफसरों के आगे-पीछे फिरता रहता। गुरांदेई घर में अकेली होती,और पागलों की तरह सड़क के किनारे खड़ी देखती रहती कि कहीं उसके बेटे न आ रहे हों।

लेकिन गुरमीत और गुरचरन की कोई खबर नहीं थी। दीपी को ढूंढ़ निकालने की कोई सूरत नजर नहीं आ रही थी।

इतने बड़े परिवार,इतने बड़े घरवाला गुरांदित्ता,आज कंगाल हो गया था,बेसहारा हो गया था। पति-पत्नी एक-दूसरे के मुँह की ओर देख न पाते। छोटा बच्चा या तो स्कूल चला जाता या बाहर गली में बाकी बच्चों के साथ खेलता रहता। गुरांदेई और गुरांदित्ता को सूना-सूना आंगन जैसे काटने को दौड़ता। घर नहीं था,जमीन नहीं था,पैसा नहीं था,बेटे खो गए थे,बेटी छिन गई थी। बुढ़िया-बूढ़े को चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा दिखाई देता था।

एक रात गुरांदेई की आँख खुली और उसने देखा कि उसका पति अपनी चारपाई पर नहीं है। शायद 'बाहर बैठने' गया होगा,उसने अपने मन को समझाया,और यूं अकेली लेटी गुरांदेई को दीपी की याद ने आकर दबोच लिया। छल-छल आँसू उसकी आँखों में से बरसने लगे। कैसे वह तड़पी थी,कैसे उसने फरियाद की थी! लेकिन फसादी उसे दूर झाड़ियों के पीछे पकड़ कर ले गए और वह बेबस देखती रह गई। कई बार यूं रात को,जब उसकी आँख खुल जाती,गुरांदेई घंटों अपनी बेटी की याद में अविरल अश्रु बहाती रहती। ढेर रात बीत गई, और गुरांदित्ता अभी तक नहीं लौटा था। घबराई हुई गुरांदेई पलकें पोंछती उठी,और उसने देखा,बाहर आंगन में कीकर के नीचे दीपी का ल्हैजी फूट-फूटकर रो रहा था। अपनी बेटी को याद करता,और मिट्टी में हथेलियाँ मलता। उसका बुरा हाल हो रहा था। धीमे कदमों से गुरांदेई गई,और उसे अपनी बांह का सहारा देकर अन्दर कमरे में ले आई। गुरांदेई उसे क्या समझाती,उसकी तो अपनी आँखें रो-रोकर सूजी हुई थीं।

और हर रात,पति-पत्नी एक-दूसरे से छुप-छुप कर रोते। पत्नी को पति की चोरी का पता होता,पति को पत्नी की चोरी का,लेकिन एक-दूसरे के मुँह पर वे कुछ न कहते।

सुबह-शाम कैम्प कमाण्डर से अपने बड़े बेटों के बारे में पूछते-पूछते वे थक गए थे। गुरांदित्ता पूछकर आता और गुरांदेई चल देती,गुरांदेई खबर लेकर जाती और गुरांदित्ता तैयार हो बैठता। कैम्प के कमाण्डर का धैर्य भी अटूट था,जितनी बार ये जाते,वह और कोशिश करने का वायदा करता। और हर बार कोई नया तरीका ढूँढ़ निकालता। एक शाम गुरांदित्ता

उसके पास बैठा हुआ था, उसने सुना दिल्ली रेडियो से उसका नाम लिया जा रहा था, उसके बेटों के नाम उसका संदेश ब्राडकास्ट किया जा रहा था, जहां कहीं भी वे हों गढ़ा-कैम्प, जालंधर में अपने माता-पिता से मिलें। गुरांदित्ता ने सुना और उसका पोर-पोर कृतज्ञता से विभोर हो उठा।

"नेक बख्त! सरकार बेचारी ने तो कोई हीला नहीं छोड़ा, अब भी तुम्हारे बेटे अगर न मिले, तो तुम्हारी अपनी किस्मत।" घर आकर उसने गुरांदेई से कहा।

हर रोज, फिर से बसाने वाले दफ्तर जाता, गुरांदित्ता के रास्ते में सब्जीमण्डी पड़ती थी। फिर से बसाने वाले महकमे के बाहर हजारों आदमी अपने कागजों की पैरवी के लिए आते थे। गुरांदित्ता सब्जीमण्डी से कुछ-न-कुछ खरीद लेता और नीम के पेड़ के नीचे बैठा अपनी बारी की इन्तजार में, छाबा लगाए अपना माल बेचता रहता। कभी फल, कभी तरकारी और कुछ न मिलता तो मूंगफली की पोटलियाँ बांध लेता। और शाम तक हर रोज चार पैसे कमा लेता। गुरांदेई के साथ उसने यह बात नहीं की थी। इतना बड़ा चौधरी यों छाबा लगाता है, वह सोचता, उसकी पत्नी सुनेगी तो उसे दुःख होगा।

जब गुरांदित्ता शहर चला जाता, बच्चा स्कूल में होता, पीछे कैम्प में अकेली गुरांदेई की समझ में न आता, वह अपने-आप से क्या करे। घर क्या छिना था, उसके सारे काम ही जैसे छूट गए हों। पीछे अपने घर में सारा दिन वह किसी-न-किसी धंधे में व्यस्त रहती थी। थक-टूट जाती थी। और अब यहाँ, उसे समझ में न आता कि अपने समय से वह क्या करे। और फिर गुरांदेई ने अपने घर के बाहर गली में चूल्हा रखकर पकौड़े बेचने शुरू कर दिए। एक दिन, दो दिन, पहले उसे झिझक-सी आई, इतने बड़े चौधरी की पत्नी, यह वह क्या करने जा रही है, पर काम करने में क्या शर्म थी। और गुरांदेई के पकौड़े सारे कैम्प में बिकने लगे। आलू, मिर्चें, प्याज, बेसन, तेल वह खुद जाकर खरीदती, और बड़ी मेहनत से गर्म-गर्म पकौड़े तलकर बेचती। दूर-दूर से लोग उसके पकौड़े खाने आते। गुरांदेई ने अपने पति से कभी इसका जिक्र नहीं किया, कहीं उसके दिल को ठेस न लगे; इतने बड़े चौधरी की पत्नी वह क्या कर रही है?

जब से यों पति-पत्नी ने एक-दूसरे से चोरी काम करना शुरू किया, एक तो उनका दिल बहला रहता, दूसरे उनकी मुट्ठी में चार पैसे रहने लगे। और आजकल उनका दिल वैसे नहीं बैठ-बैठ जाता था जैसे पहले हुआ करता था।

पुनर्वास दफ्तर के बाहर, जिस पेड़ के नीचे गुरांदित्ता बैठकर अपना छाबा लगाता था, कुछ दिन से वहाँ एक औरत आकर बैठी रहती। वह औरत पागल थी। अधेड़ उम्र, तराशे हुए चप्पा-चप्पा बाल, पांव से नंगी, सलवार का एक पांयचा उठा हुआ, दूसरा पांव में उलझ रहा, गिरेबान फटा हुआ, जिसमें से उसकी छातियाँ दिखाई देती थीं। बैठी-बैठी वह अपने-आपसे बोले जाती – "एक दो, तीन चार, पाँच छः, सात और फिर वह बेहोश हो गई।" इस औरत की बेटी के साथ फसादियों ने इसके सामने मुंह काला किया था। सात गुण्डों ने एक कुंवारी कोंपल को मसल कर रख दिया। और सामने खम्भे के साथ बंधी माँ पागल हो गई। एक दो, तीन चार, पाँच छः, सात जमीन पर लकीरें बनाती और दांत पीस-पीसकर हवा में छड़ियां चलाती

रहती। बूढ़े गुरांदित्ता को उस पर बड़ा तरस आता। वह हर रोज उसे कुछ-न-कुच खाने के लिए देता। और जब गुरांदित्ता को दफ्तर के भीतर जाना होता तब यह पगली औरत पीछे उसके छाबे के पास बैठी रहती, मजाल है जो किसी पंछी का पर भी उस ओर फड़क जाए। सब उसे 'पगली चाची', 'पगली चाची' कहकर पुकारते थे।

और इस तरह का एक पागल उधर गुरांदेई के भी पल्ले पड़ गया था। हर कैम्प में इस तरह के दीवाने थे। गुरांदेई का साथी पढ़ा-लिखा स्कूल मास्टर था। लोग उसे काला मास्टर कहकर बुलाते थे। उसे उसके अपने शागिर्दों ने आकर लूटा था; और उसके अपने स्कूल में पढ़े लड़कों की, यह करतूत देखकर उसका दिमाग चल निकला। अब इधर आकर, गली-गली फिरता, अपने-आपसे बातें करता रहता। कहीं से कोई अखबार मिल जाता, तो उसका एक-एक अक्षर पढ़ता, और घर-घर घूमकर, संदेश देता रहता – आज फलां जगह यह हो गया, आज फलां जगह वह हो गया। जब से गुरांदेई ने पकौड़े तलने शुरू किए थे, इसके पास वह आकर बैठ जाता। जो कोई पकौड़े लेने आता उसे अखबार में से पढ़-पढ़कर खबरें सुनाता। साथ-साथ गुरांदेई को आग जलाने में, पकौड़े तलने में भी मदद देता रहता। गुरांदेई पकौड़ों से उसकी खातिर करती। काला मास्टर को पकौड़े बहुत अच्छे लगते थे। कई बार, किसी एक खबर को लेकर बैठ जाता, और कितने-कितने दिन उसकी रट लगाए रहता। पिछले कुछ दिनों से बस यही कह रहा था – इधर से मजदूर और मिस्त्री गए। उधर से साहूकार और बाबू आ गए, मेरी सरकार भी क्या करे।"

एक दिन पकौड़े तल रही गुरांदेई के हाथ पर तेल का एक छींटा आन पड़ा, और शाम तक वहां छाला बन गया। गुरांदेई को बार बार ख्याल आता, शाम को अपने घर वाले को क्या जवाब देगी? उससे झूठ नहीं बोला जाता था। अभी वह कुछ फैसला नहीं कर पाई थी कि सोहणे शाह आया, और उसे एक चवन्नी दे गया। गुरांदित्ता से उसने पुनर्वास दफ्तर के बाहर सन्तरें खरीदे थे। गुरांदेई के पांव तले से जमीन निकल गई। उसका घर वाला छाबा लगाता था। चौधरी गुरांदित्ता, जिसने कभी उठकर अपने हाथों पानी नहीं लिया था, आज वह सड़क के किनारे बैठा, पैसे-पैसे के लिए तरस रहा है, और गुरांदेई की पलकों में आंसू छलक आए।

उस शाम जब गुरांदित्ता घर लौटा, गुरांदेई के हाथ पर छाला देखकर कहने लगा – "पकौड़े तलते-तलते तुमने अपना हाथ भी जला दिया। मुझे मालूम था, एक दिन यों ही होगा।"

लेकिन इसमें शर्मिन्दा होने की कौन-सी बात थी। अपने हाथ की मेहनत करके कोई चार पैसे कमा ले, इसमें शर्म की कौन-सी बात है।

गुरांदित्ता कहता, उसने अपने क्लेम के फार्म भर दिए हैं उनकी तसदीक होना बाकी है। फिर उनको जमीन अलाट हो जाएगी। हर रोज सुबह, वह पुनर्वास दफ्तर के लिए निकल जाता और शाम को देर से घर लौटता।

एक दिन गुरांदेई अपने काम में जुटी थी कि उसने सुना कि पंडित जवाहरलाल नेहरू सामने जरनैली सड़क से गुजर रहे हैं। गुरांदेई ने सुना, और इसके हाथ का काम हाथ में ही रह गया। जैसे बैठी थी उन्हीं कदमों से उठकर सामने सड़क पर जा खड़ी हुई। उसने देखा

जरनैली सड़क पर हर सौ गज की दूरी पर सिपाही खड़े थे, कहीं वर्दी वाले, कहीं सफेद कपड़ों में। सन्तरियों की जैसे एक कतार लगी हो। गुरांदेई सड़क के किनारे खड़ी रही, खड़ी रही। कोई एक घंटे बाद पंडित जी वहाँ से गुजरे। एक तेज मोटर साइकिल, उसके पीछे एक तेज जीप, उसके बाद एक बन्द मोटर, उसके पीछे एक और जीप, उसके बाद एक और मोटर साइकिल। आँख झपकने में यह जुलूस सामने से गुजर गया। अत्यन्त श्रद्धा से गुरांदेई ने रास्ते के बगीचे से जो फूल तोड़े थे, वैसे-के-वैसे उसके हाथ में रह गए।

गुरांदेई तनिक निराश नहीं हुई। घर लौटकर उस शाम उसने अपने पति को पंडित जी का एक चित्र-सा खींचकर बताया – "मेरे भाई के आगे पिस्तौल और बन्दूकों वाले सारजेंट गोरे। मेरे भाई के पीछे सुर्ख वर्दियों वाले सिपाही। खादी की टोपी लगाए, खादी के कपड़े पहने यों बैठा था जैसे कोई फरिश्ता हो। मोटर को देखकर मैंने कहा – "जय हिन्द! भाई जवाहर की जय! मैंने एड़ियाँ उठाकर देखा। सच कहती हूँ जैसे मोटर में एक हाथ हिला हो। मेरे भाई ने मुझे पहचान लिया होगा शायद! और यह अभागे मोटर वाले उसे कितना तेज निकालकर ले गए।"

अगले दिन गुरांदेई ने पंडित जवाहरलाल नेहरू के जुलूस की कहानी मास्टर काला को भी सुनाई।

"मेरी सरकार भी क्या करे! मेरी सरकार भी क्या करे!" काला मास्टर कहने लगा – "मेरी सरकार भी क्या करे, कश्मीर में बड़ी भारी जंग छिड़ी हुई है। लाखों रुपये हमारी सरकार के हर रोज इस लड़ाई पर खर्च हो रहे हैं।"

"अरे अभागे कभी लाख से कम की तो बात किया करो!" गुरांदेई की, ऊपर की सांस ऊपर, और नीचे की सांस नीचे रह गई। इतना खर्च सरकार का हो रहा था, और उधर शरणार्थियों को फिर से बसाने की समस्या, पहाड़ जैसी, वैसी की वैसी खड़ी थी।

"जभी तो, जभी तो मेरा भाई चिन्ता में डूबा हुआ था", गुरांदेई, जवाहरलाल के बारे में सोचने लगी।

44

"मेरी सरकार भी क्या करे," उस दिन काला मास्टर बड़ा परेशान था। "मेरी सरकार भी क्या करे। अब हिन्दू और सिक्खों में मेल नहीं बैठ रहा।"

गुरांदेई ने सुना और उसकी आँखों के सामने अंधेरा छा गया।

"पंजाबी हिन्दू कहते हैं हमारी बोली हिन्दी है, पंजाबी नहीं। मेरी सरकार भी क्या करे!" मास्टर काला चिन्ता में डूबा हुआ बार-बार सिर हिलाने लगा। "पंजाबी हैं, पंजाब में रहते हैं और अपनी बोली हिन्दी बताते हैं", मास्टर काला बड़बड़ा रहा था। मास्टर काला स्वयं हिन्दू

था।

"हिन्दू जो हुए; हिन्दुओं की बोली हिन्दी", गुरांदेई ने अपनी अक्ल लड़ाई। गुरांदेई चाहे सिख थी, सारी उम्र हिन्दुओं से उसका भाई-चारा रहा था।

और अब गुरांदेई सोचती, फिर वही कुछ होगा जो अभी कल हुआ था। धर्म के दीवानों ने कौन-कौन अत्याचार नहीं ढाए थे। मजहब के नाम पर ही देश की छाती पर, छुरियों से लहू की लकीर लगा दी गई थी। मजहब के नाम पर ही, मासूम-बच्चों को नेजों की नोकों पर उछाला गया था। मजहब के नाम पर ही कुंवारी लड़कियों की आबरू उतारी गई थी। मजहब के नाम पर ही लोगों से उनके घर छीन लिए गये थे, जमीनें छीन ली गयी थीं। राजे बदलते हैं, प्रजा बदलती किसी ने नहीं देखी।

"फूट का बीज बोया गया है, मेरी सरकार भी क्या करे!" काला मास्टर बार-बार सिर हिलाता, अपने-आप से बोल रहा था। जो कोई सामने गली से गुजरता, उसे बुला कर उसके कानों में, धीरे-से कहता – "फूट का बीज बोया गया है। मेरी सरकार भी क्या करे!"

उस शाम गाँव के चौक में एक स्टूल रख मास्टर काला उसपर चढ़ गया और लेक्चर देने लगा। बहुत देर नहीं हुई थी कि सारा गाँव उसने इकट्ठा कर लिया। मास्टर काला बोले जा रहा था –

"चार दिन आजादी को आए नहीं हुए और हमने फिर लड़ना शुरू कर दिया। फिर एक-दूसरे पर हमें विश्वास नहीं रहा। फिर फूट के बीज बोये जा रहे हैं।"

काला मास्टर यों बोल रहा था कि भीड़ में से किसी ने कहा – "सच कहता है काला मास्टर। "मेरी सरकार भी क्या करे!" एक और ने पुकारा। और फिर लोगों ने "मास्टर काला जिन्दाबाद" के नारे लगाने शुरू कर दिए और कन्धों पर उसे उठाए गुरांदेई के चूल्हे की ओर ले आए।

मास्टर काला, गुरांदेई का थाल उठाकर, पकौड़े बांटने लगा। गुरांदेई खफा होती रही। हर किसी से पूछता – 'तुम लड़ोगे तो नहीं?' और जो कोई उसकी हाँ में हाँ मिलाता, उसके हथेली पर पकौड़े रख देता। जब लोग चले गए, वह गुरांदेई से पूछने लगा – "चौधरानी, तुम लड़ोगी तो नहीं?" गुरांदेई को उसके पागलपन पर हँसी आ गई, और मास्टर काला ने अपने नेफे में छिपाया दूध-सा सफेद चाँदी का रुपया निकालकर गुरांदेई की मुट्ठी में रख दिया।

गुरांदेई की जान में जान आई; पिछले तीन दिन से उसके बच्चे को बुखार आ रहा था और वह सोच रही थी कि डॉक्टर को घर बुलाकर उसे दिखा दे। बुखार एक बार चढ़ा और फिर उतरा नहीं। डॉक्टर चाहे कैम्प का था, लेकिन जब घर जाएगा, तब उसकी मुट्ठी में कुछ रखना ही होगा। और गुरांदेई अपने बर्तन संभाल कर डॉक्टर की ओर चल दी।

डॉक्टर किसी और रोगी को देखने गया हुआ था। गुरांदेई उसकी प्रतीक्षा करती रही, इतने में सांझ हो गई। फिर पता लगा, डॉक्टर उधर से ही घर चला गया था।

निराश गुरांदेई घर लौटी और उसने देखा गुरनाम का बुखार बढ़ गया था। बच्चा बेसुध पड़ा बड़बड़ाए जा रहा था। इतने में गुरांदित्ता भी आ गया। पति-पत्नी दोनों के हाथ-पाँव फूल

गए। उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था,क्या करें,क्या न करें। डॉक्टर छुट्टी कर गया था। पता नहीं उसका घर कहाँ था। घर से चाहे आए,चाहे न आए। गुरांदेई चिन्ता में डूबी जा रही थी। बेहोशी में बच्चा अपनी बहन को याद कर रहा था,बार-बार उसे पुकारने लगता। बार-बार उसे आने के लिए कहता – "दीपी बहन,दीपी बहन",उसको चिल्लाते हुए सुनकर गुरांदेई के आँसू न रुक पाते। और फिर गुरांदित्ता डॉक्टर को बुलाने के लिए निकल गया।

"दीपी बहन, एक बार आ जाओ, अब मैं तुम्हारा कहना माना करूँगा।" बच्चा आप-से-आप बोले जा रहा था – "दीपी बहन,तुम सुन नहीं रही हो? सामने बैठी हो और तुम सुनती नहीं हो?...दीपी सड़ीपी,जाओ मैं तुमसे नहीं बोलूंगा। अब मैं और बहन बना लूँगा।...मुस्कराए जाती है और बोलती नहीं। बिट-बिट मेरी ओर देखे जाती है और मेरे पास आती नहीं। .. दीपी बहन यह तुम्हारे बालों को क्या हो गया है? चप्पा-चप्पा और बित्ता-बित्ता। तुम्हारे गज-गज लम्बे बाल कहाँ हैं? दीपी बहन,तुम्हारे होंठों पर यह लाली कैसी है? तुमने अपने होंठों को रंगा हुआ है? ऐसे लाल तो किसी के होंठ नहीं देखे मैंने। लाल-लाल होंठ,लाल-लाल गाल,हाथों पर मेंहदी लाल-लाल। दीपी बहन,तुम तो दुलहिन बनी हुई हो।...

गुरांदेई रो-रोकर बेहाल हो रही थी। बार-बार बच्चे के मुँह पर हाथ रखती,किन्तु वह एक सांस बोले जा रहा था।

"दीपी बहन। तुम कहाँ जा रही हो?" बच्चा उठकर बैठ गया – "दीपी बहन मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा। यह कौन है जिसके साथ तुम खिल-खिला कर हँस रही हो? यह कौन है जिसकी बाँहों में तुमने बाँहें डाली हुई हैं? यह कौन है जिसके साथ तुम इस समय चल पड़ी हो? बाहर चिलचिलाती धूप है और तुम घर से निकल पड़ी हो...। चली गई। झाड़ियों के पीछे ओझल हो गईं। कहती थीं कि मैं डोली में बैठकर जाऊँगी,जाने लगी तो पैदल ही चली गईं,नंगे पांव।"

गुरांदित्ता डॉक्टर को लेकर आया,डॉक्टर ने अच्छी तरह बच्चे का निरीक्षण किया। डॉक्टर का ख्याल था कि बुखार मियादी है और बच्चे की बड़ी सावधानी से तीमारदारी करनी होगी। बुखार कब उतर जाएगा,इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता था,कम-से-कम तीन हफ्ते लग जाएंगे। बच्चे को ज्यादा हिलना-डुलना नहीं चाहिए।

और घर का एक व्यक्ति उसके साथ बँधकर रह गया।

पीछे अपने गाँव में,दस इलाज अड़ोस-पड़ोस वाली बतातीं,कितने ही टोने टोटके होते। पीपल वाले पीर की खानगाह पर चार दिन दीया जलाकर उसकी हर मनोकामना पूरी हो जाती थी। और यहाँ डॉक्टर बस यह कह गया था कि इक्कीस दिन बुखार टूटने में लगेंगे। दवा की कोई जरूरत नहीं। खुराक का ख्याल रखना होगा। दूध,फलों का रस,साबूदाना और कुछ नहीं।

और बच्चा दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा था। एक दिन शाम को उसकी हालत अधिक खराब हो गई। गुरांदित्ता घर ही था। उसने सोचा यह बच्चा तो गया और उसे

गश-पर-गश आने लगे। गुरांदेई गोदी में अपने बच्चे का सिर रखे, बार-बार गुरांदित्ता को हौसला देती। पर बच्चा बेसुध पड़ा था। फिर उसके हाथ-पाँव ठंडे होने लगे। गुरांदेई ने देखा, और उसकी जैसे जान निकल गई हो।

वैसे-का-वैसा बच्चे को चारपाई पर डाल, वह अपने पति को बाहर आँगन में ले गई। हलका-हलका अंधेरा घिरता जा रहा था। गुरांदेई की आँखों से छल-छल आँसू बह रहे थे।

"तुम अभी जाओ मेरे भाई के पास। जवाहर भाई से कहना, उन राखियों की लाज रखे, जो मैं सारी उम्र उसकी तस्वीर को पहनाती रही", गुरांदेई ने अपने पति को सलाह दी।

भगवान ने सब कुछ छीन लिया था। बस एक यही बच्चा रह गया था उनके पास, और वह भी हाथ से जा रहा था। गुरांदेई की कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

जितनी देर गुरांदित्ता तैयार होता रहा, गुरांदेई चिन्ता में डूबी रही। गुरांदित्ता तैयार होकर चलने लगा तो गुरांदेई ने उसे इशारा करके अपने पास बुलाया – "चूड़ियों का जिक्र उससे न कर बैठना", गुरांदेई अपनी बहन की गैरत को गंवाना नहीं चाहती थी। जवाहरलाल के भारत में उसके बच्चे को कभी कुछ नहीं होगा।

गुरांदित्ता ने अभी आँगन से बाहर कदम रखा ही था कि गुरनाम ने आँखें खोल दीं। यह देखकर गुरांदेई खुशी से भर उठी। दौड़ती हुई वह उसके पीछे गई, और अपने पति को वापस ले आई। उसके भाई को और थोड़ी मुसीबतें हैं कि वह एक और समस्या उसके लिए खड़ी कर दे। उसे वह कुछ नहीं कहेगी। पहले उसने क्या कम किया था। कहाँ से उसे गाड़ियों और मिलिटरी की ट्रकों से निकाल कर लाया था। उसने घर दिया था; जमीन देने का वायदा किया था।

45

अगली सुबह अभी दिन निकला ही था कि गुरमीत और गुरचरन दोनों भाई आ गए। गुरांदेई का आँगन जैसे भर गया हो। किन्तु कुछ क्षणों के बाद लड़कों को जब अपनी बहन कहीं नजर न आई, तब वह चीख-पुकार मची कि पत्थर भी पिघल-पिघल जाते। बड़ा गुरमीत बार-बार दीवारों के साथ सिर पटकता और गुरचरन जहां खड़ा था, वहीं-का-वहीं ढेर हो गया। रो-रोकर और हाथ मल-मलकर वे कहते – क्यों हम पहले निकल आए। वे होते तो जान पर भी खेलकर अपनी बहन को बचा लाते। तीन भाइयों की अकेली बहन, वह क्या कहती होगी, उसकी कोई रक्षा नहीं कर सका। और गुरमीत हठ कर रहा था कि उसी घड़ी वह पाकिस्तान जाएगा और अपनी बहन को ढूँढ़ निकालेगा।

गुरांदित्ता ने बेटे को समझाया कि अब पाकिस्तान में कोई नहीं जा सकता और फिर पोठोहार में तो इस ओर के लोगों का जाना बिल्कुल बन्द था। कश्मीर में लड़ाई जो हो रही

थी ।

जबसे लड़के घर पहुँचे थे किसी की आँखों में आँसू नहीं सूखे थे । गुरनाम ने रात आराम से काटी थी, किन्तु अब अपने भाइयों को, यूं विलाप करते देख, रो-रोकर उसका भी बुरा हाल हो गया था । कभी कोई पिता के गले लगकर रोता, कभी कोई माँ की छाती से चिमट कर फरियादें करने लगता ।

और यूँ रोना-धोना अभी मचा हुआ था कि 'पगली चाची' गुरांदित्ता को ढूँढ़ती हुई उधर आ निकली । 'पगली चाची' ने आँगन में कदम रखा और कहने लगी – "एक दो, तीन चार, पाँच छः, सात" और वह बेहोश हो गई ।

जो अत्याचार 'पगली चाची' के साथ हुआ था, गुरांदित्ता ने अपने बेटों को बताया । सुनकर उनके पाँव तले की जमीन निकल गई ।

और फिर दोनों भाई 'पगली चाची' के मुँह की ओर देखने लगे । कितनी प्यारी माँ होगी यह किसी बेटी की ! उसके लिए बाहर आँगन में खाट बिछाई गयी और 'पगली चाची' गुरमीत को अपने साथ लेकर बैठ गई । यूँ लगता उसे गुरमीत अधिक अच्छा लगा था । गुरचरन कमरे के अन्दर गुरनाम के पास बैठा उसे प्यार कर रहा था ।

फिर मास्टर काला आया । बार-बार गुरमीत और गुरचरन से हाथ मिलाता । बार-बार उनसे पूछता, उन्होंने रेडियो क्यों नहीं कभी सुना था, अखबार क्यों नहीं कभी पढ़ा था । गुरांदित्ता ने तो एक से अधिक बार रेडियो से उनके नाम संदेश ब्राडकास्ट करवाए थे, एक से अधिक बार अखबारों में उनका नाम निकलवाया था । लड़के कहते – उनके पास रेडियो कहाँ था, और समाचार-पत्र उन्होंने ध्यान से कभी नहीं देखा । वे तो बस एक शहर से दूसरे शहर, एक कैम्प से दूसरे कैम्प में ढूँढ़ते रहे थे और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अपने ठिकाने पर आ गए ।

बड़े बेटे घर आ गए थे । गुरनाम सबसे छोटे की तबीयत ठीक थी, जब घर के कामकाज से फ़ुरसत मिली, गुरांदित्ता कंधे पर चादर रखकर फिर पुनर्वास दफ्तर की ओर चल दिया । जमीन की अलाटमेंट के लिए पैरवी बड़ी जरूरी थी । गुरांदित्ता घर से निकला और उसके पीछे 'पगली चाची' भी चल दी – "अरी बहन, अब तुम यहीं रहो । तुम कहाँ जाओगी", गुरांदेई को 'पगली चाची' पर बड़ा तरस आया लेकिन वह तेज-तेज कदम गुरांदित्ता के पीछे भाग गई ।

उस दिन गुरांदित्ता पुनर्वास दफ्तर पहुँचा ही था कि उसे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ, उसकी तलाश हो रही थी । कच्ची एलाटमेंट के उसके कागज तैयार थे, और वह चपरासी और वह क्लर्क जिनके साथ इतने दिनों से उसने भाईचारा बना लिया था, सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

कच्ची एलाटमेंट के कागज लेकर, गुरांदित्ता 'गांधी वनिता आश्रम' के बाहर जा बैठा । जब तक उसकी बेटी उसे न मिल जाए, गुरांदित्ता को कोई चीज अच्छी नहीं लगती थी ।

उस शाम गुरांदित्ता जब घर लौटा, तब पगली चाची को भी साथ ले आया । कुछ दिनों से शाम को जब वह घर के लिए चलने लगता, तब पगली चाची कुछ इस तरह उसकी ओर

देखती जैसे उसे उसका यूँ अकेला छोड़ जाना अच्छा न लगता हो। और गुरांदित्ता ने एक बार मन-ही-मन सोचा था – जब उसे जमीन मिल गई, जब उसके बेटे घर आ गए, वह पगली चाची को अपने पास रख लेगा। गुरांदेई का हाथ भी बँटा दिया करेगी। बेचारी दुखी औरत थी। कैसे गली-गली भटकती फिरती थी। रोटी कपड़े से लाचार थी।

पगली चाची ने चूल्हे-चौके का सारा काम संभाल लिया। कभी-कभी जब उसे दौरा पड़ता, आप-से-आप बोलने लगती – एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात! और फिर वह बेहोश हो गई। जहाँ तक संभव होता, गुरांदेई उसे काम में लगाए रखती; काम में व्यस्त जैसे वह अपने भीतर का दर्द भूल जाती।

गुरांदित्ता को गढ़ाँ के पास ही जमीन एलाट हुई थी। उसका ख्याल था, उसे बहुत कम जमीन मिली है। वह तो बहुत-सी जमीन पीछे छोड़कर आया था और इधर यह जमीन, जो उसके नाम एलाट की गई थी, अधिक-से-अधिक 25 एकड़ होगी। गुरांदित्ता सोचता तीन उसके बेटे हैं, इतनी थोड़ी जमीन से उसका क्या होगा!

पर गुरमीत खुश था, बहुत खुश। जमीन को देखकर उसका चेहरा खिल-सा गया।

गुरमीत इस बात पर खुश था कि इधर उन्हें एक स्थान पर इकट्ठी जमीन मिल गई है, पीछे उनकी जमीन कुछ कहीं थीं, कुछ कहीं। जान लगाकर मेहनत की जाए, तो क्या नहीं हो सकता?

कुछ दिन, और फिर गुरांदित्ता को तकावी कर्ज मिलने शुरू हो गए। गुरचरन ने शहर के स्कूल में जाना शुरू कर दिया। गुरनाम का बुखार उतर गया था। गुरमीत जमीन पर काम करने लगा। किन्तु गुरांदित्ता के दिल पर एक घाव था जो भरने में नहीं आ रहा था। जब उसे अवकाश मिलता तब वह अपहृत स्त्रियों को निकालने वाले महकमे के सामने जा बैठता। हजारों लड़कियाँ इधर से निकालकर लाई जा रही थीं लेकिन उसकी दीपी की अभी तक, कहीं कोई खबर नहीं थी। गुरांदेई और गुरांदित्ता को यह गम अन्दर-ही-अन्दर खाए जा रहा था। न उन्हें खाना अच्छा लगता था, न पीना।

फिर पगली चाची की ओर देखते, उसके घर वाले का फसादियों ने उसके सामने वध किया था, उसके बेटे उसकी नजरों के सामने नेजों पर उछाल दिए थे और फिर उसकी सात परदों में ढककर रखी बेटी को अपनी माँ से दस कदम दूर...। गुरांदेई और गुरांदित्ता यह सब कुछ सोचते और कानों को हाथ लगाने लगते और बार-बार ईश्वर का शुक्र करने लगते। फिर गुरांदित्ता ने सुना कश्मीर में युद्ध विराम-संधि हो गई है और महकमे वाले कहते कि अब उनके लिए पोठोहार जा सकना शायद मुश्किल नहीं होगा। एक हल्की-सी उम्मीद की किरन गुरांदित्ता को दिखाई देने लगी।

कुछ दिन और बीते – गुरदीप का जन्म-दिन था। घर के सारे लोग भूल गए थे, लेकिन गुरांदेई को वह दिन कैसे भूल सकता था, जब वह पहली बार माँ बनी और गुरांदेई के अश्रु सँभाले नहीं सँभलते थे। यूँ चिन्ता में डूबी वह बैठी थी कि मास्टर काला खुश-खुश दौड़ता हुआ आया। उसके हाथ में अखबार का एक टुकड़ा था और वह आप-से-आप बोले जा रहा था – "पंडित नेहरू आ रहे हैं। हमारे शहर में जवाहरलाल नेहरू आ रहे हैं।" गुरांदेई ने यह

सुना और वह खिल-सी गई। काला मास्टर के मुँह की तरफ वह देखने लगी और उठकर एक बताशा उसके मुँह में ला रखा। गुरांदेई का वीर जवाहर आ रहा था। अब उसकी बेटी उसे जरूर मिल जाएगी। वह तो प्रधानमंत्री था। चाहे तो चप्पा-चप्पा पाकिस्तान का छनवा सकता था। अब उसकी बेटी उसे जरूर मिल जाएगी।

"एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात" और फिर वह बेहोश हो गई। सामने कीकर तले बैठी पगली चाची आप-से-आप बोल रही थी और गुरांदेई सोचने लगी – पगली चाची की बच्ची उसे कौन लाकर देगा। वह जिसे दम तोड़ते हुए उसकी माँ ने खुद देखा था।

और फिर गुरांदेई अपने 'भाई' को देखने की तैयारी में लग गई। अपने जवाहर भाई से मिलने की योजनाएँ बनाने लगी। वह क्या जवाब देगी, कैसे उसके पास जाएगी, कैसे उससे मिलेगी। उसके तो आँसू नहीं रुकेंगे। नहीं... नहीं वह उसके सामने रोएगी नहीं, हँसेगी, खिलखिलाकर हँसेगी। हँसते-हँसते उसके अश्रु निकल आयेंगे।

यूँ सोचते-सोचते रात-रातभर गुरांदेई को नींद न आती।

और फिर पंडित जी जालंधर आए। उन्होंने पश्चिमी पंजाब से बरबाद होकर आए शरणार्थियों के आत्म-विश्वास और उद्यम की अत्यन्त प्रशंसा की। उन्होंने भारत की उन्नति के चित्र खींचे। देश से गरीबी और भूख को दूर करने की योजनाओं का जिक्र किया। उन्होंने कहा – 'शरणार्थी देश का सरमाया हैं।' और लोगों पर ऐसा जादू किया कि वे सब दुःख भूल गए।

गुरांदेई अपने आंचल में से दीपी की याद लेकर चली। पहले तो शरणार्थियों की भीड़ ने उसे आगे बढ़ने न दिया। बड़ी मुश्किल से लड़-झगड़कर वह आगे बढ़ी, तो सामने अफसर थे, फिर शहर के रईस, दूध-से सफेद कपड़ों में। यह घाटी भी, किसी-न-किसी तरह उसने पार कर ली। लेकिन उसके बाद कोई बीस गज की दूरी पर सिपाहियों, सी.आई.डी. के कर्मचारियों और खादी टोपी वालों ने एक घेरा-सा डाला हुआ था। गुरांदेई ने लाख यत्न किये, यह दीवार उससे न फांदी गई।

पंडित जी की ओर देख-देखकर, दूर से ही वह मुस्कराती, कभी अपने-आपसे ही बातें करने लगती। कभी उन्हें आँखों-ही-आँखों से इशारे करती। कभी अपने आँसुओं को रोकती, कभी उन्हें वैसे-का-वैसा बहने देती। बार-बार 'भाई' की बलाएँ लेती। गुरांदेई यह कुछ कह रही थी कि भाषण खत्म हो गया। 'जय हिन्द', 'जवाहर लाल की जय', के नारे गूँज रहे थे कि उसके देखते-देखते पंडित जी की मोटर उसकी आँखों से ओझल हो गई।

'शरणार्थी देश का सरमाया हैं', उस रात सोये-सोये गुरांदेई बड़बड़ा रही थी।

बात-बात पर आजकल मास्टर काला कहता – 'शरणार्थी देश का सरमाया हैं।'

एक फसल, दूसरी फसल, तीसरी फसल, चौथी फसल और गुरांदित्ता के घर में गहमा-गहमी हो गई। फिर लोगों ने उसे चौधरी कहकर पुकारना शुरू कर दिया। एक कमरा उन्होंने जमीन पर बनवा लिया, साथ ही गाँव वाले घर को पक्का कर लिया। काला मास्टर और पगली चाची जमीन वाले कमरे में रहने लगे। बाकी कुनबा गढ़ा गाँव में रहता था। जमीन की पहले कच्ची एलाटमेंट हुई फिर आरजी एलाटमेंट हुई, किन्तु महकमे वालों ने कहा था कि इसे पक्की एलाटमेंट ही समझो। अपनी जमीन, अपना घर, अपने बैल, अपना कुआँ, अपने हल। अपना बेटा जमीन पर काम करने लगा तो गुरांदित्ता की समझ में नहीं आ रहा था कि वह इतने पैसों से क्या करे।

गुरनाम और गुरचरन अपने-अपने स्कूल में, बढ़ते चले जा रहे थे। गुरांदेई के सब बच्चे लायक थे। गुरमीत ने जमीन को ऐसे सँभाला जैसे उसके बाप-दादा हमेशा से हल जोतते चले आ रहे हों। और गुरचरन साइंस पढ़ रहा था। गुरचरन कहता, वह इंजीनियर बनेगा। मास्टर काला कहता, गुरनाम को मैं स्कूल का हेडमास्टर या कालेज का प्रोफेसर बनाऊँगा। जितनी बार गुरनाम को देखता, आगे बढ़कर उसे चूमने लगता। प्यार करता जाता और बोले जाता – 'शरणार्थी देश का सरमाया हैं। शरणार्थी मुल्क का सरमाया हैं।'

आजकल मास्टर काला का नाम गाँव वालों ने 'शरणार्थी देश का सरमाया' रखा हुआ था।

और फिर गुरमीत ने ट्रैक्टर खरीद लिया। ट्रैक्टर के साथ ट्रेलर भी खरीदा। ईख और आलू की फसल बैलगाड़ियों पर ढो-ढोकर वह और मास्टर काला थक-थक जाते थे। ट्रैक्टर के साथ अपनी खेती करता और यदि गाँव में किसी और किसान को जरूरत होती, गुरमीत किराया लेकर उसका काम भी चला देता। गाँव के शरणार्थी दिन-प्रतिदिन उन्नति करते जा रहे थे। शहर में सारे-का-सारा कारोबार शरणार्थियों के हाथ में आ गया था। पूर्वी पंजाब के पुराने बाशिन्दे उनकी ओर देख-देख कर हैरान होते, कितने उद्यमी, कितने मेहनती, कितने सयाने हैं ये लोग।

और फिर जब मास्टर काला कहता – शरणार्थी देश का सरमाया हैं, बीच-बीच में लोग उसे छेड़ते – शरणार्थी देश के सरमायादार हैं।

और इसमें कोई शक की बात नहीं थी। जमीनों वालों ने जमीनें काबू में कर ली थीं। घर वालों ने घर बनवा लिए थे। व्यापारियों ने नई दुकानें, नई सड़कें, नई बस्तियाँ। जालंधर के माडल टाउन को शरणार्थियों ने स्वर्ग बना दिया था। और इस तरह की नई बस्तियाँ पंजाब के हर शहर में बन गई थीं। देश के दूसरे भागों में भी बन गई थीं।

गुरांदित्ता दीपी की प्रतीक्षा करता-करता थक गया था। और अब उसने अटल फैसला कर लिया था कि वह पाकिस्तान जाएगा, और अपनी बेटी को ढूंढ़ेगा। कोई कीमत भी देनी पड़े, वह अपनी बेटी को जरूर निकलवाकर लाएगा। इसमें गुरांदेई भी उसके साथ सहमत

थी। मास्टर काला की इच्छा थी, गुरांदित्ता को सरकार पर यह काम छोड़ देना चाहिए। गुरमीत कहता हर बात सरकार पर कैसे छोड़ी जा सकती है। और पगली चाची जब कभी उन्हें इस समस्या पर बात करते हुए सुनती, तब उसको दौरा पड़ जाता, वह बार-बार कहना शुरू करती – एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात! और फिर बेहोश हो गई।

पगली चाची को यूँ बोलते देख बाकी परिवार सोचने लगता, उनका क्लेश बाकी लोगों से कैसे ज्यादा है। उन्हें तो लाख शुक्र करना चाहिए, ईश्वर ने सब कुछ छीनकर उन्हें फिर लौटा दिया था। गुरांदेई के बेटे जिएँ, उसे किसी चीज की कमी नहीं थी।

लेकिन गुरांदेई और गुरांदित्ता की मुसीबत यह थी, ज्यों-ज्यों उनका हाथ खुला होता, उनको अपनी बेटी की याद त्यों-त्यों तड़पाती। हर खुशी में दीपी की याद आ जाती और उनके मुँह का स्वाद फीका पड़ जाता। हर तीज-त्योहार गुरांदेई का रोते हुए बीतता। और गुरांदित्ता की गैरत कहती, वह कैसे जी सकता है, जिसकी बेटी को फसादियों ने इस तरह उसकी बाँहों में से छीन लिया हो।

और फिर एक दिन वह महकमे के अफसरों के साथ गठ-जोड़ कर आया। अगली सुबह, जो पार्टी पाकिस्तान जा रही थी उनके साथ वह भी जाएगा। कई दिनों से गुरांदित्ता इस काम के पीछे पड़ा हुआ था। पाकिस्तान जाने के लिए उसने सारे कागज बनवा लिये थे। और अपहृत स्त्रियों को निकालने वाले महकमे के अफसर कहते कि एक बार वह उसे उसके गाँव पहुँचा देंगे, फिर लड़की को ढूँढ़ना उसका अपना काम होगा। और अगर लड़की मिल गई तो वे उसे निकलवाने में भी मदद करेंगे।

रात को देर तक अपनी पूरी तैयारी करके गुरांदित्ता सोया। सुबह तड़के ही कुलदीप की जीप ने उसे आकर ले जाना था। पगली चाची उस दिन खेत में सोने के लिए नहीं गई। सारा समय चुपचाप गुरांदित्ता को तैयारी करते देखती रही। और जब घर के सारे लोग सो गये तब वह गुरांदित्ता का ट्रंक उठाये खेतों की ओर चल दी। उसने ट्रंक को खेतों में छिपा दिया। गुरांदित्ता जब सुबह सो कर उठा, ट्रंक को गायब देखकर उसके होश उड़ गये। बाहर जीप आयी खड़ी थी और गुरांदित्ता का ट्रंक कहीं भी नजर नहीं आ रहा था। उसमें ही तो उसके पाकिस्तान जा सकने वाले कागज थे और पैसे तथा कपड़े थे। किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। चोर और कुछ नहीं लेकर गया केवल एक ट्रंक उसने चुराया था। बार-बार पगली चाची पर उन्हें शक होता। फिर हर कोई कहता, वह चोरी नहीं कर सकती। आखिर जीप चली गई। और सब कुछ फिर बन सकता था, लेकिन ट्रंक में रखे कागजों के बिना, वह कैसे पराये देश में जा सकता था।

जीप को गये एक घंटा ही हुआ होगा कि पगली चाची ट्रंक को सर पर उठाए गली की ओर से आ निकली। गुरांदित्ता को उसकी इस हरकत पर बड़ा क्रोध आया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह उसे क्या कहे। गुरांदेई पगली चाची की इस हरकत पर बार-बार हाथ मल रही थी कि मास्टर काला ताजा अखबार लिये तेजी से अन्दर आया। "शुक्र है ईश्वर का तुम पाकिस्तान नहीं गए चौधरी", वह कहने लगा – "शुक्र है ईश्वर का तुम किसी बहाने रुक

गये, पाकिस्तान वालों ने अपनी फौजें हमारी सरहद पर ला खड़ी की हैं। वे हमारे साथ लड़ने के लिए तैयार है। आज सवेरे, कई स्पेशल गाड़ियाँ जालन्धर से गुजर चुकी हैं। अगर सुबह तुम चले भी जाते, पहले तो तुम्हें वाघा बार्डर से ही कोई न गुजरने देता और यदि तुम उधर पहुँच जाते तो तुम खुद भी फँस जाते। लड़की को निकालते-निकालते तुम खुद उधर रह जाते।" और गुरांदेई लाख-लाख शुक्र करने लगी अपने भगवान का, लाख-लाख शुक्र करने लगी पगली चाची का, जिसने उसके घर वाले को यों बचा लिया था।

गुरांदेई ने आजमाकर देखा था – पगली चाची को हमेशा जैसे पहले से ही पता चल जाता कि परिवार पर या परिवार के किसी सदस्य पर कोई मुसीबत आने वाली है। मुँह से न बोलती किन्तु अपनी जिद पूरी कर लेती, और कुछ देर बाद सब महसूस करते कि पगली चाची ठीक थी और बाकी सब गलत।

जिस दिन उनके आँगन का बबूल, आप-ही-आप नीचे आ गिरा, उस साँझ पगली चाची ने खटिया बिछाते समय गुरचरन की खाट कीकर की ओर नहीं बिछाई थी। हर रात वह उस ओर ही सोता था। केवल उस शाम पगली चाची ने उसकी चारपाई आँगन के दूसरी ओर बिछा दी थी। सोते समय गुरचरन चारपाई को खींचकर फिर अपनी जगह ले गया था। किन्तु जब वह पानी पीने के लिए उठा, तब पगली चाची ने चुपके से उसकी चारपाई को फिर दूसरी ओर कर दिया। रात को साधारण-सा झक्कड़ आया और सारे का सारा कीकर उस स्थान पर औंधा जा गिरा, जहाँ हर रोज गुरचरन सोता था।

मास्टर काला की सबसे बड़ी कमजोरी, खबरें सुनाना थी और पगली चाची को खबरें सुनने का बड़ा शौक था। कितनी-कितनी देर दोनों खेतों में काम करते रहते। मास्टर काला उसे समाचार-पत्र में पढ़ी हुई एक-एक खबर सुनाता रहता। पगली चाची उसकी बातें सुनती कभी न थकती थी। अजीब जोड़ी थी!

और फिर मास्टर काला खबर लेकर आया – पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाकत अली खाँ समझौता करने के लिए आ रहे हैं। "हमारा देश तो हमेशा अमन चाहता है, जवाहरलाल नेहरू तो महात्मा गांधी की गद्दी पर बैठा है जिसने अमन के लिए, सबकी भलाई के लिए अपनी जान दे दी", मास्टर काला बोले जा रहा था।

पर गुरांदेई किसी सोच में डूब गई थी।

वह सोच रही थी – अब वक्त था, यदि वह दिल्ली जाकर अपने भाई जवाहर से कहे, तो वह जरूर उसकी बेटी को ढुँढ़वा देगा। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री आ रहे थे, एक इशारा भी जवाहर भाई का हो गया तो गुरांदेई का काम हो जाएगा। जवाहर भाई का कहा कोई नहीं टाल सकता। फिर वह सोचती, वह गुरांदित्ता को भेजेगी। गुरांदित्ता ने कहा या उसने कहा, एक ही बात थी।

फिर गुरांदेई सोचती, वह चिट्ठी लिखेगी, चिट्ठी जाये या वह खुद जाए, एक ही बात है। उसकी चिट्ठी देखकर जवाहर भाई को याद आ जाएगी। वह चाहे, इसकी चिट्ठी का इन्तजार ही कर रहा हो। कभी तो उसे इसकी याद आती होगी। और गुरांदेई ने अपनी कलाई पर अपने

भाई की निशानी, चमचमाती हुई चूड़ी को अपने होंठों से लगा लिया।

हाँ, उसे वह चिट्ठी लिखेगी, गुरांदेई कागज, कलम और दवात लेकर बैठ गई।

'लिखतुम गुरांदेई, पास मेरे परम प्यारे इक पल न बिसारे, छिनछिन याद आने वाले, मिश्री-जैसे मीठे भाई जवाहर, जुग-जुग जियो...।

और गुरांदेई की कलम रुक गई, इससे आगे वह और कुछ न लिख पाई। उसका अंग-अंग विभोर हो रहा था – जुग-जुग जियो... और आगे, उसकी कलम न चली।

47

पंजाब में उन दिनों एक जहर-सा फैला हुआ था। जनगणना के सम्बन्ध में भाषा की समस्या फिर छिड़ गई थी। हिन्दू कहते, उनकी बोली हिन्दी है और सिख कहते उनकी बोली पंजाबी है। समाचार-पत्रों में हर रोज भड़काने वाले वक्तव्य छापे जाते। गाँव-गाँव जाकर फिरकापरस्त लोगों को गुमराह कर रहे थे। गुरांदित्ता को मजबूर किया जा रहा था कि वह मास्टर काला को काम से अलग कर दे। गुरांदित्ता कहता, मास्टर काला तो हमेशा पंजाबी के पक्ष में बात करता है। लेकिन यह बात कट्टरपंथियों की समझ में न आती।

और काला मास्टर कहता – "अगर यह लोग जनगणना के समय यों लड़ते हैं, तो आम चुनाव के वक्त क्या करेंगे? कुछ दिनों में आम चुनाव होने वाले थे।"

गुरनाम के स्कूल वालों ने हिन्दी पढ़ाना शुरू कर दिया था। गुरांदेई खुश थी, बच्चे को एक और बोली आ जाएगी। मास्टर काला कहता, स्कूल का हैडमास्टर हिन्दू था, और उसने खुद ही यह फैसला कर लिया था। ऊपर से हिन्दी पढ़ाने के लिए कोई आदेश नहीं आया था। गुरांदित्ता कहता – "तो फिर क्या हुआ? हमारा तो इसमें फायदा ही है, हमें हिन्दी कौन-सी पराई है।"

गुरचरन कहता, उसके हिन्दू मास्टर उसके नम्बर काटते रहते हैं और सिक्ख मास्टर उसे उसके हक से ज्यादा नम्बर देते रहते हैं। "तुम तो घाटे में न रहे", मास्टर काला उसे समझाता।

और ज्यों-ज्यों इस तरह की बातें सुनती, पगली चाची अपने-आप बोलती रहती – एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात...।

गुरमीत की मुसीबत यह थी कि जब से यह वाद-विवाद शुरू हुआ, गाँव की लड़कियों ने उसके कुएँ पर जाना बन्द कर दिया था। उसे लगता जैसे उसके खेत वीरान हो गये हों। कुएँ के पास उसका बगीचा उसे उदास-उदास लगता। या मास्टर काला उसमें फिर रहा होता, या पगली चाची अपनी फटी-फटी नजरों से अधखिले हुए फूलों को घूर रही होती।

और गुरमीत हर समय उदास-उदास, रुआँसा-रुआँसा रहने लगा। उसकी समझ में नहीं आता था कि उसे क्यों यों लड़कियों का शाम को उसके खेतों में न आना इतना बुरा लगता

है । वह बार-बार अपने मन को टटोलने लगता ।

बेटे को यों खामोश देख,गुरांदेई को भी चिन्ता हुई,गुरांदित्ता भी फिक्र करने लगा । फिर उन्होंने फैसला किया,लड़का जवान हो गया है, अब इसका ब्याह कर देना चाहिए । चौधरी गुरांदित्ता ने इस बात का संकल्प किया, और मास्टर काला हर रोज नए-से-नए रिश्ते उसके लिए लाने लगा । चौधरी गुरांदित्ता के सुघड़ बेटे के लिए लड़कियों की क्या कमी थी । गुरांदित्ता को केवल एक ही अफसोस था,उसके बेटे अब अपनी बिरादरी में नहीं ब्याहे जायेंगे । अपने लोग तो सारे इधर-उधर बिखर गये थे – कोई पटियाला में था,कोई अम्बाला में जा बसा था, और कोई दिल्ली,कोई कलकत्ता,बम्बई,कहीं के कहीं निकल गये थे ।

यों घर में हर रोज नई लड़की की चर्चा सुनकर गुरमीत को और बुरा लगता ।

फिर वह क्या चाहता था ? क्यों यो परेशान-परेशान रहता था ? न उसे खाना अच्छा लगता था,न उसे पीना अच्छा लगता था । अपने वस्त्रों की ओर तो उसने पहले भी कभी ध्यान नहीं दिया था । दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा था ।

"बहन होती तो कभी की अपने भाई के दिल की बात बूझ चुकी होती",गुरांदेई को अपनी दीपी की याद आती ।

"दीपी से इसका स्नेह भी तो बहुत था", गुरांदित्ता सोचता ।

गुरमीत हर समय खीझा-खीझा और थका-थका रहता । एक दिन खेतों में काम करता हुआ,सुस्ताने के लिए वह एक शहतूत की छाया में खाट बिछाकर जा लेटा । ठंडी-ठंडी और मीठी-मीठी हवा चल रही थी । गुरमीत लेटा ही था कि उसकी आँख लग गई ।

परछाइयाँ ढल रही हैं । गाँव की जवान-जहान लड़कियाँ फाख्ताओं के झुण्ड की तरह, उनके कुएँ पर आती हैं — हँसती,खेलती और गाती हुई । कोई सामने अमराई पर लगी पींग झूल रही है । कोई घास पर वैठी है,लेटी है, आँखों में सपने संजोए हुए । कोई पानी के साथ खेल रही है । एक-दूसरे पर छींटे डालती,एक-दूसरे को पानी में धकेल रही हैं । और फिर कुछ । नाचने लगती हैं,गाने लगती हैं :

जे तू चल्याँ चाकरी,
नीले घोड़े वालया !
सानू बोझे पा ।
जित्थे आवे रातड़ी,
नीले घोड़े वालया !

अगर तुम नौकरी पर जा रहे हो,
ओ नीले घोड़े वाले ।
हमें जेब में डाल लो ।
जहाँ रात आये,
ओ नीले घोड़े वाले ।
हमें निकाल कर कलेजे से लगा लेना ।

सानू कढ कलेजे ला।

एक सुर, एक ताल नाच रही हैं। उनकी चोटियाँ उछल-उछल पड़तीं, चुनरियाँ उड़-उड़ जातीं। जैसे सारा बगीचा गूँज उठा हो, सारे खेत लहलहा उठे हों, पत्ता-पत्ता झूम रहा हो। और फिर नाचती-नाचती वह खिलखिला कर हँसने लगीं। हँसती-हँसती, दौड़ती-दौड़ती खेतों में गायब हो गईं।

हैं! यह कौन, इधर शहतूत की तरफ आ रही है? ऊँची, लम्बी, गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से जैसे मैली हो जाएगी। बड़ी-बड़ी काली-काली आँखों में जैसे जादू भरा हो। मोतियों के दाने जैसे दाँत मुसकानें लुटा रहे हों। हौले-हौले शहतूत की ओर आ रही है। नाच-नाचकर गा-गाकर उसका अंग-अंग जैसे खिल-सा गया हो।

शहतूत से कोई दस कदम दूर रुक गई है। बिजली के खम्भे का सहारा लेकर खड़ी हो गई है। शहतूत के नीचे खाट पर सोए हुए, उसे अपलक देख रही है।

यह कौन है? कैसे उसे देख रही है! देखती-देखती कैसी गुमसुम हो गई है!

"पिम्मी! नीं पिम्मिएं!" उसकी सहेली ने आकर उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

"अच्छा तो यह बात है!"

पिम्मी अभी भी चुप है।

"है तो सुन्दर, पर सरदार है, हमारे किस काम का? आजकल तो हिन्दू-सिख एक-दूसरे को काट-काट खा रहे हैं", पिम्मी की सहेली ने कहा।

पिम्मी अभी भी चुप है। उसकी पलकों पर आँसू फूट आये हैं।

"हमारा अपना ताऊ सिख है। मेरी दादी ने पहला बेटा गुरुबाबे को भेंट किया। तुम्हारा भी तो एक मामा सिख है। अक्सर तुम्हारे यहाँ आया करता है। पर हम तो हिन्दू हैं। और आजकल हिन्दू-सिख पराये हो गए हैं। इस कुएं पर अब हम नहीं आया करेंगे, बाबा!"

और फिर पिम्मी की चुनरी के पल्लू में बँधी चमेली की कलियाँ एक-एक करके, नीचे घास पर बिखर जाती हैं और वह फूट-फूट कर रोने लगती है।

यह कौन रो रहा है? गुरमीत की आँख खुल गई, कोई भी तो नहीं था, सारा कुआँ सूना पड़ा था। पुरवैया चल रही थी। ठंडी-ठंडी, मीठी-मीठी हवा शहतूत के पत्तों से, टहनियों से खेल रही थी। साँझ गहरी हो गई थी, कितनी देर वह सोया रहा था!

न मास्टर काला कहीं नजर आता था, न पगली चाची कहीं दिखाई देती थी। ये दोनों कहाँ चले गये थे? गुरमीत ने खाट से उठकर, अपने शरीर को सीधा करने के लिए अंगड़ाई ली, और उसके हाथ शहतूत की टहनियों में जा लगे। कितना जवान हो गया था वह!

और गुरमीत दीवानों की तरह कुएँ की मेंड़ पर बैठा, अपने सपनों की परी का इन्तजार करने लगा। बेशक चौधरी था, किसी सिक्ख के बागीचे में हिन्दू लड़कियाँ टहलने के लिए कैसे आ सकती थी? अखबारों में जहाँ-तहाँ हिन्दू-सिक्ख एक-दूसरे को बुरा-भला कहते रहते थे। हिन्दुओं के एक मुहल्ले से किसी का, एक से दूसरी बार गुजरना, मुनासिब नहीं समझा जाता था। सिक्खों की गली में से कोई हिन्दू नहीं गुजर सकता था।

मास्टर काला गुरमीत की पीड़ा पहचानता था, किन्तु उसकी दवा किसी के पास नहीं थी।

और फिर गुरमीत की मंगनी एक खाते-पीते सिख परिवार में हो गई। ढोल बजे, लड्डू बाँटे गये। गुरमीत चुपचाप सब कुछ देखता रहा। हर रोज रात को जब वह सोता, कोई उसके सपने में आती। ऊंची लम्बी, गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से मैली हो जाए। दूर खड़ी हक्की-बक्की उसकी ओर देखती रहती। और फिर उसकी सहेली यह कहती हुई "है तो सुन्दर पर सरदार है, हमारे किस काम का?" उसे अपने साथ लिए दूर क्षितिज तक ले जाती, और फिर वह लड़की डूब रहे सूरज की लालिमा में घुल-मिल जाती।

कुछ दिनों के बाद पहली पंचवर्षीय योजना की घोषणा हुई, गुरमीत को जैसे सब कुछ भूल गया हो। इतने दिनों से अखबारों में इसकी चर्चा पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखों के सामने अनेक स्वप्न तैरने लगे थे। मास्टर काला तो आजकल ज़मीन पर पाँव न रखता। अखबार देखता, और लोगों को नई-नई कहानियाँ सुनाने चल देता।

उस शाम, गुरमीत और मास्टर काला, जशन मनाने के लिए शहर गये। कई दिनों से गुरमीत ने मास्टर काला से वायदा किया हुआ था।

झुटपुटा हो गया था, जब वे घर लौटे। बेटे को आँगन में देखकर, गुरांदेई हाथ बढ़ाकर बत्ती जलाने लगी कि गुरमीत ने अपनी माँ की बाँह पकड़कर, उसकी खाली कलाई पर एक चूड़ी चढ़ा दी। गुरांदेई ने बिजली का बटन दबाया और सोने की चमचम कर रही चूड़ी जैसे दमक उठी। गुरांदेई ने अपने लाड़ले को छाती से लगा लिया।

उस दिन रात में देर तक, गुरांदेई की आँखों में आँसू नहीं रुक रहे थे। वह सोचती कि वह दीवानी हो गई थी। आज ये आँसू क्यों उसकी आँखों में से बहे जा रहे थे।

48

सगाई के वक्त तो न बोला, लेकिन ब्याह के लिए, गुरमीत बिल्कुल तैयार न था; कोई-न-कोई बहाना बनाकर टालता रहता, टालता रहता। गुरमीत सोचता – वह कैसे ब्याह कर सकता है? अभी तक उसके स्वप्न में कोई आती थी; ऊँची-लम्बी, गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से मैली हो जाये। दूर खड़ी हक्की-बक्की उसकी ओर देखती रहती। और फिर उसकी सहेली यह कहती हुई, "है तो सुन्दर पर सरदार है, हमारे किस काम का?" उसे अपने साथ लिए दूर क्षितिज तक ले जाती और फिर वह लड़की डूब रहे सूरज की लालिमा में घुलमिल जाती।

गुरमीत सोचता – वह कैसे ब्याह कर सकता था?

गुरांदित्ता के समधी की चिट्ठियों पर चिट्ठियां आ रही थीं। लड़की के बाप की, आजकल उत्तर प्रदेश में बदली हो गयी थी। उनका कहना था कि लड़की जवान हो गयी है। ये कहते, कि जब तक लड़के की मर्जी न हो, ब्याह कैसे हो सकता है।

गुरांदेई अत्यन्त शशोपंज में थी। गुरांदित्ता सोचता, उसका तो मुँह काला हो जाएगा, अगर उसे इस तरह अपने वचन से फिरना पड़ा।

और फिर मास्टर काला ने यह सारा मामला अपने हाथों में ले लिया। एक शाम वह गाड़ी में बैठकर गुरांदित्ता के समधी को समझाने के लिए चल दिया। आजकल उत्तर प्रदेश के, इटावा नाम के शहर में रहते थे। वहाँ पहुँचकर उसे पता लगा, लड़की का पिता लखना गाँव में दौरे पर गया हुआ था। उसे कुछ दिन वहीं रहना था। और मास्टर काला भी उसके पीछे लखना गाँव में चल दिया। लखना गाँव की चर्चा उसने अखबारों द्वारा पहले ही सुन रखी थी। और मास्टर काला ने सोचा, यह बढ़िया मौका है, एक पंथ दो काज। लखना गाँव में विकास का जो काम हो रहा था, वह उसे भी देख सकेगा। गुरांदित्ता के समधी की जीप, कोई मिसिल लेने के लिए शहर आई, और मास्टर काला भी उसमें बैठ गया।

जीप में आए क्लर्क ने रास्ते में मास्टर काला को लखना में हो रहे विकास-कार्य के संबंध में बताया, अजीब कहानी थी।

वहाँ पहुँचकर मास्टर काला ने लखना गाँव में घूमकर देखा, एक-एक बात, जो उसे बताई गयी थी, सच थी। गलियाँ साफ-सुथरी, किसान खुश-खुश, औरतें-बच्चे हँसते-खेलते। कोई बेकार नहीं था, कहीं कोई फुजूल गप्प नहीं मार रहा था, कोई किसी से झगड़ नहीं रहा था।

मास्टर काला पर जैसे जादू हो गया हो। सब बातें वह कर रहा था, किन्तु जिस बात के लिए वह सैकड़ों मील चलकर आया, उससे वह बात न हो पाती। बार-बार वह मन-ही-मन में तैयारी करता, परन्तु इस सुन्दर वातावरण में उससे कोई फीकी बात न हो सकती थी। खेतों की अनुपम हरियाली, खेतों में काम करने वाले किसानों के चेहरों पर रौनक, यह देख उसका अंग-अंग विभोर हो उठता। लाख कोशिश, मास्टर काला ने की, जिस काम के लिए वह आया, उससे वह बात न हो पाई। मन्दिर में बैठकर कोई मन में बुरा संकल्प नहीं ला सकता।

और जब वह लौटा, उलटे और कई सौगातें, लड़की वालों की तरफ से लड़के के लिए मास्टर काला ले चला।

गुरमीत की परेशानी अजीब थी, वह कौन थी जो यों उसके सपनों में आती, ऊंची-लम्बी, गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से मैली हो जाए। दूर खड़ी हक्की-बक्की उसकी ओर देखती रहती। और फिर उसकी सहेली यह कहती हुई "है तो सुन्दर पर सरदार है, हमारे किस क़ाम का ?" उसे अपने साथ लिए दूर क्षितिज तक ले जाती और फिर वह लड़की डूब रहे सूरज की लालिमा में घुल-मिल जाती।

गुरमीत सोचता; वह कैसे ब्याह कर सकता था ?

"गाँव वालों को विश्वास हौले-हौले आता है, पर टूट झट जाता है।" आजकल मास्टर काला के मुँह पर ये बोल चढ़े हुए थे। जो कोई सरकारी अफसर नई बात लेकर आता बात-बात पर वह याद दिलाता, "गाँव वालों को विश्वास हौले-हौले आता है, पर टूट झट जाता है।" और लोग फिर उसे छेड़ने लगे, "मास्टर गाँव वालों को विश्वास हौले-हौले आता है, पर टूट झट जाता है।"

पगली चाची यों भली-चंगी थी, अच्छा खाती, अच्छा पहनती और ठीक से काम करती, पर जहाँ कहीं अन्याय होता देखती, किसी को जान बूझकर कोई बुरा काम करते देखती तो आप-से-आप बोलने लगती – एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात...

और गुरमीत आजकल हर समय खोया-खोया-सा रहता, वह खेतों में काम करता अथवा अकेला बैठा हुआ कुछ सोचता रहता। हँसना, खेलना, शौक से खाना-पीना, उसका सब छूट गया था। जवान जहान लड़कों वाली बात अब उसमें नहीं रही थी। गुरांदेई सोचती उसके बेटे को शायद नजर लग गई है। गुरांदित्ता का ख्याल था कि वह शायद बीमार रहने लगा है। बीमारी तो थी। अभी तक उसके सपनों में कोई लड़की आती थी, ऊंची-लम्बी, गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से मैली हो जाये।

गुरांदेई और गुरांदित्ता सोचते, इस हालत में लड़के का ब्याह कैसे किया जाए। अब लड़की वालों को और टालना असंभव हो गया था। लाख लड़के के इलाज हुए, लाख मन्नतें मानी गईं, पर उसकी दशा में कोई अन्तर नहीं आया। और फिर गुरांदित्ता ने अपना वचन पूरा करने के लिए, उस लड़की के साथ गुरचरन को ब्याह देने का फैसला कर लिया। गुरचरन ने इंजीनियरी का इम्तहान दिया और उसका नतीजा निकलने वाला था। लड़की वालों को क्या एतराज हो सकता था। उन्हें तो अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना था। फिर गुरचरन बांका भी कैसा निकला था। लड़की के पिता को विश्वास था कि इधर लड़के का नतीजा निकलेगा, उधर उसे नौकरी मिल जाएगी।

गुरचरन की शादी बड़ी शान से की गई। गुरांदित्ता अब केवल शरणार्थी भर नहीं था। अब उसकी गिनती गाँव में सबसे अधिक पैसे वालों में होती थी। अपने घर को उसने पक्का कर लिया था। ऊपर, दूसरी मंजिल बनवा ली थी। खेत वाले मकान में भी, और कमरे बढ़ा दिए थे। लोग तो उसे, गुरांदित्ता का बंगला कहते थे। शादी का एक कार्ड गुरांदेई ने जवाहरलाल को भी भिजवाया। इधर विवाह की तैयारियाँ, उधर वह अपने भेजे कार्ड के जवाब की प्रतीक्षा करती रहती। जब भी डाकिया आता, वह सोचती उसकी चिट्ठी अवश्य आएगी। जिसे उसने भाई बनाया था, वह उसे कैसे भूल सकता है। हर कोई उससे मजाक करता। केवल गुरुमुखी पढ़ी गुरांदेई को अंग्रेजी में लिखी पराई चिट्ठियाँ दिखा कर, हर कोई छेड़ता – लो तुम्हारे नेहरू जी की चिट्ठी है। और गुरांदेई एक बार भी शर्मिन्दा न होती। हमेशा यही कहती– "चिट्ठी जरूर आयेगी।" और परिवार के सब लोग खूब हंसते। क्या उसके बेटे, क्या मास्टर

काला, सब मिलकर उसे छेड़ते। और फिर एक दिन चिट्ठी आ गई, जिस में नए ब्याहे जोड़े के लिए शुभकामना थी। डाकिए ने प्रधानमंत्री की मोहर का लिफाफा लाकर दिया और घरवाले सारे हक्के-बक्के रह गए। गुरांदेई तो जमीन पर पाँव न रखती। मैं न कहती थी न कि चिट्ठी जरूर आएगी ? बार-बार वह कहती और घर के हर एक व्यक्ति को चिट्ठी दिखाती।"

गुरमीत खुश था। जिस दिन से उसने सुना कि जिस लड़की के साथ उसकी मँगनी हुई थी, गुरचरन का उसके साथ विवाह होने जा रहा है, उसके सिर से जैसे मनों बोझ उतर गया। एक रात आंगन में लड़कियाँ जब गीत गा-गाकर हटीं, तब मास्टर काला गुरमीत, गुरचरन, गुरनाम और मुहल्ले के बाकी लड़कों को लेकर बैठ गया। एक ओर अकेला मास्टर काला, और दूसरी ओर बाकी सारे थे। पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाओं के सम्बन्ध में सवाल-जवाब शुरू हो गया। हर प्रश्न के पांच नम्बर थे और फैसला यह हुआ कि जिस पार्टी के जितने नम्बर अधिक हों दूसरी पार्टी उसे उतने ही लड्डू खिलाए।

पांचसाला योजनाओं के बारे में मास्टर काला की जानकारी पर सारे का सारा परिवार हैरान हो रहा था।

लालच में आकर, अपने इनाम के सारे लड्डू मास्टर काला खा रहा था, और यूँ उसे लड्डू खाता देखकर पगली चाची कहती – एक, दो, तीन, चार... हर कोई पगली चाची पर हँसता। वह तो सत्तर लड्डू खा जाए तो भी इसे कुछ नहीं हो सकता। इसे सौ लड्डू खाकर भी कुछ नहीं होगा। लेकिन पगली चाची सच्ची थी। उस रात मास्टर काला के ऐसा पेट दर्द हुआ कि उसका बुरा हाल हो गया। एक समय तो सारे परिवार के हाथ-पाँव फूल गए। पगली चाची तड़प रही थी। कभी आजवाइन कूटती, कभी पानी गरम करती, कभी कुछ और कभी कुछ।

अगली दोपहर तार वाला तार लेकर आया, गुरचरन को भाखड़ा प्रोजेक्ट में नौकरी मिल गई थी। अभी उसका नतीजा भी नहीं निकला था कि उसे काम मिल गया। चार दिन में उसकी बारात जाने वाली थी और इधर नौकरी का बुलावा आ गया। मास्टर काला बार-बार कहता – "लड़की बड़ी भाग्यवान है। अभी उसने घर में कदम भी नहीं रखा, और लड़के को नौकरी मिल गई।"

वह तार हर किसी को दिखाता फिरता, मास्टर काला के जमीन पर पाँव नहीं पड़ते थे। पिछली रात लड्डू खाकर उसका बुरा हाल हुआ था, तो भी शाम को गुरचरन को लेकर वह शहर चल दिया। बार-बार कहता जशन वाली बात हो तो जशन जरूर होना चाहिए। एक गुरचरन को नौकरी मिली थी, और साथ ही दूसरी पंचवर्षीय योजना को उस दिन लोकसभा ने स्वीकार किया था।

खुद तो उसने कुछ न खाया, लेकिन लड़कों की मास्टर काला ने खूब खातिर की। पहले खाते-पीते रहे, फिर बाजार में घूमते रहे; फिर सिनेमा देखने चले गए।

जब वे घर लौटे, परिवार के बाकी लोग तो सो चुके थे। कोई कहीं सोया हुआ था, कोई कहीं।

गुरचरन हौले-हौले गुरांदेई के पलंग की ओर गया। गुरांदेई गहरी नींद में सो रही थी।

कई दिन से उसने अपनी सोने की दोनों चूड़ियाँ एक ही कलाई पर चढ़ा ली थीं। उसकी दूसरी कलाई खाली थी। गुरचरन ने उस शाम खरीदी हुई सोने की एक चूड़ी माँ की खाली बाँह पर चढ़ा दी।

आकाश में चाँद निकल आया था। और चाँद की हल्की-हल्की रोशनी में गुरांदेई की तीसरी चूड़ी चम-चम चमक रही थी।

50

गुरमीत ने हर तरह से कोशिश की कि गाँव में सहकारी समिति बन जाए, पर उसे सफलता नहीं मिली। मास्टर काला घर-घर, खेत-खेत जाकर समझाता, किन्तु उसकी बात किसी की समझ में न आती। हिन्दू और सिक्ख अभी तक छोटी-छोटी बातों पर उलझ पड़ते थे।

गुरमीत बहुत उदास रहता था। स्वयं अपने जीवन में, जितनी सफलता उसे मिली; अपने सामाजिक जीवन में, उसे लगता, जैसे उतनी ही उसकी हार हो रही थी। गाँव वाले मिल कर कोई भी ढंग का काम नहीं कर सकते थे। उनकी पंचायत कभी बनती, कभी टूटती और फिर अखबार में उसने एक खबर पढ़ी, और गुरमीत के पाँव तले जमीन निकल गई। बिहार में एक गाँव की पंचायत ने किसी अपराध की सुनवाई की। अपराधी ने अपना कसूर कबूल कर लिया। जुर्म संगीन था। पंचों ने फैसला किया कि अपराधी को फाँसी पर लटका दिया जाये। और फिर उन्होंने गाँव के बाहर एक पेड़ से अपराधी को लटका कर मार डाला।

गुरमीत सोचता, पहली जरूरत देश में शिक्षा की थी। फिर वह सोचता, पहली जरूरत देश में एकता की थी। फिर उसे अनेक और जरूरतें याद आ जातीं। हर एक जरूरत अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होती। लेकिन सबसे बड़ी जरूरत, भाईचारे की भावना की थी। एकता के बिना देश टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। इतिहास में पहले कई बार यों ही हुआ था। हिन्दू-सिक्ख, हिन्दू-मुसलमान, उत्तर-दक्षिण, छूत-अछूत की खाई को जब तक लोग पाट नहीं सकेंगे, देश कभी उन्नत नहीं हो सकता।

और आजकल फिर उसे उस लड़की के स्वप्न आने शुरू हो गए थे – ऊंची-लम्बी, गोरी-चिट्टी, हाथ लगाने से मैली हो जाए। दूर खड़ी, हक्की-बक्की उसकी ओर देखती रहती। और फिर उसकी सहेली यह कहती हुई 'है तो सुन्दर पर सरदार है, हमारे किस काम का ?' उसे अपने साथ लिए दूर क्षितिज तक ले जाती।

बेटे को यूं उदास-उदास देख गुरांदेई के अन्दर छिपे सारे दुख जैसे ऊपर उभर आते। बेटी की याद जब आती, न उसे खाना अच्छा लगता, न उसे पीना अच्छा लगता। इतना सारा परिवार, इतना सारा घर-बार, इतनी गहमा-गहमी, उसे सब कुछ फीका-फीका लगता। अकेली बैठी उसकी आँखों से आँसू बहने लगते। सब कुछ ईश्वर ने लौटा दिया था। भूमि, घर, धन,

किन्तु एक उसके जिगर का टुकड़ा अभी तक उससे बिछुड़ा हुआ था।

कुछ दिनों से गुरचरन अपनी पत्नी को लेकर नांगल से आया हुआ था। गुरचरन की जिद थी कि कम-से-कम गुरमीत से तो उसकी पढ़ी-लिखी पत्नी पर्दा न करे। आजकल के जमाने की लड़की को इस तरह का पर्दा अजीब-अजीब लगता था। मास्टर काला इससे सहमत नहीं था। नया जमाना अच्छा है पर अपनी परम्परा, अपने रीति-रिवाज का लिहाज रखना जरूरी है – बार-बार कहता। पगली चाची को भी गुरचरन की राय बिल्कुल पसंद नहीं थी।

गुरांदेई और गुरांदित्ता अपने पढ़े-लिखे बेटों के मामले में दखल नहीं देते थे। जैसे चाहें रहें।

गुरचरन कहता पर्दा आंख का होता है, पर्दा घूंघट का नहीं होता।

और, फिर एक दिन दोपहर-बाद जब गुरमीत कुएं के पास लगे शहतूत के नीचे बिछी खाट पर से सोकर उठा, सामने गुरचरन की पत्नी खड़ी थी, बिजली के खम्भे का जैसे सहारा लिए हुए। गुरमीत ने लड़की को एक नजर देखा, और उसके पाँव तले से जैसे जमीन खिसक गई। यह तो वही थी। हाथ लगाने से मैली होती। बड़ी-बड़ी, काली-काली आँखों में जैसे जादू भरा हो। मोतियों के दाने जैसे दाँत मुसकानें लुटा रहे। यह तो वही थी। और गुरमीत की आँखों के सामने अन्धेरा छा गया।

और फिर, हँसता-हँसता गुरचरन सामने कमरे में से निकला, और पति-पत्नी हंसते-हंसते कुएँ की ओर कहीं गायब हो गए।

गुरमीत हक्का-बक्का वैसे का वैसा बैठा हुआ था। वह बिट्-बिट् आँखों से बिजली के खाली खम्भे की ओर देख रहा था। उसे लगता जैसे रात हो रही हो। और फिर वह वैसे का वैसा खटिया पर औंधा पड़ गया।

उस रात गुरमीत घर नहीं लौटा। कुएँ पर ही वह सो गया। अगले रोज गुरचरन और उसकी पत्नी को नांगल लौटना था, प्रतीक्षा करके वे चले गए।

51

जीवन और का और हो रहा था। किस तेजी से समय बीत रहा था; फिर जनगणना की चर्चा शुरू हो गई थी। फिर आम चुनाव की तैयारी हो रही थी। मास्टर काला आजकल तीसरी पंचवर्षीय योजना की कहानियाँ कहता रहता था।

तीसरी योजना का जब जिक्र आता, तो मास्टर काला गुरनाम को आँख मारकर कहता – "अब तुम तैयार हो जाओ, आखिरी चूड़ी चौधरानी को, तुम्हें पहनानी है।"

"आखिरी क्यों तीसरी ? माँ हमारी युग-युग जिए। पंचवर्षीय योजनाएँ बनती रहें। देश आगे बढ़ता रहे। और मेरी मां गहनों से लदती जाए। बेटों के बाद पोते इसे चूड़ियाँ चढ़ाएंगे।"

मास्टर काला की इच्छा थी कि गुरनाम स्कूल का हेडमास्टर बने; आखिर उसने अपनी जिद्द पूरी कर ली। गुरमीत कहता, गुरनाम को खेती में उसका हाथ बंटाना चाहिए। गुरचरन की मरजी थी कि कि उसे कम-से-कम एम.ए. पास कर लेना चाहिए। फिर चाहे वह पढ़ाने ही लगे। मास्टर काला ने उसे एफ.ए. के बाद ट्रेनिंग दिलवाकर गांव के स्कूल में हेडमास्टर बनवा दिया। गुरनाम कहता – मैं प्राइवेट पढ़कर एम.ए. पास कर लूँगा। मास्टर काला सारी आयु स्कूल मास्टर रहा, उसने हेडमास्टर बनने की अपनी ख्वाहिश गुरनाम में पूरी की। एक बेटा सरपंच, दूसरा स्कूल का हेडमास्टर। गुरांदेई की सारे इलाके में बड़ी पूछ होती।

और फिर एक शाम गुरनाम हँसता-हँसता आया, उसके साथ मास्टर काला था। सुबह से वे बाहर निकले हुए थे। हंसता-हंसता गुरनाम आया और उसने सोने की तीसरी चूड़ी अपनी माँ को पहना दी।

"आज ही इसे पहला वेतन मिला है और आज ही हमारी लोकसभा ने तीसरी पंचवर्षीय योजना को स्वीकार किया है।" मास्टर काला ने गुरांदेई को बताया।

दमक-दमक पड़ती, सोने की दो चूड़ियाँ एक कलाई पर, दमक-दमक पड़तीं सोने की दो चूड़ियाँ दूसरी कलाई पर, गुरांदेई ने हाथों को देखा और वह विभोर हो गई। टप-टप उसके आँसू बहने लगे। खुशी के आँसू।

"आज उसका ऋण उतरा है", फिर गुरांदेई के मुँह से निकला – "आज मेरे भाई जवाहर का कर्ज उतरा है।" गुरांदेई का अंग-अंग पुलकित हो रहा था।

"ऋण कहाँ उतरा ? ऋण कहाँ उतरा ?" गुरांदित्ता क्रोध में उछलने लगा – "पहले मेरी बेटी मुझे लाकर दे, मेरी दीपी, मेरे जिगर का टुकड़ा।"

"एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात !" और फिर वह वेहोश हो गई। चौके में आटा गूंध रही पगली चाची अपने आपसे बोलने लगी। उसके हाथ आटे से सने हुए थे। आज काफी दिन बाद उसे दौरा पड़ा था।

"ऋण कभी नहीं उतरा करते", मास्टर काला सिर हिला-हिला कर कहने लगा। "ऋण किसी का नहीं उतरता। जिन्दगी की दौड़ लम्बी है। पहली योजना, दूसरी योजना, तीसरी योजना, चौथी और पांचवीं योजना और फिर कई और योजनाएं। योजनाएं अपने देश की खुशहाली के लिए; योजनाएं दुनिया की शान्ति के लिए, ताकि फिर किसी की बहन-बेटी पर ऐसे अत्याचार न हों, जिनके कारण कल हमारा मुँह काला हुआ था।"

और फिर गुरमीत आया। उसके हाथ में तार था। गुरचरन के घर बेटा हुआ था।

"जाओ, लड्डुओं का प्रबन्ध करो, इस लड़के ने तो बड़ी इन्तज़ार करवाई", मास्टर काला खबर सुनते ही उछल पड़ा।

"अब तो मुझे भाखड़ा जाना होगा", गुरांदेई खिल-सी गई। इतने दिनों से टाल रही थी, गुरांदेई अपने पोते को देखने के लिए बेकरार हो रही थी।

"एक तो भाखड़ा के दर्शन और एक पोते के दर्शन", मास्टर काला भी गुरांदेई के साथ तैयार हो लिया।

उस दिन यह खुशखबरी भी मिली – आने वाले आम चुनावों के लिए इलाके के सरपंचों ने गुरमीत का नाम तजवीज़ किया था। गुरांदित्ता ने सुना और बेटे को छाती से लगा लिया।

उस दिन रात देर तक गुरांदेई के आंगन में गहमा-गहमी रही। मास्टर काला की मरजी थी, गुरमीत को किसी पार्टी में शामिल हो जाना चाहिए। गुरांदित्ता इसके विरुद्ध था। एक बार खड़ा हो जाए, फिर किसी की मजाल नहीं थी कि वोट किसी और को दे। इलाके में लोग गुरांदित्ता का नाम लेकर राह चलते थे।

मास्टर काला कहता सत्ताधारी पार्टी के रिकार्ड में क्या बुराई थी? पिछले दस वर्षों में भारत ने जितनी उन्नति की थी, अपने सारे इतिहास में इस समय में इतनी तरक्की पहले कभी नहीं हुई थी।

गुरांदेई ने हर कोशिश की, मास्टर काला ने भी जोर लगाया, किन्तु गुरांदित्ता इसके लिए राजी न हुआ कि गुरमीत किसी दल में शामिल हो जाए। गुरांदित्ता को विश्वास था कि अपने रसूख से और यदि जरूरत पड़ी तो अपने पैसे से वह गुरमीत को कामयाब कर लेगा। जिस गांव में वह जाता था, लोग उसे सिर पर उठा लेते थे।

और फिर गुरांदेई ने सुना उसके भाई जवाहर की पार्टी गुरमीत के मुकाबले में अपना उम्मीदवार खड़ा कर रही है।

गुरांदेई ने सुना और शशोपंज में पड़ गई। एक ओर बेटा दूसरी ओर भाई। गुरांदेई की समझ में कुछ न आता था। गुरांदेई सोचती, कुछ दिन और, और 'जिन्दाबाद' 'मुर्दाबाद' शुरू हो जाएगा। 'गुरमीत जिन्दाबाद', 'जवाहर मुर्दाबाद', 'जवाहर जिन्दाबाद', 'गुरमीत मुर्दाबाद', अकेली बैठी गुरांदेई का दिल डूब-डूब जाता।

और फिर गुरांदेई ने सुना उसका भाई जवाहर दौरे पर आ रहा था। उनके शहर में आकर उसे लाखों के जन-समूह में अपनी पार्टी की ओर से नामजद किए गए उम्मीदवार के लिए सिफारिश करनी थी। गुरांदेई ने सुना और वह सोच में पड़ गई। किस मुंह से वह अपने भाई के सामने जाएगी।

पर नहीं; वह सोचती वह उसकी मीटिंग में जरूर जाएगी। उसका बेटा, उसका पति, उसके घर का और कोई व्यक्ति उस मीटिंग में जाने के लिए तैयार नहीं था। मास्टर काला भी जिस ओर लोगों ने लगाया, उसी ओर लग गया। बल्कि ये लोग तो उसी दिन, उसी समय, मुकाबले में, अपनी मीटिंग रखने की सोच रहे थे।

सारी वह सुबह, जिस दिन जवाहरलाल को आना था, गुरांदेई सोचती रही – वह जाएगी, वह नहीं जाएगी, जाएगी, नहीं जाएगी। और मीटिंग के कोई दो घंटे पहले उसे बड़े जोर का बुखार चढ़ गया। उस शाम को गुरांदेई बेहोश पड़ी ऊल-जलूल बोलती रही। एक डाक्टर आया, दूसरा डाक्टर आया। सारा परिवार परेशान था।

गुरांदेई को अस्पताल ले जाया गया। कितने दिन वह अस्पताल में पड़ी रही। फिर जब उसकी तबीयत में कुछ फर्क आया, गुरांदेई सुन-सुनकर हैरान होती रहती, जवाहरलाल के दौरे के बाद लोग और-के-और हो गए थे। हर कोई उसकी ही बातें करता था। उसकी बातें करते

जैसे लोगों की जबान नहीं थकती थी।

गुरमीत, गुरांदित्ता, परिवार के बाकी लोग उससे मिलने आते, तब उनके चेहरे भी बुझे-बुझे दिखाई देते। पहले वाला वह भरोसा उनमें नहीं था। और फिर मास्टर काला ने गुरांदेई को बताया, जवाहरलाल के भाषण के बाद लोग और के और हो गये थे। गाँव के गाँव जैसे बदल गये। अब उनसे कोई सीधे मुँह बात तक नहीं करता।

गुरांदेई ने सुना, और उस पर एक नशा-सा चढ़ गया। वह तो हमेशा कहती थी; उसका भाई जवाहर लोगों के दिल पर राज करता है। लेकिन इसका यह अर्थ था कि उसके बेटे गुरमीत को हारना होगा। उसके कोख जाये के मुँह पर, उसके घर वाले के मुँह पर, कालिख मली जाएगी। और गुरांदेई की आँखों के सामने अंधेरा – अंधेरा छा जाता।

कोई कहता, सरकार ने अच्छा काम किया था, कोई कहता सरकार ने अच्छा काम नहीं किया था, कोई सरकार की बड़ाई करते न थकता, कोई सरकार की कमजोरियाँ गिनाता रहता। उस शाम जब गुरांदित्ता उससे मिलने आया, गुरांदेई ने धीरे-से उससे पूछा – "तुम्हें मेरे भाई से क्या बैर है ?"

और गुरांदित्ता फूट पड़ा। वह उसकी बेटी पाकिस्तान से निकलवा कर नहीं लाया था, वह उस से बिछुड़ी हुई थी। गुरांदित्ता की आँखों से अविरल अश्रु बह रहे थे। गुरांदेई की आँखें भी भर आईं। दीपी की याद जब आती एक छुरी-सी जैसे उसके कलेजे में आ लगती।

डाक्टर सोच-सोच कर थक गए थे, गुरांदेई के बुखार का कोई कारण किसी की समझ में न आता। कभी बढ़ जाता, कभी घट जाता, टूटता नहीं था। ज्यों-ज्यों चुनाव नजदीक आ रहे थे, सामने खिड़की के बाहर सड़क पर, त्यों-त्यों जिन्दाबाद, मुर्दाबाद' का शोर बढ़ रहा था। सारा दिन ढोल बजते रहते, सारा दिन जुलूस निकलते रहते। एक पार्टी के लोग गुजर कर जाते और दूसरी पार्टी के लोग आ निकलते। हर पल, हर क्षण लाउडस्पीकरों पर प्रचार होता रहता।

कोई कहता सरकार देश में आजादी लाई थी, भूख से आजादी। कोई कहता सरकार लोगों की निजी आजादी में दखल दे रही थी। कोई कहता सरकार कम्युनिस्टों से मिली हुई थी। कोई कहता सरकार अमेरिकनों की पिट्ठू बन गई थी। कोई कहता सरकार देश में खुशहाली लाई थी, कोई उससे मुनकर था। कोई कहता हमें सरकार के हाथ मजबूत करने चाहिए, ताकि संसार में शान्ति बनाए रखने के लिए उसके प्रयत्न सफल हों। कोई कहता हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। गुरांदेई की समझ में कुछ न आता।

और फिर गुरांदेई ने अपने से ही पूछा – कुछ दिनों में जब वोट डाले जायेंगे, गुरांदेई अपना वोट किसे देगी – अपने भाई जवाहर को या अपने बेटे गुरमीत को ? गुरांदेई की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। छल-छल उसके अश्रु बहने लगे। अकेली पड़ी, कितनी देर वह रो-रो कर निढाल हो गई।

अभी उसके आसू खुश्क नहीं हुए थे कि अस्पताल के कुछ डाक्टर और कुछ नर्सें मिलकर उसके कमरे में आये। दक्षिण में बाढ़ ने बेइन्तहा बर्बादी की थी, हजारों लोग बेघर हो गए थे, लाखों एकड़ फसल बह गई थी और प्रधानमंत्री ने चन्दे के लिए अपील की थी। अस्पताल में

कर्मचारी प्रधानमंत्री सहायता-कोष केलिए जो कुछ भी कोई दे सकता, इकट्ठा कर रहे थे।

गुरांदेई ने सुना और उसके होठों पर मुसकान खेलने लगी। एक क्षण में ही उसने अपनी कलाइयों से चूड़ियाँ उतारीं, दो एक कलाई से, दो दूसरी कलाई से, और सोने की वे चूड़ियाँ प्रधानमंत्री के सहायता कोष के लिए, उन्हें भेंट कर दीं।

डाक्टर और नर्सें हैरान, गुरांदेई के मुँह की ओर देख रहे थे कि उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। जैसे किसी के सिर से मनों बोझ उतर गया हो। जैसे एक-एक करके किसी की आँखों के सामने से अंधेरे के पर्दे हट गए हों, जैसे कोई कदम-कदम चलता अपनी मंज़िल पर पहुँच गया हो।

तीसरा खंड

52

अभी मुँह-अंधेरा है। अभी सूरज की किरणें नहीं फूटीं। गढ़ा गाँव के एक ही एक गुरुद्वारे में आज अखण्ड पाठ रखा जाना है। जालंधर से आई रागी पार्टी भीतर अपने साज़ों को सुर कर रही है। गाँव के लोग अभी तक नहीं पहुँचे। चौधराइन लक्ष्मी स्वयं भी नहीं पहुँची। चौधराइन, जिसने अखण्ड पाठ का आयोजन किया है। गाँव के गुरुद्वारे का ग्रन्थी धन्नासिंह चूड़ीदार पाजामा, खुला कुर्ता, गले में दुपट्टा, दूध-सी सफेद दाढ़ी, एक हाथ में शंख थामे, गुरुद्वारे के बाहर बरामदे में आता है। हौले-हौले कदम, बरामदे के एक ओर बने चबूतरे पर खड़ा होकर शंख बजाता है।

पौ फूट रही है। गाँव के वृक्षों में से पक्षी चीं-चीं करते, पंख फड़फड़ाते उड़ते हैं। आँगन में ढोरों के गले में बँधी घंटियाँ बजने लगती हैं। सुबह-सुबह खेत में पहुँचा गंडासिंह अपने बैलों की जोड़ी को थपथपा कर उनकी चाल तेज कर देता है। अभी आधे खेत में उसे और हल चलाना बाकी है।

गंडासिंह बैलों की जोड़ी से बातें कर रहा है –

"और फिर मुझे गुरुद्वारे भी पहुँचना है। गुजरी के यार के निमित्त अखण्ड पाठ रखा जाना है। तेरह साल कैद काटकर कमबख्त लौट आया है।"

"बल्ले-बल्ले-बल्ले, गुजरी के 'माही' को आज आना है।"

"जल्दी, जल्दी, जल्दी, गुजरी के रांझे को आज लौटना है।"

गंडासिंह अपनी जोड़ी को भगाकर दूर खेत में निकल जाता है।"

एक बार, दूसरी बार और तीसरी बार जब धन्नासिंह ग्रन्थी शंख बजाता है तब कहीं लक्ष्मी ढकी-लिपटी अपनी ड्योढ़ी में से निकलती है और जल्दी-जल्दी गुरुद्वारे की ओर चल देती है। फिर गाँव के हर घर में से बूढ़े-बूढ़ियाँ, अधेड़ उम्र की औरतें, जवान-जहान लड़कियाँ-लड़के एक-एक करके, दो-दो करके टोलियों की टोलियाँ, गुरुद्वारे में इकट्ठा होना शुरू हो जाती हैं।

गुरुद्वारे के भीतर रागी जत्थे ने कीर्तन शुरू कर दिया है –

दीनन की प्रतिपाल करे-नित,
संत उबार गनीमत गारै।
पच्छ, पशु, नग, नाग नराधप,
सरब समे सबको प्रतिपारै।
पौखत है जल में, थल में, पल में,
कल के नहीं करम विचारे।

दीन दयाल दया निधि,
दोखन देखत है पर देत न हारे।

चौधराइन लक्ष्मी गले में दुपट्टे का पल्लू लिए, हाथ जोड़ आँखें नीची किए दरबार साहब के सामने खड़ी लम्बी अरदास कर रही है। चौधराइन पलकें मूँदे अरदास कर रही है और गाँव के बाकी लोग श्रद्धापूर्वक आते हैं और माथा टेक कर गुरुद्वारे के खुले दालान में बैठ जाते हैं। मर्द एक ओर, स्त्रियाँ एक ओर। जो कोई भी आता है, कुछ न कुछ भेंट के रूप में अवश्य लाता है। स्त्रियाँ आटा, दाल, सब्जी, फल, गुड़, जो कुछ जिससे बन पड़ता है, दरबार साहब के सामने एक कोने में ढेर लगाती जाती हैं। मर्द पैसा, दो पैसे, चार पैसे अपने-अपने बूते के अनुसार भेंट चढ़ा रहे हैं।

विनम्र लक्ष्मी अभी भी अरदास कर रही है कि गाँव का साहूकार आता है। दूध जैसे सफेद धुले कपड़े; गले में मलमल का अंगरखा। नेफे में से रूमाल निकालकर एक गांठ खोलता, दूसरी गांठ खोलता और फिर तीसरी गांठ खोलकर एक पैसा निकालता है। कभी आंख के पास से, कभी दूर से अच्छी तरह उसे देखता है। और फिर आगे बढ़कर माथा टेक एक कोने में दीवार का सहारा लेकर बैठ जाता है। और अब सूरमा भाई आया है। दैत्य-का-दैत्य, काला भुजंग, मुंह पर माता के दाग, गले में खद्दर का कुर्ता; नीचे जांघिया, नंगी टांगे, कीलों वाली लाठी लिए ठक-ठक करता हुआ आता है। "वाहेगुरु जी का खालसा, श्री वाहेगुरु जी की फतह" ज़ोर से पुकारता है, और जल्दी-जल्दी माथा टेक सब से आगे बैठ जाता है। अपनी लाठी को भी सँभालकर सामने रख लेता है। अब 'सावन' हलवाई आया है, रूखी-खुली दाढ़ी, ढीली पगड़ी, इधर-उधर से लटें निकल रहीं, मैले-कीचड़ कपड़े। बिवाइयों से फटे हुए पाँव, एक आना भेंट चढ़ाकर, तीन पैसे दरबार साहब के सामने से उठा लेता है। और अब गुजरी आई। ऊँची-लम्बी, गोरी-चिट्टी, बड़ी-बड़ी काली आँखें। जल्दी में बनाए बालों की एक लट उसके गालों पर झूल रही है। गुजरी की गोद में बच्चा है। तीस-बत्तीस साल की उम्र, गुजरी की जवानी ढल गई है लेकिन उसका हुस्न ज्यों-का-त्यों है। मोरनी की चाल, गुजरी ठुमक-ठुमक करती आती है। स्वयं माथा टेकती है, अपने बच्चे का सिर नीचे करके माथा टिकवाती है और स्त्रियों की ओर, एक अलग-से स्थान पर जा बैठती है। खुशबू-खुशबू, जिधर से गुज़रती है, कीर्तन सुन रहे श्रद्धालुओं की नज़रें उचटकर एक पलक उसे देख लेती हैं और कई नज़रें उसके पीछे-पीछे घूमती चली जाती हैं। सँभल कर अपनी जगह आलथी-पालथी मारे बैठी गुजरी, दुपट्टे की ओट में, कुरते का गिरेबान खोल अपना दूध बच्चे के मुँह में देती है। और फिर एक नशे-नशे में कीर्तन सुनने लगती है। इतने में गुजरी का घरवाला आता है नत्थासिंह। खा-खाकर तोंद बढ़ी हुई, हाथ-पाँव फूले हुए, नाटा कद जैसे रुई की गाँठ लुढ़कती आ रही हो। बड़ी मुश्किल से बैठकर माथा टेकता है, घर की चाभी गुजरी को थमा, स्वयं मरदों के बीच जा बैठता है। और अब करमू नाई आया है। गरीब-सा, फाकामस्त हड्डियों का ढाँचा। सारा दिन लोगों के बाल काटता है, लेकिन सुबह-शाम गुरुद्वारे माथा टेकने अवश्य आता है। आते ही वह नत्थासिंह के कानों में कुछ खुसर-फुसर करने लगता है।

जैसे-जैसे वह कोई बात बताता है, नत्थासिंह का चेहरा उतरता जाता है। फिर करमू आँखें मूँदे कीर्तन सुनने लगता है। लेकिन नत्थासिंह बार-बार उसे आँखों ही आँखों में कुछ कहता है और फिर सामने से बगुले की तरह गर्दन हिला देता है। और अब सन्ती आती है, गंडासिंह की पत्नी। पतली पतंग, मुश्की रंग। आते ही पास बैठी एक औरत से बातें करने लग जाती है। बातों की शौकीन ! रागी जत्थे का कीर्तन एक अनोखा समा बाँध रहा है। सारी साध-संगत स्वाद-स्वाद हुई बैठी है। सामने दरबार साहब की हुजूरी में विराजमान, लम्बी सफेद दाढ़ी वाला ग्रन्थी चँवर डुला रहा है। इतने में नत्थासिंह का बेटा 'बब्बल' आता है। कोई पाँच साल की उम्र। अपने आलथी-पालथी मारकर बैठे पिता की गोद में आ धँसता है। गुजरी एक नज़र नत्थासिंह और बब्बल की ओर देखती है और अपने शिशु के मुँह में से एक दूध निकाल, दूसरा उसके होंठों में दे देती है। मस्त हो रहा, पारे जैसा चंचल, बालक पचर-पचर दूध पिए जा रहा है। सन्ती अपने पास बैठी स्त्री का ध्यान गुजरी की छातियों की ओर दिलाकर कुछ कहती है और फिर दोनों मुस्कराने लगती हैं।

लक्ष्मी अपनी लम्बी अरदास के बाद कितनी ही देर तक माथा रगड़ती रहती है, फिर बिना दरबार साहब की ओर पीठ किए हौले-हौले गुरुद्वारे से बाहर जाकर साध-संगत के 'जोड़ों' को झाड़ने लगती है। वह बार-बार अपने बिना दाँतों के मुँह में बुदबुदाए जा रही है। "हे कलगी वाले ! आज मेरे बेटे को आना है। उसको सुमति देना। हे बाज़ों वाले ! आज मेरा जाया उम्र-कैद काटकर लौटेगा, उसे राह डालना। वही काम कराना, जो तुम्हें अच्छे लगें। उसके सिर पर हाथ रखना। हे दशमेश पिता ! तुम घट-घट के जाननहार हो।"

जोड़े झाड़ रही लक्ष्मी के हाथ में, गुजरी की, उलटी खाल की बनी जूती आ जाती है; तिल्ले से जड़ी हुई, एक नज़र देखते ही जोड़ा उसके हाथ से गिर जाता है, "कमज़ात औरत ! याराना मेरे बेटे से और बच्चे पराये घर में पैदा कर रही है ! देखो कैसे अपने पिल्ले को दूध पिला रही है ! कुतिया कहीं की।"

लक्ष्मी सामने कोने में बैठी गुजरी की ओर घूर-घूर कर देखती है। अभी तक वह अपने बच्चे को दूध पिला रही है। फिर एकदम से लक्ष्मी के मन में श्रद्धा उमड़ आती है। वह सहसा काँप-सी जाती है। अब गुजरी के 'जोड़े' को उठाकर लक्ष्मी वैसे ही झाड़ रही है, जैसे बाकी साध-संगत के 'जोड़ों' को उठाकर उसने झाड़ा है। एक-एक करके, बाहर चबूतरे पर रखे सभी 'जोड़ों' को लक्ष्मी झाड़-पोंछ रही है, साथ-ही-साथ कीर्तन भी सुनती जाती है।

उधर गाँव के बाहर खेतों में हल चला रहा गंडासिंह एक अजीब नशे में है। यूँ लगता है जैसे उसके बैल मालिक से भी अधिक उतावले हों। भाग-भाग कर काम खत्म कर रहे हैं। बैलों के गले में पड़े घुँघरुओं ने एक अजीब रौनक लगा रखी है। बार-बार गंडासिंह किसी बैल की पूँछ पर हाथ रखकर कहता है, "शाबाश बेटा ! आज गुजरी के यार को आना है !" कुछ देर बाद गंडासिंह नशे-नशे में 'हीर' गाने लगता है –

रब्ब झूठ न करे जे होवे रांझा
ता मैं चौड़ हुई मैनूं पट्टिआ सू।

इक अग फिराक दी साड़ सुट्टी,
सड़ी बल्ली नूँ मुड़दी फट्टिआ सू।
नाले रन्न गई नाले कन्न फाड़े,
आख इश्क थीं नफा की खट्टिया सू।

गंडासिंह आपसे-आप गाता जा रहा है कि पीछे की ओर से, पेड़ों के एक झुरमुट से चुपके से पूरन निकलता है; दारू पिए हुए, बदमस्त। लाठी की तरह कंधे पर दुनाली बन्दूक उठाये हुए। एक नज़र गंडासिंह को देख कर वह बन्दूक तान लेता है। लेकिन फिर जैसे 'हीर' गा रहे गंडासिंह को पल-भर के लिए सुनने लग जाता है। 'हीर' सुनते-सुनते कुछ देर के लिए ऐसा लगता है मानो पूरन पर गंडासिंह की सुरीली आवाज़ का जादू-सा हो गया हो, लेकिन फिर एक नफरत में झुँझलाकर वह सिर झटकता है, अपनी कमज़ोरी को फेंक कर निशाना साधता है और गंडासिंह की ओर फायर करता है। गोली गंडासिंह के बजाय बैल को जा लगती है। अपने पर अचानक हमला हुआ देख, गंडासिंह बैलों को वहीं का वहीं छोड़ भाग खड़ा होता है। पूरन दूसरी गोली चलाता है। यह किसी को नहीं लगती। भाग रहे गंडासिंह की पगड़ी उतर जाती है। उसके बाल बिखर जाते हैं। यूं चकराया हुआ वह गाँव की बजाय सामने जंगल की ओर निकल जाता है। "मार डाला! मार डाला!! कोई बचाओ! कोई बचाओ!!" गंडासिंह अपने-आप चिल्लाता जा रहा है।

53

तेरह साल कैद काटकर आया पूरन, गाँव में कदम रखने से पहले, आँखें फाड़-फाड़कर आगे-पीछे देख रहा है। उसके जाने के बाद गाँव में नहर आ गई है। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है। फसलें ऊँची-ऊँची चढ़ रही हैं। कहीं फल लगे हैं, कहीं फूल खिले हैं। पूरन यूँ खेतों में घूम रहा है कि अचानक तलैया में से मुरगाबियों का एक जोड़ा फुर से उड़ता है। निशाना बाँधकर पूरन फायर करता है। पहली गोली से उड़ रही एक मुरगाबी गिरती है, दूसरी से दूसरी। शराब में बदमस्त पूरन मुरगाबियों को यूँ गिरता हुआ देखकर हँसने लगता है। हँसता जाता है, हँसता जाता है। हँसते-हँसते पूरन सामने पक्की सड़क पर पहुँच जाता है। काली सड़क पर पांव मारकर शायद जूते को झाड़ रहा है। शायद यह देख रहा है कि सड़क

ईश्वर झूठ न बुलवाये, अगर रांझा है
तो मैं लुट गई, बरबाद हो गई
अव्वल तो में विरह की आग में झुलस गई
दूसरे, मुझ जली-भुनी का उसने कुछ नहीं रहने दिया
जोरू भी गंवाई और कान भी फड़वाये
कोई पूछे इश्क से उसे क्या मिला?

कितनी पक्की है। गाँव के पास बह रही नदी पर नया पुल बन गया है। गाँव में घुसते ही पहली चीज़ सड़क के किनारे डाकखाना है। सामने बच्चों का स्कूल है। स्कूल की चारदीवारी के बाहर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा है – 'विद्या विचारी ताँ पर उपकारी।' 'पंचायती राज राम राज है।' 'मिलवे की महिमा बरन न साकूँ।' स्कूल के बाद गाँव के बुनकरों का सहकारी संघ है। पूरन उसकी पक्की इमारत के बाहर साइनबोर्ड पढ़कर हैरान हो रहा है। इतने में सामने की ओर से एक बस आती है। हार्न देती हुई, धूल उड़ाती हुई, पूरन के पास से गुज़र जाती है। पूरन बस को दूर तक देखता रहता है। फिर बस उसकी आँखों से ओझल हो जाती है। ज़रा आगे जाता है तो पूरन के पास से, दूध के डोलों से लदी हुई साइकिल पर, एक नौजवान गुजरता है। उसके कंधे पर ट्रांजिस्टर लटक रहा है और ट्रांजिस्टर में से गाने की आवाज आ रही है। ट्रांजिस्टर की आवाज़ सुनकर पूरन एक नज़र अपनी बन्दूक की ओर देखता है, फिर ट्रांजिस्टर की ओर देखता है। यूँ वह कभी ट्रांजिस्टर और कभी बन्दूक की ओर देख ही रहा होता है कि साइकिल वाला दूर निकल जाता है। तब एक और साइकिल वाला आता है। उसकी साइकिल के आगे-पीछे टोकरियों में अंडे भरे हुए हैं। अंडे शायद वह शहर की मंडी में बेचने जा रहा है। फिर एक ट्रैक्टर गुजरता है। उसके पीछे 'ट्रेलर' में आलू और ताज़ा सब्जी लदी हुई है। यह सब्ज़ी पास के शहर में बेचने के लिए ले जाई जा रही है। पूरन के लिए यह सब कुछ नया-नया है। वह हैरान-सा गाँव की सफाई, गाँव की पक्की सड़कें, गाँव की गलियों, सड़क के किनारे लगे बिजली के खम्भों को देख रहा है, देखता जा रहा है।

इतने में सामने से गुजरी का बेटा बब्बल आता है। बब्बल गाँव में नये आदमी के मुँह की ओर और उसकी बन्दूक की ओर देखने लगता है।

"क्या नाम है तुम्हारा ?" पूरन बच्चे से पूछता है।

"बब्बल", बच्चा जवाब देता है।

"किसके बेटे हो तुम ?"

"गुजरी का।"

"गुजरी का ! तुम्हारे बाप का क्या नाम है ?"

"नत्थासिंह, सरदार नत्थासिंह।"

नत्थासिंह और गुजरी का नाम सुनकर पूरन को एकदम क्रोध आ जाता है और वह दुनाली को बच्चे के गले पर रखकर जैसे फायर करने लगता है कि बच्चा खिलखिला कर हँस देता है। उसके गले पर दुनाली की नोक से जैसे गुदगुदी-सी होने लगती है। बच्चा अपने कोमल हाथोंसे दुनाली के साथ खेल रहा है।

पूरन जैसे पानी-पानी हो जाता है।

यूँ बच्चा खिलखिला कर हँस रहा होता है कि सामने गली में से पूरन का लंगोटिया यार बंसी निकलता है। एक नज़र मिलते ही दोनों दोस्त बगलगीर हो जाते हैं। बब्बल चुपके से गुरुद्वारे की ओर मुड़ जाता है।

"मुझे बदला लेना है।" पूरन कहता है।

"बदला ? क्यों नहीं !" बंसी उसकी हाँ में हाँ मिलाता है ।

"गुजरी ने बेटा तो खूब जना है ।"

"एक ही ! अरे पाँच बेटे जने हैं उसने !"

"तो फिर उसमें क्या रह गया होगा ।"

"गुजरी ! गुजरी है ।" बंसी की आँखों में रौनक आ जाती है ।

"आज की रात न गुजरी रहेगी, न नत्था रहेगा ।" पूरन दाँत भींचकर कहता है ।

"गुजरी को तुम कुछ न कह सकोगे । यूँ डींगें न हाँको ।"

"क्यों ?"

"गुजरी जादूगरनी है ।"

"एक गुजरी की कहते हो ? मैं तो उसका बीज तक नष्ट कर दूँगा ।"

"उस दिन किशने के मुँह पर उसने थूका था और किशना कुछ नहीं कर पाया ।"

"किशना, दस नम्बर का ?"

"हाँ, गुजरी उसकी गली में से गुजर रही थी । उसने कहा, मोतियाँ वाली ! एक नज़र इधर भी देख जा । और गुजरी ने आव देखा न ताव, उसके मुँह पर थूक दिया ।"

"सच ?"

"नागिन है नागिन ! उसे खत्म करना आसान नहीं ।"

"एक गोली नहीं तो दो ठंडी कर देगी ।"

"गुजरी के काटे पानी नहीं मांगते ।"

"नत्थे के पिल्ले जनकर उसमें कुछ नहीं रहा होगा ।"

"तुम खुद ही चलकर देख लो । मैं खेतों का चक्कर काटकर आता हूँ । तेरी माँ ने अखण्ड पाठ रखवाया है, तेरे जेल से छूटने की खुशी में । गुरुद्वारे में रागी जत्था कीर्तन कर रहा है ।"

और तब पूरन के कान में, गाँव के गुरुद्वारे से आते कीर्तन की आवाज़ सुनाई देती है –

एह जगु सच्चे की है कोठरी
सच्चे का विच वास ।
इकना हुकम समाए लए
इकना हुकमे करे विनास ।

पूरन कीर्तन की ध्वनि सुनता है और उसकी पलकें जैसे आप ही आप झुक जाती हैं । बंसी एक नज़र उसे देख कर अर्थपूर्ण सिर हिलाता है और अपनी राह चल देता है । कुछ देर आँखें नीचे डाले, कीर्तन सुन रहा पूरन एक झटके से फिर अपने-आप में आ जाता है । बन्दूक को अपने कंधे पर रखकर, तेज़-तेज़ कदम अपने घर की ओर चल देता है ।

घर की ओर जा रहे पूरन को गुरुद्वारे के सामने, गली में से गुजरना है । ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता है, त्यों-त्यों कीर्तन की ध्वनि ऊँची होती जाती है । गुरुद्वारा साध-संगत से खचाखच भरा है । गुरुद्वारे के बाहर चबूतरे पर लक्ष्मी झाड़ू दे रही है । झाड़ू दे रही लक्ष्मी सामने आ रहे

अपने बेटे को देखती है और लपक कर उसे गले से लगा लेती है। कितनी देर माँ-बेटा एक-दूसरे को भींच-भींचकर मिलते रहते हैं। लक्ष्मी छल-छल आँसू रो रही है, लेकिन पूरन की पलकें वैसी की वैसी सूखी हैं। वैसा का वैसा वह इधर-उधर बिटबिट देख रहा है।

विह्वल होकर गले मिल रही लक्ष्मी की इच्छा है कि उम्रकैद काट कर आया उसका बेटा पहले गुरुद्वारे में माथा टेके और फिर घर में कदम रखे। लेकिन शराब में बदमस्त पूरन यह नहीं मानता।

"मैं कुरबान जाऊं! मैं बलिहारी जाऊँ, बेटा! पहले भीतर माथा टेक ले।"

"जाने भी दो, मैंने बड़े माथे टेके हैं।"

"अरे तू जुग-जुग जिए। मैंने अखण्ड पाठ रखा है।"

"तुम रहने दो। मैंने बड़े अखण्ड पाठ सुने हैं। तेरह साल काल कोठरी में पाठ ही सुनता रहा हूँ। कोई 'हीर' थोड़े ही गाता रहा हूँ।"

"ऐसा नहीं बोला करते! जो मुँह में आता है, उगल देता है।"

"मुझे पहले यह बताओ कि नत्था कहाँ है, पहले मुझे उसकी हेकड़ी तोड़नी है, और फिर गुजरी, और फिर उसके बच्चे-कच्चे..."

लक्ष्मी आगे बढ़कर उसके मुँह पर हाथ रख देती है। और पूरन को सँभाल कर अपने घर की ओर चल देती है। इतने में कई लोग गुरुद्वारे से निकलकर माँ-बेटे को देखने लग जाते हैं। इनमें करमू नाई भी है। करमू नाई ने, लक्ष्मी और उसके बेटे में हुई बातचीत अपने कान से सुनी है। वह पास खड़ी सन्ती को मूक इशारों से सारी बात समझाता है। सन्ती अपने पीछे खड़ी एक और स्त्री से आँखो ही आँखों में सारी कहानी कहती है। वह स्त्री अगली को, अगली उससे अगली को और यूँ न मालूम यह कहानी कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है।

गुरुद्वारे के अन्दर रागी जत्था कीर्तन कर रहा है। क्षण-भर के बाद, बाहर चबूतरे पर खड़े लोग खुसर-फुसर करने लगते हैं।

"खूनी है, खूनी।"

"उम्र-कैद काटकर लौटा है। अब इसमें क्या रहा होगा!"

"वैसे का वैसा हट्टा-कट्टा है।"

"दारू पिये हुए है।"

"यह दुनाली कहाँ से ले आया?"

"कातिल है कातिल! कहीं से उठा लाया होगा।"

"नत्थे का नाम ले रहा था!"

"और गुजरी का!"

"फिर गाँव में कोढ़ फैल जाएगा।"

"फिर चुगलियाँ, फिर मुखबरी, फिर शहादतें।"

"राम-राम करके तो पहले हमने इस गाँव का कूड़ा बुहारा था।"

"राम-राम करके तो पहले हमने इस गाँव का कूड़ा बुहारा है।"

"लेकिन उन्होंने की भी तो इसके साथ बुरी है।"

"जैसी करनी वैसी भरनी।"

"सांड की तरह अकड़ा हुआ है।"

"यह तो कुछ करके ही टलेगा।"

"इसे तो फिर अन्दर करवा देना चाहिए।"

"पहले गुजरी से तो पूछ लो।"

और फिर सब हँसने लगते हैं।

गुरुद्वारे के भीतर बब्बल अपने बाप के कान में कुछ कह रहा है। वह कहकर हटता है तो करमू नाई उसे कुछ बताने लगता है। सुन-सुनकर नत्थासिंह के हाथों के तोते उड़ रहे हैं।

54

पीली-पीली धूप निकल आई है। गंडासिंह सहमा-सहमा, निर्जीव-सा अपने खेत की ओर लौटता है। चार कदम चलकर फिर आगे-पीछे देखने लगता है। जहाँ उसकी पगड़ी गिरी थी, वहाँ से अपनी पगड़ी उठाता है और बालों को समेटता, पगड़ी लपेटता हुआ अपने खेत की ओर जाता है। सामने उसका 'लाखा' बैल बेजान पड़ा है। 'बग्गा' उसके पास खड़ा उसे सूँघ रहा है। गंडासिंह अपने मरे हुए बैल पर गिर पड़ता है और रो-रो कर फरियाद करता है। बैल के आगे-पीछे खून की तलैया-सी बनी हुई है। बार-बार गंडासिंह 'लाखा' बैल को, 'ओ मेरे सगे बीरन', 'ओ मेरे जिगरी यार', 'ओ मेरे लाडले बेटे' कहता है और कभी उसकी थूथनी को और कभी उसकी पूँछ को उठा-उठाकर अपने होंठों से, अपनी आँखों से लगता है। यूँ गंडासिंह विलाप कर रहा है कि एक-एक करके गाँव के लोग उसके पास आते हैं। उनमें बंसी भी है। गंडासिंह दहाड़ें मार-मारकर सारी व्यथा सुना रहा है।

"वही होगा पूरन!" एक किसान कहता है।

"वह नहीं हो सकता।" बंसी राय देता है।

"आज ही तो कमबख्त उम्र-कैद काट कर आया है।" एक और किसान कहता है।

"वह नहीं हो सकता। वह नहीं हो सकता।" बंसी जिद पर अड़ा है।

"जब से गाँव में बिजली आई है, हमारे गाँव में यह पहला खून है।" स्कूल मास्टर कहता है।

"..नहीं तो पहले हम कचहरियों की ही खाक छानते रहते थे।"

"थाने रपट भेजनी होगी।" स्कूल मास्टर मशविरा देता है।

"अगर पूरन है तो पहले पंचायत बुलानी चाहिए।" एक बुजुर्ग अफसोस से सिर हिलाकर

कहता है ।

"पूरन नहीं है, पूरन कैसे हो सकता है ?" बंसी अपनी बात पर अड़ा हुआ है ।

"अन्धेर है अन्धेर ! दिन-दहाड़े गोली चल गई !" एक स्त्री हाथ मटकाकर कहती है ।

"ऐसा कभी नहीं सुना था ।" एक और स्त्री कह रही है ।

"आज कई साल हो गये, यूँ नहीं कभी हुआ !" एक वृद्ध अभी तक सिर हिला रहा है ।

"गाँव में बिजली आई तो मैंने सोचा, हमारा सब अँधेरा धुल गया ।" स्कूल मास्टर अपनी दाढ़ी को खुजला रहा है ।"

"यह तो पुराना बैर है । उसने तेरह बरस के बाद निकाला है ।" अधेड़ उम्र की एक स्त्री अपने पास खड़ी दूसरी को समझा रही है ।

"पूरन नहीं । पूरन नहीं हो सकता ।" बंसी की टेर जारी है ।

"मैं 'हीर' गा रहा था", गंडासिंह रो-रोकर बता रहा है, "अगर मैं मियां वारिस की 'हीर' न गा रहा होता, तो गुरू की सौगन्ध, गोली मेरे सीने में आकर लगती ।"

"अगर पूरन होता तो उसका निशाना कभी न चूकता", भीड़ में से एक आदमी कहता है ।

"वह तो उड़ते पखेरू को भूनकर रख देता है", बंसी अपनी राय पर जमा हुआ है ।

"तेरह साल जेल भी तो काटकर आया है ।" स्कूल मास्टर विचारों में डूब रहा है ।

"फिर उसने गाँव में आकर गन्दगी फैला दी ।" एक वृद्ध परेशान है ।

गंडासिंह छम-छम आँसू बहाता अपने बैल के ऊपर गिर रहा है, और लोग उसे 'हौसला रखो गंडासिंह !' कहकर सान्त्वना दे रहे हैं ।

उधर सलीके से सँवारे अपने दालान में, रंगीन पलंग पर बिठाकर लक्ष्मी अपने बेटे को समझा रही है, "ए तू जुग-जुग जी ! मेरे बुढ़ापे की ओर देख ।"

पूरन दालान में इधर-उधर देख रहा है । सामने दीवार पर लगी ब्रैकेट पर चीनी और शीशे के बरतन सजे हैं, तिपाई पर बिजली का पंखा रखा है जिस पर कपड़े का गिलाफ चढ़ा हुआ है । जगह-जगह दीवारों पर कैलेण्डर लगे हैं । कहीं गुरु नानक, बाला और मर्दाना के साथ बैठे हैं, पीछे पेड़ पर तोते का पिंजरा टंगा हुआ है । कहीं गुरु गोविन्दसिंह बाज़ को उड़ा रहे हैं । एक कैलेण्डर में श्रीकृष्ण गोपियों को बाँसुरी सुना रहे हैं । पूरन की नज़र कुछ देर के लिए इस कैलेण्डर पर रुक जाती है । और फिर एक झटके के साथ उचक कर उस कैलेण्डर पर जा पड़ती है जिसपर बन्दूकों और पिस्तौलों के चित्र बने हुए हैं । पूरन उस कैलेण्डर को देख रहा होता है कि उसे लगता है जैसे चित्र की पिस्तौल किसी ने उठाकर उसके हाथ में थमा दी हो । चित्र के कारतूस जैसे उड़-उड़कर उसके आगे-पीछे बरस रहे हों ।

"इस गाँव में अब कोई नहीं लड़ता-झगड़ता ।" गोली-बारूद के चित्र को देख रहे पूरन को लक्ष्मी समझाती है, "तुम फिर यहाँ आकर कोढ़ न फैलाना । यह कैलेण्डर कई साल पुराना है ।"

"मुझे बदला लेना है ।" पूरन ने ज़िद पकड़ रखी है ।

"तुम एक बदज़ात औरत के लिए सारे गाँव को खराब करोगे ?"

"मुझे बेकसूर तेरह साल उन्होंने जेल में ठूँसे रखा है।"

"बेकसूर क्यों ? तुम पराई लड़की को उसके गाँव से निकालकर ले आए। उसके भाई बीरे को तुमने..."

"मैं गुरु की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, बीरा को नत्था ने मारा है। नत्था और गंडू ने मिलकर उसका खून किया। अभी तक तुम्हें विश्वास नहीं हुआ, माँ ?"

"उनको क्या पड़ी थी कि अपने बैरी के बैरी की हत्या करते ?"

"तुम्हें अभी तक विश्वास नहीं हुआ, माँ ! मैं गुरु की सौगन्ध खाकर कहता हूँ। मैं गुजरी को घोड़े पर भगाकर ला रहा था। हमारे पीछे उसका भाई बीरा...।" और इस तरह पूरन माँ को बीरे के कत्ल की कहानी सुनाता है :

हमेशा की तरह उस शाम पूरन गुजरी के गाँव उसे मिलने के लिए गया था। गुजरी और पूरन गाँव के बाहर चोरी-छिपे मिला करते थे। उस दिन गुजरी बड़ी उदास थी। कहने लगी, "मुझे ले चल। मुझसे और इस गाँव में नहीं रहा जाता। मुझे अपने घरवाले पराये-पराये लगने लगे हैं।" गाँव के बाहर एक बेरी के नीचे बैठे वे बातें कर रहे थे। फिर उन्होंने देखा कि गुजरी का भाई बीरा उन्हें ढूँढ़ता हुआ आ रहा है। अँधेरा छा रहा था। पूरन अपनी दुनाली को उठाकर उसमें गोलियाँ भरने लगा कि गुजरी ने आँख झपकने में उसके कारतूसों की पेटी बेरी पर टाँग दी। यूँ निहत्था हुआ पूरन, गुजरी को अपने घोड़े पर बिठाकर भाग निकला। उसके पीछे बीरा था। घोड़े सरपट दौड़ रहे थे। बीरा ने एक से अधिक बार पूरन पर गोली चलाई किन्तु उसका निशाना हर बार चूकता रहा। एक बार तो गोली पूरन की पगड़ी से छूते हुए सर्र से निकल गई। दूसरी बार गोली गुजरी की एक लट को जैसे नोचकर ले गई। यूँ अपने गाँव के पास जब ये पहुँचे तो नत्थासिंह और गंडासिंह के खेतों में से गुज़रे। अँधेरे में उन्होंने सोचा कि शायद कोई बैरी चढ़ आए हैं और नत्थे ने गोली चला दी। पहली गोली से ही बीरा औंधा जा गिरा। उसका घोड़ा भी ढेर हो गया। और फिर उन्हें पता लगा कि उन्होंने अपने बैरी के बैरी की हत्या कर डाली। तब उन्होंने असलियत छिपाने के लिये पूरन से गुजरी छीन ली और उसे ठोकर मार कर अपने घर भेज दिया। फिर खुद ही जाकर उन्होंने थाने में रिपोर्ट लिखवाई कि उनके गाँव में खून हो गया है। पूरन की गुजरी के साथ आशनाई थी। वह उसे उसके गाँव से भगाकर लाया था। इसलिए बीरा का हत्यारा पूरन ही हो सकता है, और कोई नहीं। जज ने बीरा की हत्या के अभियोग में पूरन को उम्र-क़ैद की सज़ा दे दी।

"इस कमजात को देखो, वो छीनकर ले गए और उन्हीं की हो गई।" पूरन दाँत पीसकर कहता है।

"औरत का क्या है बेटा !" लक्ष्मी जवाब देती है, "औरत का क्या है ? जहाँ बैठ गई, वहीं बच्चे जनना शुरू कर देती है। जिसके बच्चे जनती है, उसकी गुलाम हो जाती है।"

"माँ ! तुम्हें गुजरी कभी मिलने आई है ?"

"काहे को ! बैरियों के घर बसकर बैरन हो गई।"

"आज रात होने से पहले मैं नत्थू का किस्सा निपटा दूँगा।"

"न बेटा ! यह अन्धेर मत करना। मैं कहीं की नहीं रहूँगी। मन्नते मान कर मैंने ये तेरह बरस काटे हैं। इस बार वे तुझे फाँसी पर ही चढ़ा देंगे।"

"मुझे अपना बदला लेना है। बदला लेकर कोई फाँसी पर भी लटक जाए तो क्या !"

"न बेटा न ! तुम उसे माफ कर दो। जो हो गया सो हो गया।"

इस तरह माँ-बेटा बातें कर रहे होते हैं कि सूरमासिंह आता है।

"चौधराइन,उधर तेरी बाट देखी जा रही है। भाईजी अखंड पाठ आरंभ करने के लिए उतावले हो रहे हैं।"

"आओ सूरमासिंह जी। यह पूरन अभी-अभी आया है।"

"ओ,मैं कुरबान जाऊँ। मैं भी कहूँ कि यह आवाज तो पहचानी-सी है। साल भी कितने हो गए हैं !" सूरमासिंह आगे बढ़कर पूरन को गले लगा लेता है।

लक्ष्मी और सूरमासिंह लाख यत्न करते हैं,लेकिन पूरन गुरुद्वारे जाने के लिए राजी नहीं होता।

"अरे यार,तुम्हारे निमित्त तो यह अखण्ड पाठ रखा जा रहा है।" सूरमासिंह कहता है।

"मैं वारी जाऊँ। आज के दिन तू मेरा कहा न टाल।" बार-बार उसे समझा रही है।

"मैं नहीं जाऊँगा,मैं गुरुद्वारे नहीं जाऊँगा। एक बार कह जो दिया।" पूरन क्रोध में आ जाता है।

"लेकिन क्यों ?" सूरमासिंह हार मानने वाला व्यक्ति नहीं।

"मेरी माँ सारी उम्र माथा रगड़ती रही और उसका बेटा बेकसूर कैद कर लिया गया।"

"इसमें गुरुद्वारे का क्या कसूर है ?"

"कोई भगवान का न्याय भी तो होता है।"

"अगर भगवान का न्याय इसी में होता कि बेकसूर को दण्ड न मिले तो भगवान के अपने बेटे ईसा को सूली पर न चढ़ना पड़ता। गुरु अर्जुन को तपे हुए तवों पर न बैठना होता। गुरु तेगबहादुर को अपने शीश की कुरबानी न देनी पड़ती। गुरु गोविन्दसिंह को अपने चारों बेटे हिंसा की बलि न चढ़ाने पड़ते। नंगे पाँव जंगलों में फिरते-फिरते कलगीधर के छाले पड़ गए थे। पोर-पोर काँटों से छलनी हो गया था। क्या उनका कोई कसूर था ?"

सूरमासिंह यूँ बोल रहा होता है कि पूरन लाजवाब होकर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगता है, "मैं नहीं जाऊँगा। मैं गुरुद्वारे कभी नहीं जाऊँगा। तुम लोग अपना समय नष्ट न करो।"

55

हारकर लक्ष्मी और सूरमासिंह गुरुद्वारे चले जाते हैं। पीछे आँगन में बैठा पूरन अपनी दुनाली

साफ करने लगता है । बन्दूक साफ करते हुए वह गुनगुनाता है –

बल्लिए रोयेंगी चपेड़ खाएंगी ।
चुप करके गड्डी विच बह जा ।
तूम्बा बजदा न
तार बिना
रहंदी न
यार बिना

यूँ पूरन को तेरह बरस बाद घर आए, आँगन में बैठकर बन्दूक साफ करते, अड़ोस-पड़ोस के लोग, आगे-पीछे के कोठों पर से झुक-झुककर देखते हैं । पूरन आप-से-आप गा रहा है और बन्दूक साफ कर रहा है । कभी यूँ ही बन्दूक उठाकर निशाना साधने लगता है, और लुक-छिपकर देख रहे किसी का दिल बैठकर रह जाता है ।

अखंड पाठ शुरू होने से पहले गुरुद्वारे में साध-संगत खड़ी होकर अरदास करती है कि ईश्वर पूरन को सम्मति दे । उसे अच्छा नागरिक बनाए । इतने में गाँव में खबर पहुँच जाती है कि बाहर खेतों में पूरन ने गंडासिंह पर गोली चला दी । बैल वहीं का वहीं ढेर हो गया ।

और फिर लोग राई का पहाड़ बनाना शुरू कर देते हैं ।

"ज़ालिम ने एक गोली से दोनों बैल भून डाले ।"

"बैल के ऊपर बैल औंधा पड़ा है ।"

अगले मोहल्ले में इसी कहानी का एक और रूप बन जाता है –

"दिन-दहाड़े गाँव में गोली चल गई ।"

"हल चला रहे गंडू पर तड़-तड़ गोलियों की वर्षा ।"

"गंडू लहू की तलैया में औंधा पड़ा है ।"

उससे अगले मोहल्ले में यही खबर इस तरह सामने आती है –

"तेरह बरस बाद लक्ष्मी के बेटे पूरन ने अपना बदला ले लिया ।"

"पहले उसने गंडू की हत्या की । फिर उसने गंडू की घरवाली को गोली से उड़ा दिया ।"

"और साथ ही दोनों बैल ।"

उससे अगली गली में, इस खबर का और भी घिनौना रूप बन जाता है –

"नीचे गंडू मरा पड़ा है और उसके ऊपर उसके बैल ।"

"एक बैल के ऊपर दूसरा बैल ।"

ओ री; रोयेगी तो थप्पड़ खायेगी
चुप-चाप आकर गाड़ी में बैठ जा
इकतारा बज नहीं रहा
तार के बिना
मैं रह नहीं सकूंगी
यार के बिना

"खून की तलैया में सब डूब रहे हैं।"

"सन्ती की तो देखकर जान निकल गई।"

गली-गली लोग टोलियाँ बनाकर बेपर की उड़ाए जा रहे हैं। परेशान लक्ष्मी हर टोली के पास जाकर उन्हें सच्ची बात बताती है और हाथ जोड़ती है – "पुलिस को कोई रपट न करे। मेरा बेटा तेरह बरस बाद छूटकर आया है। इस बार उसे बांध कर ले गये तो मैं कहीं की न रहूँगी।"

गुरुद्वारे में अखण्ड पाठ शुरू हो गया है। जितनी बार लक्ष्मी गुरुद्वारे के सामने से गुज़रती है, बाहर चबूतरे पर अपना माथा रगड़ने लगती है।

और फिर लोग बारी-बारी पूरन को समझाने आते हैं – "तुम्हें गाँव में यूँ दंगा नहीं करना चाहिए।" लेकिन पूरन किसी की नहीं मानता। गाँव का साहूकार आता है। सावन हलवाई आता है। वह पूरन के लिए जलेबियाँ लाया है। करमू नाई आता है। आखिर गाँव का सरंपच गुरमीत आता है। कितनी देर तक वह पूरन को समझाता रहता है, "तुझे अपनी बूढ़ी माँ का ख्याल करना चाहिए।" लेकिन पूरन नहीं मानता। "अगर तुम गाँव में और हल्ला न करो", गुरमीत कहता है, "तो गंडा सिंह के बैल वाली वारदात हम पुलिस तक नहीं पहुँचने देंगे।" लेकिन पूरन अपनी ज़िद पर अड़ा हुआ है। बार-बार यही कहता है, "उन्होंने धोखा देकर, झूठ बोलकर मुझे तेरह साल काल-कोठरी में बन्द रखवाया। मैं अपना बदला जरूर लूँगा।"

"अब हम बैरी नहीं रहे। हमने पुराने बैर सब भुला दिए हैं। जब से इस गाँव में बिजली की रोशनी आई है। यहाँ के लोग और के और हो गए हैं।" लक्ष्मी कहती है।

"तुमने हमारी गलियाँ नहीं देखीं! कैसी शीशे की तरह चमक रही हैं! इसी तरह हमारा दिल भी साफ हो गया है।" गुरमीत कहता है।

"न हमने अब कभी पुलिसवालों को मुँह लगाया है, न कभी कचहरी की सूरत देखी है।"

"पुलिसए बेचारे तो आजकल भूखों मरते हैं।"

"सरकारी तलब से किसी का गुजारा भला होता है?"

"थानेदार की बेटी, सरू का सरू, घर बैठी है। दहेज नहीं जुटा पाता कि लड़की के हाथ पीले कर दे।"

"हमने तो फैसला किया है अब मिल-जुलकर रहेंगे।"

"भाईचारे जैसी कोई चीज़ नहीं।"

"जो हो गया सो हो गया। पिछली बातों पर मिट्टी डालनी चाहिए।"

"जिसने बुरा किया वह आप भोगेगा। ईश्वर का भी तो कोई न्याय होता है!"

"फिर बुरे को बुराई से नहीं मारा जाता। बुरे के साथ भलाई करनी चाहिए!"

"लस्सी और लड़ाई का क्या। जितनी बढ़ाना चाहो, बढ़ा लो!"

"मैं कहता हूँ यह कायरों वाली बातें मुझे न सुनाओ।" पूरन नाराज़ होकर खड़ा होता है।

"और तुम कहाँ के नादिरशाह आ गये हो!" निराश होकर गुरमीत चल देता है। लक्ष्मी

उसके साथ बातें करती गली तक निकल जाती है, "मैं इसे समझा लूँगी।" लक्ष्मी गुरमीत को विश्वास दिलाती है, "बाप नहीं रहा न इसका, इसलिए जरा अक्खड़ है, मैं इसे समझा लूँगी।"

गुरुद्वारे में लगे लाउडस्पीकर द्वारा अखंड पाठ की आवाज़ सारे गाँव में फैल रही है। जिस ओर की हवा होती है, उस ओर पाठ स्पष्ट सुनाई देने लगता है। आँगन में अकेले रह गए पूरन तक भी अखंड पाठ की आवाज़ आ रही है –

सुण मन भूले बावरे गुर की चरणी लाग
हर जप नाम ध्याय तूं जम डरपे दुख भाग।
दूख घनो दोहागिन क्यों थिर रहे सुहाग।
भाई रे अवर नहीं मैं थाओं।
मैं धन नाम निधान है गुर दिया बल जाऊँ।
गुरमत पत साबास तिस तिन के संग समाऊँ।
तिन बिन घड़ी न जीवऊँ बिन नामे मर जाऊँ।
मैं अंधले नाम न बीसरे टेक टिकी घर जाऊँ।
गुरू जिन्हां का अन्धला चेले नाईं ठाऊँ।
बिन सत गुरु नाम न पाइए बिन नावें क्या सुवाऊँ।
आए गया पचथावनां ज्यों सुंजे घर काऊँ।

सुण मन भूले बावरे गुर की चरणी लाग – पाठ सुन रहा पूरन काँप उठता है।

इतने में पिछली ओर से चारदीवारी फाँदकर उसका मित्र बंसी उससे मिलने के लिए आता है। बंसी ने सुलफा पी रखा है। उसकी आँखें लाल हो रही हैं। दोनों दोस्त चापराई पर बैठ, बातें करने लग जाते हैं।

"मैं आज रात तक नत्थू को खत्म कर दूँगा। रात को गुजरी मेरे पास होगी।" पूरन बन्दूक उठाकर निशाना बाँधता है और आकाश में उड़ रही एक चील नीचे आ गिरती है।

"उस कमज़ात का अब तुम क्या करोगे?" बंसी कहता है।

"गुजरी को एक बार इस घर में लाकर मैं उससे इस घर के बरतन मँजवाऊँगा। इस आँगन में झाडू दिलवाऊँगा। वह कुएँ से पानी की गागर भर-भरकर लाया करेगी, भैंस को चारा डालेगी, गाय का दूध निकालेगी और मेरे और मेरी माँ के मैले कपड़ों की गठरी उठाकर नदी पर धोने जाएगी।"

"तुम अभी तक उसके दीवाने हो!"

"इस आँगन में गुजरी मेरे शेर जैसे बच्चों को खिलाया करेगी। इस आँगन में मेरे बच्चे नोच-नोचकर उसे खाएंगे। इस आँगन में वह आधी-आधी रात तक मेरी बाट देखा करेगी। इस आँगन में मैं उस पर सौत लाकर बिठाऊँगा। और फिर वह रो-रोकर इस आँगन में अपनी जनने वाली को याद किया करेगी।"

"गुजरी का जादू अभी तक तुम्हारे सिर से नहीं उतरा!"

पूरन सामने रखा पानी का कटोरा उठाकर पीने लगता है और फिर बिना पिये कटोरा

नीचे रख देता है।

"तुमने अभी तक पानी नहीं पिया ?" लक्ष्मी आकर पूरन से पूछती है।

"मैं पानी पिऊँगा, उसकी हेकड़ी तोड़कर।" पूरन कहता है और बन्दूक कन्धे पर रखकर बाहर निकल जाता है।

लक्ष्मी बंसी के हाथ जोड़ती है कि वह उसे समझाए। "मैं सरपंच के पाँव पड़ कर गंडासिंह के बैल वाली बात रफा-दफा करवा दूँगी।" लक्ष्मी बंसी को भरोसा दिलवाती है।

दीवानों की तरह, पूरन गली-गली फिर रहा है। लोग सहमे-सहमे उसका रास्ता छोड़ रहे हैं। औरतें अपने किवाड़ों के पीछे खड़ी होकर उसे देखती हैं और काँप-काँप जाती हैं। यूँ बदमस्त घूम रहा पूरन गुरुद्वारे के सामने से गुजरता है। यूँ लगता है जैसे उसके कदम आप-ही-आप तेज हो रहे हों। लेकिन फिर वह सिर झटक कर एक आवेग में आगे बढ़ जाता है।

सामने गली में नंगा-धड़ंगा सूरमासिंह मालिश करके उठक-बैठक कर रहा है। दूर से पूरन की आहट सुनकर चुपके से आगे बढ़कर उसे पकड़ लेता है।

"अरे, तू मेरी बात तो सुन, मेरे शेर !"

पूरन हँसने लगता है।

"तुझे कैसे पता चल गया सूरमासिंह कि मैं गुज़र रहा हूँ ?"

"भला मुझे पता न चले ! वह तो मैं सुबह ही धोखा खा गया। मैं तो गाँव के हर ढोर की आवाज़ पहचानता हूँ।"

"फिर तो मैं भी ढोर ही हुआ ?"

"यह बात नहीं मेरे भाई। आदमी को ईश्वर से डरकर रहना चाहिए। मेल-मिलाप में जो बरकत है, वह लड़ाई-झगड़े में नहीं। और हाँ, यह बन्दूक तुम कहाँ लिए फिर रहे हो ?"

सूरमासिंह चालाकी से पूरन से बन्दूक छीन लेता है।

"सूरमासिंह ! मेरी बन्दूक मुझे लौटा दो, नहीं तो अच्छा नहीं होगा।"

"सब अच्छा होगा, हथियार हिफाजत के लिए होता है, हमले के लिए नहीं।"

"मुझे यह गांधी वाली बातें न सिखाओ।"

"गांधीजी तो हथियारों की ज़रूरत ही नहीं समझते थे। उनका हथियार तो अहिंसा था।"

"चाहे कोई किसी का हक छीन ले ?"

"अहिंसा ताकतवर का हथियार है, कायर का नहीं।"

"तुम यह गांधी वाली बातें रहने दो सूरमासिंह !" पूरन चालाकी से बन्दूक छीन कर आगे निकल जाता है।

गुरुद्वारे में निरन्तर पाठ हो रहा है। एक 'पाठी' की बारी खत्म होने पर दूसरा उसकी जगह ले लेता है। गुरुद्वारे में कुछ बूढ़ी औरतें अभी तक बैठी पाठ सुन रही हैं। पाठ सुनते हुए, साथ-साथ हाथ से कोई काम भी करती जाती हैं। कोई सेवैयाँ बना रही है, कोई क्रोशिया चला रही है, कोई कसीदा काढ़ रही है। कोई कुछ, तो कोई कुछ।

यूं दीवानों की तरह पूरन गली-गली फिर रहा है कि बंसी उसके कान में कुछ कहता है। पूरन सुनते ही गाँव के बाहर की ओर दौड़ पड़ता है। नत्थासिंह शौचादि के लिए खेतों की ओर निकला है। पूरन एक अमराई में छिपकर उसपर ताक रखता है। नत्थासिंह अपनी गली से निकलता है, खेत लाँघता है और एक टीले के पीछे बैठ जाता है। पूरन अमराई में छिपा, बन्दूक ताने निशाना बाँधता है कि उसकी आँखों के सामने गुजरी की शक्ल आ जाती है। बला का हुस्न। मानों बिट-बिट उसकी ओर देख रही है। और पूरन बन्दूक चलाये बिना; नीचे कर लेता है। सामने नत्थासिंह फारिग होकर नदी की ओर निकल जाता है।

पसीना-पसीना हुआ पूरन, अमराई से नीचे उतर आता है।

अमराई के तने से छलाँग लगाते हुए उसका कुरता एक टहनी से उलझकर फट जाता है। पूरन का गिरेबान चाक हो गया है। कभी वह अपने फटे हुए कुरते की ओर देखता है, कभी सामने ठंडी मीठी हवा में झूम रही टहनी को, जो शान्त, गम्भीर यूँ हिल रही है जैसे कुछ हुआ ही न हो।

यूँ पूरन परेशान-परेशान-सा इधर-उधर देख रहा होता है कि उसकी नज़र सामने खेत की मेंड़ पर लड़ रहे एक साँप और नेवले पर जा पड़ती है। लड़ाई बड़े ज़ोरों की हो रही है। साँप नेवले को डसने की कोशिश कर रहा है और नेवला अपने को बचाकर साँप की गर्दन दबोचना चाहता है। कितनी देर दोनों एक-दूसरे पर वार करते रहते हैं। आखिर नेवला दाँव लगाकर साँप को पीछे से जा दबोचता है, और आँख झपकते ही उसकी गर्दन को नोचकर परे फेंक देता है। कौड़ियोंवाला साँप पड़ा विष घोल रहा है और विजयी नेवला अकड़ा हुआ सामने खेत की ओर निकल जाता है।

पूरन अपनी दुनाली को कभी खोलता है, कभी बन्द करता है। यूँ हारा हुआ, लज्जित-सा, गाँव की ओर चल देता है।

"तुम चूड़ियाँ पहन लो।" कुछ देर बाद बंसी उसे मिलता है और लाल रंग की एक चूड़ी उसकी हथेली पर रख देता है। पूरन को मानो चारो-कपड़े आग लग गई हो। काँच की चूड़ी को मुट्ठी में लेकर वह मसल देता है और उसके हाथ से टप-टप लहू टपकने लगता है।

इतने में सामने से डाकिया आता है और बंसी को एक चिट्ठी थमाता है। न बंसी पढ़ा है न पूरन। दोनों बेबस-से चिट्ठी को देख रहे हैं, पढ़ नहीं सकते। तभी उधर से मास्टर काला गुज़रता है। मास्टर काला बंसी को चिट्ठी पढ़कर सुनाता है? "लिखतुम लाजवंती, पासे मेरे परम प्यारे..."

चिट्ठी बंसी की घरवाली की है जो आजकल मायके गई हुई है। अपनी घरवाली की चिट्ठी अपने दोस्त के सामने सुनने में बंसी को लज्जा-सी होती है। वह बाकी सुने बिना मास्टर काला के हाथ से उसे छीन लेता है।

"तुम्हारे बेटा हुआ है।" जाते-जाते मास्टर काला, जिसने चिट्ठी को एक नज़र देख लिया था, बंसी को बताता है। और बंसी जैसे खिल-सा जाता है।

"फिर आज तो जशन होना चाहिए।" पूरन कहता है।

"जशन होगा! जशन क्यों नहीं होगा?" बंसी वायदा करता है।

"लेकिन यह बताओ! तुम तो कहते थे कि तुम्हारी घरवाली तुमसे लड़कर मायके चली गई..."

"हाँ, हाँ।"

"कब गई थी?"

"हो गया है कोई सालभर। मैंने उसे मुँह नहीं लगाया।"

"एक साल में तुमने उसे मुँह नहीं लगाया?..." फिर पूरन हँसने लगता है हँसता जाता है। यूँ लगता है जैसे बंसी समझ नहीं पा रहा कि पूरन क्यों हँस रहा है।

"लड़ती-मरती फौज है। नाम सरदार का होता है।" पूरन आखिर बंसी की पीठ ठोंककर कहता है। और अब बंसी को जैसे समझ आया हो कि पूरन की हँसी का क्या कारण था।

बंसी सिर नीचा किए अपने रास्ते निकल जाता है और पूरन वैसे का वैसा खड़ा उसे देखता रहता है।

इस घटना के बाद घर जाते हुए पूरन गुरुद्वारे के सामने से गुज़रता है। अन्दर अखंड पाठ हो रहा है –

> सुन हरि कथा उतारी मैल।
> महा पुनीत भये सुख सैल॥
> वड्डे भाग पाया साध-संग।
> पारब्रह्म सौं लागो रंग॥
> हरिहरि नाम जपत मन तार्‌यो।
> अग्नि सागर गुरु पार उतार्‌यो॥
> कर कीर्तन मन सीतल भये।
> जन्म-जन्म के किल बिख गये॥
> सर्व निधान पेखे मन माहिं।
> अब ढूँढन काहे को जाहिं॥
> प्रभु अपने जब भये दयाल।
> पूरन होई सेवक घाल॥
> बंधन काट किए अपने दास।
> सिमिर सिमिर सिमिर गुण तास॥

एको मन एको सब ठाय।
पूरन पूरयो सब जाय॥
गुरु पूरे सब भरम चुकाया।
हरि सिमरत नानक सुख पाया॥

पूरन गुरुवाणी को क्षण-भर के लिए सुनता है, फिर सुना-अनसुना कर देता है। सामने से एक बछड़ा भागता हुआ आता है और पूरन एक ओर हो जाता है। बछड़ा वैसे का वैसा बाजार में से गुज़रता है और लोग घबराए हुए दुकानों के अन्दर घुस रहे हैं। कुछ किसान 'पकड़ो! पकड़ो!' चिल्लाते हुए उसका पीछा करते हैं और बछड़े को काबू में कर लेते हैं। फिर एक बेरी के तने के साथ उसे जकड़-कर उसकी नाक छेद देते हैं और उसके नथनों में नकेल डाल देते हैं। बछड़ा 'रास' हो जाता है और सीधी तरह अपने मालिक के पीछे-पीछे चलने लगता है। इधर-उधर तमाशा देखने के लिए खड़े लोग बछड़े से जैसे उपहास कर रहे हों। कोई कुछ कहता है कोई कुछ।

"कैसे उछलता फिरता था और अब कैसे असील लग रहा है।"

"जैसे मुँह में ज़बान न हो।"

"बड़ा मासूम है। चल रहा है, जैसे भीगी बिल्ली हो।"

"जरा पास जाकर देखो, ऐसी टक्कर मारेगा कि हमेशा याद रहेगा।"

"करमू अब इसे बैलगाड़ी में जोतेगा।"

"या फिर हल में जोतेगा।"

रात होने को है। पूरन अपने आँगन में बैठा दारू पी रहा है। अभी घर में किसी ने बत्ती नहीं जलाई है लक्ष्मी गुरुद्वारे गई हुई है। पूरन अकेला है। इतने में सीढ़ियाँ उतरकर गुजरी चुपके से आती है और पूरन के सामने खड़ी हो जाती है। जैसे आसमान से उतरी परी हो।

"मैंने सुना है तुम मेरे घरवाले को मारने को फिरते हो। तुम गुजरी का सुहाग लूटना चाहते हो? वह मेरे बच्चों का बाप है। तुम मेरे बच्चों को यतीम बनाना चाहते हो? बड़ा आया सूरमा कहीं का! तब कहाँ थी तुम्हारी आन, जब उन्होंने ठोकर मारकर तुमसे तुम्हारी प्रेमिका छीन ली थी। गाँव से मुझे निकालकर लाये और एक बोल मुँह से बोले बिना मुझे उनके हवाले कर दिया? और कोई होता तो जान दे देता। और तू मुँह बाये देखता रहा! वो मुझे गाय की तरह हाँक कर ले गये। तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारे जैसे बुज़दिल की इज्ज़त लिए बैठी रहती।"

और फिर टप-टप गुजरी की आँखों से दो आँसू फूट निकलते हैं। गुजरी क्षण-भर के लिए पूरन के सामने खड़ी रहकर, जिस राह से आई थी उसी राह से वापस लौट जाती है।

गुजरी को गये हुए देर हो गई है। पूरन सहसा चौंककर बन्दूक उठा लेता है। पलट कर सीढ़ियों की ओर देखता है, गुजरी तो कब की जा चुकी है।

गाँव की चौपाल में लोग रेडियो पर देहाती प्रोग्राम सुन रहे हैं। एक स्त्री-स्वर में गीत सुनाई देता है –

नी अज्ज कोई आया साडे विहड़े।
तक्कन चन्न-सूरज ढुक-ढुक नेड़े।

गीत के बाद आम लोग उठकर चले जाते हैं। बाकी रह जाते हैं केवल पंच। रेडियो बन्द करके वे पूरन के मामले पर अच्छी तरह विचार करते हैं –

गुरमीत : यह बात पक्की है कि गुजरी का इश्क पूरन के साथ था।

दूसरा : उसी के साथ वह अपने गाँव से भागी।

तीसरा : रास्ते में नत्थासिंह और गंडासिंह ने गुजरी के भाई बीरे की हत्या करके पूरन से गुजरी छीन ली।

चौथा : और फिर कचहरी चढ़कर उसे उम्र-कैद करवा दी।

पाँचवां : लेकिन सवाल हमारे सामने यह है कि पूरन ने गंडासिंह के बैल को गोली से क्यों मारा ?

गुरमीत : तेरह साल बेगुनाह कैद काटकर आया आदमी क्या नहीं कर गुज़रता ?

बाकी पंच : बात तो ठीक है।

गुरमीत : मेरी राय है कि अगर पूरन गाँव में और फसाद न करे तो इस मामले को रफा-दफा कर देना चाहिए।

लक्ष्मी : मैं बैल के दाम चुकाने को तैयार हूँ।

गुरमीत : ठीक है, अगर चौधराइन बैल के पैसे भर दे तो इस मामले को यहीं खत्म कर देना चाहिए।

दूसरा पंच : यह ठीक है।

तीसरा पंच : यह ठीक नहीं। लक्ष्मी जुरमाना काहे को भरे ? पहले नत्थू और गण्डू ने ज्यादती की, उनको भी तो दण्ड भुगतना चाहिए।

चौथा पंच : मेरी राय में चौधराइन को रकम नहीं चुकानी चाहिए।

गुरमीत : चौधराइन को रकम भरने की कोई जरूरत नहीं।

उधर अपने आँगन में पूरन दारू पीते-पीते सो जाता है। सुबह का थका-हारा पूरन अपनी चारपाई पर लम्बी तानकर सोया है। चौपाल से लौटी लक्ष्मी बेसुध सोये पड़े पूरन को देख रही है। ज्यों-ज्यों गाँव में रात की खामोशी छाती जा रही है गुरुद्वारे में हो रहे अखंड पाठ की आवाज़ जैसे हवा में तैरती हुई लक्ष्मी के आँगन में पहुँचनी शुरू हो जाती है। गुरुवाणी के शब्दों की ध्वनि सोये हुए पूरन के कानों में पड़ रही है –

आज कोई हमारे आंगन में आया है
चांद और सूरज पास-पास आकर देख रहे हैं

गुर के शब्द बनावो ए मन
गुर का दर्शन सच्चो हर धन
उत्तम मति मेरे ह्रदय तू आओ
ध्यावो, गावो, गुण गोविन्दा
अति प्रीतम मोहे लागे नाओं
तृप्त अघावन साचे नाएँ
अठसठ मज्जन सन्त धुराएँ
सब में जानो कर्त्ता एक
साध-संगत मिल बुध विवेक
दास सकल का छोड़ अभिमान
नानक को गुरु दोनों दान

इसी तरह गुरुवाणी पूरन के कानों में पड़ती रहती है। ढेर रात बीत जाती है। रसोई का काम निपटाकर लक्ष्मी भी पूरन के पास आकर चारपाई पर लेट जाती है।

सोया-सोया गुरवाणी सुन रहा पूरन, बड़बड़ाने लगता है, "सतनाम श्री वाहे गुरु। सतनाम श्री वाहे गुरु।" कुछ देर खामोश रहने के बाद फिर बोलने लगता है, "गुजरी ने मेरे मुँह पर चाँटा दे मारा और मैं कुछ नहीं कर पाया। कुछ भी नहीं। ...गुजरी। तुमने उसके लिए पाँच बेटे जने, वायदे मुझसे करती रही...लेकिन मैं नत्थू को नहीं छोडूंगा। नत्थू से मुझे अपना बदला जरूर लेना है...गंडू को भी मैं भून देता। लेकिन वह कमबख्त 'हीर' खूब गाता है। अगर हीर न गा रहा होता तो वह भी अपने बैल के पास पहुँच चुका होता...नहीं, नहीं, मैंने गंडू को नहीं मारा, क्योंकि गंडासिंह मेरे बाप का नाम है। कोई अपने बाप की भी हत्या करता है? ..महात्मा गांधी वाली बातें। लेकिन उन्होंने उसे भी कहाँ बख्शा। तीन गोलियाँ उसकी छाती में दाग कर चित्त कर दिया। उस दिन मेरा जी चाहा कि नत्थू गोड्से की बोटी-बोटी उड़ा दूं...नत्थासिंह और गंडासिंह...नत्था और गंडा...नत्थू गोड्से...ये वही तो नहीं कहीं महात्मा गांधी के हत्यारे...गाँव-गाँव, गली-गली नत्थू गोड्से फिरते हैं...सतनाम श्री वाहे गुरु! सतनाम श्री वाहे गुरु।"

लक्ष्मी उठ कर पूरन की चारपाई के पास खड़ी अपने बेटे के क्लेश को सुन रही है, देख रही है। गुरुद्वारे में हो रहे पाठ की आवाज़ लगातार उसके आँगन में पहुँच रही है। और लक्ष्मी को लगता है, जैसे पूरन के चेहरे पर तेरह साल जेल काटकर आये एक कैदी के कठोर चिह्न धीरे-धीरे मिट रहे हैं। और यूँ सोये-सोये गुरुवाणी सुनता हुआ वह शान्त, गम्भीर और स्थिर हो जाता है।

उधर नत्थासिंह को नींद नहीं आ रही है। बार-बार करवटें बदलता है, बार-बार उठ कर बैठ जाता है, और आगे-पीछे अँधेरे में घूर-घूर कर देखने की कोशिश करता है। अड़ोस-पड़ोस में हल्के से शोर से चौंक उठता है। कुछ देर बाद अपने पास लेटी गुजरी को छेड़ने लगता है। इधर से उसे उठाता है, वह उधर करवट लेकर सो जाती है। उधर से उसे जगाने की कोशिश

करता है, तो इस ओर मुँह फेर कर वह खर्राटे भरना शुरू कर देती है। नत्थासिंह की चारपाई के पास उसकी बन्दूक रखी है। कारतूसों की पिटारी भरी है। बार-बार वह बन्दूक को हाथ लगा कर देखता है, कारतूसों की पिटारी में झाँक कर अपने-आपको तसल्ली देने की कोशिश करता है। कुछ देर बाद नत्थासिंह का कुत्ता हौले-हौले कदम उसके पास आता है। उसके हाथ-पाँवों को सूँघकर, उसकी चारपाई के पास बैठा, अपने पंजों पर थूथनी रखकर सो जाता है। लेकिन नत्थासिंह को नींद नहीं आ रही है। गुजरी बेसुध सोई पड़ी है। कुत्ता बेसुध सोया पड़ा है। नत्थासिंह के पसीने छूट रहे हैं। जैसे उसकी समूची नींद उड़ गई हो।

कुछ देर के बाद नत्था गुजरी की चारपाई पर आ बैठता है। गुजरी के पास लेटने की कोशिश करता है। लेकिन इस चारपाई पर बढ़ी हुई तोंदवाले, मोटे भारी नत्थासिंह के लिए बिल्कुल स्थान नहीं। फिर नत्थासिंह अपनी चारपाई पर बैठकर गुजरी को अपनी ओर खींचने की कोशिश करता है। गुजरी मान नहीं रही। कुछ देर बाद नत्थासिंह फिर उसे छेड़ता है। इस बार गुजरी उसे डांट देती है – "सोने भी देगा कि नहीं, खसमाखाने।"

यूँ गुजरी के मुँह से डांट सुन कर खीझा हुआ नत्थासिंह उसे चाँटा जड़ देता है। गुजरी घायल शेरनी की तरह उठ कर उसकी ओर घूरने लगती है।

भोर हो रही है। लक्ष्मी अपने आँगन में छुट-पुट काम कर रही है। पहले रसोई का लेप करती है। साथ-साथ पाठ भी करती जाती है। फिर गाय का दूध निकालती है। साथ-साथ पाठ भी करती जाती है। फिर आग सुलगाकर दूध औटाने को रखती है। साथ-साथ पाठ भी करती जाती है।

उधर पूरन अभी तक सो रहा है। गंडासिंह पौ फटते ही अपने बचे हुए बैल के साथ खेतों की ओर चल देता है। 'गुजरी नत्थू के साथ बस रही है, बैल मेरा मारा गया।' बार-बार अपने-आप से वह कहता है।

बंसी सोकर उठता है और उठते ही सुलफे की चिलम भरने बैठ जाता है। बड़ी लगन के साथ चिलम तैयार करता है और फिर चारपाई पर बैठ कर सुलफा पीने लगता है।

सुबह हो जाती है।

उधर स्कूल की घंटी बज रही है। बच्चे बस्ते उठाये स्कूल जा रहे हैं। स्कूल के अध्यापक आते हैं। बच्चे पंक्तियाँ बनाकर खड़े हो जाते हैं। फिर हैडमास्टर आता है। इधर-उधर देखता है और सिर हिलाने लगता है। "आज फिर किशु नहीं आया ?" हैड मास्टर पूछता है।

"घर से तो वह चल पड़ा था !" उसका पड़ोसी बच्चा बताता है।

"मैंने उसे खेतों की ओर जाते देखा। बस्ता कमर में लिए खेतों की ओर जा रहा था।" एक और बच्चा बताता है।

हैडमास्टर को क्रोध आ जाता है। "तुम चारों जाओ और उस को पकड़ ले आओ।"

हेडमास्टर सामने की पंक्ति में खड़े चार लड़कों को किशु के पीछे भेजता है। बाकी बच्चे स्कूल का तराना गाना शुरू कर देते हैं –

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।

हम बुलबुले हैं इसकी ये गुलिस्तां हमारा।

इधर स्कूल का तराना खत्म होता है,उधर किशु के पीछे भेजे गये बच्चे उसे पकड़ कर ले आते हैं,हैडमास्टर किशु को देखते ही आगबबूला हो जाता है। और उसे तमाचे,घूँसे और ठोकर मारने लगता है। इतने में एक और अध्यापक सामने सड़क पर लगे एक पेड़ से ताजा छड़ी काट कर ला देता है। और सारे स्कूल के सामने किशु को छड़ी के साथ धुनकर रख दिया जाता है। लड़का बार-बार हाथ जोड़ता है। रो-रोकर इकरार करता है,"अब मैं कभी स्कूल से नहीं भागूँगा।" लेकिन हैडमास्टर उसे पीटे जा रहा है,जब तक कि उसके हाथ नहीं थक जाते। फिर हैडमास्टर किशु के कान पकड़वाकर,उसे मुर्गा बनने को कहता है। और वैसे का वैसा उसे आँगन में पड़ा रहने देता है। बाकी बच्चे अपनी-अपनी कक्षा में चले जाते हैं।

उधर गुरुद्वारे में आज सुबह ढढ-सारंगी पार्टी कीर्तन कर रही है! पूरन अकेला अपने आँगन में टहल रहा है। लक्ष्मी कब की गुरुद्वारे जा चुकी है। ढढ सारंगीवाले 'चंडी की वार' का गायन कर रहे हैं –

कोप के चण्ड-प्रचण्ड चढ़ी इत,
क्रोध के धूम्र चढ़े उत सैनी।
बान कृपानन मार मची तब,
देव लई बरछी कर पैनी।...

ढढ-सारंगी की गगन-बेधी आवाज़ पूरन के कानों में पड़ रही है। एक निहायत जोशीला समाँ बँध रहा है। पूरन को लगता है जैसे उसके पुट्ठों में नया खून दौड़ रहा हो। ढढ-सारंगी की धुन जैसे उसे अपनी ओर बुला रही हो। पूरन सिर हिला-हिला कर उसे अनसुना करने की कोशिश करता है। ढढ सारंगी की आवाज़ जैसे उसे कील रही हो। पूरन अपने कानों में उँगली दे लेता है। किन्तु नहीं,ढढ-सारंगी की आवाज जैसे उसे बाँध कर अपनी ओर खींच रही हो। आखिर हार कर पूरन वैसा-का वैसा बन्दूक उठाये गुरुद्वारे की ओर चल देता है। ढढ-सारंगी की आवाज़ ऊँची होती जा रही है,और ऊँची होती जा रही है। और पूरन साध-संगत में आ बैठा है। लक्ष्मी अपने बेटे को गुरुद्वारे में आया देख खिल-सी जाती है। हाथ जोड़ कर आँखें मूँद लेती है। सामने गुजरी बैठी है। निडर औरत। कभी पलकें मींच लेती है कभी खोल लेती है। वह बिट-बिट पूरन की ओर देखती जाती है। पूरन के अन्दर फिर एक तूफ़ान उमड़ने लगता है। उसका खून खौल रहा है। कभी मुट्ठी भींच लेता है,कभी खोल देता है। पूरन को लगता है,जब तक गुजरी है वह नत्थू की हत्या नहीं कर सकेगा। और नत्थू से बदला वह जरूर लेना चाहता है। उसका अंग-अंग कुलबुला रहा है। लेकिन वह तो गुरुद्वारे में बैठा है। आप-से-आप पूरन की आँखें मुंद जाती हैं और वह जैसे अपनी दुनाली का निशाना साधकर सामने बैठी गुजरी को भून देता है। गुरुद्वारे में कोहराम मच जाता है। गुजरी लहू की तलैया में बेजान पड़ी है,जैसे पत्थर का पत्थर हो। फिर हड़बड़ाकर पूरन आँखें खोलता है। ढढ-सारंगी की पार्टी चंडी की वार का कीर्तन पूर्ववत् कर रही है और सामने गुजरी बैठी है – गोरी-चिट्टी,जैसे तसवीर हो। कभी आँखें मूंद लेती है,कभी खोल लेती है। खुली आँखें बिट-बिट पूरन की

ओर देख रही हैं।

पूरन गुरुद्वारे में एक क्षण भी नहीं बैठ सकता। पसीना-पसीना हुआ बन्दूक उठाए बाहर निकल जाता है। पूरन को यूँ लगता है जैसे वह आजाद हो गया हो। गुजरी का किस्सा उसने तमाम कर दिया है। अब उसके रास्ते में गुजरी की मुहब्बत रोड़ा नहीं अटकाएगी। गुजरी को वह खत्म कर चुका है।

गली के मोड़ पर पूरन को बंसी मिल जाता है। बंसी के हाथ में चाबुक है। सुलफा पी-पीकर लाल हुई आँखों से नशे-नशे में एक नज़र पूरन को ऊपर से नीचे तक देखता है, फिर उसकी बन्दूक की ओर देखता है, जैसे वह कह रहा हो – "अभी तक तुम उसे मार नहीं सके ?" और पूरन को जैसे चारों कपड़े आग लग जाती है।

"तुम उसको कभी भी न मार सकोगे।" बंसी व्यंग्य-भरे लहजे में पूरन से कहता है, "तुम्हारे ऊपर उसने जादू कर रखा है।"

पूरन चुप है।

"कल मुझे गली में मिली थी। कहने लगी, 'बंसी, तेरा दोस्त छूटकर आ गया है। उसे तू सुलफा पीना न सिखा देना। वह तो गुरु का सिख है।' मैंने कहा, 'दारू चाहे जितनी पी ले, सुलफा नहीं पी सकता ?' और वह हँसने लगी। हँसती जाये, हँसती जाये। हँस-हँस कर लाल सुर्ख हो गई। पाँच बेटे जनकर भी वैसी की वैसी ही है, जैसे कंचन की डली हो। तुम उसे नहीं मार सकोगे। गुजरी जैसी औरत को मारना बड़ा मुश्किल है।"

"तो फिर तुम पूरन को जानते ही नहीं।" पूरन दाँत पीसकर कहता है।

"मारनेवाले यूँ मारते हैं।" बंसी अपने चाबुक को दोनों हाथों में लेकर उसके दो टुकड़े कर देता है।

"चल, यहाँ से निकल चलें।" पूरन परेशान है। उसे लगता है जैसे गुरुद्वारे में हो रहे कीर्तन की आवाज़ उसका पीछा कर रही हो। ऊँची, और ऊँची हो रही है। "यहाँ से निकल चलें", वह फिर कहता है।

"क्या मतलब ?" बंसी हैरान है।

और पूरन बंसी को बाँह से पकड़कर गाँव के बाहर दूर, बहुत दूर ले चला है। रास्ते में बार-बार, कीर्तन की ध्वनि को जैसे हाथों से परे हटा रहा हो। उसके भीतर एक विचित्र संघर्ष चल रहा है।

एक खाई में आकर वे बैठ जाते हैं। यहां कीर्तन की आवाज़ नहीं पहुँच रही। पूरन की साँस फूल रही है। ऐसे लगता है जैसे वह थक-हार गया हो। एक अजीब शशोपंज में है वह। बिट-बिट बंसी की ओर देखे जा रहा है। कभी जम्हाइयाँ लेता है, कभी [illegible] काटता है। हर बार बन्दूक को खोलकर देखता है कि नलियों में कारतूस हैं या नहीं ?

कुछ देर बाद बंसी नेफे से दारू की बोतल निकालता है और फिर दोनों मित्र मिलकर पीने लगते हैं। बारी-बारी, बोतल को मुँह लगाकर वे पी रहे हैं। पूरन सामने से मिट्टी का एक ढेला उठाता है और अपनी मुट्ठी में दबा कर उसे मसल देता है। और फिर वह धरती पर लकीरें

खींच-खींच कर उनके जोड़े बनाने लगता है ।

"ओ मेरे शेर ! तुम औंसियाँ डाल रहे हो ?" बंसी उसे छेड़ता है और हँसता जाता है ।

सामने जाले में एक मकड़ी घात लगाए बैठी है । उधर से एक मक्खी उड़ती हुई आती है । जाले में उसके पर उलझते ही हैं कि मकड़ी उछल कर उस पर झपट पड़ती है और दबोच लेती है ।

ऐसे लगता है कि जैसे हवा का रुख एकदम बदल गया हो । गुरुद्वारे में हो रहे, ढढ-सारंगी पर, कीर्तन की आवाज़ खाई तक आनी शुरू हो जाती है, जहाँ पूरन और बंसी बैठे पी रहे हैं –

कोप के चण्ड प्रचण्ड चढ़ी इत
क्रोध के धूम्र चढ़े उत सैनी ।
बान कृपानन मार मची तब
देव लई बरछी कर पैनी ॥
दौउरि दई अरि के मुख में
कट ओठ दिये जिमि लोह कु छैनी ।
दांत गंगा यमुना तनु श्याम सो
लोहु वहिने तिहं माहि त्रिवेनी ॥

गुरु गोविन्दसिंह की 'चण्डी की वार' का कीर्तन सुन रहे पूरन के हाथ में बोतल थमी की थमी रह जाती है । अब वह एक घूँट भी और नहीं पी सकता । बन्दूक कंधे पर रख कर गाँव की ओर चल देता है, "अभी तो बोतल आधी भी नहीं हुई ।" बंसी उसे टोकता है, लेकिन पूरन बिना जवाब दिए चला जाता है । बंसी वैसा-का-वैसा बैठा पीता रहता है ।

गाँव की ओर जाते हुए, तेज़ हवा में पूरन के कपड़े फरफरा रहे हैं । उसकी पगड़ी का सिरा उड़ रहा है । यूँ लगता है कि पूरन के भीतर का संघर्ष बाहर तेज़ हवा के खिलाफ उसकी कशमकश में प्रकट हो रहा है । यूँ पूरन को, तेज़-तेज़ डग भरते, गाँव की ओर जाते हुए, बंसी खाई में से सिर निकालकर देखता है और फिर एक शरारत-भरा कहकहा लगाकर खाई में अदृश्य हो जाता है । "यह बोतल तो मुझे गुजरी ने दी थी ।" बंसी शराब में मदहोश हो रहा है । "कमबख्त अपनी गुजरी की शराब तो पी लेता ।"

गाँव की ओर जाते हुए पूरन स्कूल के पास रुकता है । स्कूल के आँगन में मुर्गा बना हुआ लड़का अभी तक उसी मुद्रा में है । उसका पसीना चू रहा है । बच्चे के छम-छम आँसू बह रहे हैं, लेकिन सामने बरामदे में बैठे हैड मास्टर को दया नहीं आ रही । पूरन एक क्षण-भर के लिए बच्चे को बिलखते हुए देख कर आगे निकल जाता है ।

सामने गली में एक टोली तीतर लड़ा रही है । दो तीतर एक-दूसरे पर टूट पड़ने के लिए अवसर ढूँढ़ रहे हैं । यूँ एक-दूसरे की ओर देख रहे हैं जैसे युगों के बैरी हों । फिर एक तीतर हमला करता है और अपनी चोंच से दूसरे की गर्दन पकड़ लेता है । दूसरा तीतर पंजा मारता है । एक बार, दूसरी बार... और बैरी लहू-लुहान हो जाता है । लहू-लुहान होकर सामने औंधा जा गिरता है । अब विजेता तीतर इसके ऊपर जा बैठा है और घायल तीतर को चित्त कर देता

है। लहूलुहान तीतर औंधा पड़ा है, मानों उसके प्राण निकल गए हों। लोग तालियाँ बजाते हुए वाह-वाह करने लगते हैं। विजयी तीतर के स्वामी को सिर पर उठा लिया जाता है।

तेज़-तेज़ डग भरता हुआ अपने घर की ओर जा रहा पूरन गुरुद्वारे के सामने से गुज़रता है। गुरुद्वारे में कीर्तन खत्म हो चुका है। अब अरदास हो रही है। सारी साध-संगत अरदास के लिए खड़ी है। पूरन की इच्छा बिलकुल नहीं, लेकिन अरदास होते देख गली में उसके कदम आप-से-आप रुक जाते हैं। पूरन अरदास में शामिल हो जाता है –

नानक नाम चढ़दी कला।
तेरे भाणे सरबत का भला॥

अरदास समाप्त होती है। और पूरन तेज़-तेज़ कदम गुरुद्वारे के सामने से निकल जाता है। जैसे उसे डर हो कि यदि वह रुक गया तो रुका ही रहेगा और कोई शक्ति उसे खींचकर अन्दर ले जाएगी।

अगली गली बहुत तंग है। सुनसान है। मुश्किल से एक आदमी के गुज़रने की इसमें जगह है। सिर नीचे किए, तेज़-तेज़ कदम पूरन अपने घर की ओर जा रहा है, कि देखता है, सामने से गुजरी आ रही है। ऊँची-लम्बी, गोरी-चिट्टी, कोमलांगी-सी। मानों हाथ लगाने से मैली हो जाएगी। पूरन का अंग-अंग ऐंठ जाता है। उसके कदम रुक जाते हैं। बिट-बिट वह गुजरी की ओर देख रहा है। और वह शान्त गम्भीर वैसी-की-वैसी उसके पास से खुशबू बिखेरती निकल जाती है। पूरन एक ओर होकर गुजरी को रास्ता दे देता है। गुजरी अपनी मस्त चाल से आँखों से ओझल हो जाती है। पूरन कभी गुजरी की पीठ की ओर, कभी अपनी बन्दूक की ओर देखता रहता है।

इतने में गुजरी का कुत्ता दौड़ता हुआ आता है। तंग गली में पूरन की ओर देखकर रुक जाता है। और फिर उसकी ओर देखकर गुर्राने लगता है। गली के मोड़ से गुजरी मुड़कर देखती है और अपने कुत्ते को आवाज़ देकर बुला लेती है।

गुरुद्वारे की ओर से अखण्ड पाठ की आवाज फिर आनी शुरू हो जाती है –

राम दास सरोवर न्हाते,
सब उतरे पाप कमाते।
निर्मल होये कर इसनाना,
गुरु पूरे कीनें दाना।
सब कुसल खेम प्रभ धारे,
सही-सलामत सब थोक उबारे।
गुर का सबद विचारे,
साध संग मल लाथी,
पारब्रह्म भयो साथी।
नानक नाम धियाया,
आद पुरख प्रभ पाया।

फूली हुई साँस, हाँफता हुआ पूरन घर पहुँचता है और अपनी बन्दूक को चारपाई पर पटक देता है। फिर दालान के खंभे में सिर मार-मारकर छल-छल आँसू रोने लगता है और उसके माथे से लहू बहने लगता है। गुरुद्वारे से लौटी लक्ष्मी अपने बेटे के इस क्लेश को देख कर हक्की-बक्की रह जाती है।

"मैं उसे मार डालूँगा। मैं अपना बदला लूँगा।" आँखें फाड़-फाड़ कर पूरन अपनी माँ को देख रहा है, "वह मुझे तंग गली में मिली। बिट-बिट मेरी ओर देखती गुजर गई और मैं उसे कुछ न कह सका! उसका कुत्ता डब्बू मुझे देख कर काटने को दौड़ा, मैं उसे मार डालूँगा। वह और नत्थू के साथ...।" पूरन का बुरा हाल हो रहा है।

लक्ष्मी अपने बेटे की ओर देखती रह जाती है। कितनी देर चुपचाप उसकी ओर देखती रहती है। उसके अन्दर जैसे एक न कहा जा सकने वाला द्वन्द्व चल रहा है। फिर वह अपने दुपट्टे से पूरन के माथे का लहू पोंछती हुई उससे कहती है, "बेशक मेरे बच्चे! बेशक तू अपना बदला ले। मैंने अपना दूध तुझे माफ किया।"

पूरन फूट-फूट कर रोने लगता है और अपनी माँ को गले से लगा लेता है।

58

पंचों का यह फैसला, कि यदि पूरन गाँव में और हल्ला न करे तो गंडासिंह का बैल उसे माफ कर दिया जाएगा, गंडासिंह ने तो मान लिया, लेकिन गंडासिंह की पत्नी सन्ती को यह कदापि स्वीकार नहीं। उसने अपने घर में मुसीबत खड़ी कर रखी है –

सन्ती : खसमाँखाना! मिट्टी का माधो! मैं कहती हूँ, कल कोई तुम्हारा पाजामा उतार ले तो तुम चूतड़ मटकाते घर आ जाओगे?

[गंडासिंह खामोश है।]

सन्ती मैं पूछती हूं नामुराद; तू बैल गँवा कर घर किस मुँह से आया? कल तुमसे कोई तुम्हारी जोरू भी छीन लेगा!

[गंडासिंह अभी तक खामोश है। अपनी पत्नी के मुँह की ओर देख रहा है, मानो कह रहा हो कि जो मुँह में आता है बक देती है।]

सन्ती मैं कहती हूँ, मेरा बैल ला कर दो मुझे। नहीं तो मैं इसी बेलन से तुम्हारी मरम्मत करती हूं।

[वह सामने रसोई में से बेलन उठा लेती है और गंडासिंह हैरान होकर अपनी पत्नी के क्रोध को देखता रहता है।]

सन्ती : मैं कहती हूँ गोली तेरे क्यों नहीं आ लगी? जान तो छूटती!

गंडासिंह : भाग्यावान...

सन्ती.: रहने दो अपनी यह चापलूसी । सीधी तरह जा कर नत्थू से कहो कि हमारा बैल भर दे । 'भैड़े-भैड़े यार मेरी फत्तो दे ।' आज रात से पहले-पहले मेरा बैल मुझे मिल जाना चाहिए ।

गंडासिंह : भाग्यवान ! तुम मेरी बात तो सुनो ।

सन्ती : मैं बात-वात कुछ नहीं सुनूँगी । तुम अभी जाओ और नत्थू के आँगन से एक बैल खोल कर ले आओ । कितनी सुन्दर हमारी जोड़ी थी ! अब एक अकेला खड़ा है । [और सन्ती लड़-झगड़ कर अपने पति को नत्थासिंह के घर भेज देती है ।]

[नत्थासिंह के घर गुजरी अपने बच्चे बब्बल को प्रार्थना करना सिखा रही है । बच्चा आँखें मूँदे, हाथ जोड़े, माँ के पीछे-पीछे बोल रहा है –]

गुजरी : हे ईश्वर !

बब्बल : हे ईश्वर !

गुजरी : तुम घट-घट के वासी हो !

बब्बल : तुम घट-घट के वासी हो !

गुजरी : तुम सर्वव्यापी हो !

बब्बल : तुम सर्वव्यापी हो !

गुजरी : तुम अनाथों के नाथ हो !

बब्बल : तुम अनाथों के नाथ हो !

गुजरी : मैं छोटा-सा बालक हूँ !

बब्बल : मैं छोटा-सा बालक हूँ !

गुजरी : तुम मुझे सुमति दो कि मैं पढ़-लिख जाऊँ !

बब्बल : तुम मुझे बर्फी दो । मेरा बर्फी खाने को बहुत जी चाहता है ।

बच्चे के इस वाक्य पर गुजरी अचानक हक्की-बक्की-सी उसकी ओर देखती रह जाती है, और फिर माँ-बेटा दोनो हँसने लगते हैं ।

उधर गँडासिंह ड्योढ़ी का द्वार खटखटा कर अन्दर आता है और नत्थू को बैठक में अकेला बैठा देख कर उसके साथ खुसर-फुसर करने लगता है । गंडासिंह बार-बार उसे कहता है, "तुम मुझे मेरा बैल भर कर दो । गुजरी भी तुमने अपने घर बसा ली और बैल भी मेरा ही मारा गया ।"

लेकिन नत्थासिंह परों पर पानी नहीं पड़ने देता, "गंडू ! वह तो दस नंबरी है । तेरह साल जेल काट कर आया है । वह तो जो कर बैठे सो ही थोड़ा है । हमें अपना बचाव आप करना चाहिए । तेरे पास असलहा तो पूरा है ?"

"मुझे साले किसी दस नंबरी का डर नहीं । मुझे अपना बैल चाहिए बैल । मेरी घरवाली ने मेरा जीना मुहाल कर रखा है ।"

"सन्ती को मैं समझा लूँगा । मेरी भाँजी है । कौन-सी पराई है ।"

"मैं कहता हूँ, बीरा तेरी गोली से मरा।" आखिर झुँझला कर गंडासिंह कहता है, "उस रात मेरी तो पिस्तौल ही खाली थी। तुमने उसके भाई की हत्या की और फिर उसे घर में भी बसा लिया।"

"यह तुम क्या कह रहे हो?" नत्थू अवाक्-सा उसके मुँह की ओर देख रहा है।

"तुमने उसके भाई की हत्या की और फिर उससे ब्याह भी कर लिया।" गंडासिंह फिर दोहराता है।

"धीरे बोल, धीरे! गुजरी ने सुना तो बच्चू कोलहू में पिसवा देगी।"

साथ वाले कमरे में किवाड़ के पीछे खड़ी गुजरी यह सब सुन रही है। उसे तो हमेशा यही बताया गया था कि उसका भाई बीरा पूरन की गोली का निशाना बना। गुजरी सुनती है तो जैसे उसके पाँव तले से जमीन खिसक जाती है। 'इतने साल मैं इसके लिए बच्चे जनती रही, जिसने मेरे भाई का कत्ल किया?' बार-बार वह अपने आपसे कहती है और दीवानों की तरह कभी हाथ मलती है, कभी होंठ काटती है, कभी दुपट्टे को उँगली पर लपेटना शुरू कर देती है।

सामने दालान में उसका बेटा बब्बल आँखें मूँदे, सिर झुकाए बैठा है। हू-ब-हू नत्थासिंह की शक्ल! बच्चा वैसा का वैसा प्रार्थना कर रहा है "ईश्वर तुम घट-घट के वासी हो। तुम सर्वव्यापी हो। तुम अनाथों के नाथ हो। मैं छोटा-सा बालक हूँ। तुम मुझे बर्फी दो। मेरा बर्फी खाने को बहुत जी चाहता है।"

गुजरी को सहसा बब्बल पर क्रोध आता है और वह उसे चाँटा मार देती है। फिर अपने जाये के मुँह की ओर देखकर छल-छल आँसू रोने लगती है।

गंडासिंह बक-झक करता नत्थासिंह के घर से निकलता है और सीधा पूरन के घर जाता है। पूरन अपनी बैठक में बैठा है। बार-बार गंडासिंह पूरन से कहता है, "मुझे ईश्वर की सौगन्ध, वह गोली नत्थासिंह ने चलाई थी जिसका बीरा निशाना बना। तुम उससे अपना बदला लो। मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

पूरन गंडासिंह की सारी बातें सुन रहा है, समझ रहा है, लेकिन बदहवास-सा कभी दुनाली में कारतूस भरता है, कभी निकाल लेता है।

"मुझे बदला लेना है।" मानो पूरन अपने-आपसे कहता है।

"तुम बदला जरूर लो। मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

यूँ लगता है जैसे पूरन के अन्दर एक संघर्ष हो रहा हो। कभी कारतूस भरता है, कभी निकालता है। पूरन यूँ कर रहा होता है कि गंडासिंह उससे हाथ मिलाकर चला जाता है।

तीन घड़े सिर पर टिकाये, तीसरे पहर, सन्ती कुएँ पर पानी भरने जा रही है। रास्ते में, पानी भरने जा रही गुजरी भी उसे मिल जाती है। सन्ती को अभी तक अपने बैल का गुस्सा है। दूर से गुजरी को देख कर जैसे उसका मुँह-सिर नोच लेती है। लेकिन गुजरी भी कोई कम नहीं। एक-एक के दस-दस जवाब देती है। कुएं की ओर जा रही वे बकती रहती हैं। पानी भरते समय भी झगड़ती रहती हैं। पानी भरकर लौटते हुए भी वे एक-दूसरे को ताने देती रहती हैं,

फिर अपनी-अपनी गली में घुस जाती हैं।

सन्ती : अरी राँड ! अपने खसम से कह, मेरा बैल भर कर दे।

गुजरी : हमारी जूती भर कर देगी।

सन्ती : तेरी जूती तेरे सिर पर। भलमनसाहत से मेरा बैल मुझे दे दे, नहीं तो वो मिट्टी खराब करूँगी कि याद करेगी।

गुजरी : जा-जा अपना रास्ता पकड़। मैंने तेरी जैसी बहुत देखी हैं।

सन्ती : है न चुड़ैल। कैसे कैंची की तरह इसकी ज़बान चलती है।

गुजरी : तू कौनसी कम है। कंजरी न हो तो !

सन्ती : कंजरी तू ! तेरी माँ, तेरी दादी। भागी किसी के साथ, बसी किसी के साथ।

गुजरी : मैं कहती हूँ, बहुत बड़बड़ मत कर, कहीं कपड़ों समेत कुएँ में न दिखाई दे।

सन्ती : देखूँ तो सही, तुम में कितना ज़ोर है !

गुजरी : तूने एक बोल और मुंह से निकाला तो तू भी और तेरे घड़े भी कुएँ में होंगे।

कुएँ की जगत पर खड़ी गुजरी और सन्ती एक-दूसरे को घूर-घूर कर देख रही हैं। फिर एकदम चुप हो कर आप-ही-आप पानी भरने लगती हैं। फिर जैसे सन्ती को एकदम गुस्सा आ जाता है। वह गुजरी को लक्ष्य करती है –

सन्ती : बेटे किसी के यहाँ हों, बैल किसी का मारा जाए !

गुजरी : मेरे बेटों की बड़ी जलन है लोगों को।

सन्ती : हमारा बैल हमें मिल जाए, फिर चाहे कोई तेरह बेटे पैदा कर ले।

गुजरी : ताकि दूसरों की बेटियाँ लग सकें।

सन्ती : मैं अपनी बेटियों की तरफ किसी को आँख उठा कर न देखने दूँ।

गुजरी : बेटियाँ तो देखो ! न मुँह न मत्था और जिन पहाड़ों लत्था !'

इतने में सीता पानी भरने आती है।

सन्ती : (सीता से) री बहन ! इस कंजरी से कहो, बढ़-चढ़ कर बातें न करे। मैं इसे मुँह नहीं लगाती।

गुजरी : (सीता से) री बहन ! इस कुतिया से कहो, फुजूल न भौंके। इसे कोई मुँह नहीं लगा रहा।

और फिर दोनों अपने-अपने घड़े उठाकर चली जाती हैं। अपनी-अपनी गली में जाते हुए गुजरी मुड़ कर सन्ती की ओर देखती है और थूक देती है। इसके बाद सन्ती पलट कर देखती है और गुजरी की ओर नफ़रत से थूकती है।

उसी शाम लक्ष्मी अखंड पाठ कर रहे पाठियों को अपनी रसोई में बिठाकर भोजन करवाती है। पूरन घर आए अतिथियों की सेवा करता है। पहले रसोई में चटाई आदि बिछाने में माँ की मदद करता है। फिर जब वे आते हैं, उनका स्वागत करता है; उनके हाथ धुलाता है, फिर खाना खिलाने में अपनी माँ का हाथ बँटाता रहता है। पाठी बात-बात में गुरुबाणी में से कुछ अंश बोलते हैं –

जिस प्रसाद छतीं अमृत खाएँ
तिस ठाकुर को रख मन माँहि

x x x

सेवक की मनसा पूरी भई
सतगुरु ते निर्मल मति लई

x x x

सेवक को सेवा बन आई
हुकम बूझ परम पद पाई

गुरुवाणी का एक-एक शब्द जैसे पूरन के मन में चुभ रहा हो। यूँ इश्वर के भक्तों की सेवा करते हुए उसके चेहरे पर शान्ति आती जाती है मानो उसे एक गहरा सुकून महसूस हो रहा हो। उसके भीतर सुलग रहा अलाव जैसे ठण्डा पड़ रहा हो। जाने से पहले सबसे बड़ा पाठी पूरन की पीठ पर हाथ फेरता है।

उधर गुजरी घर के काम से अवकाश पाकर गुरुद्वारे जाने के लिए तैयार हो रही है। कंघी कर रही, आईने के सामने खड़ी वह बार-बार अपने को देखने लगती है। गुजरी को लगता है जैसे अभी तक उसकी आँखों में जादू बाकी है। अभी तक उसके चेहरे पर रौनक वैसी की वैसी है। मिस्सी से रंगे उसके होंठ, सुरमे से कजराई उसकी आँखें। सामने ताक में से टटोल कर वह एक डिबिया निकालती है और उसके भीतर रखी बालियाँ निकाल कर कानों में डाल लेती है। बालियाँ पहनकर गुजरी का रूप एकदम जैसे खिल-सा जाता है।

ठीक इसी समय सन्ती गुरुद्वारे जाने से पहले सज रही है। आईने के सामने खड़ी अपने रूप को निहार रही होती है कि बाहर से गंडासिंह आता है।

"गुरुद्वारे जा रही हो या किसी यार से मिलने?" गंडासिंह अपनी घरवाली को छेड़ता है। और वह उसकी ओर कनखियों से देखकर बाहर निकल जाती है।

उस रात पहरा देने के लिए घर से निकला फत्तू चौकीदार बार-बार अपने कुत्ते को साथ हो लेने के लिए कहता है। कुत्ता एक जगह से उठता तो दूसरी जगह जा बैठता। वहाँ से फत्तू उसे उठाता है तो कुत्ता तीसरी जगह धरना जमा लेता है। उसके साथ जाने के लिए तैयार नहीं हो रहा। फत्तू कुत्ते की इस हरकत पर हैरान हो रहा है।

"अरे आज तुझे क्या हो गया हरामखोर।" फत्तू चौकीदार कुत्ते से बातें कर रहा है, "अरे,

तुम तो यूँ पाँव पसार कर बैठ गये हो जैसे गाँधी का रामराज चल पड़ा हो। चल, बेटा चल। यूँ सुस्ती नहीं करते। अभी तो पूरन दुनाली लिए गली-गली फिर रहा है। चाहे कब खून खराबा हो जाए। इश्क का मारा मर्द और पागल कुत्ता दोनों बराबर होते हैं। चल मेरे शेर, चल। देख, ऊपर से समय क्या हो चला है। चाहे कोई नम्बरदार को जाकर शिकायत ही कर दे। अब हो गया तेरा आराम। सोने के लिए दिन थोड़ा होता है ? दिन में कभी मैंने तुझे कभी कुछ कहा है ? मैं करूँ भी क्या, मेरी नज़र जो नहीं रही। नहीं तो शायद तुझे तकलीफ न दूँ। मुझे तो चार कदमों पर खड़ा कोई दिखाई नहीं देता। लोग कहते हैं, मुझे रतौन्धी हो गई है।"

उधर गुरुद्वारे में औरतें बैठी अखण्ड पाठ सुन रही हैं। इनमें गुजरी भी है, लक्ष्मी भी है, सन्ती भी है। औरतें हाथों से कोई-न-कोई काम भी कर रही हैं। कोई क्रोशिया चला रही है, कोई कसीदा काढ़ रही है, कोई तकली घुमा रही है, कोई अटेरन चला रही है, कोई कुछ और कोई कुछ। गुजरी ने जब से गंडासिंह और अपने घरवाले की बातचीत सुनी है, जैसे उसे आग लग गई हो। उसे चैन नहीं पड़ रहा। बार-बार उसके कानों में गंडासिंह के ये शब्द गूँजते हैं, 'तुमने उसके भाई की हत्या की और फिर उससे ब्याह भी कर लिया।' उसे लगता है जैसे उस से भारी छल हुआ हो। गुरुद्वारे में बैठे-बैठे उसका मन उचाट हो जाता है। वह चुपके से बाहर निकल जाती है। एक बार गुरुद्वारे से निकली गुजरी सीधे पूरन के घर जाती है। पूरन अपने आँगन में बेसुध सोया पड़ा है। रात अँधेरी है! दूध-से सफेद वस्त्रों में ऊँची लम्बी गुजरी कितनी देर पूरन की चारपाई के पास खड़ी उसे देखती रहती है। उसका दुपट्टा उसके सजे हुए बालों से बार-बार ढुलक-ढुलक पड़ता है और वह बार-बार उसे अपने सिर पर टिकाती है। फिर गुजरी झुक कर धीरे-से अपना हाथ पूरन के माथे पर रखती है। गुजरी का सुगन्धियों में बसा कोमल हाथ। और पूरन यूँ आँखें खोल देता है जैसे वह कभी सोया ही न हो। और फिर गुजरी उसे गले से लगा लेती है। कितनी देर वे दीवानों की तरह प्यार करते रहते हैं। फिर गुजरी अपने साथ लाई सूत की पिटारी को पूरन के सामने रखती है। पिटारी के ऊपर से सूत के अट्टे हटा कर, नीचे पड़े ढेर से कारतूस पूरन के पलंग पर उलट देती है। पूरन हैरान-सा गुजरी की ओर देख रहा है।

"तुम उससे बदला लो। तुम उससे बदला लो।" गुजरी बार-बार पूरन से कहती है।

"लेकिन वह तुम्हारे बच्चों का बाप है", पूरन उसे याद दिलाता है।

"उसने मेरे भाई को गोली से मारा। तुम उससे बदला लो।" गुजरी बिफरी हुई शेरनी की तरह पूरन को उकसा रही है, "मुझे तो आज पता चला, उसने मेरे भाई का खून किया है और मैं इतने बरस उसके पिल्ले जनती रही। इतने बरस मैं उसकी औलाद के पोतड़े धोती रही। मैंने मुंडेरों पर बैठ-बैठ इतने बरस उसकी बाट देखी। उसकी; जिसने मेरे भाई को मारा। मैं उन हाथों को चूमती रही, आंखों से लगाती रही, वह हाथ जो मेरे भाई के खून से लथपथ थे। जब उसका माथा दुखा मैंने भगवान से हाथ जोड़-जोड़ कर उसकी सेहत की भीख माँगी और उसने मेरे माँ-जाये को गोली से उड़ा दिया। मेरे भीतर आग लगी हुई है। जब तक उसकी छाती में गोली नहीं लगती, मुझे चैन नहीं पड़ेगा। तुम यूँ चुप-चुप क्यों हो। बिट-बिट मेरी

ओर क्यों देख रहे हो ?"

ढेर रात गये तक गुजरी पूरन को उकसाती रहती है। रो-रो कर कहती है, "मेरे साथ उसने छल किया। तुम उस से बदला लो।" पूरन बिट-बिट् उसकी ओर देख रहा है। और फिर बाहर गली में लक्ष्मी के कदमों की आहट सुनाई देती है। और गुजरी जल्दी-जल्दी, सीढ़ियों के रास्ते छत से होती हुई अपने घर चली जाती है।

60

"तुम अभी तक सोये नहीं।" लक्ष्मी पूरन को जागता हुआ देखकर उसके पास आ बैठती है और उसके सिर को सहलाने लगती है। पूरन गुजरी के छोड़े कारतूसों को तकिये के नीचे छुपा लेता है। यूँ अपनी माँ से माथा दबवाते हुए उसकी आँख लग जाती है।

इधर पूरन की आँख लगती है, गाँव में शान्ति-सी छा जाती है, उधर अखण्ड पाठ की ध्वनि उसके कानों में पड़नी शुरू हो जाती है।

प्रीतम साचा नाम ध्याय
दुख दरद बिनसै भवसागर
गुर की मूरत हृदय बसाव
दुश्मन रत्ते दोखी सब वयापे
हरि शरणाई आया
राखन हारे हाथ दे राख्यो नाम पदारथ पाया
कर किरपा किल विख सब काटे नाम निर्मल मन दिया
गुण निधान नानक मन बसिया
बोहुड़ दुख न थिया

पूरन को गहरी नींद में सोया देख लक्ष्मी कुछ देर उसके पास खड़ी पाठ सुनती रहती है। फिर अपनी चारपाई पर जाकर पड़ जाती है।

अभी भोर होने को ही है कि बाहर कोई दरवाजे को खटखटा रहा सुनाई देता है। लक्ष्मी उठकर ड्योढ़ी की ओर जाती है। यह तो लछमन है। पूरन का लंगोटिया। साथ के गाँव से आया है। "ताई, मेरी दुनाली पूरन लाया था। मुझे अब वह चाहिए। मुझे शहर जाना है।"

"अरे बेटा! वह उठकर मुझसे बिगड़ेगा। उससे पूछ तो लो।" लक्ष्मी लछमन को रोकती रहती है कि वह अपनी बन्दूक और गोलियों की पेटी लेकर चला जाता है। जाते हुए पूरन के सिरहाने रखे गुजरी के छोड़े कारतूस भी सँभाल कर ले जाता है। पूरन बेसुध सोया पड़ा है। लछमन पूरन के जेल के कपड़ों की पोटली, जो वह उसके घर भूल आया था, दालान में छोड़ जाता है।

लछमन ड्योढ़ी से निकलता ही है कि लक्ष्मी घबराकर अपने बेटे को उठाती है, "पूरन ! अरे ओ पूरन ! तू जीता रहे ।" डर रही है कि यदि बन्दूक लछमन ले गया तो पूरन अपना बदला कैसे ले सकेगा । लक्ष्मी जोर-जोर से पूरन को झंझोड़ती है । पूरन कभी सतनाम कभी वाहे गुरु कहकर करवट बदल लेता है, और फिर सो जाता है । अखण्ड पाठ की आवाज अभी तक लक्ष्मी के आंगन में आ रही है ।

हार कर लक्ष्मी पूरन को सोता हुआ छोड़ देती है, और खुद तैयार होकर गुरुद्वारे चली जाती है ।

कुछ देर बाद पूरन जागता है । उसके तकिये के नीचे रखे, गुजरी के दिए कारतूस गायब हैं । पूरन हैरान-सा अन्दर दालान में जाकर देखता है । उसकी बन्दूक भी कहीं दिखाई नहीं दे रही । फिर उसकी नजर कपड़ों की पोटली पर जा पड़ती है जो लछमन छोड़कर गया है । पूरन समझ जाता है कि बन्दूक लछमन ले गया होगा ।

घबराकर पूरन गली की ओर दौड़ता है । जिस गली मे से गुजरता है उसमें कोई-न-कोई झाड़ू दे रहा होता है । शीशे की तरह साफ चमका कर रखी हुई गलियाँ । गुरुद्वारे के सामने की गली को अभी-अभी कुछ औरतें पानी से धोकर हटी हैं । पूरन दौड़ता हुआ आता है और सुबह-शाम धो-धोकर चिकनी हुई गुरुद्वारे के सामने की गली में, ठीक गुरुद्वारे के सामने उसका पैर फिसल जाता है । सामने दीवार पर लिखा है – सफाई सेहत का राज़ है । पूरन गली में औंधा जा गिरा है । गुरुद्वारे के अन्दर ढोलक-मंजीरों के साथ रागी-पार्टी कीर्तन कर रही है । यूँ लगता है कि पूरन को चोट सख्त लगी है । कुछ देर के लिए वह औंधा ही पड़ा रहता है ।

इसी क्षण गुरुद्वारे में हो रहे कीर्तन की ध्वनि उसके कानों में पड़ती है ।

जिस पापी को ढोई न कोय
शरण आवे तां राखे सोय

जैसे पूरन पर जादू-सा हो जाता है । वह मन्त्रमुग्ध हो गया है । वैसे-का-वैसा उठ कर वह बरामदे के चबूतरे पर अपना सिर रख देता है ।

कीर्तन कर रही रागी-पार्टी ढोलक और मंजीरों से एक अजीब समां बाँध रही है । रागी सिंह ऊंचा और ऊँचा गा रहे हैं । उनकी लय तेज, और तेज हो रही है । गुरुद्वारा साध-संगत से खचाखच भरा हुआ है । हर क्षण, हर श्वास, जैसे पूरन पर जादू-सा हो रहा है । उसकी पलकें मुँद गई हैं । उनका सिर कीर्तन की लय के साथ झूम रहा है । कीर्तन एक चरम बिन्दु पर पहुँच गया है । कीर्तन कर रही रागी-पार्टी वज्द में आ जाती है । यूँ लगता है जैसे साध-संगत में हर कोई पूरन का रूप धारण कर रहा हो । गुजरी भी, उसका पति भी, गंडासिंह भी, सन्ती भी, रागी-पार्टी भी । और फिर गुरु ग्रन्थ साहब की हुजूरी में बैठा भाई भी । और फिर पूरन को यूँ लगता है जैसे साध-संगत में बैठा हर कोई लम्बी सफेद दाढ़ीवाले भाई का रूप धारण करता जा रहा है । गुजरी भी, उसका पति भी, गंडासिंह भी, सन्ती भी, रागी-पार्टी भी और स्वयं पूरन भी । यूं कीर्तन की लय बढ़ रही है कि साध-संगत में से कोई नशे-नशे में जयकारा गुँजाता है – जो बोले सो निहाल और सारी साध-संगत उसके पीछ कहती है – सतश्री अकाल । इसी

प्रकार जयकारा फिर गूँज उठता है। एक बार फिर। यूँ लगता है कि जैसे सारा गाँव 'सतश्री अकाल' की ध्वनि से गूँज रहा हो।

सतश्री अकाल की ध्वनि सुन कर पेड़ों में से पक्षी आजाद होकर आकाश में तैरने लग जाते हैं। सतश्री अकाल की ध्वनि सुनकर किसानों के हल तेज चलने लगते हैं। सतश्री अकाल की ध्वनि सुनकर लहलहा रहे खेत झूमने लगते हैं। सतश्री अकाल की ध्वनि सुनकर नहर का पानी क्यारियों में जैसे दौड़-दौड़ कर बहने लगता है।

चौथा खंड

कुलदीप कहता था, यह गुरुवाणी की महिमा है कि पूरन में इस तरह का परिवर्तन आ गया। ईश्वर की बड़ी कृपा हुई थी कि गांव में कोई खूनखराबा नहीं हुआ था।

गुरमीत उससे सहमत नहीं था। और मास्टर काला गुरमीत की हां में हां मिला रहा था। गुरमीत की राय में इतने वर्षों बाद पूरन जिस वातावरण में लौटा था, उसमें वह पुराना वैर रह ही नहीं सकता था। साफ-सुथरी गलियों, हरे-भरे खेतों, फूल से खिले हुए बच्चों वाले गांव में कोई किसी का बुरा नहीं सोच सकता। एक प्रफुल्लित जीवन में लोग आप जीते हैं, दूसरों को जीने देना चाहते हैं।

कुलदीप कहता, जैसे झाडू से गलियां साफ की जाती हैं, जैसे साबुन से कपड़े उजले होते हैं, वैसे गुरुवाणी से मन की मैल धुलती है। पूरन के गांव लौटने पर ही जो अखंड पाठ लक्ष्मी ने रखवाया था, यह बड़ी बुद्धिमानी की बात थी। सांझ-सवेरे गुरुवाणी की मधुर धुन उसके कानों में पड़ती रही और फिर पूरन जैसे तना-हुआ-सा गुरु बाबा की शरण में आ गया।

गुरमीत कहता, अगर गुरुद्वारे के सामने गली इतनी साफ सुथरी, इतनी धुली धुलाई न होती तो पूरन का पांव कभी न फिसलता, और उसका पांव न फिसलता तो वह इस तरह मुंह के बल न गिरता और जो वह इस तरह न गिरता तो गुरुद्वारे के सामने से गुज़र जाता, जैसे कई बार पहले गुज़रा था।

कुलदीप को यकीन था, हर बार गुरुद्वारे के सामने से गुज़रते हुए पूरन के दिल पर एक चोट पड़ती थी और इस बार जब वह उधर से गुज़रा, उसके लिए अप्रभावित बचकर निकल जाना संभव नहीं था।

और गुरमीत के कुएं पर ध्रेक की छाया में बैठा, यह बहस सुन रहा सोहणेशाह सोचता, शायद यही राज़ था कि उसे आजकल राजकर्णी की याद वैसी नहीं तड़पाती थी जैसे कभी तड़पाया करती थी, सतभराई का विछोह वह सहता जा रहा था। अल्लादित्ता का अब उसने कभी जिक्र नहीं किया था।

डिप्टी कमिश्नर की बहू सतभराई ने पोठोहार का चप्पा-चप्पा छान मारा था, राजकर्णी की कोई खबर नहीं थी। पहले उसकी हर रोज़, हर दूसरे रोज़ चिट्ठी आती थी, फिर चिट्ठी हफ्ते बाद आनी शुरू हो गई, फिर महीने में एकाध बार, अब चिट्ठी कभी कभार आती थी। सतभराई के, विवाह के बाद जल्दी ही एक बेटा हुआ, उसके बाद एक और बेटा और फिर एक बेटी। सतभराई ने लिखा — "बाबा, हमने इसका नाम राजकर्णी रखा है। दो चार साल की हो जाये तो हमने फैसला किया है — इसको तुम्हारे पास भेज देंगे। वहीं पढ़ेगी, वहीं उसका ब्याह रचा

देना।

पहले हर चिट्ठी में लिखा करती थी, इंशाअल्लाह, हम राजकरणी को ढूंढ कर दम लेंगे। फिर हर चिट्ठी में अपनी हार का जिक्र करती और शर्मिंदा होती रहतीं। अब आजकल हर चिट्ठी में 'बेबी राजकर्णी' की बातें होती रहतीं। बिना मिले, बिना देखे, सोहणेशाह को अपना बाबा बनाये बैठी थी। सतभराई कभी ऊंचा-नीचा कह बैठती तो बाबा से उसकी शिकायत करने की धमकियां देती। हर समय 'बाबा' 'बाबा' की रट लगाए रखती।

और फिर सतभराई और रशीद आकर लड़की को सोहणेशाह के पास छोड़ गए। उनके साथ उनके दोनों बेटे भी आए। कमाल और जमाल। कैसे बांके जवान निकल रहे थे। दोनों पढ़ने में होशियार थे और अपनी बहन के दीवाने। सारा दिन उसके चाव पूरे करते रहते। एक हफ्ते के लिए आए थे, पर सोहणेशाह ने पूरा महीना उन्हें अपने पास रखा। कुलदीप तो था ही, पटियाला से कुलवंत भी आ गया। सोहणेशाह के घर में खूब गहमा-गहमी मची रहती।

सीता सुबह-शाम तंदूर में ईंधन डालती रहती और रोटियां पका पका कर खिलाते न थकती।

शहर के रहने वाले दोनों लड़के कमाल और जमाल सारा सारा दिन सोहणेशाह के खेतों में मँडराते रहते। सारा सारा दिन रहट से चिपके रहते। कभी उसे चलाते, कभी मटके भरते। कभी कुछ करते, कभी कुछ। ईख के खेतों में छिपते, निकलते, सुबह-शाम गन्ने काट-काट चूसते रहते। मालटे अभी पके नहीं थे, कच्चे फलों को तोड़ तोड़कर बरबाद करते रहते। दूध, दही, मक्खन हर नेमत उनके लिए हाज़िर थी।

सोहणेशाह को खास तौर पर कमाल बहुत अच्छा लगता था। बड़ा प्यारा लड़का था। सुशील और मिलनसार। अपनी बहन का दीवाना था। और सोहणेशाह सोचता, शायद इसीलिए वह उसे ज्यादा पसन्द है। और बेबी राजकर्णी भी हर समय 'भाई! भाई!' की रट लगाये रखती। जब तक वह पास न बैठता, न दूध पीती न कुछ खाती।

और जब सतभराई वापस लौटने लगी, कमाल और जमाल बिछुड़ने लगे, एक क्षण भर के लिए राजी-बेबी का चेहरा उतरा, फिर उसने सोहणेशाह की उँगली पकड़ ली। और जब गाड़ी चली, हाथ हिला-हिला कर उनको 'टा-टा' करती रही।

बेबी राजकर्णी इस प्रकार सोहणेशाह के पास रहने लग गई, जैसे वहां ही जन्मी, पली हो। कभी भी तो उसने अपने मां-बाप को याद नहीं किया था। हाँ, भाइयों की बातें करती रहती। खासतौर पर कमाल भाई, कमाल भाई' कहते हुए उसका मुँह न थकता था।

लड़की हू-ब-हू सोहणेशाह की बेटी राजकर्णी की प्रतिमूर्ति थी। शायद सतभराई ने इसीलिए उसका नाम राजकर्णी रखा था। राजकर्णी का रंग, उसके नयन-नक्श, बिल्कुल जैसे वही हो। उसी की तरह हंसती, उसी की तरह गाती, उसकी तरह ही चटपटी चीजों की शौकीन। चाट और गोलगप्पे सोहणेशाह ला-ला कर थक जाता। पढ़ने लिखने में बड़ी होशियार थी, लेकिन सतभराई और रशीद की इच्छा थी कि वह गाना सीखे और नाचना भी। पाकिस्तान में इस तरह की शिक्षा का कोई सन्तोषजनक प्रबंध नहीं था। सुबह स्कूल से पढ़ कर आती,

शाम को संगीत महाविद्यालय का एक अध्यापक उसको संगीत और नृत्य की शिक्षा देने घर पर आता। चाहे कितनी फीस ले ले, दो-दो बार लड़की का बाहर जाना सोहणेशाह को मंजूर नहीं था। अभी तो वह बच्ची थी और उसकी इतनी देखरेख होती थी, जब ज़रा बड़ी हुई तो कुलदीप सोचता, सोहणेशाह उसके लिए तारे तोड़कर लाया करेगा। शहर के सभी स्कूल छोड़ कर उसे अंग्रेजी स्कूल में डाला गया। अंग्रेजी स्कूल छावनी में था। एक सालम रिक्शा लड़की को सुबह स्कूल लेकर जाती, एक सालम रिक्शा दोपहर में वापस लाती। कुछ दिन, और लड़की गिट-पिट अंग्रेज़ी बोलने लग गई। राजकर्णी की तरह, पीछे से आकर सोहणेशाह के गले में बाँहें डालकर, उसकी झुकती-जा-रही पीठ से चिपट जाती और फरमायशें पूरी करवाती रहती। सीता तो उस पर जान देती थी। जैसे कोई खोई चीज़ किसी को मिल जाये। अपने हाथों उसे नहलाती, अपने हाथों से खिलाती, अपने हाथों उसे तैयार करती, कोई अपनी कोख से जन्में की क्या खातिर करता होगा।

पुलिस वाले कुछ दिन तो सोहणेशाह के पीछे पड़े रहे, फिर उनको समझा दिया गया, बच्ची संगीत और नृत्य की शिक्षा के लिए इधर आयी हुई है। सोहणेशाह की नवासी है। उसकी बेटी उधर लायलपुर में ब्याही हुई है।

सोहणेशाह लड़की को 'राजी' कहकर बुलाता था और सारा दिन गली मोहल्ले में 'राजी-राजी' की पुकार मची रहती। जैसे कभी पीछे उसके अपने गांव में उसे आवाज़ें सुनाई देती थीं। कभी-कभी यह आवाज़ें उन आवाज़ों में घुल-मिल जातीं, वह आवाज़ें जिनमें माहिया के टप्पे और ढोला के बोल, इकतारे की टंकार और सारिन्दे की झंकार मिली होती थी। पोठोहार की शहद-सी मीठी बोली, यह पता न चलता, कब कोई गा रहा है, कब किसी ने गाना बन्द करके बोलना शुरू कर दिया है।

पर अब तो सोहणेशाह को यह सब कुछ धुंधला-धुंधला लगता था, बिसर-बिसर रहा था। सोहणेशाह सोचता, शायद अब वह बहुत बूढ़ा हो गया था। और अपने हर काम में, अपने हर सपने में वह कुलदीप को शामिल रखता। अजीब उनका रिश्ता था। कभी-कभी कुलदीप सोचने लगता – उनका क्या संबंध है? वे कैसे मिले थे? और फिर क्यों वे एक दूसरे से अलग नहीं हो पाये थे? जो कुछ कुलदीप ने सोहणेशाह के साथ किया था, कोई और होता, फिर कभी उसे मुँह न लगाता। पर कुलदीप और सोहणेशाह वैसे के वैसे घी-खिचड़ी हो गये थे। अस्पताल के दिनों में कुलदीप वैसे का वैसा सोहणेशाह की सेवा करता रहा, अस्पताल से लौटकर वैसे का वैसा उनका साथ बना रहा। कभी सतभरायी की कोई चीज़ देखकर, सोहणेशाह का गला भर आता और कुलदीप उसे सुना-अनसुना कर देता। कभी सतभराई की कोई बात याद करके कुलदीप की आंखें डबडबा आतीं तो सोहणेशाह इसे देखा-अनदेखा कर देता।

बड़े गहरे घाव थे, भरते-भरते उनको भरना था। कमाल और जमाल एक बार छुट्टियों में आये, फिर हमेशा आने का इकरार करते पर किसी न किसी कारण आ न सकते। फिर सोहणेशाह को कुलदीप ने समझाया, दोनों देशों की सरकारों को इस तरह का मेल-मिलाप

पसन्द नहीं है। सोहणेशाह जब इस तरह की कोई बात सुनता, तो उसको लगता जैसे फिर उस पर पुरानी बीमारी का दौरा पड़ रहा हो ? उसका जी चाहता, कपड़े फाड़ कर कहीं निकल जाये।

उस साल ईद से एक दिन पहले, अपने घर से बाहर बबूल वाले मज़ार पर सोहणेशाह ने सफेदी करवाई, उसकी चारदीवारी को चिनवाया और फिर हर शाम नियमपूर्वक वहां दीया जलाया जाता। सोहणेशाह स्वयं दीपक जला आता, कभी 'राजी' जाती, कभी सीता। ईद वाले दिन राजी को नया जोड़ा पहनाया गया, उसकी बेहद ख़ातिर होती रही।

और फिर किसी ने सोहणेशाह को उस मज़ार के फकीर की कहानी सुनाई। सोहणेशाह के पांव तले से ज़मीन निकल गई।

किसी जमाने में वह इलाका पठानों की बस्ती को छूता था। सारी की सारी बस्ती में कोई मज़ार नहीं था जहां जाकर लोग हाथ फैला सकें, सजदा कर सकें और मन की मुराद पा सकें। जब किसी को कोई मन्नत मानना होती उनको पराई बस्तियों में जाना पड़ता। और पठानों की गैरत को यह गवारा नहीं था। खासतौर पर उन्हें बहुत बुरा लगता, जब उनकी औरतें लट्ठे की चादरों में ढकी-छुपी, अंधेरे-सवेरे दूर-सुदूर मज़ारों के चक्कर काटती रहतीं। फिर एक दिन पराये इलाके में मज़ार पर दीया जलाने गई एक पठानी लौट कर न आई। शाम की गई हुई, आधी रात होने को आई, उसका कोई अता-पता नहीं था। पठानों ने शहर का चप्पा चप्पा छान मारा, लड़की कहीं न मिली। और फिर गैरतमंद पठानों ने सोच-सोच कर एक तरकीब निकाली। बकरीद वाले दिन उन्होंने अपनी बस्ती में एक बड़ा भारी भंडारा किया। कई बकरे हलाल किए गये और हज़ारों की गिनती में लोग भंडारा खाने आये। इलाके के सब से बड़े पीर जी ने आकर 'वाअज़' किया और सारा दिन बस्ती के पठान उसकी ख़ातिर करते रहे। शाम को जब उनके विदा होने का वक्त आया, एक पठान मुरीद आगे बढ़ा और अपने पिस्तौल से तीन गोलियां उसने पीर की छाती में दाग दीं। वहीं के वहीं पीर जी ढेर हो गये। सारी बस्ती में हाहाकार मच गया। और फिर पठान मुरीदों ने रो-रो कर, छातियां पीट-पीट कर, उसी जगह बबूल के नीचे पीर जी का मज़ार बनवाया। और उनको पूजने लग गये। जो भी कोई मन की मुराद लेकर मज़ार पर हाज़िर होता उसकी मनोकामना पूरी होती। पक्के संगमरमर के मज़ार पर हर शांम दिये जलाए जाते और दूर-दूर से लोग मज़ार पर सलाम करने के लिए आते।

सोहणेशाह ने यह कहानी सुनी तो दिल्ली में महात्मा गांधी की हत्या उसकी आंखों के सामने तैरने लगी। और फिर जब भी वह इस मज़ार के पास से गुजरता, सोहणेशाह का सिर आप-ही-आप झुक जाता।

62

चीनियों के बारे में सोहणेशाह और कुछ नहीं जानता था, बस यही उसे पता था, चीन भारत का

एक महान पड़ोसी है। चीन और भारत की दोस्ती हिमालय पर्वत जितनी पुरानी है। प्राचीन काल से चीनी यात्री भारत आते रहे और प्रेम के बन्धन सुदृढ़ करते रहे। भारत ने चीन को बौद्ध धर्म दिया। भारत का ढेर-सा इतिहास चीनियों ने लिखा। और फिर अपने पड़ोसी देश की हर पीड़ा में भारत ने दर्द-महसूस किया। चियांग काई शैक भारत आया। चाऊ-एन-लाई भारत आया। जवाहरलाल नेहरू चीन गया। "हिन्दी-चीनी भाई-भाई" के नारे, इधर दिल्ली में गूंजते रहे और सारे भारत ने सुने, उधर पीकिंग में लगाये गये और चीन के चप्पे चप्पे में इसकी प्रतिध्वनि सुनाई दी। सोहणेशाह ने अखबारों में चाऊ-एन-लाई की तसवीरें देखीं थी, महात्मा गांधी की समाधि पर फूल चढ़ाते हुए। सोहणेशाह ने अखबारों में जवाहरलाल नेहरू की तसवीरें देखीं थी, चीनी बच्चों के गले में बांहें डाले, लाड करते हुए। जब जापान ने चीन पर हमला किया, भारत की सहानुभूति चीन के साथ थी। जब भारत आज़ादी की लड़ाई लड़ रहा था, चीन की सहानुभूति हमेशा भारत के साथ रही। और अब कुछ दिनों से और ही खबरें सुनाई दे रहीं थीं। और फिर एक दिन गुरुचरण ने सोहणेशाह को बतलाया, चीनियों ने चुपके से आक्साई-चिन में भारत के कोई बारह हज़ार वर्गमील क्षेत्र पर अधिकार कर लिया है। भारत सरकार को इस बात का पता था। कितनी देर जवाहर लाल नेहरू ने इस मामले को यह सोच कर दबाये रखा कि कोई गलतफहमी होगी। दोनों भाई मिलकर उसको सुलझा लेंगे। पर नहीं, चीनियों ने तो उस इलाके में सड़कें बना लीं थीं। मोर्चे जमा लिए थे। किसी की मजाल नहीं थी कि उधर आंख उठाकर भी देख सके। सारे देश में शोर मच गया। हर कोई कहता, चीनियों ने भारत की पीठ में छुरा घोंप दिया है। सदियों-सदियों से सोई हुई हिमालय की सरहद सुलगने लगी।

चीन तो सचमुच लड़ाई पर तुला हुआ था। और फिर खबर आई, चीनी तो कई वर्षों से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं। हिमालय पर्वत के पीछे उन्होंने हवाई अड्डे बना लिए थे, छावनियां डाल रखीं थीं, शक्तिशाली ट्रांसमिटर जमा लिए थे। ढाई हज़ार मील लम्बी सीमा, कोई कहां कहां रोक लगाये। शरारत पर तुले चीनी अपने पड़ोसी भारत पर टूट पड़ने का बहाना ढूंढ रहे थे।

गुरनाम कहता, असल में बात यह है कि एक दशक के मेल-जोल में चीनियों ने देखा है कि भारत का लोक-राज दिन पर दिन उन्नति कर रहा है और चीनियों की 'आगे की ओर लंबी छलांग' सफल नहीं हुई। इस हिसाब से भारतीयों को अमन-चैन से देश की प्रगति के काम में लगा रहने दिया गया तो भारत कहीं का कहीं पहुंच जायेगा और चीनी पीछे रह जायेंगे। और लोग सोचेंगे कि चीनियों के निज़ाम में ही कोई खराबी है और इस रास्ते से लोगों की खुशहाली जल्दी नहीं लाई जा सकती। चीन दुनिया की सबसे बड़ी डिक्टेटरशिप है; भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकराज।

मास्टर काला कहता, यह बात भी ठीक है, पर असली कारण चीनियों का इतिहास है। जब भी उनकी केन्द्रीय सरकार मजबूत हुई है, उन्होंने अपनी सीमाओं का विस्तार करने की कोशिश की है। तिब्बत का सफाया करके उनके मन में लालच आया कि भारत की पूंछ भी

मरोड़ी जाये।

कुलदीप की राय थी – असल में चीन के भीतरी हालात उसको मजबूर कर रहे हैं कि वह इधर-उधर हाथ-पैर मारे। अपने लोगों को उन्होंने कई सब्ज़बाग दिखाये थे, और अब अपने घर में हुई हार छिपाने के लिए उन्होंने अपने पड़ोसियों पर डंडा घुमाना शुरू कर दिया है।

गुरनाम इससे सहमत था। वह सोचता – चीनी चाहते हैं, एशिया और अफ्रीका, हर कठिनाई में पंडित जवाहरलाल नेहरू की ओर क्यों देखते हैं ? अगर एक बार भारत की पीठ लगा दी जाये तो सारे लोग चीन को बड़ा मानने लग जायेंगे।

उधर देश में गुस्सा दिन पर दिन बढ़ रहा था। इधर सरकार दिन रात सैनिक तैयारी में जुट गई थी। निर्माण के सारे काम धरे के धरे रह गये थे। गुरुनाम का मन स्कूल में नहीं लगता था। और फिर एक दिन बिना किसी से पूछे वह छावनी जाकर अपना नाम लिखवा आया। दो दिन ही गुज़रे थे कि उसे बुलावा आ गया। गुरांदित्ता हक्का-बक्का रह गया। गुरांदेई न हां करने की हालत में थी और न ही न करने की हालत में।

अगले दिन गुरनाम को सिखलाई के लिए कहीं भेज दिया गया।

"यह भी नहीं बताते, हमारे भाई को ट्रेनिंग के लिए कहां भेज रहे हैं।" गुरमीत हैरान था।

"यह फौज का कानून है। देश युद्ध की तैयरी कर रहा है। शान्ति के दिनों के अधिकार अब हमें छोड़ने होंगे।" मास्टर काला की राय थी।

और फिर लोगों ने छोटी बड़ी बचत शुरू कर दी। फिर हर चीज़ महंगी होनी शुरू हो गई। फिर व्यापारियों ने हाथ रंगने शुरू कर दिए। और लोग कुछ और ही संलाहें गुरमीत को देते रहते, अपना अनाज रोक कर बेचे। अपनी फसल बचाकर रखे।

नत्था तो उल्टा लोगों से माल खरीद कर अपने कोठे भरता जा रहा था। और तो और गुरुद्वारे के भाई ने धर्म-खाते के पैसे से ढेर सारा अनाज खरीद कर भीतर डाल लिया था। संक्रान्ति के दिन गुरुद्वारे में श्रद्धालुओं के बैठने के लिए जगह कम पड़ रही थी।

और जब लोग कहते, सरकार छापे मारकर लोगों का अन्दर दबाया हुआ अनाज निकाल लेगी, गुरुद्वारे का ग्रंथी बार-बार कहता – किसी की मां ने ऐसा पूत नहीं जना जो सतगुरु महाराज के घर की ओर आंख भी उठा सके।

पुलिस वालों को सब पता था। वे सुनते और दांत पीस कर रह जाते। मास्टर काला गली-गली फिरता, लोगों को समझाता रहता। नत्था की समझ में कुछ आता, न गंडू की। उन्होंने तो अपना दाना दाना अन्दर भर लिया था, और इंतजार कर रहे थे कि भाव और ऊपर चढ़ें और वे चोर-बाजारी कर सकें।

उधर चीनी अपनी शरारत पर तुले हुए थे। किसी पलड़े नहीं बैठते थे। नित्य नया शोशा छोड़ देते थे। हर रोज़ उनकी मांग बढ़ती जा रही थी। पाकिस्तानियों से साज़-बाज़ कर रहे थे। और इस बात का खतरा बढ़ रहा था कि कहीं दोनों मिलकर भारत को न घेर लें।

कई लोग कहते – चीन तो कब का भारत पर हमला कर चुका होता, यह तो रूसियों ने

उसे रोका हुआ है ।

और उधर अमरीकी, भारत को शिकंजे में फंसा हुआ देखकर मंद-मंद मुस्करा रहे थे। भारत की गुट-निरपेक्षता पर हंस रहे थे।

भारत के दूसरे मित्र देश, मुंह खोलने के लिए तैयार नहीं थे। कौन चीनियों को मुंह लगाए ? मिस्र का नासिर भी दुविधा में था।

और इधर भारत की सरकार ने फैसला किया था, चाहे फाके काटने पड़ें, कुछ भी हो, देश के गौरव पर आंच नहीं आने दी जायेगी।

मास्टर काला ने कहीं पढ़ा था, चीनी तो इससे कहीं पहले भारत से युद्ध छेड़ देते, अगर उनके अपने क्षेत्र सिंकियांग में विद्रोह न हो गया होता।

पगली चाची को आजकल फिर वही पुराना दौरा पड़ने लगा था। जब लोग लड़ाई की, मरने काटने की बातें कर रहे होते, वह अपने आप से बोलने लगती -- एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात ! और फिर उसे गश आ गई।

गुरमीत की मुश्किल यह थी कि उसने चीनियों के बारे में ढेर सा पढ़ रखा था। ढेर-सा उनके बारे में सुन रखा था। आज से कुछ वर्ष पहले उनके देश में भी अनाज बाहर से आता था। पर एक हल्ला उन्होंने बोला और इस कमी को पूरा कर लिया। आज का चीनी किसान उसी खेती से पहले से दस गुणा, बीस गुणा अधिक अन्न उपजाता था। अमरीकी अपने चियांग-काई-शेक को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाये हुए थे और चीन देश को अछूत बनाकर उन्होंने अलग रखा हुआ था। कई वर्षों से भारत चीनियों के साथ हो रहे इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठा रहा था। और चाहे आजकल चीन दोस्ती का रिश्ता तोड़ बैठा था, भारत के प्रधानमंत्री ने एलान किया था, वह इस बात से कभी इनकार नहीं करेंगे कि चीन की मुख्य भूमि को ही यह अधिकार है कि संयुक्त राष्ट्र में अपने लोगों का प्रतिनिधित्व करे। कल तक जो चीनियों के गुण गाता न थकता था, कल तक, जो 'हिन्दी-चीनी-भाई-भाई' कहता न अघाता था, अब गुरुमीत सोचता कोई किस मुंह से चीनियों को बुरा कहे। और वह बिट-बिट आंखों से आगे पीछे देखता रहता। रेडियो पर सुनाया जा रहा, चीनियों की करतूत का कच्चा चिट्ठा, सुनता रहता; अखबारों में इसकी चर्चा पढ़ता रहता।

63

और फिर खबर आई – अभी तक भभकियां दे रहे, सीमा पर ठूं-ठस कर रहे चीनियों ने, बाकायदा तौर पर हमला कर दिया है। भारत की उत्तर-पश्चिमी और उत्तर-पूर्वी दोनों सीमाएं लहू से तर-बतर हो रही थीं।

८ सितम्बर १९६२ के दिन चीनी फौजों ने उत्तर-पूर्वी सीमा पार करके एक भारतीय चौकी

पर हमला किया। और फिर कुछ दिनों बाद २० अक्तूबर के दिन उन्होंने उत्तर-पूर्वी और उत्तर पश्चिमी दोनों सरहदों पर बाकायदा जंग छेड़ दी।

सारे देश में खलबली मच गई। लोग धर्म,जाति,दल,वर्ग के झगड़े भूलकर एकजुट हो गये। बच्चा-बच्चा अपने देश की चप्पा-चप्पा जमीन के लिए मर-मिटने को तैयार हो गया। गांवों में गांव वालों ने सुरक्षा की तैयारियां शुरू कर दीं,शहरों में ब्लैक आउट का पूर्वाभ्यास आरम्भ हो गया। नौजवान लड़के धड़ाधड़ सेना में भरती हो रहे थे। स्त्रियां अपनी कलाइयों का,कानों का सोना उतार कर राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में दे रही थीं। समाचार-पत्र, चीनियों के मित्रद्रोह की कहानियों से भरे होते,रेडियो दिन रात चीनियों को सलवातें सुनाते रहते।

और उधर चीनी आगे ही आगे बढ़ते आ रहे थे,चौकी पर चौकी का स्वाहा कर रहे थे, नगर पर नगर मलियामेट कर रहे थे। पहाड़ों से चींटियों के तरह उतर आते,गोटियों की तरह फिसलते आते।

उस शाम शहर से निकलते-निकलते सोहणेशाह को देर हो गई। गांव की सड़क पर उसने कदम ही रखा था कि उधर ब्लैक आउट का भोंपू बजना शुरू हो गया। एकदम चारों ओर घुप अंधेरा हो गया। यातायात तत्काल बन्द हो गया। पुलिस की सीटियों के अलावा कोई और आवाज़ सुनाई नहीं दे रही थी। सुनसान सड़क पर सोहणेशाह,कदम-कदम अपने गांव की ओर चलता जा रहा था। न कोई आदमी न कोई आदम-ज़ात। सोहणेशाह को लगा जैसे उसका दिल बैठता जा रहा हो। अंधेरे का जैसे मनों भार उसके कंधों पर पड़ रहा हो। इस बोझ के नीचे जैसे वह दब कर रह जायेगा। ईंट के भट्टे पर कोई नहीं था। भट्टे का कुत्ता अपने अगले पंजों पर सिर रखकर दुबका हुआ बैठा था। सोहणेशाह को देखकर,दूर ही से चीखने लगा जैसे कोई विलाप कर रहा हो। रेल का फाटक बन्द था। गाड़ी के आने का कहीं नाम-निशान नहीं था, और चौकीदार फाटक बन्द करके अपने घर में जा लेटा था। पीर के मज़ार पर आज किसी ने दीया न जलाया था,शायद जलाया हो और ब्लैक आउट होने पर बुझा दिया गया हो। सड़क के किनारे,झाड़ियों के पीछे से एक गीदड़ी निकली और बिट-बिट आंखों से सोहणेशाह को घूरने लगी। सोहणेशाह हैरान था,गीदड़ी कैसी निडर होकर उसकी ओर देख रही थी। और फिर आकाश पर एक हवाई जहाज की आवाज़ आई। एक ओर हरी बत्ती,एक ओर लाल बत्ती टिमटिमा रही थी। हवाई जहाज की आवाज़, और सोहणेशाह के रोंगटे खड़े हो गए। घुप-अंधेरी वीरान सड़क,ऊंचे-ऊंचे घने पेड़ सड़क के अंधेरे को और भी सघन बना रहे थे। सोहणेशाह को अपने कदमों की आवाज़,ऊंची होती जा रही महसूस हो रही थी। ऊंची और ऊंची,ठक-ठक,ठूं-ठस जैसे गोले फूट रहे हों,बम फट रहे हों। फिर सोहणेशाह को चीखें सुनाई देने लग पड़ी – नौजवान सिपाहियों की,स्त्रियों की,बच्चों की। आकाश पर हवाई जहाज़ कहीं दूर निकल गया था। और फिर चारों ओर चुप्पी व्याप्त हो गई। घुप अंधेरी रात की खामोशी। सोहणेशाह को लगा जैसे कोई दबे पांव उसके साथ चल रहा हो। एक परछाईं! कोई भी तो नहीं था। सोहणेशाह एक से अधिक बार पीछे मुड़कर देख चुका था। कोई भी तो नहीं था। पर फिर उसे किसी के कदमों की चाप सुनाई देने लग जाती।

कभी उसे कोई सुगंध आने लगती, कोई जानी-पहचानी सुगंध। कभी उसे लगता, दबे पांव उसके पीछे आ रहा कोई उसका कंधा पकड़ना चाहता है। उसके कानों में कुछ गुप-चुप कह रहा है। और सोहणेशाह अपनी चाल और भी तेज़ कर देता, और तेज़। जितना तेज़ वह चलना चाहता था, उसे लगता जैसे उतने ही भारी उसके कदम होते जा रहे हैं। हर कदम जैसे धरती में गड़ता जा रहा हो। और फिर उसे लगा, यह सफर कभी खत्म होने का नहीं। अंधेरी रात का यह सफर, हर कदम लंबा होता जा रहा था।

गर्मी का मौसम कब का बीत चुका था, फिर भी सोहणेशाह पसीना-पसीना हो रहा था। उसका जी चाहा, सड़क के किनारे पुलिया पर क्षण भर बैठ कर सुस्ता ले। फिर सामने से उसे एक बैलगाड़ी आती हुई, सुनाई दी। बैलों के गले में घंटियां, रीं-रीं, ठक-ठक; बैलगाड़ी ही थी। कितनी धीरे चल रही थी। जैसे कोई अंधेरा लादे हुए घर जा रहा हो। बैलगाड़ी, सोहणेशाह से दस कदम दूर पहुंच गई थी, फिर भी उसे दिखाई नहीं दे रही थी।

और फिर आगे बढ़कर सोहणेशाह ने देखा, यह तो गांव का ग्रंथी था, मनों अनाज लादकर रातो-रात शहर पहुंचा रहा था।

"भाई साहब। यह अनर्थ क्यों कर रहे हो ?" सोहणेशाह को सामने खड़ा देखकर ग्रंथी जमीन में गड़ने लगा।

सोहणेशाह ग्रंथी को शर्मिंदा कर रहा था कि छावनी की ओर से घुड़सवार पुलिस के कुछ सिपाहियों ने आकर बैलगाड़ी को घेर लिया। और सोहणेशाह के देखते देखते, बैलगाड़ी और ग्रंथी को हिरासत में ले लिया।

'वाह गुरु' 'वाह गुरु' कहता हुआ सोहणेशाह गांव की ओर चल पड़ा।

64

गुरांदेई का आंगन। जब से लड़ाई छिड़ी है, गुरांदित्ता अपने बेटे गुरुचरण के पास नांगल चला गया है, छावनी के पास, अपने गांव में उसका जी उतावला होने लगा था। आंगन में एक ओर रसोई में गुरांदेई बैठी खाना बना रही है। रसोई के सामने एक चारपाई बिछी है। चारपाई के निकट एक लकड़ी की कुर्सी है। कुर्सी पर गुरमीत बैठा अखबार पढ़ रहा है। कुर्सी पर बैठे हुए गुरमीत ने पांव, पास में बिछी हुई चारपाई की पाटी पर टिकाये हुए हैं। अखबार पढ़ने में मस्त, उसका मुंह खुली अखबार के पीछे ढका हुआ है। गुरांदेई अपने ध्यान में, काम करती हुई कुछ गुनगुना रही है।

गुरांदेई : जो तो प्रेम खेलन का चाव
जो तो प्रेम खेलन का...
जो तो प्रेम ...

जो तो प्रेम खेलन का चाव

गुरमीत : सिर धर तली, गली मोरी आव
(अखबार सामने चारपाई पर पटकते हुए, सहसा कुर्सी से उठ खड़ा होता है)

गुरांदेई : हाय ! मैं मरी बेटा ! मेरा तो कलेजा ही धक से रह गया ।

गुरमीत : मां ! आज मैं छावनी जा कर नाम लिखा दूंगा ।

गुरांदेई : फिर वही बात ।

गुरमीत : तुम नहीं मानोगी ! तुम कभी नहीं मानोगी ! लेकिन मुझसे अब और हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठा जाएगा ।

गुरांदेई : हाथ पर हाथ धरे तुम्हें काहे को बैठना है ! घर का काम क्या थोड़ा है, जो किसी को करना हो ?

गुरमीत : घर का काम ! घर का काम !
(क्षण भर के लिए जैसे सोच में डूब जाता है)

गुरांदेई : अपनी ज़मीन है, ढोर डंगर हैं । क्या बुढ़ापे में मुझसे यह सब संभाला जा सकेगा ?

गुरमीत : पाकिस्तान से लुटकर आए तो ईश्वर ने फिर सब कुछ दे दिया । अब तुम्हें क्या कमी है ?

गुरांदेई : मैंने गुरनाम को हंसी-खुशी भरती करवाया, यह मेरा ही कलेजा था ।

गुरमीत : तो अब तुम्हें क्या हो गया है, मां ?

गुरांदेई : यह मेरा कलेजा था । मैंने अपने सब से छोटे बेटे को भरती करवा दिया ।

गुरमीत : आज बापू अगर यहां होता तो मुझे कभी न रोकता । वह सूरमा है ।

गुरांदेई : पाकिस्तानी गुंडों से कैसे जा उलझा था ।

गुरमीत : उस शेर बाप के शेर बेटे को तू बांध कर न रख, मां ! हमारे देश की पवित्र धरती को दुश्मन रौंदता चला आ रहा है । मां ! तू मुझे यूं बांध कर न रख ।

गुरांदेई : सारा दिन तू अखबार में सिर दिए रहता है ।

गुरमीत : घर बैठा हुआ मैं तेरे किसी काम नहीं आने का, मेरे सारे साथी भरती हो रहे हैं । पीछे गांव में, अकेले मुझे, सूनी दीवारें, खाली मकान खाने को दौड़ेंगे ।

गुरांदेई : मेरे लाल ! मैं जो हूंगी यहां, तेरी मां । लाख अरमान जिसकी छाती में तेरे लिए मचलते हैं ।

गुरमीत : मां ! तुम ने यह तस्वीर देखी है हमारे प्रधानमंत्री की ?
(चारपाई से अखबार उठा कर मां को दिखाता है)

गुरांदेई : हाय मैं मरी ! चिन्ता में डूबा हुआ चेहरा । मेरा भाई तो गुलाब की तरह खिला रहता था ।

गुरमीत : इसके साथ धोखा हुआ है । जिस देश को वह भाइयों का देश कहता था ।

उस देश ने इसके भारत पर हमला कर दिया है। जिस आज़ादी के लिए यह सारी उम्र जूझता रहा...वह आज़ादी आज फिर ख़तरे में है।

गुरांदेई : "हिन्दी चीनी भाई-भाई" अभी कल की बात है। गली-गली में बच्चे नारे लगाते फिरते थे।

गुरमीत : पहले उन्होंने मंचूरिया को हथियाया। फिर सिकियांग पर हाथ साफ किए। फिर तिब्बत उनकी हिंसा का शिकार हुआ। पिछले दिनों में आज़ाद मंगोलिया पर डोरे डाल रहे थे और अब जबरदस्ती हमारी सरहद पर उतर आए हैं।

गुरांदेई : मैं तो हैरान होती रहती हूं, पथरीले वीरानों के लिए कोई दोस्त की दोस्ती छोड़ दे। कोई कह रहा था – जो इलाका उन्होंने हथियाया है – बीहड़ पहाड़ियां हैं। जिनकी हमने कभी रखवाली तक नहीं की थी।

गुरमीत : यह तो उनका पहला पड़ाव है। यहां से वे गंगा और यमुना के मैदानों पर टूट पड़ेंगे।

गुरांदेई : उन्होंने सोचा होगा, हिन्दुस्तानी आपस में लड़ते रहते हैं; इन्हें हराना कौन-सा मुश्किल है ?

गुरमीत : शायद उन्हें यह मालूम नहीं है कि इस देश के लोग किसी और मिट्टी के बने हैं।

गुरांदेई : वीर जवाहर की एक मुस्कराहट के लिए तो चाहे कोई भी कीमत देनी पड़े। एक बार हमारे गांव के पास से उसकी मोटर गुज़री थी। एक बार वह हमारे शहर भी आया था।

गुरमीत : तेरे वीर जवाहर की मांग है, देश का हर नौजवान अपने देश की रक्षा के लिए कमर कस कर तैयार हो जाए।

गुरांदेई : मैं तुझे भरती नहीं होने दूंगी। यह बात तुम कान खोलकर सुन लो। एक बेटा मैं पहले ही भेज चुकी हूं ! आज कितने दिन हो गए उसकी कोई खबर तक नहीं आई। मेरी तो राह देखते-देखते आंखें भी पकने लगीं।

गुरमीत : तुमने मुझे भरती नहीं होने दिया तो मैं कहीं निकल जाऊंगा। और तो और वह लक्ष्मी का बेटा पूरन तक लाम पर चला गया है। अब गांव में अकेले मेरा दिल नहीं लगेगा।

गुरांदेई : तेरे दिल का क्या है। इसका इंतज़ाम भी कर लिया है मैंने। अगले महीने मैं तेरा ब्याह कर दूंगी। कल मैं बात पक्की कर आई हूं।

गुरमीत : मां ! अख़बार में आज एक अजीब खबर छपी है। अस्सी साल का एक बूढ़ा, प्रधानमंत्री की कोठी पर गया और जीवन भर की सारी पूंजी उनके कदमों में धर दी, और बोला – मेरे दो पोते नेफा में लड़ रहे हैं, जब तक दुश्मन को खदेड़, बाहर न कर दें मैं उनका मुंह नहीं देखूंगा।

(गुरमीत का गला रुंध जाता है। गुरांदेई की आंखें सजल हो जाती हैं)

गुरांदेई : बेटों के बारे में यह कोई कह सकता है, शायद पोतों के बारे में यह कहना मुश्किल है।

गुरमीत : यह भारत भी क्या देश है!

गुरांदेई : ले बेटा मेरे यह कंगन फंड में दे दे।
(अपनी कलाइयों से कंगन उतार कर दे देती है)

गुरमीत : ज़िंदाबाद! मां कितने दिनों से मेरी नज़र तुम्हारे कंगनों पर थी।

गुरांदेई : मुझे पता है, मां से कौन-सी बात छिपी रहती है। कैसे तू मेरे कंगनों की ओर ताकता रहता था, जब से सरकार ने सोने की अपील की है।

गुरमीत : उस रात जब तुम सो रही थीं, मेरा जी चाहा, चुपके से तुम्हारे कंगन उतार लूं।

गुरांदेई : तुझे तेरा देश, मां से ज्यादा प्यारा है।

गुरमीत : (खामोश रहता है)

गुरांदेई : अच्छा, मैं ज़रा पानी भर लाऊं। घड़े में एक बूंद नहीं।

गुरमीत : तुम जाओ पानी भरने, और मैं नंबरदार के यहां जाकर नाम लिखवा आता हूं। उसके आंगन में जीप खड़ी है। चाहे आज शाम ही मुझे आगे भेज दें।

गुरांदेई : पागलों-सी बातें नहीं करते। तू बैठ के अखबार पढ़, बेटा! मैं अभी कुएं से पानी खींच कर लाती हूं।
(घड़ा उठाकर आंगन से बाहर निकल जाती है)

रुक्मिणी : (छत की ओर से आती हुई)
गुरो! अरी गुरो!

गुरमीत : क्यों ताई? मां तो पानी भरने गई है। पर तुम्हारी यह साँस क्यों फूल रही है? ताई! अब तुम ज्यादा सीढ़ियां न चढ़ा-उतरा करो।

रुक्मिणी : मीतू बड़ा अनर्थ हो गया। ईश्वर ने बड़ा कहर ढाया है।

गुरमीत : क्या? क्या हुआ? ताई! तुम कांप क्यों रही हो? आओ, इस चारपाई पर बैठ जाओ।

रुक्मिणी : तेरा ताऊ शहर से खबर लाया है... गुरनाम... गुरनाम शहीद हो गया।

गुरमीत : नहीं! नहीं!! ताऊ से किसने कहा?
(गुरमीत के जैसे सोते सूख जाते हैं)

रुक्मिणी : राह में छावनी है। छावनी में तेरे ताऊ को कौन नहीं जानता?
(फूट पड़ती है)

गुरमीत : (सुबकते हुए) मुझे मालूम था। आज सुबह से ही मुझे लग रहा था, आज कुछ हो के रहेगा।

रुक्मिणी : गुरो पर बड़ा अनर्थ हुआ । पहले, बेटी उधर रह गई, अब बेटा, लड़ाई में बलि चढ़ गया ।

गुरमीत : बेटी की चोट वह सह गई । गुरनाम की चोट नहीं सह सकेगी ।

रुक्मिणी : सबसे छोटा बेटा मां का बड़ा प्यारा होता है । इसी आंगन में खेला करता था । खेलते-खेलते जवान हो गया ।

गुरमीत : जवान जैसा जवान !

रुक्मिणी : उसे देखकर भूख नहीं मिटती थी ।

गुरमीत : मेरी तो जैसे बांह टूट गई है । जाते हुए मुझसे कहने लगा – मां का दिल न दुखाना ।

रुक्मिणी : हू-ब-हू अपनी मां पर था । वैसी ही बड़ी-बड़ी आंखें । तेरे ताऊ का लाड़ला. ..वह तो उसे अपना बेटा बनाये हुए था । अब घर पर पत्थर का पत्थर पड़ा है, न हिलता है न बोलता है ।

गुरमीत : ताई, हौसला रख, मां आ रही है ।

रुक्मिणी : यह तो कुएं तक नहीं पहुंची... खाली घड़ा उठाए लौट रही है ।

गुरमीत : ताई उस से न कहना । मेरी मां यह चोट नहीं सह पायेगी ।

रुक्मिणी : हां बेटा तू ठीक कहता है । वह तो खड़ी-खड़ी औंधी जा गिरेगी ।

गुरमीत : ताई उसे न बताना ।

(गुरांदेई सामने गली में 'जो तो प्रेम खेलन का चाव, सिर धर तली गली मोरी आव' गुनगुनाती हुई आती है । रुक्मिणी और गुरमीत उसे देखते रह जाते हैं ।)

गुरांदेई : ले बेटा मैं तेरे मन की मुराद भी पूरी कर आई हूं । कुएं पर जाने की जगह मैं नंबरदार के यहां तेरा नाम लिखा आई हूं ।

रुक्मिणी : यह कैसे हो सकता है ?

गुरांदेई : मैंने कहा, चाहे अभी उसे ले जाओ । मेरा बेटा तुम्हारे हवाले है । अब वह तुम्हारा इंतज़ार कर रहे हैं ।

रुक्मिणी : गुरो ! तुम पगली हो गई हो क्या ? तुम अपने दो बेटे लाम पर भेज दोगी ?

गुरमीत : मां, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जाऊंगा ।

गुरांदेई : क्या कहा ?

गुरमीत : मां, मैं तुम्हें अकेले छोड़कर नहीं जाऊंगा । मैंने इरादा बदल लिया है ।

गुरांदेई : मैं क्या सुन रही हूं ? तुम भी चीनियों जैसे हो गए हो ? बाहर से कुछ, भीतर से कुछ ।

रुक्मिणी : गुरो ! तुम पगली हो गई हो । एक बेटा तुम पहले ही लाम पर भेज चुकी हो ।

गुरांदेई : एक बेटे से यह जंग नहीं जीती जाएगी।

रुक्मिणी : गुरो, तुम दीवानी हो गई हो। तुम कैसी बातें कर रही हो?

गुरांदेई : अब तो देश की आन का सवाल है।

गुरमीत : हमने कोई ठेका लिया है देश का?

गुरांदेई : चुप रह! मैं तेरी जीभ खींच लूंगी। तुझे पता है तू किस बाप का बेटा है!

रुक्मिणी : गुरो! मेरी बहन। तू सोच तो सही, तू कह क्या रही है? तेरा एक बेटा पहले ही मोर्चे पर गया हुआ है उसकी तो कोई खबर आने दो।

गुरांदेई : मां को सब पता रहता है। मेरे देश पर आज संकट की घड़ी है। मैं किस मुंह से कहूंगी "हिंदुस्तान ज़िंदाबाद!" उस दिन जब वह हमारी सड़क से गुज़रा था हमने मिलकर नारा लगाया था – जवाहर लाल की जय। और उधर से उसने हाथ जोड़कर कहा था – जयहिन्द!

गुरमीत : (सोचता हुआ) जयहिन्द!

रुक्मिणी : (एक परिवर्तन महसूस करती हुई) – जयहिन्द!

गुरांदेई : (एक नशे में) – जयहिन्द!

(आसमान पर हवाई जहाज़ों की एक टुकड़ी गुज़रती है। उसे देखकर गुरमीत, गुरांदेई और रुक्मिणी तीनों मिलकर नारा लगाते हैं। जयहिन्द!

गुरांदेई : मेरे देश के सूरमा जा रहे हैं। इनमें माँओं के बेटे हैं जिन्हें हाथ जोड़-जोड़ कर उन्होंने भगवान से पाया है। इनमें बहनों के भाई हैं जिनके पोर 'सेहरा' पिरोने के लिए मचल रहे हैं। इनमें सुहाग हैं, अछूती मुहब्बतों के!

गुरमीत : मेरे देश के सूरमा सिपाही आ रहे हैं।

गुरांदेई : अब तुम भी चले जाओ मेरे लाल। नंबरदार तुम्हारी बाट देख रहा है।

गुरमीत : जाता हूं मां, जाता हूं।

(चला जाता है)

गुरांदेई : मैं तेरे कपड़े संभालती हूं। अगर तुझे आज ही कूच करना पड़ा तो रोटी खाकर जाना। तेरे लिए मैंने सरसों का साग बनाया है।

(गली में गुरमीत आंखों से ओझल हो जाता है! रुक्मिणी अवाक् खड़ी मां-बेटे की ओर देखे जा रही है)

रुक्मिणी : गुरो!

गुरांदेई : अब मैं सुर्खरू हो गई।

रुक्मिणी : गुरो! यह तुमने क्या किया?

(आंखों में आंसू भर कर)

गुरो तुम्हें पता है... गुरनाम...

गुरांदेई : (एक नशे में) शहीद हो गया है! मां से कौन-सी बात छुपी रहती है?

रुक्मिणी : गुरो! तुम्हें पता है। तुम्हारा बेटा लाम में...

गुरांदेई : मारा गया है, कुरबान हो गया है !

रुक्मिणी : तुम्हारा जवान बेटा गुरो !

गुरांदेई : अपने देश की आन के लिए, जान पर खेल गया है । यह देखो तार ! तार-वाला मुझे रास्ते में मिला था, जब मैं पानी भरने जा रही थी ।
(मुट्ठी में से मसली हुई तार निकाल कर दिखाती है)

रुक्मिणी : तुम्हारा एक बेटा मारा गया तब भी तुम दूसरे को लाम पर भेज रही हो ?

गुरांदेई : ताकि जो काम एक से अधूरा रहा, दूसरा उसे पूरा करे ।

रुक्मिणी : गुरो ! मेरी गुरो !
(गला रुंध जाता है)

गुरांदेई : हां सच । उससे न कहना । मीतू अभी घर लौटेगा । उससे न कहना । मेरा बेटा भाई की यह चोट नहीं सह सकेगा ।
(रुक्मिणी गुरांदेई को छाती से लगा लेती है)

65

चीन ने स्वयं ही लड़ाई शुरू की, स्वयं ही युद्धविराम का फैसला किया । पर इस लड़ाई के फलस्वरूप उसने लद्दाख में कोई 2400 वर्गमील भारतीय इलाका हथिया लिया और नेफा में, खुद अपनी मानी हुई सीमा पर जम कर बैठ गया ।

लड़ाई चाहे कोई एक महीना ही रही, पर चीन की इस सीनाज़ोरी ने भारत की आत्मा को रौंद कर रख दिया । कई आंगन वीरान हो गये, कई सुहाग लुट गये, कई बच्चे यतीम हो गये, देश की प्रगति की योजनाएं धरी की धरी रह गईं । सब से गहरा धक्का पंडित नेहरू को लगा । जिस देश को वह मित्र-देश समझता था, उस देश ने इस तरह उसके साथ विश्वासघात किया था । जिस देश की दोस्ती की बातें करते हुए उसका मुँह न थकता था, उस देश की इस करतूत पर, पंडित नेहरू की जैसे कमर टूट गई हो । हर समय चुप-चुप, चिंताओं में डूबा हुआ । हर समय भौचक्का-सा ।

इधर पगली चाची हाथ से जाती रही । जिस दिन से उसने गुरांदेई के साथ हुए अनर्थ को सुना वह बेकाबू हो गई । कुआं छोड़कर फिर शहर चली गई । गली-गली घूमती रहती । जहां रात पड़ती सो जाती । फिर अपने आप बोलने लगती । एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात ! और फिर उसे गश आ गई । मास्टर काला लाख यत्न कर बैठा, किसी तरह काबू में न आती ।

उधर लड़ाई खत्म हुई उधर मंडी में भाव गिर गये । नत्थासिंह और गंगासिंह जिन्होंने ढेरों मन अनाज अन्दर डाल रखा था, लुटकर रह गये । वे तो सोचते थे, लड़ाई शुरू हुई है, अब दो-चार साल चलेगी । यह तो किसी को गुमान तक न था कि कोई देश आप ही लड़ाई शुरू

करेगा और फिर कुछ दिनों बाद आप ही कहेगा, मैं लड़ाई बन्द करता हूं।

कुलदीप जैसे-जैसे बड़ा हो रहा था, वैसे-वैसे और आध्यात्मिक होता जा रहा था। सुबह, शाम गुरुद्वारे जाता। कितनी-कितनी देर समाधि में अंतर्ध्यान बैठा रहता। जिस तरह लोग आय का दसवां भाग 'दसबंध' में डालते उसी तरह हर दिन का दसवां अंश वह ईश्वर भक्ति में गुज़ारता। सुबह तड़के कोई चार बजे उठता। उठते ही अंतर्ध्यान हो जाता। १५ बार दायीं नासिका से श्वास खींचता, सांस को रोकता, फिर बायीं नासिका से धीरे-धीरे निकालता। इस प्रकार फिर १५ बार बायीं नासिका से श्वास भरता, सांस को रोकता, और दायीं नासिका से हौले-हौले निकालता। इसी प्रकार फिर १५ बार दायीं नासिका की क्रिया और फिर बायीं नासिका की। साथ-साथ "मूलमंत्र" का जाप करता जाता। फिर "सुखमनी साहब" का पाठ करता। शाम को "रहिरास" का पाठ। उसके बाद अभ्यास, हू-ब-हू सुबह की तरह। गुरुद्वारे जाते हुए, वहां से लौटते हुए "सिमरन" करता रहता। रात को सोने से पहले फिर अभ्यास करता। इस बार केवल १५ बार दायीं नासिका से श्वास भरता, सांस को रोकता और बायीं नासिका से धीरे-धीरे सांस बाहर निकालता। और फिर १५ बार बायीं नासका से श्वास भरता, सांस को रोकता और दायीं नासिका से धीरे-धीरे बाहर निकालता। और इस प्रकार शान्त, स्थिर होकर सो जाता।

जब से सतभराई गई थी, हर कोई, आता-जाता, अड़ोसी-पड़ोसी यही सोचता, सीता और कुलदीप की जोड़ी खूब बढ़िया रहेगी। सोहणेशाह की भी खुशी शायद इसी में थी। पर नहीं, कुलदीप ने हमेशा सीता को एक तरह का आदर दिया एक फासला जो उनमें बना था, वह हमेशा बना रहा।

और अब, जब से सतभराई की बच्ची राजी इधर आ गई थी, कुलदीप आठों पहर उसके धंधों में लगा रहता। लड़की के मुंह से कोई बात निकली नहीं कि वह उसका चाव पूरा करने के लिए तैयार हो जाता। लड़की की छोटी-मोटी फरमाइशें पूरी करता रहता। हर शाम उसे पढ़ाने के लिए बिठा लेता। और सतभराई यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होती। उसकी बच्ची हमेशा अपनी कक्षा में सब से ज्यादा अंक लाती थी, एक वर्ष में उसने दो कक्षाएं पास कर लीं। गाना सीख रही थी, नाचना सीख रही थी।

चीन का भारत पर आक्रमण और फिर अपने आप युद्धविराम की घोषणा, कुलदीप सोचता, यह सब क्यों हुआ था? भारत का इस प्रकार अपमान! किस गुनाह की सज़ा भारत को प्रकृति की ओर से मिली थी? कुलदीप मानता था, जिस प्रकार आदमी जैसा करता है वैसा भरता है, वैसे कौमों को भी अपने गुनाहों की सज़ा भुगतनी पड़ती है। जिस दिन से युद्धविराम हुआ था कुलदीप को हर भावुक हिन्दुस्तानी के चेहरे पर एक हार लिखी हुई दिखाई देती थी। राष्ट्र का गौरव जैसे मिट्टी में मिलकर रह गया हो। सरकार ने बेशक ऐलान किया था – हम अपने देश की चप्पा चप्पा धरती की रक्षा करेंगे, शत्रु द्वारा समेट ली गई जमीन को फिर अपने देश के लिए बहाल करेंगे, कुलदीप सोचता – पर कैसे? चीन के पास दुनिया भर में सबसे ज्यादा फौज़ थी, चीन की आबादी दुनिया में सबसे ज्यादा थी। और चीनी कहते थे, बेशक

परमाणु युद्ध भी छिड़ जाये, सारी दुनिया खत्म हो जायेगी, चीनी फिर भी बच निकलेंगे। आखिर कितनों को कोई भस्म कर सकेगा। मध्यस्थों की कोई बात चीन सुन नहीं रहा था। जिस तरह सोहणेशाह की राजकरणी उधर पाकिस्तान में रह गई थी, जिस प्रकार गुरांदित्ता की दीपी फसादियों ने उससे छीन ली थी और वे इतने साल कुछ नहीं कर सके, इसी तरह भारत उस इलाके का शायद कुछ नहीं कर सकेगा, जिस इलाके को चीन ने जबरदस्ती हथिया लिया था। जिस तरह सोहणे शाह और गुरांदित्ता ने यह वज्र सहन किया था, अब सारी की सारी कौम को चीन का यह सितम सहना होगा।

और उधर चीन भारत की सीमा पर जमाये शक्तिशाली ट्रांसमिट्रों द्वारा दिन-रात, रात-दन ललकार रहा था, दिन-रात, रात-दिन भभकियां दे रहा था; दिन-रात, रात-दिन मज़ाक कर रहा था; दिन-रात, रात-दिन याद दिला रहा था, किस तरह उसने हिन्दुस्तानी फौज के घुटने टिकवाये थे।

लोग सुनते और पानी-पानी हो जाते। चीन से इस प्रकार मार खाकर चुप बैठ गये। हिन्दुस्तानियों को दिन-रात, रात-दिन पाकिस्तानी चिढ़ाते रहते। और सुनने में आया, भीतर ही भीतर वे भी तैयारियां कर रहे थे कि कश्मीर पर हमला करके ज़बरदस्ती उस पर कब्जा कर लिया जाये।

दूसरे देशों के लोग जब चीन की लड़ाई का जिक्र करते, भारतियों से कोई जवाब न बन पड़ता। एशियाई देशों में होनेवाले अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में चीनी भारत के प्रतिनिधयों से बदतमीज़ी से पेश आते और बाकी देश दरगुज़र कर जाते। अब मिस्र और मलेशिया अपनी समस्यायें लेकर चीन की ओर देखते, भारत की पूछ कम होनी शुरू हो गई।

खिसियाते हुए भारतीयों ने अपने रक्षामंत्री को हटा दिया, उस जनरल को बर्खास्त कर दिया जिसकी कमान में यह सारा काण्ड हुआ था। विरोधी दल वाले बार-बार अविश्वास प्रस्ताव पेश करते और वक्त की सरकार को इस्तीफा देने के लिए मजबूर कर रहे थे। सेना इस हार के लिए राजनीतिक नेताओं को ज़िम्मेदार ठहरा रही थी, राजनीतिक नेता सेना को बुरा-भला कह रहे थे। सुनने में आया कि हिमालय की चोटियों पर सेना के जवानों को किरमच के बूट पहन कर लड़ने के लिए भेजा गया था; न वहां कोई सड़कें थीं, न कोई राह-रास्ते से परिचित था। पर्वतों की ऊंचाई पर लड़ने का ढंग और होता है, उसके लिए अलग से तैयारी होती है। भारतीय सेना को इस प्रकार का प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। हज़ारों अफसर मारे गये। फौज की पलटनें की पलटनें उखाड़ दी गईं। सैकड़ों हिन्दुस्तानियों को शत्रु ने बंदी बना लिया। लोग पूछते – हिन्दुस्तानी फौज एक भी चीनी सिपाही को पकड़ नहीं सकी ? आखिर दिखाने के लिए ही कोई सिपाही घेर कर ले आते। और बर्खास्त किया हुआ जनरल खुल्लम-खुल्ला कह रहा था – सारा कसूर सरकार का है। हमारी सरकार ने कभी किसी को यह सोचने तक नहीं दिया कि चीन कभी भारत पर हमला कर सकता है। सेना के बार-बार कहने पर भी सरकार ने हिमालय पर्वत के इलाके में सड़कें बनाने के लिए पैसा नहीं दिया, छावनियां डालने की आज्ञा नहीं दी। बार-बार लोग वह लेख पढ़ते, वह पुस्तक पढ़ते जिसमें चीन के एक विशेष

जानकार ने भारत सरकार को कई महीने पहले चेतावनी दी थी कि चीन भारत पर हमला करने वाला है। उसने तो वे तारीखें तक बताई थीं, जब चीन को पहले हमला करना था, पर घरेलू कारणों से ऐसा नहीं कर सका। उसने तो वे इलाके दिखाये थे, जिधर से चीन भारत पर हमला करने की सोच रहा था।

लोग इस सारे कांड के बारे में सोचते और उनके मुंह का स्वाद फीका-फीका हो जाता। बुद्धिमान इस हार के किस्से सुनते और उनके सिर झुक जाते। नौजवानों का खून खौलने लग जाता।

कितने समय से इस समस्या पर विचार कर रहा कुलदीप, आजकल हर किसी से कहता फिरता था – चीन ने जो कुछ हिन्दुस्तान के साथ किया है, वह महात्मा गांधी के अहिंसावादी देश को सज़ा थी उस हिंसा की, जो भारत ने पुर्तगालियों के क्षेत्र पर हमला करके, की। बेशक पुर्तगाली बदतमीज़ी कर रहे थे, भारत जैसे महाद्वीप के कुछ शहरों पर अधिकार जमाये बैठे थे, पर भारत का उन पर हमला करके उनसे उनका इलाका जबरदस्ती छीन लेना, यह अहिंसा के नियमों के विरुद्ध था। हिन्दुस्तानी बार-बार कहते, वे अहिंसा की फिलासफी के साथ जुड़े हुए हैं, सारी उम्र ऊंचे उसूलों का ढिंढोरा पीटते रहे और जब जरूरत हुई, सारे उसूलों को ताक पर रखकर अपनी मन-मर्जी कर ली ? कुलदीप कहता, पुर्तगाल की बस्तियों पर भारतीय हमला जिस रक्षामंत्री ने करवाया था, उसी रक्षामंत्री को चीन की लड़ाई के बाद अपने पद से हाथ धोने पड़े। कुदरत का यही न्याय था।

इस प्रकार अपना दर्शन बघारते हुए, सोहणेशाह ने कुलदीप से पूछा – "कश्मीर के बारे में तेरी क्या राय है ?"

"कश्मीर के बारे में मेरी राय साफ है। भारत का बटवारा धर्म के आधार पर हुआ था. कश्मीर की घाटी के मुसलमानी इलाके पर पाकिस्तान का हक है। पर पाकिस्तान ने १९४७ में कश्मीर पर हमला करके यह अधिकार गंवा लिया है। अब कश्मीर उन्हें कभी नहीं मिलेगा। प्रकृति, अहिंसा को कभी क्षमा नहीं करती।"

सीता, कुलदीप की बातें सुन-सुनकर हैरान होती रहती। कभी-कभी इसे उस पर बड़ा प्यार आता। कभी यह सोचती – कमबख्त सठिया रहा है। किसी दिन पुलिस वाले उसे पकड़ कर ले जायेंगे। आप ही तो कहता था; जिस आदमी ने चीन के बारे में किताब लिखी थी कि चीन भारत पर हमला करेगा, उसको सरकार ने पकड़ कर कब का जेल में बंद कर रखा है।

"कभी उसे पुलिस वाले पकड़ कर ले जायेंगे।" एक दिन सोहणेशाह से कुलदीप की बातें करते हुए, सीता कहने लगी और उसका कंठ गदगद हो उठा।

"इस तरह उदास-उदास आंखों से देखता रहता है, तू मेरे साथ ब्याह क्यों नहीं करवा लेता ?" कुलदीप की बांह को पकड़ कर सीता ने उसका हाथ अपने तप रहे गालों से लगा लिया।

"जिस देश को इस तरह ज़लील किया गया हो, जैसे चीनियों ने हमें ज़लील किया है, उस देश के नौजवान इश्क और मोहब्बत की नहीं सोच सकते।" और कुलदीप ने अपनी बांह

सीता के कोमल हाथों में से छुड़ा ली।

पसीना-पसीना हो रही सीता की आंख खुल गई। वह सपना देख रही थी। उसने देखा, कुलदीप अपने पलंग पर नहीं था। पता नहीं कहां रहता था। आधी-आधी रात को घर लौटता। हर समय चुप-चुप, रुआंसा-रुआंसा, विचारों में डूबा हुआ। जैसे किसी का कुछ खो गया हो। जैसे किसी के मुंह पर किसी ने थप्पड़ दे मारा हो, जैसे रास्ते से बिछुड़ गया कोई राही हो।

66

जैसे टूटी हुई पतंग हो, सारे-का-सारा देश हिचकोले खा रहा था। सरकार की, सेना की, नागरिकों की, किसी की समझ में नहीं आ रहा था, यह हो क्या गया है। कोई किसी के घर में घुस आये और थप्पड़ मार कर लौट जाये, और कोई हक्का-बक्का उसके मुंह की ओर देखता रह जाये। यह हो क्या गया था?

हर कोई एक दूसरे को दोषी ठहरा रहा था।

कुलदीप आजकल बड़ा उदास रहता था। न पहनने का शौक न खाने की चिंता। सोहणेशाह उसकी ओर देख-देखकर चिन्तित रहने लगा। फिर उसने पटियाला से कुलवंत को बुलवा भेजा। कुलवंत की संगति में जैसे कुलदीप का मन लग गया हो। पर अभी कुलवंत को आये हुए बहुत दिन नहीं हुए थे कि एक शाम बातें करते हुए, कुलदीप की जैसे पांव तले ज़मीन निकल गई। कुलवंत की राय थी कि चीन दोषी बिल्कुल नहीं था। "इस सारी बदमज़गी की ज़िम्मेदारी भारत के सिर है। भारत चीन के इलाक़े पर कब्जा जमाना चाहता है। आखिर अकसाई चिन भारत का कैसे हुआ? नाम से साफ प्रतीत होता है कि यह इलाका चीन का है। जिस-जिस इलाके को चीन ने अपने नक्शों में दिखाया है, वे सारे इलाके वास्तव में चीन के हैं। उन लोगों की शक्ल चीनियों जैसी है, बोली चीनी भाषा से मिलती-जुलती है।"

"अगर यह मान भी लिया जाये तो भी जिस तरह चीन नें भारत पर हमला किया, क्या ऐसा एक पड़ोसी को करना चाहिए था?" कुलदीप ने तड़प कर कुलवंत को झुठलाने की कोशिश की।

"इसमें क्या बुराई है? कल हमने गोआ पर हमला करके पुर्तगालियों को अपने देश से बाहर नहीं निकाला? आज चीनियों ने हमें अपने इलाके से बाहर खदेड़ दिया है, इसमें क्या हर्ज है?" कुलवंत ठंडा-यख इस तरह बोल रहा था जैसे किसी तोते को कुछ रटा दिया गया हो।

कुलदीप हक्का-बक्का कुलवंत के मुंह की ओर देख रहा था। और फिर उसे याद आने लगा कि जब गोआ पर हमला किया गया, कई लोगों का कहना था कि यह हमला कृष्णामैनन ने जानबूझ कर करवाया था, ताकि होने वाले चुनावों में उसको वोट मिल सकें। और वही बात

हुई थी, बम्बई के जिस क्षेत्र से वह खड़ा हुआ, लोगों ने टूट-टूट कर उसे वोट डाले। "गोवा के विजेता" का नारा लगाकर उसके साथियों ने अपने विरोधी को पछाड़ दिया था।

और कुलदीप को जैसे एक क्षण के लिए लगा कि जो कुछ कुलवंत कह रहा है, शायद वही ठीक है।

'पर यह कैसे हो सकता है ? नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ?' और कुलदीप सिर झटकता उठ खड़ा हुआ।

"भाईजान, इस तरह सिर झटक कर असलियत को झुठलाया नहीं जा सकता।" कुलवंत ने कुलदीप की ओर मुस्कराते हुए देखा।

उस दिन अकेला बैठा कुलदीप सोचने लगा – इस देश का क्या बनेगा जिसमें हर तरह के विचारों के लोग हैं। जो किसी की इच्छा है सोच सकता है, जो किसी की मर्ज़ी है, मान सकता है, जो किसी की इच्छा है दूसरों से कह सकता है। अगर कुछ लोग चीनियों के तरफदार हैं तो ज़रूर कोई लोग होंगे जिन्हें पाकिस्तान से भी हमदर्दी होगी। जो लोग यह मानते होंगे कि जो कुछ पाकिस्तान सरकार कहती है, वह ठीक है। इस तरह के देश को शत्रुओं की क्या आवश्यकता है ? कुलदीप को इस बात का भरोसा था कि जो कुछ कुलवंत कह रहा था, उसके दल की धारणा होगी। और ये लोग जो राय बना लें उसका बदलना बड़ा कठिन होता है।

एक दिन, संध्या के समय कुलदीप और कुलवंत शहर की ओर जा रहे थे। हल्का-हल्का अंधेरा हो रहा था, सर्दियां अभी शुरू नहीं हुई थीं, पर हवा में एक सुखद ठंडक थी। कुलदीप को एक से अधिक बार महसूस हुआ जैसे कुलवंत उस शाम उसकी संगति में उतावला हो रहा था। उस शाम वह अकेला रहना चाहता था। कुलदीप ने सोचा शायद पार्टी की किसी मीटिंग में उसे जाना होगा। जिस दिन से कुलवंत ने चीनियों के प्रति अपनी सहानुभूति दर्शायी थी, कुलदीप को उससे डर लगने लगा था; कुलवंत से, कुलवंत के साथियों से, उनकी विचारधारा से।

"कुलदीप ! आज की शाम मैं किसी वेश्या के कोठे पर गुज़ारना चाहता हूं। मेरी तबीयत बहुत उखड़ रही है।" आखिर कुलंवत ने कुलदीप से हाथ मिलाते हुए कहा।

उस शाम अकेले अपने घर लौटते हुए रास्ते में गुरमीत मिल गया।

"क्यों छुट्टी पर आये हो ?" कुलदीप ने उससे पूछा।

"नहीं, छुट्टी हो गई है।" गुरमीत ने उससे गले मिलते हुए कहा। "लड़ाई खत्म हुई और उन्होंने हमें जवाब दे दिया है।"

"तो इनका लड़ने का कोई इरादा नहीं", कुलदीप मन ही मन में सोचने लगा, "अगर यह बात है तो हमारी सरकार की, चीनियों से अपना इलाका छुड़वाने की कोई मर्ज़ी नहीं। पहले पाकिस्तान लगभग आधे कश्मीर को हड़प करके बैठा हुआ है, अब चीन ने हज़ारों वर्गमील भारतीय क्षेत्र को छीन लिया है। इस देश का क्या बनेगा ?"

कुलदीप जब घर लौटा, सामने बड़े कमरे में अपने-अपने पलंगों पर, सोने के लिए लेटी, सीता और राजी बातें कर रहीं थीं। कुछ देर बाद कुलदीप ने सुना, सीता राजी को हून सांग

की कहानी सुना रही थी। चीनी यात्री, जो कई सौ साल हुए महात्मा बुद्ध के देश में आया था। कई महीनों के सफर की मुसीबतें झेलकर वह भारत पहुंचा और फिर इस देश के चप्पे-चप्पे में घूम-फिर कर उसने गौतम के देश पर चीनियों की श्रद्धा के फूल चढ़ाये थे।

67

जैसे कोई अंगड़ाई लेकर आगे-पीछे देखे और दुनिया चमेली की बेल की तरह खिल जायें, सुगंधियां बिखरने लग जायें, कुछ इस तरह आजकल सीता को महसूस हो रहा था। आठों पहर उसके कानों में नगमें गूंजते रहते। हल्की-हल्की धूप में जैसे तितलियां नाच रही हों। जिस चीज़ को हाथ लगाती उसमें ज़िंदगी मचलने लगती, रंग निख़रने लगते। जैसे उजड़ी हुई अमराई में फिर बौर आ जाये, शुगूफों से लहलहाने लगे। आठों पहर उसका अंग-अंग मखमूर-सा रहता, उसका यौवन टूट-टूट पड़ता।

एक शाम गुरमीत उनके यहां आया। कितनी देर बैठा सोहणेशाह से बातें करता रहा। कुलदीप कहीं शहर से बाहर गया हुआ था। बातें सोहणेशाह से कर रहा था, पर सीता को लगता, बार-बार जैसे वह इसकी ओर देख रहा हो। भूखी-भूखी नज़रें। जैसे कोई किसी को समूचा निगल जाना चाहता हो। कुएं पर पानी-भर-रही, किसी के पास, जैसे रास्तों की धूल से अटा हुआ कोई मुसाफिर आ खड़ा हो। छलकते हुए घड़े को, भर रही गागर की ओर, एकटक देखता जाये।

कुछ देर उनके अहाते में बैठकर गुरमीत चला गया। पर सीता को जैसे चारपाई के उस किनारे से जहां वह बैठा था एक लौ सी दिखाई देने लगी। एक खुशबू-खुशबू जैसे सारे अहाते में बिखर रही हो। सीता सोचती, कोई समय था, एक से दूसरी बार कोई उसकी ओर आंख उठाकर देख लेता तो उसके कपड़ों में आग लग जाती थी। अपने गांव में एक बार राजपूतों के एक लड़के ने इसको सुना कर माहिया का कोई टप्पा गुनगुनाया था और सीता ने उसका मुंह-सिर नोच लिया था। कान कस कर लड़का उनकी गली से खिसक गया था और फिर कभी उसने उधर लौट कर क़दम नहीं रखा था।

कुछ दिन, और किसी बहाने सीता ने गुरमीत को अपने यहां बुलवा भेजा। कुलदीप बाहर से नहीं लौटा था। सोहणेशाह राजी को सिनेमा दिखाने शहर गया हुआ था। सीता घर में बिल्कुल अकेली थी। यह सोचकर कि जब गुरमीत आयेगा, घर में और कोई नहीं होगा, सीता के पसीने छूटने लगे। हाथ कहीं डालती, उसका हाथ कहीं पड़ता। कोई काम उसको सूझता, उसे करने के लिए आगे बढ़ती, इतने में वह भूल जाती। वह क्या करना चाह रही थी। जैसे-जैसे सांझ ढल रही थी, उसे अपने आप से डर लगने लगा था।

अभी सीता अपने आपको संभाल भी न पाई थी कि बाहर सड़क पर गुरमीत का ट्रैक्टर

आ रुका। गुरमीत आलू ट्रेलर में लाद कर शहर ले जा रहा था। सीधा खेतों से आ रहा था। आलू ट्रेलर में लाद-लादकर उसके हाथ वैसे के वैसे मैले-मैले, उसके पांव के जूते कीचड़ से भरे हुए, उसके कपड़े धूल-धूल हो रहे थे।

सीता गुरमीत के लिए दूध का कटोरा भर लाई। सारी दोपहर औट औट कर लाल हुआ दूध, चप्पा-चप्पा उस पर मलाई जमी हुई थी।

गुरमीत दूध पी रहा था। उसके सामने रंगीन पीढ़ी पर बैठी सीता बार-बार उसके मुंह की ओर देखने लगती।

"आप लाम पर गये और उन्होंने लड़ाई बंद कर दी।" गुरमीत की ओर बिट-बिट देख रही सीता ने कुछ बोलने के लिए बात छेड़ी।

"मेरी किस्मत कहां थी जो लाम पर मैं जाता।" गुरमीत बोला, "मुझे तो उन्होंने, औरों को भरती कराने के काम में लगा दिया था। यहां से फीरोज़पुर भेजा, फीरोज़पुर से अंबाला और फिर मेरी छुट्टी कर दी।"

"लड़ाई ही बंद हो गई तो फिर सरकार भरती किसलिए करेगी।" सीता ने ऐसा कहा जैसे भरती बंद करके सरकार ने उसके ही मन की मुराद पूरी की हो, और फिर फड़क रहे रसभरे होंठों से, बिट-बिट उसके मुंह की ओर देखने लगी जैसे कोई फूलों से झोली भर कर किसी की बाट देख रहा हो।

और सीता को, गुरमीत के खेतों की एक शाम याद आने लगी। ढेर सारी लड़कियां थीं। गुरमीत के बगीचे में, पानी से खेलने लगी थीं। एक दूसरे पर पानी के छींटे उड़ाते हुए उन्हें रात हो गई थी। और फिर उन्होंने देखा, दूर शहतूत के पेड़ के नीचे सुतली की चारपाई पर गुरमीत सो रहा था। सारा दिन खेतों में काम करके थका-हारा लेटा था। और उसे नींद ने आ दबोचा था। इस कुवेला में लेटे हुए को देखकर, सीता का अंग-अंग जैसे भुरभुराने लगा हो।

और फिर बात आई-गई हो गई। सीता को, कब का, यह सब कुछ भूल गया था। उसके पास पीढ़ी पर बैठी, उसे पता नहीं कैसे, आज वह शाम याद आने लगी थी, दिल के किसी कोने में पड़ी हुई थी।

कुछ देर बाद गुरमीत जब जाने लगा, उसका ट्रैक्टर ही नहीं चल रहा था। हर प्रयत्न कर बैठा; कभी किसी पुर्ज़े को देखता, कभी किसी तार को हिलाता पर ट्रैक्टर टस से मस होने का नाम नहीं लेता था। सीता को याद आया, एक बार कुलदीप की जीप नहीं चल रही थी और सीता और सोहणेशाह ने उसे पीछे से हल्का-सा धक्का दिया था और जीप झट चल पड़ी थी। गुरमीत का ट्रैक्टर तो इतना भारी था, और फिर उसके साथ ट्रेलर पर आलू लदे हुए थे। गुरमीत उतावला होने लगा, उसे तो मंडी पहुंचना था। अगर देर हो गई तो आलुओं की नीलामी नहीं हो सकेगी।

सीता मन ही मन में बड़ी लज्जित हो रही थी, जैसे सारा दोष उसी का था। अगर गुरमीत सीधा मंडी चला गया होता तो कब का अपने माल को बेच-बाचकर निवृत्त हो गया होता।

सतभराई होती तो प्रार्थना करती, आंखें मीच कर उधर आकाश की ओर देखती, और

फिर उसकी हर मुश्किल हल हो जाया करती थी। सीता की मुसीबत यह थी, जो कुछ इसके साथ उधर पाकिस्तान में हुआ, और फिर जो कुछ इसके साथ हिन्दुस्तान में बीती, खास तौर पर जैसा सुलूक इसके पिता ने इसके साथ किया, धर्म के नाम से इसको बैर हो गया था। कभी मंदिर, गुरुद्वारे की ओर उसने मुंह नहीं किया था।

अपने घर की दहलीज़ पर खड़ी वह गुरमीत को ट्रैक्टर के साथ जूझता हुआ देख रही थी। हल्का-हल्का अंधेरा हो गया।

गुरमीत किस तरह परेशान हो रहा था। सीता बेबस खड़ी थी, कुछ भी तो नहीं कर सकती थी। इस तरह के अवसरों पर इसका जी चाहता कि काश उसका किसी शक्ति में विश्वास होता, कोई ताकत, जिसको याद करके आदमी सोचे कि उसकी सब आशायें पूरी हो जायेंगी। वह सीमा जहां तक मनुष्य का बस चलता है, उससे आगे सहायता के लिए इसे कभी-कभी किसी की जरूरत महसूस होती, और इसे अपना अन्दर खाली-खाली लगने लगता। इस तरह के अवसरों पर इसे महसूस होता जैसे किसी वीरान जंगल में यह बिल्कुल अकेली खड़ी हो, न कोई आगे, न कोई पीछे।

इस तरह का इसे लगा था जब गांधी वनिता आश्रम में इसका अपना बाप इसको दुतकार कर छोड़ गया था। इसको चारों ओर अंधेरा-अंधेरा महसूस हो रहा था, और फिर सोहणेशाह ने अपनी बांहों में भर कर इसे "बेटी" "बेटी" कहना शुरू कर दिया था।

इन विचारों में सीता खोई जा रही थी कि सांझ ढले के अंधेरे में गुरमीत ने अपने ट्रैक्टर की चाभियां इसकी हथेली पर आ रखीं। "सीता, तू ये चाभियां अपने पास रख, मैं किसी मिस्तरी को पकड़ लाऊं।" और चाभियों देते हुए गुरमीत का हाथ जैसे सीता के हाथ से चिमट कर रह गया। एक स्वाद-स्वाद की लहर-सी सीता के सारे-के-सारे शरीर में दौड़ गई। जैसे चारों तरफ नगमें गूंजने लगे हों। प्रकाश ही प्रकाश और उसकी आंखें चुंधिया गईं। सीता एक नशे-से में डूबी हुई, वैसी की वैसी दहलीज़ पर बैठ गई।

पता नहीं कितनी देर वहां बैठी रही। गली में से गुज़रते हुए लोग सोचते, गुरमीत के आलुओं की रखवाली कर रही है।

अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि अचानक कुलदीप आ गया। कुलदीप सीता से चाभियां लेकर ट्रैक्टर में जा बैठा। उसने हाथ ही लगाया था कि ट्रैक्टर चल पड़ा। सीता खिल उठी। और कुलदीप ट्रैक्टर चला कर गुरमीत को ढूंढ़ने चला गया। "इस वक्त मिस्तरियों को ढूंढ़ता हुआ कहां भटक रहा होगा?" कुलदीप ने सीता को समझाया।

68

पूरन आजकल अजीब शशोपंज में था। फ़ौज वालों ने उसकी कब की छुट्टी कर दी थी। जिस

दिन से उसकी मां लक्ष्मी की मृत्यु हुई थी,उसे अपना आंगन जैसे खाने को दौड़ता हो। दूसरा, खाने-पीने की उसको बड़ी कठिनाई हो गई थी। और तो सारे काम उसने जेल में सीख लिए थे,पर चूल्हा जलाने की अटकल उसे नहीं आई थी। एक दिन फूंकें मार-मार कर वह पागल हो रहा था,गीली लकड़ियों का धुआं सारे आंगन में फैला हुआ था कि चुपके से,छत-वाली तरफ से गुजरी सीढ़ियां उतर कर उसके सामने आ खड़ी हुई।

दूध की तरह सफेद,आज भी वैसी ही जैसे कभी होती थी।

"अरे ओ पूरन..." और बाकी बोल जैसे बताशों की तरह उसके मुंह की मिठास में घुलकर रह गये।

पूरन वैसे का वैसा चूल्हें में सुलग रही गीली लकड़ियों को ठकोरता रहा।

रन्ना वाल्यां दे पक्कण परौंठे
ते छड़ियां दी अग्ग न बले

कुछ देर खड़े रहकर,गुजरी के मुंह से निकला। और वह खिलखिलाकर हंसने लगी। वही चांदी के घुंघरुओं जैसी हंसी,जिसको सुनकर कभी पूरन के कानों में नग़में गूंजने लगते थे।

गुजरी की मुसीबत थी,जिस दिन से उसे पता चला,उसके घरवाले की गोली से उसके भाई की हत्या हुई थी,नत्था सिंह की ओर देखने का उसका जी न चाहता। न ही अब इसने उसे कभी मुंह लगाया था। थाली में चार रोटियां और कलछी से – दाल सब्ज़ी रखकर उसके आगे रख देती। वह 'गुजरी' 'गुजरी' करता रहता,यह उसको जवाब तक न देती। बस बच्चों के कारण,बच्चों के बाप से बंधी हुई थी।

पूरन वैसे का वैसा फूंकें मार रहा था। धुएं से उसकी आंखें लाल हो रही थीं। उसकी पलकों से,उसकी नाक से पानी बह रहा था।

और फिर गुजरी एक शेरनी की तरह रसोई में आगे बढ़ी और उसने पूरन को बांह से पकड़ चूल्हे से उठा दिया। गुजरी ने पहली फूंक मारी और धक-धक करके आग जलने लग गई। हक्का-बक्का,सामने चौकी पर बैठा,पूरन देख रहा था।

"तूने इतने साल जेल में हठ करना सीखा है, और कुछ नहीं..." बड़ी बन्दूक उठाकर लाया था; मैंने कहा यह किसी से कुछ नहीं कहेगा...तेरी मां ने तुझ पर टोना किया था। सारा गांव जानता है उसने भाई जी से सुखमनी का 'पांच सौ पाठ' करवाया था। सुखमनी का पांच सौ पाठ और तेरा लहू ठंडा-ठार हो गया...बस देखने भर का। मैंने भाई जी से कहा, यह आपने बड़ा जुल्म किया है। ऐसे किसी हट्टे-कट्टे,शीशम जैसे मर्द को नकारा करके बिठा देना, इससे तो आप इसे चूड़ियां पहनवा देते...न कोई औरत इसे देखती न किसी की छाती में दिल धक-धक करता...पर इस बात की भाई जी को क्या समझ? उन्हें बस एक ही काम आता है, प्रभात होने से पहले जागना और रात होते ही सो जाना। भाईआनी से मैंने एक दिन कहा "भाई जी इतने बड़े कुनबे के लिए गुड़ाई कब करते हैं?" सुनकर हंसने लगी। "भाई साहब तो 'सतनाम' कह के बस एक बार देख लें तो मेरा पांव भारी हो जाता है। ..मेरा बेटा बीरा एक

बार भाई साहब से पूछने लगा – "भाई जी, आपका मुंह कहां है ? इतनी लम्बी-लम्बी मूंछें और इतनी लम्बी-लम्बी दाढ़ी । मैं तो हैरान ही होती रहती हूं, भाईआनी बेचारी के मुंह को कभी उन्होंने चूमा होगा ? कभी भी नहीं... मैं अड़ोसनों-पड़ोसनों से पूछती रहती हूं, उनके मर्द कभी उनको चूमते हैं ? और सामने से वे खाली-खाली आंखों से मेरी तरफ देखने लगती हैं । अपने मर्द को चूमने की ज़रूरत ही क्या है । उसका तो घघरी से मेल है । सोते-सोते उठा । डंक मारा और करवट बदल कर फिर सो गया । कभी इस मेल में से बेटा निकलता है, कभी बेटी । चूमना तो पराये मर्द का होता है..."

गुजरी अपने से ही बातें करती हुई साग में छौंक लगा रही थी, पराठे सेंक रही थी । बरामदे में हल्का-हल्का अंधेरा हो गया था । गुजरी और पूरन जैसे अंधेरे के आंचल में लपेटे गये हों । चूल्हे में आग की धीमी सी लौ और गुजरी के गालों की चमक थी, बस कुछ और नहीं था बरामदे में । पूरन एक-टक चूल्हे की लौ की ओर देख रहा था । काटो तो जैसे लहू की एक बूंद न हो, किसी भी अंग में !

"...मैं कहती हूं अरे पूरन ! तुझे कभी वो दिन याद नहीं आते हैं । हाय, कैसे तू मुझ से बेल की तरह चिपट जाता था, और चूम-चूम कर चाट-चाट कर तू मुझे थका-थका देता था । घर लौटकर घंटों-घंटों में एक नशे-नशे में मदहोश पड़ी रहती थी । और फिर जब यह नशा टूटता, मुझे अपने आंगन का सूनापन काटने को दौड़ता । और मैं चिड़ियों के हाथ तुझे मूक-संदेश भेजती रहती थी, कागों के हाथ तुझे खामोश पैगाम भेजती रहती थी । सुबह शाम मुंडेर पर बैठी, अपने-आप, अकेली, दूर सड़क की ओर देखती रहती थी । तुझे नहीं भी आना होता था तो मैं दूर टीले पर नज़रें जमाये न थकती थी, न हारती थी । हाय, वो दिन अब कभी नहीं आयेंगे । नदी के पानी की तरह वह लहर अब कभी नहीं आयेगी । वह लहर, वह वेग जिसके सामने सब हदें, सब बांध ढह कर ढेर हो जाते..."

इस तरह बातें करते हुए, गुजरी ने थाल परोस कर पूरन के सामने रखा । पूरन अजीब शशोपंज में पड़ा था । इस तरह की बातें कर रही गुजरी के सामने, कोई कैसे खाये । और गुजरी ने मटकी में से माखन का पेड़ा निकाल, आगे बढ़कर, पूरन के थाल में चूरी कूटना शुरू कर दिया ।

"...मैं कहती हूं, हीर ने क्या चूरी खिलाई होगी अपने रांझा को; जैसी चूरियां मैंने तुझे खिलाई हैं, किसी की मजाल नहीं हुई आज तक जो इस तरह चूरियां बनाकर अपने यार को खंडहरों में, खेतों में खिलाने चल पड़े । मेरे साथ मेरा 'पिस्ता' आया करता था । सारे मेरे राज़ उसे मालूम थे । तेरे हाथ से कई बार चूरी खाकर तुझ से कितना हिल गया था । एक दिन हमारी गली में से तू अजनबियों की तरह गुज़र रहा था, पिस्ता भरी-पूरी गली में भाग कर तुझसे प्यार करने लगा । और मेरे भाई बीरा ने कनखियों से मुझे देखा था । इस तरह तो पिस्ता कभी उससे भी नहीं मिलता था ।..."

इतने में चूरी बन गई और गुजरी ने अपने पोरों में एक निवाला लेकर पूरन के मुंह में डाला । पूरन वैसा-का-वैसा निवाला दांतों के नीचे रखकर बिट-बिट गुजरी की ओर देख रहा

था।

"...चूरियां तो औरतें यारों को खिलाती हैं..." ये बोल गुजरी के मुंह में ही थे कि लाठी उठाये नत्था सिंह सीढ़ियों पर से कूद कर आंगन में आ गया। "मेरी भी यही राय है। चूरियां तो औरतें यारों को खिलाती हैं" और लाठी उठाते हुए वह गुजरी की ओर बढ़ा।

और पूरन के देखते-देखते, उसने गुजरी की खूब मरम्मत की।

बेबस पूरन देख रहा था और उसने अपनी औरत को चोटी से पकड़ा और जिस रास्ते से वह आया था, रात के अंधेरे में उसी रास्ते से उसको घसीटता हुआ ले गया।

उस रात, बेबस, अपने कमरे के अकेलेपन में पूरन ने स्वयं अपने मुंह पर थप्पड़ मार-मार कर अपनी गालों पर नील डाल लिए। अभी तक उसके भीतर की ज्वाला शांत नहीं हुई थी। आठ-आठ आंसू रोते हुए उसने दीवारों से और पलंगों के पायों से सिर पटक-पटक कर अपने आप को लहू-लुहान कर लिया।

अगले दिन किसी काम से गुरमीत पूरन से मिलने आया, उससे पूरन को पहचाना नहीं गया। अपने घर की चाभियां गुरमीत को पकड़ा कर तीनों कपड़ों में पूरन बाहर निकल गया। उसके बाद किसी ने पूरन का नाम नहीं सुना। कभी कोई हरिद्वार से लौट कर बताता, पूरन जैसा कोई आदमी हरिद्वार में देखा था। कभी कोई काशी से लौटकर बताता, पूरन जैसा कोई आदमी उसने काशी में देखा था।

पूरन फिर अपने गांव कभी नहीं लौटा।

जब पूरन की बात छिड़ती, सब यही कहते, उसकी मां ने पूरन पर टोना किया था। उसको नकारा बनाकर रख दिया था। गुजरी सुनती और दांत पीस कर रह जाती।

69

बिखरे-बिखरे बाल, फटीं-फटी आंखें, मुंह पर इधर-उधर चिपकी हुई लार, बाहर बरामदे में बैठी पगली चाची अपने आप गा रही है –

"बल्लिए रोयेंगी, चपेड़ खायेंगी;
चुप कर के गड्डी विच बह जा।"

(गोरी, अगर रोओगी तो चांटा पड़ेगा; चुपचाप गाड़ी में बैठ जाओ।)

टीन के डिब्बे पर ताल देती, सिर हिलाती, फटी हुई अपनी आवाज़ में पगली चाची गाती भी जाती है, हंसती भी जाती है।

"कौन है चांटा मारने वाला? कोई मार के तो देखे? नेहरू राजे का राज है।"

गाते-गाते पगली चाची आप से आप बोलने लगती है –

"...मारेगा तू चांटा खा लूंगी। एक तरफ़ मारेगा, दूसरा गाल सामने कर दूंगी। ...चांटा

मारेगा ? मार के तो देख ! . . मैंने नेहरू को चिट्ठी लिख दी है । एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात ! और फिर वह बेहोश हो गई । . . . "बल्लिए रोयेंगी, चपेड़ खायेंगी ।"

जैसे फटी हुई ढोलक हो, अपनी बेसुरी आवाज़ में गाती हुई पगली चाची मुड़-मुड़ कर कमरे की ओर देखती है; रेडियो क्यों नहीं बज रहा ? हर रोज़ सुबह, हर रोज़ दोपहर, हर रोज़ शाम, बरामदे में आ कर बैठ जाती है, रेडियो सुनने की शौक़ीन । जितनी देर रेडियो बजता रहता है, पगली चाची बरामदे में से नहीं हिलती, फैल कर बैठी रहती है । कई वर्ष हुए, रेडियो पर शरणार्थियों के लिए संदेश ब्राडकास्ट होते थे । कई वर्ष हुए, ये संदेश ब्राडकास्ट होने बंद हो गये, किन्तु पगली चाची का पागलपन – वह अब भी इस प्रतीक्षा में है कि उसके लिए कोई संदेश जरूर सुनाया जायेगा ।

"बल्लिए रोयेंगी, चपेड़ खायेंगी" गाते-गाते पगली चाची, हर बार पलट कर जब कमरे की ओर देखती है, उसकी फटी हुई क़मीज़ में से उसका अंग नज़र आने लगता है । गोरी, सूखी हुई छागल जैसी छातियां, पगली चाची का अनढका अंग, कोई नयी बात नहीं । गली, मुहल्ले में, किसने नहीं उसे देखा होगा ? कभी कमीज़ उधड़ी हुई है, तो कभी गिरेबान फटा हुआ । उसे यों बेहाल देख अड़ोस-पड़ोस की औरतें, आठवें-दसवें दिन उसके कपड़े बदलवा देतीं । लेकिन फिर पगली चाची वैसी की वैसी होती । टूटे हुए बटन, घिसा-फटा आगा, नुचा-खुचा पाछा ।

"बल्लिए रोयेंगी, चपेड़ खायेंगी ।"

"एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात और फिर वह बेहोश हो गई ।"

शायद रेडियो चलने में अभी कुछ समय है । पगली चाची बग़ल में से पुराने अख़बारों के बंडल खोल, एक-एक पन्ने को तह कर रही है । फिर कूड़े के ढेर से उठाये, लोगों के रद्दी खत – पत्रों के थद्दे को एक-एक करके देखती है, जैसे जांच रही हो । फिर ऐसे सिर हिलाती है, जैसे न अखबार के पत्रों में, और न ही किसी पोस्टकार्ड में उसे अपना संदेशा मिला हो । फिर पगली चाची अनाप-शनाप बकना शुरू कर देती है । संदेशा न भेजने वालों के मां-बाप को कोसने लग जाती है ।

"पगली चाची तूने फिर बकना शुरू किया ?" उसकी पत्नी उसे डांटती है । पगली चाची पर कोई असर नहीं होता । और फिर आगे बढ़ कर उसकी पत्नी रेडियो खोल देती है । उसने आज़मा कर देखा है, और कोई चीज़ पगली चाची को चुप नहीं करवा सकती । रेडियो सुनते ही जैसे वह सब कुछ भूल जाती ।

उसे पगली चाची पर बड़ा तरस आता है । ख़ास तौर पर, उस दिन से, जब उसने उसे एक चांटा दे मारा था । बात यों है, वह बाहर दौरे से लौटा था । अंदर, घर का मर्द आराम कर रहा हो तो कोई रेडियो कैसे चलाये ? पगली चाची को एक बार समझाया गया, दो बार समझाया गया, किन्तु उसके पल्ले कुछ नहीं पड़ा । वह गालियां बकने लगी । रेडियो क्यों नहीं खोलते ? उसका संदेशा ब्राडकास्ट हो गया तो कौन ज़िम्मेदार होगा ? "कोई बात भी हुई", पगली चाची बके जा रही थी – "कोई बात भी हुई, मैं जा कर नेहरू से कहूंगी, मेरा संदेश नहीं सुनवाते

मुझे।" "एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात।" और फिर वह बेहोश हो गई। यों पगली चाची बक-झक कर रही थी कि गुस्से से लाल-पीला होकर वह अंदर से निकला। और तड़ाक से एक तमाचा उसके मुंह पर जड़ दिया। पांच की पांच उंगलियां उसके गाल पर छप गयीं। और पगली चाची हक्की-बक्की उसकी ओर देखने लगी। बिट-बिट आंखें, बस देखती जाये। और वह शर्म से पानी-पानी हो गया। पगली चाची को क्या पता कि वह क्या कर रही थी! वह भी उसके साथ दीवाना हो गया था। सारा वह दिन, पगली चाची बरामदे में, सिल-बट्टा होकर चुपचाप पड़ी रही, न कुछ खाया, न कुछ पिया। सांझ होने को आयी, जब वह किसी काम से बाहर गया तो उसकी पत्नी ने उसकी मिन्नत-समाजत करके उसे मनाया।

बस्ती के लोग, पगली चाची के पागलपन से तंग आकर उसे पागलखाने छोड़ आते। चार दिन, और वह लौट आती। "हम तो आ भी गये", घर-घर जाकर कहती, "हम तो आ भी गये, हम तो आ भी गये! नेहरू राजे का राज है। कौन मुझे बंद कर सकता है? हम तो आ भी गये। एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात!" और फिर वह बेहोश हो गई। और बस्ती की औरतें सिर पीटकर रह जातीं।

अजीब-अजीब कहानियां, पगली चाची के पागलपन के बारे में प्रचलित थीं। कोई कहता, किसी ने उसे कुछ दिया है। कोई कहता, उस पर किसी ने टोना कर दिया है। कोई कहता, इश्क की मारी हुई है। जितने मुंह, उतनी बातें। पगली चाची सुन्दर भी तो कितनी थी। अभी तक निशानियां बाकी थीं, अपने समय में एक परी-सी रही होगी। उसका गोरा रंग, अंग-अंग की बनावट, ऊंचा-लंबा कद-बुत।

पगली चाची की असल कहानी बड़ी हृदय-विदारक है।

देश की आज़ादी के दिनों में जो लहू की होली खेली गयी थी, पगली चाची उस का शिकार थी। पगली चाची के गांव में जब फ़सादी दाख़िल हुए, पगली चाची के घर पर उसका मर्द था, बेटे थे, बिटिया थी। आंगन में घुसते ही फ़सादियों ने पगली चाची को अलग कर दिया – पगली चाची इलाक़े भर में जिसके हुस्न की चर्चा थी। और एक-एक करके उसके परिवार के हर व्यक्ति को उसकी आंखों के सामने नेज़ों पर उछाल दिया गया – पगली चाची के घरवाले को और पगली चाची के बेटों को और फिर उसको खंभे से बांधकर उसकी बेटी "के साथ फसादी मुंह काला करने लगे। "एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात!" और फिर वह बेहोश हो गई।

और उस रात, कहने वाले कहते हैं, शराब में बदमस्त, औंधे पड़े फ़सादियों के मुंह पर थूक कर पगली चाची वहां से भाग निकली। भूखी, प्यासी कई दिन जंगलों में घूमती रही। उसके पांव कांटों से छिल गये। उसके कपड़े लीर-लीर हो गये। फिर एक फ़ौजी टुकड़ी की नज़र उस पर पड़ी, और वे उसे शरणार्थी कैंप में ले आये।

वह दिन और आज का दिन, पगली चाची आपसे आप बोलती रहती। चुप होती तो घंटों पत्थर का पत्थर पड़ी रहती। न खाने की सुध, न पहनने की।

अड़ोस-पड़ोस की औरतें उसकी उड़ती हुई शलवार को नीचे खींच-खींच कर उसकी

पिंडलियों को ढकती रहतीं। उसके बटन बंद कर-कर के, उसकी छातियों को छिपाती रहतीं, फिर भी उसका कोई न कोई अंग अनढका होता।

"पगली चाची ! तू औरत-ज़ात का कोई परदा रहने देगी, कि नहीं ?" गली-मुहल्ले की औरतें उसे कोसती।

हैं ! यह क्या। बरामदे में बैठी रेडियो सुन रही, पगली चाची सामने सड़क पर झाड़ू दे रही जमादारिन के बच्चे को उठा लायी है और अपना दूध उसके मुंह में दे रही है। भूखी पिचकी छातियां — बच्चा बार-बार सिर हिलाता है और बिदकने लगता है। लेकिन पगली चाची उसके पीछे पड़ी हुई है। और फिर बच्चे की मां आ कर, पगली चाची से अपना बच्चा छीन लेती है। पगली चाची मन-मन की गालियां तोल रही है। जमादारिन के मां-बाप को गिन रही है। कितनी गंदी, कितनी भद्दी-भद्दी गालियां, तौबा-तौबा ! और पगली चाची का एक स्तन जो उसने जमादारिन के बच्चे के मुंह में दिया था, वैसा-का-वैसा गिरेबान में से बाहर लटक रहा है।

उसकी पत्नी उसे समझाती है, वह उसे समझा रहा है। लेकिन पगली चाची एक सांस में गालियां बके जा रही है।"एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात !" और फिर वह बेहोश हो गई। और फिर अचानक रेडियो का प्रोग्राम रोक कर, आंसुओं से भीगी आवाज़ में कोई एलान करता है : "भारत के प्रधानमंत्री, जवाहरलाल नेहरू का देहान्त हो गया।"

रेडियो पर यह खबर सुनकर सबकी, ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की नीचे रह जाती है। पति-पत्नी, वे दोनों रेडियो में सिर देकर सुन रहे हैं, "सवेरे तड़के उनकी छाती में दर्द उठा और वह बेहोश हो गये..."

विलाप-करती आवाज़ में एलान जारी है। और उनकी आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है। एक क्षण भर के लिए जैसे उन्हें सुनाई देना बंद हो जाता है। और फिर गली-मुहल्लों, बस्ती भर में एक हाहाकार मच जाती है। लोग एक दूसरे को आवाज़ें दे रहे हैं। बाहर सड़क पर आवा-जाही तेज़ हो गयी है। मोटरों और स्कूटरों के हार्न चिल्ला रहे हैं। घबराये हुए, परेशान क़दम तेज़-तेज़ उठ रहे हैं। दुकानें बंद हो रही हैं। गरमी की चिलचिलाती धूप में बाहर बूंदे पड़ने लगी हैं।

और वह पलट कर पगली चाची की ओर देखता है। जहां बैठी थी, वहीं की वहीं बैठी है। छल-छल उसकी आंखों से आंसू बह रहे हैं, जैसे कोई बांध टूट गया हो। रोये जा रही है, रोये जा रही है, जैसे कोई चश्मा फूट निकला हो।

आंसू किसी की आंख में रोके नहीं रुकते। रेडियो से बार-बार एलान होता है। बार-बार जैसे कोई कलेजे का मांस नोच कर अलग कर रहा हो।

छल-छल आंसू रोती, पगली चाची का बाहर लटका स्तन, उसने कमीज़ के अंदर कर लिया है। छल-छल आंसू रोती पगली चाची कमीज़ के बटन बंद कर रही है। छल-छल रोती पगली चाची, मुंह पर बिखरे बालों को दुपट्टे से ढक लेती है। छल-छल आंसू रोती पगली चाची के चेहरे पर इधर-उधर चिपकी हुई लार धुल गयी है। छल-छल आंसू रोती पगली चाची

की पलकें, जो आठों पहर फटी-फटी रहती थीं, मुंद गयी हैं। जैसे कोई वर्षों का सोया हुआ अचानक जाग जाये, पगली चाची के चेहरे पर वहशत, वीरानगी और पागलपन के आसार मिट गये हैं।

और फिर पगली चाची, ऊंची-लंबी, कोमलांगी, हौले-हौले उठ कर उसकी पत्नी के पास आती है। "चलो बहन, दिल्ली चलें।" उसकी पत्नी हैरान हो रही है। पगली चाची को जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो। आम साधारण भले-चंगे व्यक्ति की तरह बातें कर रही है। "पंडित जी के दर्शन करने चलते हैं, अभी गाड़ी मिल जाएगी।" और पगली चाची ने अपने दुपट्टे के पल्लू के साथ बंधे नोट उसकी पत्नी की हथेली पर रख दिए हैं। पुराने घिसे हुए, फिरंगी के ज़माने के नोट, जिसे पगली चाची कितने वर्षों से संभाल-संभाल कर रखे हुए थी।

और फिर पगली चाची की नज़र शीशे पर जा पड़ती है – "हाय मैं मरी! यह हाल, क्या बना रखा है मैंने अपना?" उसके मुंह से सहसा निकलता है। "तौबा-तौबा, जैसे कोई पागल हो।"

70

सुबह के अख़बार के इंतज़ार में कुलदीप, पाकिस्तान से आई किसी पत्रिका में छपी एक कहानी पढ़ रहा है –

"मेरा नाम राजकर्णी..."

और बाकी शब्द उसके गले में कहीं रुककर रह गए। वह कहना चाहती थी – मेरा नाम राजकर्णी है। मैं चौधरी सोहणेशाह की बेटी हूं। चौधरी सोहणेशाह, जिसकी अपने सारे के सारे इलाके पर सरदारी थी। सोहणेशाह, जिसका नाम लेकर लोग राह पाते थे। चौधरी सोहणेशाह, जिसके पंचायती न्याय की धूम सारे पोठोहार में फैली हुई थी। चौधरी सोहणेशाह, जो सबका अपना था, जिसने हिन्दू-मुसलमान का कभी कोई फर्क नहीं माना था। मैं चौधरी सोहणेशाह की एक अकेली बेटी हूं। मैं ही चौधराइन की एक निशानी हूं। मैं ही उसके बुढ़ापे का सहारा हूं। मेरे बिना मेरा सरदार बाप मिट्टी में मिल जाएगा, बरबाद हो जायेगा।

और एक घायल फाख्ता की तरह उसकी नज़रों में दया की याचना थी। उसकी छाती तेज़-तेज़ आ-जा रही सांस के कारण जैसे फट के रह जाएगी।

नसवारी चट्टान की परछाईं में, पत्थर के टीले के सहारे राजकर्णी को खड़ा करके जब पठान (फसादी) ने उसके मुंह पर बंधी पट्टी को खोला तो अपने शिकार की कहर ढानेवाली जवानी को देखकर, वह अपनी मूंज की चप्पलों पर नाचने लग गया। फिर एक वहशत-भरी खुशी में, आंखें फाड़े वह राजकर्णी की ओर बढ़ा और अभी तक लहू से रंगे अपने पोरों से, उसकी ठोड़ी को उठा कर पूछा, "खो तुमारा नाम क्या है?"

शहज़ाद खां सोच रहा था,उसकी अपनी मां भी हिन्दू थी। हिन्दू औरतें बड़ी साफ,बड़ी सुन्दर,बड़ी सयानी होती हैं। हमेशा उसका बाप अपनी औरत की बड़ाई किया करता था। और जब दस बच्चे पैदा करके वह मरी,उसके सरदार बाप का जैसे दिल टूट गया। फिर उसने कभी शराब नहीं पी थी,कभी मुजरा नहीं देखा था,कभी शिकार खेलने नहीं निकला था, अड़ोस-पड़ोस में किसी के साथ ऊंचा नहीं बोला था।

राजकर्णी तो उसे परियों जैसी लगी थी। छिपा-छिपा कर रखी,ढकी-ढकी; जैसे किसी ने डिबिया में से निकाला हो। मासूम,निश्छल; अछूती।

शहज़ाद खां सोच रहा था – "जिस पाकिस्तान की,राजकर्णी जैसी हूर पहली सौगात हो,वह पाकिस्तान कैसा होगा! उसके झोले में जो रेशमी जोड़े हैं,जो गहने हैं,उनसे चाहे तो कोई दस 'राजकर्णियां' खरीद ले।"

और कितनी देर वह उसकी ओर एकटक देखता रहा,देखता रहा। राजकर्णी ने एक बार उसकी नज़र से नज़र न मिलाई। न ही शहज़ाद खां के पीछे की ओर कढ़े लम्बे बालों की तरफ; न उसकी नोकदार कलमों की तरफ,और न ही उसके गालों पर छलक-छलक पड़ रही उसकी जवानी को देखा; न उसके कंधों,उसके सीने,उसके पुट्ठों पर ही एक निगाह डाली।

चट्टान की पथरीली भूमि पर नज़रें गड़ाये,कभी राजकरणी की आंखों से आंसू फूट निकलते,कभी पलकों में लटके-लटके,वैसे के वैसे सूख जाते।

कितनी देर तक प्रतीक्षा कर चुकने के बाद,शहज़ाद खां आखिर एक टीले पर आ बैठा। पुरवैया हवा बह रही थी। उसने गाना शुरू कर दिया – पश्तो का एक गीत।

राजकर्णी की ओर पीठ करके वह गाता रहा,गाता रहा। राजकर्णी के कानों में कभी उसके गीत की आवाज़ गूंजती तो कभी उन चीखों की,फरियादों की,कभी उनके गांव पर बरस रही गोलियों की,और कभी फसादियों के नारों की। और वह वैसी की वैसी चुप,वैसी की वैसी सहमी हुई,वैसी की वैसी चिन्ता में डूबी हुई खड़ी थी।

फिर शहज़ाद खां उसे नीचे नदी की ओर ले गया। जैसे कोई गड़रिया किसी अकेली रह गई भेड़ को ढूंढ़ कर अपने साथ लेकर चलता है। वे नीचे उतरते गये – उतरते गये। आखिर नदी-किनारे,घास के मखमल जैसे कोमल टुकड़े पर वे जा बैठे। स्थिर,एक जगह खड़ा ठंडा-ठार पानी,नदी के सरसब्ज़ किनारों में मोती की तरह जड़ा हुआ था। शहज़ाद खां ने अपने झोले में से रेशम के जोड़े,एक से एक सुन्दर गहने निकालकर राजकर्णी के सामने रख दिए। और स्वयं नदी में,नीचे की ओर नहाने चला गया। जितनी देर वह नहाता रहा लगातार पश्तो का गीत गाता गया,गाता गया।

हमेल,गोखरू,चूड़ियां,पाज़ेब,बालियां,कांटे,अंगूठियां,नैकलेस,श्रृंगार पट्टिया,टीके, – पर राजकर्णी को इन गहनों की कोई चाह नहीं थी। एक से एक सुन्दर रेशमी सूट – पर राजकर्णी को इन वस्त्रों की कोई भूख नहीं थी।

राजकर्णी सोच रही थी,वह भाग जाये और उड़कर अपने पिता सोहणेशाह के पास पहुंच जाए। पर सोहणेशाह किसे खबर,ज़िन्दा था भी या नहीं? उसने तो कहर बरसता देखा था,

अपने गांव में। राजकर्णी सोच रही थी, उसकी पड़ोसिन सतभराई को भी कोई उठाकर ले गया होगा, जैसा कि उसका हाल हुआ है। या फिर वह भी नेज़ों पर उछाली गई होगी, जैसे उसके पिता की बोटी-बोटी उड़ा दी थी, फसादियों ने। अगर वह भागे भी, तो जाएगी कहां? राजकर्णी सोच रही थी, पर उसे भागने ही कौन देगा। फिर उसके मन में आया, वह पानी में छलांग लगा दे। लेकिन पानी इतना छिछला था, अगर गहरा भी होता तो छत जितना ऊंचा उसका आकार, — वह डूबेगी भी या नहीं! राजकरणी सोच रही थी, फसादी अपने हाथों से, अपने नाखूनों से लहू छुड़ा रहा होगा। अपने माथे पर पड़े खून के छींटे, धो रहा होगा। और इस तरह साफ-सुथरा होकर शायद उसका मन बी पाक हो जाए। लेकिन उसको विश्वास नहीं हो रहा था। उसके भीतर की औरत, दबती-घुटती जा रही थी। राजकर्णी सोच रही थी, अब उसकी शाम कहां होगी, उसकी रात कहां कटेगी। जब उसका जी चाहेगा, वह किससे बातें करेगी। अब वह कभी हंस नहीं सकेगी। उसे रोना भी तो नहीं आ रहा था। उसकी आंखों में से आंसू सूख गए थे। उसकी नस-नस में से लहू, जैसे खुश्क हो गया था।

राजकर्णी वैसी की वैसी, बैठी हुई थी कि शहज़ाद खां नहा-धोकर लौट आया। न राजकर्णी नहाई थी, न राजकर्णी ने कपड़े बदले थे। और शहज़ाद खां को जैसे आग लग गई हो। यह कैसी लड़की है, जिसके साथ कोई शराफत, कोई भलमनसाहत काम नहीं कर रही थी। ठीक है, वह उसे ज़बरस्ती उठाकर लाया था। तो फिर क्या? उसके साथ-की, कई और नहीं अगवा की गई थीं? वह तो उसे फूल की तरह संभालकर लाया था। अगर वह चाहता तो उसकी बोटी-बोटी कर देता। अगर वह चाहता तो बंदूक के एक निशाने से, उसका काम तमाम कर देता। अगर वह चाहता तो वह अपने छुरे से उसे यूं हलाल करता जैसे कोई मुर्गी को ज़बह करता है। अगर वह चाहता, तो क्या नहीं कर सकता था? गांव की दूसरी लड़कियों के साथ फ़सादियों ने क्या नहीं किया था?

शहज़ाद खां के भीतर का मर्द, कभी नदी के शीतल पानी की ओर देखता, कभी नदी के किनारे की मखमली घास को, कभी चारों ओर फैले एकांत को, कभी अपने पुट्ठों को, कभी अपने कद-बुत को, कभी सामने बैठी, धरती पर नज़रें गड़ाए, अनछुई, कोमल राजकर्णी को। और शहज़ाद खां का चेहरा ज्वाला की तरह धधकने लगा। उसके हाथ कांपने लगे। वह चाहता था कि वह कुछ बोले, लेकिन उसके होंठ जैसे सिल गए हों। बिटर-बिटर वह राजकर्णी की ओर ताकता रहा। शहज़ाद खां सोच रहा था, वह एक नौजवान लड़की को बलात् उठा कर ला सकता है। अगर चाहे तो उसे किसी कुएं में फेंक सकता है। किसी चट्टान के नीचे धकेल सकता है। दरिया के गहरे पानी में उसे बहा सकता है। लेकिन एक नौजवान लड़की को वह जबरदस्ती नहला कैसे सकता है। जबरदस्ती उसे कपड़ा कैसे पहना सकता है? गहने पहनने के लिए कैसे मजबूर कर सकता है। वह उसकी जान ले सकता है। और राजकर्णी का रुआ-रुआ जैसे कह रहा हो, उसे मौत क्यों नहीं आती!

और शहज़ाद खां के अंग-अंग से जैसे लपटें उठ रही हों। क्रोध के ज़हर-भरे गुबार उसके दिल में उठते और सिर की ओर चढ़ते जाते। बार-बार उसके हाथ-पांव ऐंठने लगते, अकड़ने

लगते। उसे पसीना आने लगता। उसकी आंखों में खून उतर रहा था। उसकी पुतलियां जैसे फटी पड़ रही हों। बार-बार उसकी नज़रें अपनी दुनाली की ओर जातीं। बार-बार उसके हाथ, गले में लटक रही गोलियों की पेटी को छूते।

और सामने राजकरणी बैठी थी, जैसे मासूम फाख्ता हो। आंखें धरती में गड़ाए, स्थिर, सहमी हुई, दुबकी हुई।

दूर नीचे नदी का पानी कलकल बह रहा था। नदी-किनारे की अछूती घास जैसे मुस्करा रही हो। चारों ओर एक खामोशी-सी छाई हुई थी। आकाश उजला-उजला था।

– और राजकर्णी, सामने यूं बैठी हुई थी जैसे कोई शबनम की बूंद पत्ती पर आ गिरती है, जैसे टूटी हुई कली औंधी जा पड़ती है।

और फिर शहज़ाद खां को ऐसा महसूस हुआ जैसे उसका सारे का सारा खून सिर की ओर जा चढ़ा हो। उसकी आंखों के सामने तेज़-तेज़ चक्कर आने लगे। यह चक्कर और तेज़ होते गए, और तेज़। फिर वह चक्कर अंधेरे में बदलने लगे। घुप अंधेरा। उसे लगा जैसे कोई भयानक तूफान आ गया हो। जैसे किसी नदी में बाढ़ आ जाए और नदी फुंकारती-दहाड़ती हुई अपने किनारे को तोड़ दे। जैसे धरती फट रही हो। आकाश टुकड़े-टुकड़े हो रहा हो। आग, पानी, हवा सब एक-दूसरे में मिल गए हों। तारे टूटकर नीचे आ पड़े हों। पहाड़ियां ज़र्रा-ज़र्रा हो गई हों।

और शहज़ाद खां जहां खड़ा था, चीख मारकर वहां से भाग खड़ा हुआ। वह भागता जा रहा था – भागता जा रहा था। शहज़ाद खां नहीं जानता था कि वह किधर जा रहा है। वह कई मील दूर निकल गया।

और घास पर बैठी अकेली राजकर्णी हैरान हो रही थी। उसके एक ओर गहनों का ढेर लगा हुआ था, दूसरी ओर रेशमी जोड़ों का ढेर। सामने बंदूक रखी थी। छुरा पड़ा था, जो अभी तक लहू से सना था। और दूर नीचे नदी का कलकल पानी बहता चला जा रहा था।

कहानी पढ़ते हुए कुलदीप पसीना-पसीना हो रहा था। सोहणेशाह बाहर खेतों पर गया हुआ था। कहानी के लिखने वाले का नाम-पता नहीं छपा था। कुलदीप बार-बार कहानी को देख-देखकर विह्वल हो रहा था। उसका जी चाहता था कि उसी क्षण पाकिस्तान चल दे। इतने में ताज़ा अख़बार आ गया। अख़बार में मोटे अक्षरों में सुर्खी छपी थी – पाकिस्तान ने भारत पर हमला कर दिया।

कुलदीप सब कुछ भूल कर अख़बार पढ़ने लग गया।

71

इधर सोहणेशाह ने अंगूठे के पोर से नलकूप के बटन को दबाया, उधर फरन-फरन नल में से

पानी झरने लगा, गोरी की बांह की तरह लच-लचीली धार। जल्दी-जल्दी बीत रहे जाड़े की सुबह की किरणें, ठंडे-ठार पानी की धार को, हल्की-हल्की धूप में लपेट रही थीं।

पानी की इस अटूट धार को देखते हुए, सोहणेशाह को ज़िंदगी, एक फिल्म के समान उसकी आंखों के आगे तैरने लग गई। उसे लगता जैसे प्रकाश की किरणें, पानी के बेरोक-प्रवाह पर, रंग-बिरंगी तस्वीरें चित्रित करती जा रही हों और वह वैसे का वैसा खड़ा, अपने अतीत की स्मृतियों में डूब गया।

...रीं-रीं, ठक-ठक कुआं चल रहा था। गर्मी की ऋतु, तपती दुपहरी, जब कव्वे की आंख बाहर निकल आती है, शहतूत की घनी छाया के नीचे सोहणेशाह की आंख लग गई थी। उस समय लोग, उसे सोहणेशाह थोड़े ही पुकारते थे; सोहन सिंह उसका नाम था। घरवाले, आस-पड़ोस, गली-कूचों में, हर कोई उसे 'सोहणा' 'सोहणा' कहकर बुलाता था। 'सोहणिया !' 'अबे सोहणिया !' कोई मधुर आवाज़ उसके कानों में पड़ रही थी। जैसे कोई नग़मा होता है। और वह करवट बदल कर गहरी नींद सो गया, इसी तरह मीठी शहद में घुली आवाज़, उसके कानों में पड़ती रही, पड़ती रही। और फिर जब उसकी आंख खुली, आगे-पीछे एक खुशबू थी, और उल्टी खाल की पोठोहारी जूती के पदचिह्न दूर तक निकल गए थे। सोहणेशाह का अंग-अंग जैसे टूट रहा था। पांव रखता कहीं, और पड़ता कहीं और था। उसने देखा उसके बगीचे में चमेली की लताओं को किसी ने नोचा हुआ था। गुलाब के सारे फूल तोड़ लिए गए थे। जैसे गौतम की अहिल्या को रौंदता हुआ कोई निकल गया हो। उस शाम जब वह अपने गांव लौटा, गली-गली में लोग घुसर-फुसर कर रहे थे। उसे देखते और कतरा कर खिसक जाते, उसकी आंख से कोई आंख नहीं मिला रहा था। अपने आंगन में उसने पांव रखा तो उसकी मां ने माथा पीट-पीटकर बुरा हाल कर लिया। बार-बार उसे लानतें भेज रही थी। आख़िर उसका कसूर क्या था ? और जब सोहन सिंह को बताया गया, उसके पांव तले ज़मीन निकल गई। न इंकार कर सकने की हालत में वह था न मानने की। दोपहर के समय लोगों ने शाही मिरासिन को उसके कुएं की ओर जाते हुए देखा था। गीले बाल कंधों पर बिखरे हुए और चुन्नी का पल्लू फूलों से भरा हुआ। लोग कहते – मिरासिन सात कुएं छोड़कर सोहणे शाह के कुएं पर ही क्यों गई ? जवान-जहान लड़का जिस कुएं पर हो किसी औरत का उसके खेतों में पांव रखने का मतलब ही क्या है ? और फिर रंगीली औरत पंसेरी भर फूल तोड़ कर ले आई थी। उधर से वह फूल लाई और इधर सड़क के किनारे खड़े होकर उसने चवन्नी में बेच डाले। लोगों को यह देखकर और भी आग लगी। और उसकी मां बार-बार उससे पूछती, "तुझे गंदगी में मुंह मारना ही था तो कोई क्षत्राणी तुझे नहीं मिली ?" और उसके दोस्त कितने दिन उसको छेड़ते रहे – "यार ! मिरासिनें होती तो बड़ी बांकी हैं ! एक तो शाही नाम...और फिर नखरा, कुछ पूछो नहीं !...मिरासन के दांत चूमकर तुम्हें गुरुद्वारे के भाई साहब ने घुसने कैसे दिया ?" और सोहन सिंह हक्का-बक्का सब के मुंह की ओर देखता रहता। कोई किसी को विश्वास दिलाये तो किस तरह ? अब तक, चाहे कितने वर्ष बीत चुके थे, सोहणेशाह को यकीन था, उसके साथी मानते थे कि गर्मियों की उस दोपहरी को, शहतूत की ठंडी छाया में,

उसके कुएं पर कोई घटना अवश्य घटी थी। और दूध सी सफेद दाढ़ी में, सोहणेशाह के होंठों पर एक मुसकान खेलने लगी। पानी के हौज़ में पड़ रही धार से बन रहे झाग की तरह, कितनी देर तक उसकी पलकों पर, उसके माथे पर, उसके गालों पर यह मुसकान मचलती रही।

और फिर सोहणेशाह को एक और मुस्कराहट की याद आने लगी। अभी राजकर्णी पैदा नहीं हुई थी। सोहणेशाह का विवाह हुए अभी कुछ ही महीने बीते थे। पहली फुरसत में, आस-पड़ोस की लड़कियों ने नई-ब्याही बहू को शाही-मिरासिन का किस्सा सुनाया और जब भी सोहणेशाह की पत्नी को अवसर मिलता वह उसे ताना सुना दिया करती। सोहणेशाह जैसे कान में रुई दे लेता, कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करता, सुनी अनसुनी कर देता। एक दिन शाही उनके यहां आई, सांवला रंग, ऊंची लंबी, दुबली-पतली, बांकी नार। कितनी देर बैठी रही। सोहणेशाह घर पर नहीं था। और फिर बैठे-बैठे, शाही ने सोहणेशाह की पत्नी को उस दुपहरी की कहानी सुनाई। कैसे वह उसके कुएं पर गई। कैसे सोहणेशाह बेसुध सो रहा था। शाही, खुद ही कुएं को चलाकर नहाई भी, सिर भी धोया। सोहणेशाह अभी तक लंबी ताने सोया पड़ा था। फिर चलते समय मिरासिन ने सारे फूल तोड़ लिए। कड़कती दुपहरी में फूल कुम्हला रहे थे। और वे फूल उसने सड़क के किनारे खड़े होकर किसी फ़िरँगिन को बेच डाले थे। सब गांव वालों को यह बात बुरी लगी थी। किसी गरीब मिरासिन ने चार पैसे क्यों कमा लिए? सब गांववालों के चारों कपड़ों में आग लग गई। कितनी बुरी-बुरी बातें लोग करते थे। सोहणेशाह ने कभी पलट कर उसकी तरफ देखा तक नहीं था। और फिर पूरी दोपहर भर शाही मिरासिन उनके बड़े कमरे में बैठी गाती रही।

चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए,
लैजा लैजा सुनेहड़ा सोहणे यार दा।
चन्न चढ़िया, कुल आलम वेखे,
मैं वी वेखां मुख यार दा।
चिट्ठिए दर्द फिराक वालिए...

यह गीत जब शाही गाया करती थी तो लोग सोचते, वह सोहणेशाह को याद कर रही है। आज दोपहर से यह गीत वह बार-बार गा रही थी और सोहणेशाह की पत्नी का सुन-सुन कर मन नहीं भर रहा था। उस शाम जब वह घर लौटा तो उसके आंगन में अजीब गहमा-गहमी सी मची हुई थी। वैसे कोई भी दूसरा वहां नहीं था, फिर भी सोहणेशाह को लगता जैसे उसका आंगन भरा-भरा हो। उसकी पत्नी के चेहरे पर एक मुसकान थी, एक चाव था उसकी हर एक हरकत में, एक लहर थी – उसकी हर एक नज़र में। उस रात सोने से पहले, पूरे चांद की चांदनी में खिल रही मुसकान की तरह, सोहणेसाह की पत्नी ने मिरासिन की सारी बात अपने घरवाले को सुनाई। मचल-मचल जाती थी। सोहणेशाह कहता – "उस मिरासिन की बच्ची ने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी थी। यह तो मुझे ही मेरी नींद ने काबू किए रखा।" और फिर सोहणेशाह को याद आया, जब वह सोकर उठा था, उलटी खाल की पोठोहारी जूती के निशान देखकर उसको बहुत बुरा लगा था। तभी तो वह ख़ामोश हो जाता था, जब कोई उसे सुनाने

के लिए मिरासिन का जिक्र करता था। तभी तो वह चिढ़ता नहीं था जब लोग, मिरासिन का नाम लेकर उसे छेड़ते थे।

और फिर सोहणेशाह को याद आया, जब उनके यहां राजकर्णी हुई थी तो शाही मिरासिन, लड़की को गोद में उठा लेती और उसे उतारने को, उसका जी नहीं चाहता था। बार-बार उसे बांहों में उछाल कर उसके पेट में अपने सिर से गुदगुदी करती। लड़की हंस-हंस कर पागल हुई जाती। मिरासिन, अखरोट की छाल से लाल किए गए अपने होंठों से, उसके गालों पर, उसके मुंह पर कभी प्यार नहीं करती थी। मिरासिन को डर था, क्षत्रियों का क्षात्र धर्म कहीं भ्रष्ट न हो जाए। और फिर जब राजकर्णी की मां बीमार पड़ी, किस प्रकार सुबह-शाम अपने घर के सौ छोटे-बड़े काम छोड़कर शाही, बच्ची की सेवा करती रही, बच्ची की मां की खिदमत करती रही। लोग, सुबह-शाम शाही को इस प्रकार सोहणेशाह के घर आते-जाते देखते तो आंखों ही आंखों में लाख बातें करते। और फिर राजकर्णी की मां मर गई। एक क्षण पहले ही तो उसने बच्ची को अपनी छाती से उतार कर शाही के हवाले किया था। और फिर उसने आंखें मूंद लीं। शाही कहती, राजी तो उसकी अमानत थी। और यह राज़ या तो सोहणेशाह को मालूम था या फिर शाही मिरासिन को। अपनी मां के मरने के कितने दिन बाद तक बच्ची, शाही की छाती से दूध पीती रही। मिरासिन की सूखी छातियों में दूध उतर आया था। शाही स्वयं हैरान थी। सोहणेशाह हैरान था, परायी बच्ची के लिए शाही के स्तनों से दूध कहां से फूट पड़ा था। और कभी-कभी सोहणेशाह सोचता... सोहणेशाह क्या सोचता था?

"यार, मैं सोचता हूं, तू इस मिरासिन को घर क्यों नहीं बसा लेता?" एक दिन बरामदे में, उसके पास बैठे हुए अल्लादित्ता को, सोहणेशाह ने राय दी। अल्लादित्ता की घरवाली को परलोक सिधारे हुए साल से ज्यादा हो गया था।

"तू ही क्यों नहीं चार फेरे ले लेता?" चौधरी अल्लादित्ता ने पलट कर सोहणेशाह से कहा, "तेरी घरवाली भी तो नहीं रही।"

बाहर बरामदे में बेकार की बातें कर रहे चौधरी को यह मालूम नहीं था कि अंदर बड़े कमरे के दरवाज़े के पीछे खड़ी शाही उनकी बातें सुन रही थी।

कुछ देर बाद, सोहणेशाह किसी काम से बड़े कमरे में गया और उसने देखा, उसकी पत्नी के पलंग पर, मिरासिन, एक नशे-नशे में डूबी हुई पांव पसारे पड़ी थी और राजकर्णी एक बिल्ली के बच्चे की तरह उसकी छाती से चिपटी हुई दूध पी रही थी। सोहणेशाह उन्हीं कदमों से बाहर बरामदे में लौट आया।

चार दिन, और खबर आई, शाही मिरासिन ढेरी-चकरी के किसी मोची के साथ निकल गई थी। सोहणेशाह को एक धक्का-सा लगा। उसकी बेटी, शाही के बिना उदास हो गई। पर शाही फिर कभी अपने गांव में लौटकर नहीं आई।

और फिर सोहणेशाह को याद आया, एक बार ढेरी चकरी की ओर किसी काम से गया सोहणेशाह, शाही के बारे में मालूम करके, उसी मोची के आंगन में जा पहुंचा। शाही वहां कहीं भी नहीं थी। मोची ने सोहणेशाह को बताया, मिरासिन का उस गांव में मन नहीं लगता था,

जब उसे शहर जाना होता, तब वह उसके साथ हो लेती थी। हर चौथे रोज़ शहर, हर चौथे रोज़ शहर। और इस तरह एक बार वह उसके साथ शहर गई और वहां भीड़ में कहीं खो गई। कई दिनों तक बेचारा मोची उसे ढूंढ़ता रहा, पर वह कहीं नहीं मिली। मोची हाथ मल-मल कर कहता, उसको जो नई बालियां बनवा कर दी थीं, वह भी साथ ले गई थी। उसके पास रहन रखे पराये गोखरू भी वह अपने साथ ले गई थी। और फिर सोहणेशाह जब भी पिंडी शहर जाता, कई-कई बार उसकी आंखे आगे-पीछे, भीड़ में किसी को ढूंढ़ने लगतीं, घोड़ी पर सवार जाते हुए, कई-कई बार उसकी नज़रें ऊपर चौबारों की खिड़कियों में जा टिकती। कोई कहता वह कसाइयों की गली में जा बैठी थी, कोई कहता वह "बिल्लियाँ" की सराय में जा बसी थी। जितने मुंह उतनी बातें। सोहणेशाह सुनता और उसे बहुत बुरा लगता। उसके दिल को कुछ होने लगता। कई बार उसने गांव के लड़के-लौंडों को यह कहते सुना था कि वे शहर में शाही मिरासिन का गाना सुन कर आये थे। पर सोहणेशाह चकले में कैसे जाता? ज्यादा-से-ज्यादा चौधरी अल्लादित्ता के साथ बैठकर कभी-कभी शाही की कोई बात कर लेता। कैसे आप-ही-आप वह उसकी बेटी की मां बन बैठी थी। और फिर कैसे चुपके से कहीं निकल गई और फिर एक बार भी, कभी इस गांव की तरफ उसने मुड़ कर नहीं देखा था।

और गरम-गरम आंसू सोहणेशाह के गालों और दूध जैसी सफेद दाढ़ी पर टप-टप गिरने लगते।

और कुलदीप कहता था, कोई शाही नाम की गानेवाली है, रावलपिंडी के रेडियो स्टेशन से गाती है, तो रुला-रुलाकर रख देती है। हमेशा बिरह-वेदना के गीत, हमेशा वियोग में डूबे बोल, इतना सोज़ है उसकी आवाज़ में, कि वह गा रही हो तो उस ओर से आये शरणार्थी रेडियो से चिपटे रहते हैं। सोहणेशाह ने कभी रेडियो नहीं सुना था। वह सोचता, अगली बार जब उसका प्रोग्राम हुआ तो वह भी उसके गीत सुनेगा। वही होगी, सोहणेशाह को विश्वास था, वही होगी – दीवानी। "चिड़िए दर्द फिराक वालिए" गाती होगी।

नल में से अटूट, बह रहा पानी। पानी की धार को देखता सोहणेशाह, अपने विचारों में खोया, डूबता-तैरता, कहीं का कहीं जा पहुंचा था कि उसे ढूंढ़ता हुआ कुलदीप वहां आ गया। उसके हाथ में अखबार था। आते ही उसने अखबार का पहला पन्ना सोहणेशाह को दिखाया। पाकिस्तान ने कच्छ की खाड़ी में भारत पर हमला कर दिया था।

72

"यह तो होना ही था।" मोहणेशाह के मुंह से ये शब्द निकले और वह कपड़े उतार कर नल के नीचे जा बैठा।

पानी की धारा के नीचे बैठा नहा रहा सोहणेशाह, बार-बार कुलदीप को समझाता,

पाकिस्तान से भारत के आपसी संबंध कभी ठीक नहीं होंगे। कम-से-कम इस पीढ़ी के लोग एक दूसरे के लिए तड़पते हुए चले जायेंगे। कुलदीप इससे सहमत नहीं था। सोहणेशाह के सामने कभी मुंह फाड़कर विरोध न करता, पर उसे ज़िंदगी की निर्माण-शक्तियों पर असीम भरोसा था। उसे विश्वास था, रशीद जैसे नौजवान, उधर पाकिस्तान में; और इसके अपने जैसे लोग, इधर हिन्दुस्तान में; कभी हार माननेवाले नहीं थे। कुलदीप कहता – इस देश का इतिहास बताता है कि यह कई बार बांटा गया; फिर बार-बार एक होता रहा। एक इकाई तो यह केवल फिरंगी के ज़माने में बना था। और उन्होंने भी जैसे कच्चे धागे में पिरोकर इसे एक-जुट किया हो। अंग्रेज के कदम हिले और रेत के टीले की तरह छिन्न-भिन्न हो गया। सोहणेशाह कहता, पुराने वक्तों की और बात थी। अब ज़माना कुछ का कुछ हो गया है। अब भारत और पाकिस्तान दो क़ौमों में बंट गए हैं। इस अलगाव की भावना को मिटाना असंभव है। आजकल की दुनिया में एक राष्ट्र के अस्तित्व को समाप्त करना संभव नहीं है। यह बाकी देशों के हित में होता है कि एक बार जो सीमा-रेखाएं खींची जा चुकी हैं, वे बनी रहें, नहीं तो विदेशों में आपसी प्रभाव का संतुलन बिगड़ जाता है। न बड़ी शक्तियां, और न छोटी ताकतों को यह सहन होगा कि भारत और पाकिस्तान मिल जायें, फिर से एक हो जाएं। कुलदीप कहता, हमारी साझेदारी बड़ी प्रबल है। हमारे परिवार बंटे हुए हैं, एक घर के आधे प्राणी उधर हैं, आधे प्राणी इधर; भाई अपनी सगी बहनों को कैसे भूल सकते हैं ? बहनें अपने प्यारे भाइयों को कैसे भुला सकती हैं ? सोहणेशाह कहता, यह सारी मुसीबत इस पीढ़ी की है। अगली पीढ़ी के पाकिस्तानियों के लिए भारतीय पराये होंगे। अगली पीढ़ी के भारतीयों के लिए पाकिस्तानी पराये होंगे। एक दूसरे के लिए फैलाई गई नफरत के आंचल, युद्ध की बरबादी में से गुज़रे लोगों के लिए हमारे रिश्ते और हमारी मुहब्बतें, कहानियां बनकर रह जायेंगी, इतिहास के पन्ने, जिन्हें एक चुटकी में पलटा जा सकेगा।

अभी ये शब्द सोहणेशाह के मुंह में ही थे कि सामने के कमरे से बेबी राजकर्णी दौड़ती हुई आई। "बाबा, पाकिस्तान ने हम पर हमला कर दिया है। पाकिस्तान की फौज़ें, कच्छ के इलाके में, कई मील अंदर, हमारे देश में घुस आई हैं।"

हिन्दुस्तान ज़िंदाबाद !
पाकिस्तान मुर्दाबाद !
भारत माता की जय !
पाकिस्तान ! हाय, हाय !

कुलदीप राजी के मुंह की ओर देखता हुआ हक्का-बक्का रह गया। नहा कर कपड़े पहन रहा सोहणेशाह कुर्ते का गिरेबान चढ़ा चुका था। दायीं बांह भी उसकी आस्तीन में घुस चुकी थी, और बायीं, वैसी की वैसे पकड़े हुए, वह बिट-बिट राजी के मुंह की ओर देख रहा था।

और फिर राजी दौड़ती हुई, सामने तिरंगा लेकर आ रहे लड़के-लड़कियों के जुलूस में जा मिली। उछल-उछल कर, कूद-कूद कर 'पाकिस्तान मुर्दाबाद' और 'हिन्दुस्तान ज़िंदाबाद' के नारे लगाने लग गई। जुलूस में कुछ लड़कों ने एक खस्ता-हाल खाट उठाई हुई थी। चारपाई

पर एक पुराना लिहाफ बिछा था। लिहाफ के नीचे अयूब खां का पुतला रखा था। सोहणेशाह के खेतों में इस जनाज़े को रखकर लड़के-लड़कियां सोग मनाने लगे। मुंह-सिर पीटते, विलाप करते हुए, कितनी देर वे यह खेल खेलते रहे। और फिर उन्होंने उस टूटी-फूटी चारपाई को, लिहाफ और पुतले सहित आग लगा दी।

सोहणेशाह हैरान हो रहा था, इतनी जल्दी उन लड़के-लड़कियों को किसने सिखा दिया था, यह सब कुछ, जो वे कर रहे थे। अभी तक मुश्किल से यह खबर पढ़े-लिखे लोगों तक पहुंची ही थी। "इन्होंने खबर, रात को रेडियो पर सुनी होगी।" कुलदीप ने अनुमान लगाया।

"ये रेडियो वाले भी बड़े हज़रत हैं।" सोहणेशाह सिर हिलाने लगा।

"आजकल इनकी चांदी हो जाएगी।"

"दिन-रात दिन-रात भौंकते रहा करेंगे। उधर वे झूठ बोलेंगे, इधर ये उससे बढ़कर कुफ्र तोलेंगे।

इस तरह बातें करते हुए, घर की ओर मुड़ रहे सोहणेशाह ने देखा, गुरमीत जल्दी-जल्दी उनकी ड्योढ़ी की तरफ जा रहा था।

कुलदीप का कुत्ता शेरू, इस तरह जल्दी में उसे अपने घर में घुसता देखकर, उस पर भौंका, आगे बढ़कर उसे काटने को लपका, पर अपने कंधे पर रखी बंदूक से उसने कुत्ते को डरा कर खदेड़ दिया और आप ड्योढ़ी के अन्दर चला गया।

सोहणेशाह ने भी यह देखा, कुलदीप ने भी यह देखा। यह समय ऐसा था, जब घर में सीता के सिवाय और कोई नहीं होता। सोहणेशाह खेतों में काम कर रहा होता, कुलदीप या तो सोहणेशाह का हाथ बंटा रहा होता या बाहर अपने किसी काम पर निकला होता। राजी स्कूल गई होती। आज पाकिस्तान के विरुद्ध नारे लगाती हुई; नौजवान लड़के-लड़कियों के जुलूस के साथ जाने किधर निकल गई थी।

घर से दस कदम दूर, सोहणेशाह के मन में कुछ आया और वह उन्हीं क़दमों बाज़ार की ओर निकल गया, अपने साथ कुलदीप को भी लेता गया। बाज़ार में लोग क़दम-क़दम पर टोलियां बनाकर खड़े थे। एक ही बात की चर्चा हो रही थी कि पाकिस्तान ने भारत पर हमला करके बड़ी अनुचित बात की है, हमें डटकर पाकिस्तानी फौजों का मुकाबला करना चाहिए। उन्हें अपने इलाके से बाहर खदेड़ कर सांस लेना चाहिए। कई कहते — अब मौका है, पाकिस्तान पर चारों ओर से हमला करके रोज़-रोज़ की इस इल्लत को खत्म कर देना चाहिए। कोई बात भी हुई, हमारी बिल्ली हम ही को म्याऊं, उल्टे पाकिस्तानी हमारे मुल्क में जबरदस्ती घुस आए हैं। और कुछ लोग अपना सारा ज़हर सरकार के विरुद्ध उगल रहे थे। आखिर हमारी सरकार क्या करती है? हमारी फौंजे क्या सोई रहती हैं? तब चीनी हमारे देश में दनदनाते हुए उतर आये, हम उनका मुंह देखते रहे, आज पाकिस्तानी हमारी सीमा का उल्लंघन करके मीलों इलाका संभाल बैठे हैं। इन धोती-वालों से कुछ नहीं होने का। इस सरकार को हटाना पड़ेगा। सत्य, अहिंसा का जिक्र करने वालों से कभी युद्ध लड़े गए हैं?

इतने में खादी-धारी एक कांग्रेसी, गांधी टोपी पहने हुए उधर आ निकला, लोगों ने मिलकर

उस पर फबतियां कसना शुरू कर दिया और सीटियां बजाने लग गए। कमज़ोर-सा कांग्रेसी आगे डटकर खड़ा हो गया और उसने सरकार की नीति की हिमायत शुरू कर दी। गुस्से में आये लोगों ने कांग्रेसी कार्यकर्ता की टोपी उतार ली और उसे पीटना शुरू कर दिया। बड़ी मुश्किल से पुलिस ने मौके पर आकर उसकी जान बचाई।

और फिर लोग पुलिस के पीछे पड़ गए। एक ओर नारे और पत्थर दूसरी ओर लाठियां और फिर अश्रु-गैस। बिजली के खंभों के बल्ब तोड़ दिए गए, सरकारी दफ्तरों के शीशे, देखते ही देखते चूर-चूर हो गए। और फिर लोग बसों को रोककर आग लगाने लगे। पुलिसवालों ने विवश होकर गोली चलाई, कई फसादी घायल हो गए।

सारे शहर की दुकानें बंद हो गईं। सड़कों पर यातायात बंद हो गया। स्कूल, कालेज तो पहले ही खुले नहीं थे। सोहणेशाह और कुलदीप के देखते-देखते बाज़ार सुनसान हो गए। चारों ओर आतंक छा गया। गलियों में पत्थर थे या कांच के टूटे हुए टुकड़े बिखरे पड़े थे। कहीं-कहीं पर लहू के निशान थे।

सोहणेशाह को राजी की चिंता होने लगी, वह तो कब से लड़के-लड़कियों के जुलूस के साथ निकली हुई थी। सोहणेशाह को घर लौटने के लिए कहकर, कुलदीप राजी को देखने के लिए चला गया।

सोहणेशाह जब घर लौटा, डयोढ़ी का दरवाज़ा अंदर से बंद था। इस तरह तो कभी नही हुआ था। सोहणेशाह के घर में, डयोढ़ी का दरवाज़ा, रात को भी, शायद कभी-कभार ही भिड़ाया जाता था। यह तो भीतर से कुंडी लगी हुई थी। उधर, अपने गांव में उसकी डयोढ़ी का दरवाज़ा बस फसाद के दिनों में बंद किया जाने लगा था। नहीं तो, सोहणेशाह के द्वार, दिन-रात हर किसी के लिए खुले रहते थे। कोई किसी समय आये या जाये। और फिर सोहणेशाह को याद आने लगी – वह रात, ज़ब गांव के लड़कों ने आकर उसे बताया था कि पोठोहार में चारों तरफ फसाद की आग भड़क उठी है और अगली सुबह गांव का कोई हिन्दू या सिक्ख गांव से बाहर नहीं निकल सकेगा।

इतने में कड़क करके अंदर से कुंडी खुली। ड्योढ़ी के किवाड़ खुले और बाहर सोहणेशाह को इंतज़ार करता देखकर गुरमीत का ऊपर का सांस ऊपर और नीचे का सांस नीचे रह गया। पीला-ज़र्द उसका चेहरा निकल आया, और आंखें नीची करके वह अपने रास्ते निकल गया।

सोहणेशाह, विचारों में डूबा हुआ अंदर घुसा। आंगन खाली-खाली था। बैठक खाली-खाली थी। बड़ा कमरा खाली-खाली था। सीता अपने कमरे में चादर ओढ़कर लेटी हुई थी। इससे पहले कि सोहणेशाह ने झांक कर अंदर देखा, लड़की ने अपना मुंह चादर के नीचे छिपा लिया।

और फिर कुलदीप का कुता शेरू सोहणेशाह के पांव सूंघने लगा। बार-बार उसे पकड़ कर गुसलखाने की ओर ले जाता। गुसलखाना गीला-गीला था।

जैसे कोई मुंडी हुई भेड़ हो, सीता दिनभर अपने कमरे में मुंह-सिर लपेट कर निढाल पड़ी रही। चूल्हे-चौके का सारा काम जीवणी महरी ने किया। रात पड़ने पर कहीं वह उठी, सामने गुसलखाने में जाते हुए, कुलदीप ने उसे देखा। जैसे संभाल-संभाल कर रखी, लिपी-पुती अट्टालिका का भग्नावशेष हो। जैसे भरपूर लहलहाती खेती को कोई रौंद गया हो।

गुसलखाने में मुंह-हाथ धोते हुए सीता को लगा जैसे उसके पुट्ठे अकड़ गए हों। उसका अंग-अंग कसमसा रहा था, जोड़-जोड़ दुख रहा था। जैसे लूटने वाले के शिकंजे में से निकली कटी पतंग हो जिसके परखचे उड़ गए हों। उसकी बोटी-बोटी कुलबुला रही थी; उसका सारा शरीर जैसे अफरा गया था, ऐंठ रहा था।

और फिर सीता को यह दुख-रहा अपना-आप भला-भला सा लगने लगा। एक मंद-सी मुसकान उसके होंठों पर खेलने लग गई। और उसने अपनी भारी हो रही पलकों पर ठंडे पानी के छींटे मारने शुरू कर दिए। जैसे नग़में उसके कानों में गूंजने लग गए हों, एकदम वह विभोर हो गई। शहनाई के स्वर जैसे चारों ओर, आस-पास मचलने लग हों।

और इस गहमा-गहमी में उस सुबह की एक-एक घटना उसकी आंखों के सामने तैरने लग गई – गुरमीत प्रायः उनके यहां आता था। पिछले कुछ दिनों से उसका इनके घर में आना-जाना बढ़ गया था। समय-कुसमय आ जाता। कभी कोई बहाना, कभी कोई बहाना, कभी बिना किसी बहाने के भी। इतने सहृदय बाप का बेटा, उसका इस प्रकार इनके यहां आना किसी को भी कभी बुरा नहीं लगा था। और फिर इन दिनों कुलदीप और गुरमीत में गहरी दोस्ती हो गई थी। हर रोज़ वे मिलते थे। प्रायः जब गुरमीत आता, बातें सोहणेशाह से करता, बहस कुलदीप से होती, पर सीता को लगता जैसे देख वह उसे रहा हो। गुरमीत उनके आंगन में होता तो उसे एक नरम-नरम सी गर्माहट महसूस होती रहती। उसे लगता जैसे कोई आंखों में दिए जलाए, उसके पीछे-पीछे घूम रहा हो। वह बड़े कमरे में जा रही होती तो बड़े कमरे में, बैठक में जा रही होती तो बैठक में, वह सुख-चैन देनेवाली नज़रें उसके साथ-साथ चलतीं। और सीता को लगता जैसे उसका अंग-अंग मंचल रहा हो, एक ताज़गी, एक नयापन उसमें आता जा रहा था। गुरमीत इनके यहां से होकर जाता तो उसे आस-पास खिली हुई बहार-सी महसूस होती, जैसे चारों ओर मुस्कराहटें बिखर रही हों।

और आज सुबह जब उसे सामने ड्योढ़ी में आते हुए सीता ने देखा तो वह सिर से पांव तक कांप गई। घर में कोई भी नहीं था। राजी भी कुछ देर हुई, बाहर चली गई थी। सारा घर बिल्कुल खाली था। बस सीता ही थी, और कोई नहीं।

सीता को लगा जैसे उसके शरीर का सारे का सारा लहू चूस लिया गया हो। और सामने गुरमीत आ रहा था, कंधे पर बंदूक उठाए हुए, जैसे कोई हमलावर पराथी धरती में घुस कर, दगड़-दगड़ करता आ जाए। और बड़े कमरे में किसी काम के लिए गई सीता, वैसी की वैसी देखती-हुई, पलंग पर औंधी जा गिरी। एक नशे-नशे में चूर, उसकी पलकें मुँद गईं, उसके

हाथ-पांव ठंडे होते गए, जैसे कोई नीचे ही नीचे कुएं में उतर रहा हो; चक्कर-चक्कर; अंधेरा-अंधेरा, और फिर जैसे अंधेरे की नरम-नरम गोद में वह खो गई।

इसके बाद जब उसे होश आया तो जैसे वह रेशम के लच्छों में गोते लगा रही हो।

और सामने मेज़ पर रखे रेडियो पर समाचार सुनाए जा रहे थे –

"जैसे हम पहले ऐलान कर चुके हैं, आज सवेरे तीन बजे कच्छ के उत्तर पश्चिमी कोने में सीमा के पास "सरदार" नामक भारतीय पुलिस चौकी पर पाकिस्तानी सेना ने अचानक हमला कर दिया।

"इस चौकी पर भारतीय पुलिस की एक छोटी टुकड़ी नियुक्त थी। इस पुलिस टुकड़ी ने बड़ी वीरता से पाकिस्तानी सेना का मुकाबला किया, जिसके कारण पाकिस्तानी पीछे हट गए। उनके ३४ सिपाही मारे गए और चार सिपाही पकड़े गए। बंदी पाकिस्तानी सिपाहियों से जो कागज़ात मिले हैं उनसे पता लगता है कि हमले की तैयारी मार्च में शुरू की गई थी और 'सरदार' चौकी पर आक्रमण का आदेश ७ अप्रैल को दिया गया था।"

और गुरमीत अवाक् उसके चेहरे की ओर देख रहा था। उसके माथे पर, उसके गालों पर, उसकी आंखों पर बिखरे हुए उसके बालों को। और फिर एक अकथनीय वेग से उसने उसे चूमना शुरू कर दिया, उसके होंठों को, उसके दांतों को, उसकी पलकों को, उसकी गर्दन को, उसकी बांहों को, उसकी कलाइयों को, उसके हाथों को, उसकी उंगलियों को, उसके पोरों को, उसके नाखुनों को। रेडियो से आवाज आ रही थी :

"कच्छ" संस्कृत का शब्द है जिसका मतलब है किनारे की धरती या दलदल।

"रण" शब्द संस्कृत के शब्द क्षरण से निकला मालूम होता है जिसका मतलब है खारी मरुभूमि।

राजस्थान की लूणी नदी भी इसमें मिलती है और उसका पानी बड़ा खारा है।

सारा इलाका रेत-रेत, पत्थर-पत्थर और कीचड़ है।

सारे भारत में बस यह एक इलाका है जहां जंगली गधे मिलते हैं।

कच्छ में एक साल वर्षा होती है और तीन-चार वर्ष सूखा पड़ा रहता है।

कच्छ की औसत आबादी ४२ व्यक्ति प्रति वर्गमील है।

फसलों में यहां ज्वार और बाजरा होता है, दालों में मूंग और मोठ। मूंगफली और कपास भी होती है।

इस प्रकार गुरमीत उसे चूम रहा था, प्यार कर रहा था, सीता को लगता, उसके अंग-अंग पर पड़ी जन्म जन्मांतरों की मैल जैसे उतर रही हो। गुरमीत के हर स्पर्श से, हर चुंबन से जैसे उसके जकड़े हुए अंग आज़ाद हो रहे हों, जैसे किसी कब से बंद पड़े महल की खिड़कियां खोल दी जाएं। फिर बाहर लोगों के नारे लगाने की आवाज़ आने लग गई। "पाकिस्तान मुर्दाबाद !" "हिन्दुस्तान ज़िंदाबाद !" "भारत माता की जय !" "पाकिस्तान हाय-हाय !" के नारे ऊंचे होते जा रहे थे, और भी तेज़ होते जा रहे थे। जैसे जैसे नारे ऊंचे होते, जैसे-जैसे नारे तेज़ होते, वैसे-वैसे सीता गुरमीत के आलिंगन में एक बेल की तरह उसके साथ चिपटती जा

रही थी। बाहर गली में लोग पथराव कर रहे थे, आग लगा रहे थे। पुलिस सीटियां बजा रही थी, अश्रुगैस के गोले छोड़ रही थी। एक हंगामा था, एक तूफान था। ऐसा लगता था, लोग तहस-नहस कर डालेंगे। इसी तरह नारे लगाते हुए मर्द, औरतें और बच्चे पाकिस्तान की सीमा पार कर जायेंगे और उस देश को मलियामेट कर डालेंगे। इतने में हवा का एक तेज़ झोंका आया और बड़े कमरे का दरवाज़ा आप-ही-आप भेड़ा गया। एक पट पर दूसरा पट।

और सीता को लगता जैसे वह दबी जा रही हो, जैसे उसका दम घुट कर रह जायेगा। जैसे कोई उसके मांस के छिलके उतार रहा हो। बाहर नारे और ऊंचे हो गए थे उसे लगता था किसी भी क्षण लोग उनकी हवेली का दरवाज़ा तोड़कर दगड़-दगड़ करते उनके आंगन में घुस आयेंगे। और घर की एक-एक चीज़ को लूट लेंगे, कुचल कर रख देंगे। बरसों पहले बिल्कुल ऐसा ही हुआ था। तब, जब कि हिन्दुस्तान आज़ाद हो रहा था, पाकिस्तान बन रहा था।

और फिर सीता को लगता जैसे वह किसी कुएं में उतरती जा रही हो, नीचे ही नीचे, और नीचे, और भी नीचे। और जैसे वह गचागच हो गई हो। उसे किसी चीज़ की खबर न रही, बाहर क्या हो रहा था, भीतर क्या हो रहा था।

एक स्वाद-स्वाद, और बस!

74

कुलदीप ने जिस दिन से पाकिस्तानी पत्रिका में राजकर्णी की कहानी पढ़ी, वह इस बात के लिए बेकरार था कि किसी तरह पाकिस्तान जाकर कहानी लिखने वाली को ढूंढ़े। कहानी लेखिका ने अपना नाम, पता कहानी के साथ क्यों नहीं दिया था? फिर वह सोचता, हो सकता है कि वह कहानी राजकर्णी ने स्वयं न लिखी हो, किसी और ने लिखी हो, जो उसकी व्यथा जानता हो। शायद राजकर्णी ने अपनी आपबीती किसी को सुनाई हो।

पाकिस्तान से युद्ध छिड़ जाने से कुलदीप का उस देश जा सकना असंभव हो गया था।

कुलदीप ने उस कहानी के बारे में सोहणेशाह से बात नहीं की थी। सतभराई के पत्र आने बंद हो गये थे। फिर इस तरह की बात चिट्ठी में लिखना उचित भी था या कि नहीं, इसका वह फैसला न कर सकता था।

कुलदीप अजीब उलझन में था। सीता कुछ दिनों की मेहमान थी। गुरमीत का उनके यहां आना-जाना और ज्यादा बढ़ गया। सुबह-शाम वह उनके यहां पाया जाता, सीता भी कोई न कोई बहाना ढूंढ़कर उनके यहां जाने को तैयार रहती। और सोहणेशाह को आजकल फिर अपनी बेटी राजकर्णी की याद सताने लगी थी। वह सोचता, उसकी बेटी कभी ऐसा न करती! इस तरह किसी पराये लड़के से उठना-बैठना, उसे मंजूर नहीं था। और फिर सीता को तो उसने अपने मन ही मन में कुलदीप के लिए तय किया हुआ था। चाहे कुलदीप इतने वर्षों से

टस-से-मस नहीं हो रहा था। सोहणेशाह सोचता था, समय के साथ सतभराई को भूलकर वह सीता की ओर आकर्षित हो जायेगा। पर ऐसा नहीं हो रहा था। सोहणेशाह का बनाया हुआ नक्शा वैसे का वैसा धरा था, उसमें कोई रंग नहीं भरा गया था, उसका तराशा हुआ ज़िंदगी का गिरेबान वैसे का वैसा पड़ा था, उसमें कोई बटन नहीं टांक रहा था।

आजकल फिर जब वह सतभराई की बच्ची राजी-बेबी को देखता, उसे आवाज़ देता, उसे अपनी बेटी राजकर्णी को याद आ जाती, और कितनी-कितनी देर वह गुम-सुम पड़ा रहता। कुलदीप इस तरह सोहणेशाह को करुणा में देखकर अत्यन्त परेशान होता। उसका जी चाहता, वह सोहणेशाह को उस कहानी के बारे में बता दे। फिर वह अपने आपको समझाता, सोहणेशाह भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा पर सिर पटक-पटक कर मर जायेगा, इसे कोई उधर नहीं जाने देगा।

जैसे सोलह-सत्रह साल की लड़की हो, उधर सीता आज और, कल और होती जा रही थी। मुहब्बत की एक नज़र से जैसे उस पर निखार आ गया हो। हर समय मुस्कराती रहती, हर समय सजती रहती, पलकों में लाख सपने संजोये किसी की राह देख रही होती।

उधर गुरमीत हैरान होता, जब से सीता ने उसके खेतों में चक्कर लगाना शुरू किया था, वह आलू बोता तो उससे आलू न संभाले जाते, मूंगफली की खेती होती तो मूंगफली ढो-ढो कर वह थक जाता। उस वर्ष, उसके खेत में खड़े ईख को ही दूनी-चौगुनी कीमत पर खरीद लिया गया।

एक दिन सीता उनके खेतों में से जा रही थी कि उधर से गुरमीत की मां गुरांदेई आ निकली। कितनी देर कुएं के पास, शहतूत के नीचे खड़ी सीता को देखती रही। और फिर उसके होंठ हिले तो उसने अपने-आपको सुनाने के लिए कहा, भाग्यवान लड़की है। जो गुरांदेई यह सोचने लगी थी कि उसका बेटा कुंवारा रह गया है, और उसके भीतर मां के कलेजे में कटार चुभ जाती थी, आजकल उसे यह दर्द भूलता-सा जा रहा था। और उस शाम दूर तक सीता की तीतर-पंखी चुनरी को देखते हुए उसकी मंद पड़ रही दृष्टि में, जैसे सुबह की नई किरण दमकने लगी हो। पिछले कई वर्षों से जब वह गुरमीत की ओर देखती, उसे लगता जैसे कोई बिछड़ी हुई सवारी हो, सड़क के किनारे, बस के छुट जाने पर बेकार खड़ी हो। अभी वह शहतूत के नीचे ही थी कि मालटे के पेड़ों के पीछे से गुरमीत निकला। उसके दोनों हाथों में एक-एक मालटा था। लाल-लाल मालटे जैसे उसके हाथ में न समा रहे हों। गुरांदेई ने देखा तो जैसे उसके स्तनों में दूध उतर आया हो। उसे अपने जाये पर बेहद लाड़ आया। एक क्षण भर के लिए गुरांदेई जैसे फिर जवान हो गई हो; वह दिन, जब वह अपने पलौंठी के बेटे गुरमीत को बांहों में लेती थी और वह उसकी छलक रही छातियों को चूसने लग जाता था।

"अरे जीता रह मेरे लाल, अब तो मैंढी बात मान ले।" जब गुरमीत उसके पास आया गुरांदेई ने प्यार में भरकर उससे कहा।

"क्या मैंढी-तैंढी करती-रहती है तू अब तक?" गुरमीत ने उसे टालने की कोशिश की।

"अच्छा, "मेरी" "तेरी" सही, पर तू मेरी बात को ऐसे मत गंवा। अब मेरी सांसों का कुछ

भरोसा नहीं।"

"क्या फुज़ूल की बातें करती रहती हैं?"

"कैसे तेरी बोली इस तरफ के शहरियों की तरह होती जा रही है।"

"इस तरफ और उस तरफ, झूठी बातें। अब वह पराया देश है जिसमें बैरी बसते हैं।"

"हाय, बेटा! मुझे ऐसी बातें न सुनाया कर।"

"मां! तुझे तब पता चलेगा जब दीपी का घरवाला और उनका बेटा हम पर चढ़ आयेंगे। हमारे देश पर उनके देश ने हमला किया है। यह लड़ाई इधर भी फैल सकती है और फिर हमारे शहरों और मंदिरों -गुरुद्वारों पर वे बम बरसायेंगे, उनके गांवों पर, उनकी मस्जिदों, खानकाहों और मज़ारों पर हमारी गोलियां बरसेंगी।"

"हाय, बेटा, मुझे ऐसी बातें न सुना।"

"अगर कबूतर आंखें बंद कर ले तो क्या बिल्ली झपटने से बाज़ आ जायेगी?"

"ये मुए पाकिस्तानी, पता नहीं हमारे पीछे क्यों पड़ गये हैं?"

"हम भी उनके साथ कौन-सी कमी बरतते हैं?"

"वे भी तो लड़ाई पर उतारू रहते हैं।"

"इस बार मुझे लगता है, कुछ होकर रहेगा।"

"हां, सच, कच्छ में लड़ाई की क्या बात है? मैं तो जब रेडियो सुनती हूं, बुरी खबर ही आती है।"

"कच्छ पर जो हमला हुआ सो हुआ, उसे तो हम निबट लेंगे, हमारे प्रधानमंत्री ने एलान किया है – अगर पाकिस्तान अक्ल की बात नहीं सुनेगा, इस तरह सीनाज़ोरी करेगा तो फिर भारत भी अपना तरीका अपनायेगा, अपने हथियारों और फौजों को, जिस तरह चाहेगा, इस्तेमाल करेगा।"

"पर बेटा मैं तुझसे पूछती हूं, मुझे सच-सच बता यह झगड़ा शुरू करने में कसूर किसका है?"

"ताली दोनों हाथ से बजती है। आजकल की सरकार प्रापेगैंडा के सहारे चलती है, सच्ची बात सौ बिसवे किसी को पता नहीं लगने देती। मैं नही कहता, हम हिन्दुस्तानी देवता हैं, जो कुछ हम कहते-करते हैं, हमारा फैसला हमेशा सच्चाई पर टिका होता है, पर इस बार हमला क़रने में पहल पाकिस्तान की है।"

"और हमने उनके मुंह पर थप्पड़ मार कर खदेड़ दिया है।"

"टेढ़े आदमी का सात बीस सौ होता है।"

"तू ऐसा क्यों कहता है, बेटा?"

"इसलिए कि जब तक कोई तीसरा फैसला न दे, मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं कि जो कुछ हमारी सरकार कहती है, वह ठीक है। पाकिस्तान बनते वक्त, उधर हिन्दुओं और सिक्खों पर बड़े जुल्म हुए, पर इधर मुसलमानों पर क़हर ढाने में हमने कोई क़सर नहीं छोड़ी। मैं तो इधर था, मैंने कभी किसी से कहा नहीं, पर जो अत्याचार हमने कम गिनती वाले लोगों पर

किए,उनका ध्यान आते ही,सिर शर्म से झुक जाता है।"

"पर यह चीनियों से जो भाईचारा पाकिस्तानियों ने गांठ लिया है,यह बात मेरी समझ में नहीं आई।"

"बेशक यह उनकी कम अक्ली है। अगर चीनी हमसे नहीं निभा सके तो क्या भरोसा है,उनके साथ निभा लेंगे ?"

"पर वे भी क्या करें,बेटा ! अगर हम ही उन्हें दम न लेने दें। जब भाइयों-भाइयों की नहीं बनती तो परायों की चढ़ मचती है।"

"हम उनके लिए अपने देश के और टुकड़े करवाने से रहे ! कब तक कोई किसी के लिए अपने मांस के लोथड़े उतरवाता रहेगा ?"

"अभी तो तू कह रहा था,शायद कच्छ में उनका पक्ष न्याय की तरफ हो।"

"यह बात नहीं मां,यह बात नहीं है।"

"तो फिर और क्या बात है ?"

"मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

"कभी तू पाकिस्तान के खिलाफ बातें करने लगता है,कभी उनके हक़ में।"

"जैसे तू करती है मां !"

"हाय,कैसे उस देश को छोड़ा जाए जहां कोई पैदा हुआ हो,जहां कोई पला हो,जिसके चप्पे-चप्पे से लाखों संबंध जुड़े हुए हों।"

"जहां तेरी 'दीपी' है।"

"पता नहीं उजड़ कर कहां गई होगी !"

"लड़कियां कभी नहीं उजड़तीं। औरत घर बसाती है और नई गांठें लगातीं रहती हैं। तुझे तभी पता चलेगा,जब दीपी का घरवाला हवाई जहाज़ों में बम भरकर तेरे इस घर को,तेरे इस शहर को तहस-नहस कर डालेगा।"

"पर एक बार आये तो सही। अपने साथ मेरी दीपी को भी लेकर आये।"

"तेरे इस देश को वे गुलाम बना लेंगे।"

"मैं अपनी बेटी के मर्द की गुलामी कर लूंगी।"

"माँयें बड़ी दीवानी होती हैं।"

75

सोहणेशाह ने ज़िंदगी में कई सदमे उठाये थे,पर जो कसक उसके दिल में आजकल सीता के रंग-ढंग देखकर हो रही थी,इस तरह का कष्ट उसे पहले कभी नहीं हुआ था। उस समय भी नहीं जब एक रात कुलदीप से बातें करते हुए,सतभराई को उसने अपनी आंखों से देखा था।

उस समय भी नहीं जब कुलदीप उनके घर पुलिस ले आया था और सतभरायी अपने पाक-कुरान को छाती से लगाकर पराये लोगों के साथ चली गई थी।

दस बार कहने के बाद खाने को बैठता, कौर जैसे उसके गले से नीचे न उतर रहा हो। सोहणेशाह कई-कई बार कोई न कोई बहाना बनाकर बाहर चक्कर काटता रहता। उसे अपने आंगन की हवा में से दुर्गंध आती। उसे अपने कुएं के पानी में से बदबू आती। उसका बड़े कमरे की छत के नीचे दम घुटने लगता। किसी की कोई बात उसे अच्छी न लगती। राजी, खेलती हुई आती और दोनों बांहें उसकी गर्दन में लपेट कर, उसके साथ लाड में चिपट जाती। सोहणेशाह आहिस्ता से उसकी बांहों को हटाकर मासूम बच्ची के मुंह की ओर देखने लग जाता, उसे उसके भीतर भी एक औरत नज़र आती।

उधर सीता के ढब और के और हो गये थे। सुबह मुंह-अंधेरे उठती, नहा धोकर गुरुद्वारे चली जाती। "ब्राह्मणी गुरुद्वारे जा रही है।" सोहणेशाह के भीतर का ज़हर उसके दाँतों में घुल जाता। हिन्दू मां-बाप की बेटी, सोहणेशाह के गुरुद्वारे में जाती थी, उसे इससे खुश होना चाहिए था। पर नहीं, सीता अगर सोहणेशाह को बुरी लगना शुरू हो गई थी तो उसके अच्छे काम भी सोहणेशाह को ज़हर लगते थे। सीता, घर की फालतू चीज़-वस्तु गुरमीत के यहां भेजती, उनके यहां से कुछ-न-कुछ इनके यहां आता रहता। सोहणेशाह को यह सब कुछ तकलीफ देता। उसका जी चाहता, बाहर आ-जा रही सीता की वह चमड़ी उधेड़ दे। उसका जी चाहता, सीता से मिलने के लिए आनेवालों की वह टांगे तोड़ कर रख दे।

आज कुछ और, कल कुछ और, सीता तो पहचानी न जाती। सोहणेशाह देख-देखकर हैरान होता। कुलदीप अजीब मिट्टी का बना हुआ था। उस पर कोई असर नहीं हो रहा था। अपने काम से काम। सुबह निकलता और कहीं शाम को घर लौटता। कभी घर में होता तो राजी को बिठाकर पढ़ाने लगता, या उसे बाहर सैर कराने ले जाता। सीता से उसी तरह से बोलता जैसे पहले बोलता था। उसी तरह से उसकी छोटी-छोटी जरूरतों का ध्यान रखता जैसे पहले रखता था।

सोहणेशाह इससे उलट था। जहां तक हो सकता, आजकल, वह सीता से बात तक न करता। हर समय उसकी नाक चढ़ी रहती। हर वक्त खफा-खफा। हर समय जैसे खाने को दौड़ता। कभी किसी पर नाराज़ होता, कभी किसी पर बरसने लगता। कसूर किसी का होता, डांट-डपट किसी को पड़ती। ऐसा लगता जैसे सीता का क़द और ऊंचा हो गया हो, उसके नयन, उसके नक्श और तीखे हो गए हों, उसका रंग, उसका रूप और गोरा-गोरा दिखाई देने लगा। जहां खड़ी हो जाती वहां से खुशबू आने लगती। लाख सपने पलकों में संजोये, लाख नगमें होंठों में दबाये, एक खुमार-खुमार में उठती, भीतर-बाहर आती-जाती रहती।

न किसी की निंदा न किसी की बुराई। न कोई फिक्र न कोई चिन्ता। एक लगन, एक चाह, एक तलाश, और दुनिया की बाकी सब चीज़ जैसे तुच्छ हों। अपने मतलब से मतलब, सारी दुनिया की ऊंच-नीच से बेनियाज़।

सीता को लगता, वह होंठ खोलेगी तो आस-पास तराने लहराने लगेंगे। सीता को लगता,

वह आंख उठा कर देखेगी तो आगे-पीछे इन्द्र-धनुष के रंग बिखर-बिखर जायेंगे। सीता को लगता, वह पत्थर को छुएगी तो उसमें ज़िंदगी मचलने लगेगी।

कुछ दिनों से सीता ने एक नया शगल पकड़ा हुआ था। राजी को पकड़ कर सजाती रहती। स्कूल जाने से पहले, स्कूल से लौटने पर जब भी राजी उसके हाथ आ जाती, वह उसे संवारने-सजाने लग जाती। नित्य नए लत्ते उसके लिए बनवाती रहती, कभी किसी तरह के कपड़े, कभी किसी तरह के। हर रोज़ उसके बाल और-और तरह से बनाती, कभी दो चोटियां, कभी एक चोटी, कभी सीधी मांग, कभी टेढ़ी। कभी उसके बाल लपेट कर, कुछ के कुछ बना देती।

और फिर एक दिन, पता नहीं, उसके मन में क्या आया, उसने कैंची पकड़ी और राजी के बाल काट डाले। रेशम के लच्छों जैसे लड़की के बाल काट कर, उसने सजाना शुरू कर दिया। राजी को आप अजीब-अजीब लग रहा था। अभी वह लड़की को सजा ही रही थी कि उधर से सोहणेशाह आ निकला। उसने देखा तो क्रोध से वह कांपने लगा। बेशक वह मुसलमान मां-बाप की बच्ची थी, बेशक सीता हिन्दू लड़की थी जिसके निकट केशों का कोई महत्व नहीं था, पर उसे, सोहणेशाह का कुछ ध्यान रखना चाहिए था। सोहणेशाह की गिनती शहर के पतवंतों में होती थी। और उसने इस बच्ची को अपनी नवासी की तरह रखा हुआ था। राजी उसे कभी भी परायी नहीं लगी थी।

और सोहणेशाह सोचता इस लड़की के साथ अब और निर्वाह नहीं हो सकेगा। अब या तो ईश्वर उसे उठा ले या फिर इस लड़की को कहीं इधर-उधर कर दे। इस लड़की के साथ हमारा गुज़ारा नहीं हो सकेगा।

और सारी रात, बिना कुछ खाये-पिये सोहणेशाह जैसे भट्टी में भुनता रहा।

अगले दिन सुबह उठा तो उसने देखा, सीता का बुरा हाल हो रहा था। आंगन में खड़ी थी कि उसका जी मितलाने लगा, और वहीं खड़े-खड़े उसने उल्टी कर दी। और फिर उल्टियां ही उल्टियां, न उसे पानी पचता न कुछ और। एक डाक्टर आया, दूसरा आया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, सीता की उलटियां रुकने में नहीं आ रही थीं। देखते-देखते लड़की आधी हो गई।

सोहणेशाह बार-बार अपने आपको कोसता। वह सीता को देखता तो उसे उस पर बहुत तरस आता। इस तरह बेहाल उलटियां करते हुए उसे देख कर वह अपने आपको लानतें भेजने लगता। डाक्टरों का इलाज रास न आया तो वह हकीम को बुला लाया। दो रोज़ उसका इलाज करके जब कोई फ़र्क न पड़ा तो शहर के सब से बड़े वैद्य को ले आया। सोहणेशाह शहर जाता तो ढेर-दवाइयां उठा लाता। किसी तरह लड़की ठीक हो जाये। बार-बार सोचता क्यों उसने उसका बुरा सोचा था। पुत्र, कुपुत्र हो जाते हैं लेकिन पिता, कुपिता कभी नहीं होता।

जब और कोई रास्ता नज़र न आया, कुलदीप अपनी जान-पहचान की एक लेडी डाक्टर को बुला लाया। लेडी डाक्टर कितनी देर तक निरीक्षण करती रही। कुलदीप बगल के कमरे में बैठा, पर्दे की ओट में से देख रहा था। सीता से छोटी-छोटी, इधर-उधर की बातें करते हुए

मुस्करा रही लेडी डाक्टर कभी नब्ज देखती, कभी टोंटी लगाती, कभी कहीं टटोल कर देखती, कभी नहीं। ऐसा करते हुए, अचानक लेडी डाक्टर का चेहरा स्थिर हो गया। कुलदीप देख रहा था, जैसे कोई अच्छा-भला बागीचे में टहल रहा हो और उसे सामने फनियर खड़ा दिखाई दे जाये। और फिर देखते-देखते किसी को जहरीला सांप काट ले। लेडी डाक्टर का मुंह पत्थर की तरह कड़ा हो गया, उसकी नसें जैसे तन गई हों। पहले पीली, फिर नीली, और फिर उसके चेहरे की रंगत काली होती, कुलदीप को प्रतीत हुई। और फिर लेडी डाक्टर सीता के पेट का कभी कोई कोना टटोलती, कभी कोई कोना। और फिर उसने पीछे हट कर दरवाज़ा बंद कर लिया। कितनी देर तक लेडी डाक्टर सीता के साथ बंद कमरे में बुड़-बुड़ कानाफूसी करती रही।

इतनी बड़ी तफ़तीश भी क्या ? कुलदीप को कहीं बाहर जाना था और वह सोच रहा था, वह लेडी डाक्टर को रास्ते में उतारता जायेगा। आजकल अपने विभाग की जीप कुलदीप स्वयं चलाता था। बैठे-बैठे कुलदीप ऊंघने लगा। पता नहीं कितनी देर से वह इंतज़ार कर रहा था। और फिर सीता के कमरे की कुंडी खुली और लेडी डाक्टर अपना बैग संभाले हुए जाने के लिए तैयार खड़ी थी। लेडी डाक्टर ने सीता की बीमारी के बारे में कुलदीप से कोई बात नहीं की और न उसने ही इस संबंध में कुछ पूछा। चुपचाप वह जीप में जा बैठी। चुपचाप जीप को चलाकर, कुलदीप उसे लेकर रवाना हुआ। कुलदीप कम बोलता था, लेडी डाक्टर ने उससे भी ज्यादा चुप्पी साध रखी थी।

रास्ते में सड़क ऊबड़-खाबड़ थी। पिछले दिनों फौज की टुकड़ियां इस सड़क से गुज़रती रही थीं, कभी टैंक और कभी मशीनगनें, कभी घुड़सवार तो कभी पैदल फौजी। तमाम सड़क का उन्होंने सत्यानाश कर दिया था। एक तो सड़क का बुरा हाल था, दूसरे कुलदीप की जीप जैसे छकड़ा थी, चलती थोड़ा थी, झटके ज्यादा मारती थी। कभी किसी गड्ढे में से निकल कर, कभी किसी पत्थर को फलांग कर, डाक्टर की आंते तक हिल गई थीं।

"मेरी तो कोई बात नहीं, मैं आजकल फैमली प्लानिंग के सेन्टर की इंचार्ज हूं, पर इस लड़की को आप कभी इस जीप में सवारी कराने न ले जायें।" लेडी डाक्टर ने मुस्कराते हुए कटाक्ष किया।

कुलदीप अपने ध्यान में गाड़ी चला रहा था। उसे कोई जवाब नहीं सूझा।

और लेडी डाक्टर खामोश हो गई।

जैसे किसी ने सारंगी के किसी नग़मे की कोई मुरकी सुनी हो, कुलदीप लेडी डाक्टर की आवाज़ की मधुरता के नशे-नशे में, जो कुछ उसने कहा था, उसे समझ भी नहीं सका।

प्रगतिशील विचारों की लड़की, लेडी डाक्टर को एक धक्का-सा लगा। उसे महसूस हुआ जैसे कुलदीप जान-बूझकर अनजान बन रहा हो।

और फिर सारा रास्ता लेडी डाक्टर मुंह फुलाये चुप बैठी रही। न उसने कोई बात की, न कुलदीप ने ही कोई बात शुरू की।

अपने दफ्तर पहुंच कर लेडी डाक्टर जीप से नीचे उतर गई, कुलदीप वैसे-का-वैसा

स्टियरिंग पर हाथ रखे, इंजन को चालू रखते हुए, जीप में बैठा था। सहसा लेडी डाक्टर के मन में पता नहीं क्या आया कि उसने कुलदीप को जीप से उतर कर, भीतर उसके दफ़तर में आने के लिए कहा।

कुलदीप को जल्दी थी, उसने किसी को मिलने का वक्त दिया हुआ था, पर लेडी डाक्टर जैसे अपनी बात पर अड़ी हुई थी। कुलदीप हारकर, हैरान-सा, उसके साथ चल पड़ा। अपने कमरे में पहुंच कर उसने कमरा भेड़ दिया और लाल-लाल चेहरा, कहर-भरी नज़रों से कुलदीप की ओर देखने लगी।

कुलदीप की समझ में कुछ नहीं आ रहा था।

"इस तरह मासूम बनने की ज़रूरत नहीं।" आखिर लेडी डाक्टर ने ज़हर-बुझे शब्दों में कहा, "इस तरह मासूम बनने की जरूरत नहीं। आपको फौरन से पहले इस लड़की से शादी कर लेना चाहिए।"

कुलदीप अभी भी कुछ नहीं समझा था। बिट-बिट उसके मुंह की ओर देख रहा था।

"मर्दज़ात! तुम लोग सब ऐसे ही होते हो। इस तरह एक कुंवारी लड़की की ज़िंदगी बरबाद करने का आपको कोई अधिकार नहीं।"

"आपका मतलब क्या है?" कुलदीप को जैसे एकदम सारी बात समझ में आ गई हो।

"मतलब साफ है। लड़की के पेट में बच्चा है। और आपको अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए।"

"ओ ओ ओ अ आ" कुलदीप सहसा संभल गया।

"आप लोग बड़े स्वतंत्र विचारों के बने फिरते हैं। अब आपको अपनी आधुनिकता का प्रमाण देना होगा।"

"बेशक, बेशक।" कुलदीप सारे मामले को भांप गया। "बेशक, बेशक डाक्टर साहब इस तरह एक लड़की की ज़िंदगी को बरबाद नहीं होने दिया जायेगा।"

और कुलदीप लेडी डाक्टर से आज्ञा लेकर बाहर निकल आया। अजीब समस्या थी। इस तरह के शिकंजे में कुलदीप पहले कभी नहीं फंसा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, वह क्या करे, क्या न करे। इस बारे में वह किसी से बात करने लायक भी नहीं था। सारी रात करवटें बदलते हुए निकल गई।

अगले दिन लेडी डाक्टर ने उसे बुलवा भेजा। सवेरे-सवेरे अभी वह घर से निकला भी नहीं था कि उसका संदेश आ गया।

76

अचानक एक दिन पूरन अपने गांव में आ घुसा। सामने उसका कुत्ता मोती उसकी बाट देख

रहा था। जैसे इसे, उसके आने की भनक पड़ गई हो।

पूरन ने अपने कुत्ते का नाम मोती रखा था। लोग सोचते, इसलिए कि गुजरी की कुतिया का नाम "मोतिया" था।

मोती बड़ा असील कुत्ता था। दूध-सी सफेद, मुलायम खाल, पूरन उसे दोनों समय ब्रुश करके संवारता रहता। खड़े कान, मुड़ी हुई पूंछ, बालिश्त भर कद, लम्बूतरा-सा छोटा मुंह। छोटी-छोटी जगमगाती हुई आंखें जैसे संगमरमर में मोती जड़े हों। दिन-रात का, पूरन और उसका साथ होता। पूरन बाहर जा रहा है, तो मोती उसके साथ है। पूरन खा रहा है, तो पहला कौर मोती को और दूसरा अपने मुंह में डालता है। पूरन सो रहा है, तो मोती उसकी पायंती पर आ कर पड़ जाता। रात को पूरन किसी कारण क्षण भर के लिए उठता, तो मोती उसके तकिए पर सिर रखकर सो जाता। वापस पलंग पर लौट कर पूरन पायंती पड़ जाता, अपने मोती को परेशान न करता।

छोटा-सा खिलौना था, जब पूरन उसे छावनी से लाया था। गली-मुहल्ले, आस-पड़ोस में हर समय 'मोती', 'मोती' की पुकार मची रहती। एक की गोदी से उतरता तो दूसरे की गोदी में जा बैठता। बच्चे, सुबह-शाम, मोती से खेलने के लिए पूरन के आंगन में जमे रहते। गली में खड़े ललचाई नज़रों से देखते रहते।

"चाचा, मेरी बहन ने मोती को मंगवाया है।"

"चाचा, मेरी मां ने मोती को बुलवा भेजा है।"

"चाचा, मेरी बूआ कहती है, आज मोती हमारे यहां नहीं आया।"

"चाचा, मेरी मौसी ने मोती को लाने के लिए कहा है।"

और पूरन उनको हिदायतें करता रहता, इसे कुछ खिलाना मत, इसको ज्यादा गोदी में मत उठाना, ज्यादा दौड़ाना नहीं, दौड़-दौड़कर थक जाता है तो जल्दी सो जाता है या चुप-चाप पड़ जाता है, न कोई बात करता है न कोई बात सुनता है। सारा आंगन सूना-सूना लगने लगता है।

हर सप्ताह पूरन, मोती को उसकी मां, बहन-भाइयों से मिलाने के लिए छावनी ले जाता। सालिम टांगा करके ले जाता। मोती बड़ा नटखट था, क्या मजाल जो एक जगह पर टिक कर बैठे। कभी फुदक कर कहीं बैठता, कभी कहीं। जिस दिन पूरन को छावनी जाना होता, गांव की औरतें उसे अपने छोटे-छोटे काम बताती रहतीं। जालंधर छावनी में, पुरानी; अंग्रेज़ों के ज़माने की दुकानों में कई तरह का छोटा-बड़ा सामान मिलता था, जो शहर में, बिसाती की दुकानों में नहीं होता था।

और फिर मोती बड़ा होने लगा, हर रोज़ और भी सुंदर, और भी दिलचस्प लगने लगा था। उस साल होली के दिन, गांव के लोगों में यह चर्चा चल रही थी कि पूरन ने मोती के साथ मिलकर होली खेली थी। और यह बात थी भी ठीक। सचमुच पूरन ने अपने आंगन में रंग घोलकर मोती से होली खिलाई थी। उसके साथी उसे बुला-बुलाकर हार गए, उसने उनकी एक न सुनी, और फिर जब गली में, आस-पड़ोस में होली खेलनेवालों के ढोल-नगाड़ों की आवाज़ आई, पूरन सहसा उठा और मोती के साथ होली खेलने लग गया। कभी अपनी ओर से उस

पर रंग डालता, कभी उसकी ओर से अपने ऊपर रंग डालता। मोती भी उसके इस सुहाने खेल में नाचता-कूदता रहा, उछल-उछल कर उसके हाथ से रंग की कटोरी छीनने की कोशिश करता। पूरन दौड़ता तो मोती उसके पीछे भागकर उसके टखने को पकड़ कर, हल्का-हल्का दांतों से पपोलने लगता। और इस तरह कितनी देर से होली खेल रहे उन दोनों को गांव के लड़कों ने आकर दबोच लिया। बंसी पिछवाड़े से दीवार फलांग कर चुपचाप आंगन में उतर आया और उसके सामने ड्योढ़ी की कुंडी खोल दी। पूरन, और पूरन के मोती और पूरन के दोस्तो ने वह ऊधम मचाया कि कुछ पूछो नहीं।

कुछ दिनों बाद, पूरन को बातों-बातों में गुरमीत ने बताया, छावनी में अंग्रेज़ी फिल्म चल रही थी जिसमें मोती जैसा कुत्ता था। सारी फिल्म कुत्ते की कहानी थी। कुत्ते की वफादारी की दास्तान। पूरन ने सुना तो मोती को लेकर सिनेमा देखने चल दिया। लोगों ने उसे लाख समझाया, कुत्ते को कोई हाल में घुसने नहीं देगा, पर पूरन ने किसी की नहीं सुनी। मोती को तांगे में बिठा कर वह छावनी जा पहुंचा और सिनेमावालों से लड़-झगड़कर सबसे कीमती टिकट खरीदकर मोती को फिल्म दिखा लाया। एक टिकट उसने मोती का खरीदा था, एक अपना। बस उसे एक ही अफसोस था, सिनेमा हाल के अंधेरे में मोती, पूरन के हाथों को चाटता चाटता उसके पैरों में सो गया था। उसकी सीट वैसी की वैसी खाली पड़ी रही। इंटरवल में शोर सुनकर उठा और आइसक्रीम का कप खाकर, फिर पिक्चर शुरू होने पर सो गया। पूरन कहता, पिक्चर ही बोर थी।

अभी बहुत दिन नहीं बीते थे कि एक दिन सवेरे तड़के ही गुजरी, पूरन के आंगन में आ निकली। अभी मुश्किल से पूरन ने आंखें खोली ही थीं। गुजरी ने बोलने को मुंह खोला ही था कि पूरन ने अपने होंठों पर इशारेवाली उंगली रखकर उसे धीरे बोलने के लिए कहा, उसकी पायंती पर मोती सो रहा था; कहीं उठ न जाये।

कई दिनों के बाद इस तरह गुजरी उसके आंगन में आई थी। जब कभी उसका दाव लगता, पूरन को घेर कर, इधर उधर की बातें करने लग जाती।

"गुरुद्वारे से उठकर तू पूरन के यहां आ गई, तुझे रब्ब का खौफ़ नहीं है।"

"पूरन! तुम तो इस तरह आंख मींच कर बातें कर रहे हो जैसे हमारे गांव में गुरुद्वारे का भाई बातें किया करता था। और कमबख्त ने एक दिन गली में मेरी बांह पकड़ ली। मैं उसके मुंह पर थूक कर घर चली आई।"

"तब तेरा नख़रा कौन-सा कम होता था।" पूरन मोती के बालों में उंगलियां फेर रहा था। उसका ज्यादा ध्यान कुत्ते की तरफ था।

"पूरन! यह मोती तुम्हारे साथ हर रोज सोता है?

"पायंती में आकर पड़ जाता है। मुझे सोते में कब पता चलता है।"

"हाय पूरन! मेरी तो नींद ही पता नहीं कहां उड़ गयी है। सारी रात करवटें बदलते कट जाती है।"

"तू किसी डाक्टर को दिखा। कहते हैं शहर में बड़ी सयानी डाक्टरनी आई हुई है।"

"अरे वह जो सोहणेशाह के बेटे कुलदीप के साथ फिरती है ?"

"कुलदीप, सोहणेशाह का बेटा नहीं। वह तो वैसे ही वहां रह रहा है। शायद उनके गांव का है।"

"और न ही सीता उसकी बेटी है, यह तो मुझे पिछले हफ्ते पता चला। यह चौधरी सोहणेशाह का घर है या यतीमखाना।"

"और वह बच्ची भी उसकी अपनी संतान नहीं।"

"सीता तो अब समझो गई कि गई।"

"क्या मतलब ?"

"पूरन, तू कभी घर से बाहर निकले तो तुझे कुछ पता चले। सीता और गुरमीत का किस्सा घर-घर में चल निकला है।"

"अच्छा है, जोड़ी तो उनकी खूब बढ़िया जुड़ेगी।"

"जोड़ी को इस दुनिया में कौन देखता है ? कहते हैं सोहणेशाह ने गुरमीत के घरवालों से बोलचाल बंद कर दी है।"

"गुरमीत का क्या है ? वह फिर फौज में चला जायेगा।"

"फौज में वह क्या जायेगा ? पाकिस्तान से तो, अंग्रेजों ने बीच में पड़ कर फैसला करवा दिया है। कच्छ का मामला पंचों के हवाले हो गया है।"

"अंग्रेज कभी बीच में पड़ कर लड़ाई शुरू कराते हैं। कभी बीच में पड़ कर समझौता करवा देते हैं। उन्होंने ही तो बीच में पड़ कर देश का बंटवारा करवाया था। ये सारे झंझट उस बंटवारे की ही तो देन हैं।"

"मेरा मर्द कहता है, इसमें अंग्रेज़ का कोई कसूर नहीं। देश का बंटवारा हमने मंजूर किया, हिन्दुस्तानियों ने भी और पाकिस्तानियों ने भी।"

"वह बदबख्त तो सारी उम्र टोडी-बच्चा ही रहा है।"

"अंग्रेज के गुण गाता रहता है। अपनी सरकार की हर चीज़ बुरी। हर समय यही कहेगा – अंग्रेज़ के राज में यह होता था, अंग्रेज़ के राज में वह होता था।"

"बच्चू को कभी अंग्रेज के हाथ नहीं लगे।"

"हाथ क्यों नहीं लगे, कहता है, जवानी में एक दिन खेतों में हाजत से फारिग होने गया था कि उधर से चांदमारी करके लौटे गोरों ने इसे पकड़ कर खूब मरम्मत की थी। एक ने तो इसका पाजामा उतरवा कर इसके चूतड़ों पर थूका था।"

"झूठ बोलता है बदबख्त। गोरों ने इसका बुरा हाल किया था। पांच गोरों ने बारी-बारी इसकी ऐसी तैसी करके रख दी। इसे अधमरा खेत में से चारपाई पर डाल कर हम लाये थे।"

"हाय मैं मरी ! यह तो अंग्रेज के गुण गाता नहीं थकता। बेहयाई की भी कोई हद होती है।"

"तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए गुजरी, वह तो तेरे बच्चों का बाप है।"

"मैं मुए को रखती हूं अपनी जूती पर। मैंने कभी उसे मुंह नहीं लगाया। वह दिन और

आज का दिन जब मैंने अपने कानों से सुना, मेरे भाई को इसकी गोली लगी थी।"

"पुरानी बातों पर खाक डालनी चाहिए।"

"तूने खाक डाली थी ? कैसे बंदूक लेकर तू गली-गली फिरता था ?"

"मुझे तो हलकान उठ खड़ा हुआ था।"

"मैं क्या करूं पूरन। मेरा यह पीछा नहीं छोड़ता। दिन-रात, दिन-रात यह मुझे नोच-नोचकर खा रहा है।"

"तुझे पता है, तेरे घरवाले ने अपनी बेइज्जती का बदला गोरों से कैसे लिया था ?"

"किसी मेम से जाकर मुंह काला किया था। मुझे कई बार बताया करता है।"

"मेम कहां की थी ? काली-कलूटी क्रिस्तान थी। बस गिट-मिट, गिट-मिट अंग्रेज़ी बोलती थी। पूरे दस रुपये ठोंक बजा कर उसने पहले धरवा लिए थे।"

"और कमज़ात, कमीना मुझे अपनी मुहब्बत की कहानियां सुनाता रहता है।"

"यह भी उसका हौसला तब पड़ा जब मैं और बंसी, सड़क के नीचे जामुन के पेड़ के पीछे छिपकर खड़े हो गये। हमेशा कहता था – मुझे गोरे से बदला लेना है और पैसे देकर भी सीढ़ियां चढ़ने की इसकी हिम्मत न पड़ती थी।"

"कूड़े का ढेर। देखना, आज मैं किस तरह इसकी मरम्मत करती हूं ?"

"तू यूं नाराज़ न हो भाग्यवान। इससे कौन-सा धर्मभ्रष्ट हो पाया होगा। मुश्किल से ऊपर चढ़ा ही था कि हमने देखा कि नीचे उतर रहा है।"

"उन्होंने इससे दस रुपये छीनकर, इसे नीचे खिसका दिया होगा ? परायी औरत के साथ सोना कोई खाला जी का घर है।"

77

अगले दिन, लेडी डाक्टर कुसुम के क्लिनिक की ओर जा रहे कुलदीप को, बार-बार उसके साथ अपनी पहली मुलाकात याद आ रही थी।

बहुत दिनों की बात थी। उन दिनों कुलदीप अगवा की हुई लड़कियों को इधर हिन्दुस्तान से निकाल कर पाकिस्तान भेजने वाले महकमे से संबंधित था। एक दिन इनकी जीप बहुत रात गए गांधी वनिता आश्रम पहुंची। जिस लड़की को उस दिन कुलदीप पुलिस की मदद से निकलवा कर लाया था, उसके पेट में बच्चा था। कुछ तो अचानक इस तरह पुलिस द्वारा उनके घर छापा मारने के कारण, कुछ कच्चे रास्ते और जीप के सफर के कारण लड़की अभी मुश्किल से आश्रम में पहुंची ही थी कि उसे पीड़ा शुरू हो गई। घुप अंधेरी रात थी। आश्रम की बिजली भी फेल थी। पूछने पर पता चला, आश्रम की लेडी डाक्टर सिनेमा देखने गई थी और कहीं बारह बजे लौटेगी। कुलदीप अजीब शशो-पंज में था। तभी किसी ने बताया कि उसी सड़क

पर चार कदमों पर एक और लेडी डाक्टर रहती है। सरकारी नौकर नहीं थी, प्राइवेट प्रैक्टिस करती थी। कुलदीप जीप लेकर लेडी डाक्टर को बुला लाया। बेचारी सिर धोकर खुले बाल लान में टहल रही थी। गर्मी भी कितनी थी। वैसी की वैसी थैला उठाकर कुलदीप के साथ चल पड़ी। आश्रम में न लेडी डाक्टर थी न कोई नर्स न कोई आया। सब छुट्टी मना रही थीं। उस रात लालटेन की रोशनी में कुलदीप ने लेडी डाक्टर कुसुम को एक अगवा की हुई लड़की के बच्चा पैदा करवाने में मदद दी थी। इधर लेडी डाक्टर के पसीने चू रहे थे, उधर बनने वाली मां तड़प-तड़प उठती थी। पीड़ा में लाख-लाख गालियां निकालती थी – हिन्दुस्तान बनानेवालों को, लाख-लाख गालियां निकालती पाकिस्तान बनानेवालों को। कभी एड़ियां रगड़ती थी, कभी बांहें झटकती थी, कभी सिर पटकती थी, अपने होंठों को अपने दांतों से काट-काट कर उसने लहू-लुहान कर लिया था। कुलदीप से यह देखा न गया और वह बाहर चला आया। इधर कुलदीप बाहर निकला, उधर ज़च्चा के बच्चा हो गया।

उसके बाद जब भी उस शाम की याद आती, कुलदीप कांप उठता। और लेडी डाक्टर कुसुम उसे छेड़ा करती, देखा है, आप मर्द लोग औरत का क्या हाल करते हैं ?

इतने बरस, जब भी उसे अवसर मिलता, लेडी डाक्टर कुसुम उसको यही कह कर छेड़ा करती। उस शाम का परिचय, धीरे-धीरे उनकी दोस्ती हो गई। दोस्ती थी, पर कुलदीप का संयम, कुलदीप की शराफत, एक पड़ाव पर आकर कब से वे स्थिर हो चुके थे। एक दूसरे के काम में काम आकर खुश हो लेते थे, एक दूसरे की संगति में एक अजीब तरह की शांति महसूस करते थे। बस इतना ही।

आज जब कुलदीप ने लेडी डाक्टर के क्लिनिक में प्रवेश किया, एक अजीब तरह की गंभीरता उसके चेहरे पर थी। कुछ देर चुप बैठी रही। कभी दराज़ खोलती, कभी बंद करती। कभी मेज़ के टेलीफोन को पीछे करती, कभी आगे। कभी दायीं ओर पड़े कागज़ों को बायें रखती, कभी बायीं ओर के कागज़ों को उठाकर दायें रखती।

फिर सहसा, उसके छल-छल आंसू बहने लगे। रोये जा रही थी, रोये जा रही थी। कुलदीप की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसकी नज़र में लेडी डाक्टर कुसुम बड़े मज़बूत दिल की लड़की थी।

"डाक्टर ! यह क्या हो रहा है ?" आखिर परेशान होकर कुलदीप ने मुंह खोला।

लेडी डाक्टर कुसुम की घिग्घी बंध गई थी। अपने मुंह को उसने साड़ी के पल्लू से ढक लिया था।

कुलदीप कितनी देर खामोश, उसके मुंह की ओर देखता रहा। वह डर रहा था कि कोई बाहर से आ जाये तो वह क्या सोचेगा। कैसे वे अपना मुंह उन लोगों को दिखायेंगे।

और फिर कुलदीप जाने के लिए उठ खड़ा हुआ।

"आप कहां जा रहे हैं ? मुझे इस तरह तड़पता छोड़ कर आपको जाने की कैसे सूझ रही है ?" डाक्टर कुसुम एक शेरनी की तरह गरज उठी।

कुलदीप फिर बैठ गया। बिट-बिट उसके मुंह की ओर देखने लगा। डाक्टर कुसुम रो-रो

कर बेहाल हो रही थी। और उसकी आंखें लाल-सुर्ख हो रही थीं। पांच मिनट, दस मिनट, पंद्रह मिनट, बीस मिनट, आध घंटा। और फिर रो-रो कर जब वह थक गई, शिला की तरह सामने बैठे कुलदीप से उसने कहा, "आप जा सकते हैं। मेरा कष्ट मेरा है, आप क्यों परेशान हों। बेशक, आप जा सकते हैं।"

कुलदीप ने एक नज़र उसके चेहरे की ओर फिर देखा, जैसे कोई बहुत बेबस हो। और फिर वह डाक्टर कुसुम के क्लिनिक से बाहर निकल आया।

कुलदीप की अजीब मजबूरी थी। डाक्टर कुसुम सोच रही थी, सीता के पेट में बच्चा, कुलदीप का था। कुलदीप कैसे उससे कहे, वह बच्चा उसका नहीं था। अगर वह बच्चा कुलदीप का नहीं था तो किसका था ? इस बात का जवाब सीता को देना होगा। और इस तरह बेचारी लड़की की शहर-भर में चर्चा होने लगेगी।

लेडी डाक्टर कुसुम के यहां से निकल कर, चिंताओं में डूबा हुआ कुलदीप घर लौट आया। उस दिन वह काम पर नहीं जा सका। इधर सीता का बुरा हाल हो रहा था। उलटियों पर उलटियां। कुलदीप से उसकी ओर देखा नहीं जाता था। यह लड़की तो अपनी अंतड़ियों को उलट कर बाहर फेंक देगी। कुलदीप अपने कमरे में बैठा सोच ही रहा था, वह क्या करे, क्या न करे कि माई हाथ मलती हुई तेज़-तेज़ आई – यह लड़की तो हाथ से जा रही है। सीता मूर्छित हो गई थी। उसके हाथ पांव ठंडे हो गये थे। कुलदीप तेज़-तेज़ कदमों से सीता के कमरे की ओर गया। खंभे का सहारा लेकर खड़ी, वह वहीं की वहीं ढेर हो गई थी। नीली-पीली हो गई थी। सीता को माई के हवाले करके कुलदीप फिर डाक्टर की ओर चल पड़ा।

"इस तरह की गश उसे पड़ती रहेगी।" लेडी डॉक्टर कुसुम ने बर्फ जैसे ठंडे-यख लहजे में कहा – कुलदीप उसे रास्ते में ही से टेलीफोन कर रहा था। "पर आप इतने परेशान लग रहे हैं, मैं आ जाती हूं।"

क्लिनिक से निकलने से पहले, इधर-उधर हाथ मारते हुए कुसुम का हाथ सामने पड़ी गाइनोकौलोजी की किताब पर पड़ा। भारी-भरकम किताब के एक ओर से अखबार की एक कतरन बाहर झांकती हुई उसे दिखाई दी, जिसने उसे कभी पृष्ठ के निशान के लिए रखा था। लेडी डाक्टर कुसुम ने वह पन्ना खोलकर देखा। अखबार की कतरन, वास्तव में कई दिन पहले किसी सिलसिले में छपी कुलदीप की तसवीर थी। कुसुम एकटक उस तसवीर को देखने लग गई। कुलदीप की आंखों में अकथनीय आकर्षण था। एक लगन, दूर किसी लक्ष्य पर टिकी हुई नज़र जैसे सारे शरीर की संपूर्ण शक्ति उस बिन्दु पर केन्द्रित हो गई हो। और यही चुम्बकीय शक्ति थी जो कुसुम को उसका दीवाना बनाये हुए थी। कितनी देर वह उस तसवीर को देखती रही। लाख सपने झूल रहे थे उन आंखों में। जैसे मंद-मंद मुस्करा रहा हो, जैसे गीत फूट रहे हों, पलकों के दायीं कोर से, पलकों के बाईं कोर से। और फिर लेडी डाक्टर को लगा जैसे उन कमानों से छूटकर रेशमी तीरों के गुच्छे उसके सीने में आकर गड़ गये हों। और वह एक नशे-नशे में सरशार हो गई। कितनी देर मेज़ पर सिर रख कर विभोर पड़ी रही।

बाहर सड़क पर एक जीप आकर खड़ी हुई थी। लेडी डाक्टर सहसा संभली। उसने

देखा गाइनोकौलोजी की किताब का जो पन्ना उसके सामने खुला पड़ा था उसमें औरत के पेट से कच्चा बच्चा निकालने के तरीकों का जिक्र था।

और लेडी डाक्टर कुसुम मुस्कराने लगी।

अभी मुस्कान उसके होंठों पर वैसी की वैसी खेल रही थी कि चिंताओं में डूबा हुआ कुलदीप क्लिनिक में आ घुसा।

"मैंने सोचा, आपको देर न हो जाये, मैं ही आपको ले चलूं।"

"माई डियर कुलदीप, घबराने की कोई जरूरत नहीं। मुझे तुम्हारी ही चिंता थी। देखो, मैं क्या पढ़ रही थी?" और उसके सामने पड़ी किताब की ओर इशारा किया।

कुलदीप ने उस पन्ने की ओर देखा और एकदम उसका चेहरा लाल-सुर्ख हो गया।

"क्या मतलब?" कुलदीप पूरे का पूरा एक प्रश्न चिह्न बन गया।

"मतलब यह है कि मैं इंजेक्शन से, गोलियों से, और अगर ज़रूरत पड़ी तो क्यूरिटिंग से तुम्हें इस मुसीबत से छुटकारा दिलवा दूंगी। कुलदीप! मुहब्बत बड़ी दीवानी चीज़ होती है।"

लेडी डाक्टर कुसुम जाने कितनी देर और बोलती रहती, पर कुलदीप ने उसे बीच में ही टोक कर कहा, "पर डाक्टर, मैं तो यह कभी भी नहीं होने दूंगा।"

कुसुम ने यह सुना तो आग-बबूला ही तो हो गई।

"क्यों, अब आपको शराफत परेशान करने लग गई है। एक नौजवान लड़की का जीवन आप बरबाद कर सकते हैं और फिर भी अपनी शराफत के झूटे दामन को कस कर जकड़े रखेंगे। और क्या एक बार पहले भी आप इस लड़की से ऐसा सुलूक नही कर चुके? मुझे याद है, तब चाहे हमारी जान-पहचान ज्यादा नहीं थी, आप इस लड़की को शहर के सिविल अस्पताल में लाये थे, तब मैं अस्पताल में काम करती थी। बड़ी मुश्किल से, कितना संघर्ष करके हम लोगों ने इसकी जान बचाई थी।"

"कुछ भी हो, डाक्टर! अगर सीता की मर्ज़ी नहीं तो मैं यह कभी भी नहीं होने दूंगा।"

"अच्छा तो यह बात है? आप किसी और दरवाज़े को जाकर खटखटा सकते हैं। मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकती।" डाक्टर कुसुम ने कहा और बगल के कमरे में चली गई।

कुलदीप उसके मुंह की ओर देखता रहा, उसकी पीठ की ओर देखता रहा। वह चली गई तो दरवाज़े के उस पर्दे की ओर देखता रहा, मुंह से कुछ न बोला।

बोलता भी क्या? कुलदीप की अजीब मुसीबत थी।

सोहणेशाह एक जूती उतारता और एक जूती पहनता।

कई दिनों से घरवालों ने, उससे सीता का किस्सा छिपा कर रखा हुआ था, पर इतने छोटे परिवार में यह किस तरह संभव हो सकता था। लाख, कुलदीप ने माई को समझाया; लाख, माई ने इधर-उधर की हांकी, पर सोहणेशाह की अनुभवी नज़रों से कोई चीज़ छिपी न रह सकी।

उसे लगता जैसे आस-पास सब कुछ मैला-मैला हो। जैसे कूड़े की दुर्गंध आगे-पीछे फैलती जा रही हो। उससे पानी का घूंट तक न पिया जाता।

फिर गुरमीत आया और उसने अपना सिर सोहणशाह के क़दमों में रख दिया। सोहणेशाह को और भी आग लग गई, कूद-कूद पड़ रहा था। उसका मुंह लाल-पीला हो रहा था।

गुरमीत ने कहा – मैं कल बारात लेकर लड़की को डोली में बिठा कर ले जाऊंगा। मैं अपनी जिम्मेदारी स्वीकारता हूं। अपने अपराध के लिए मैं कोई भी दंड भुगतने के लिए तैयार हूं।

सोहणेशाह उसे मुंह लगाने के लिए तैयार नहीं था। और उसने धक्के मारकर गुरमीत को अपने घर से बाहर निकाल दिया। सामने कुलदीप खड़ा देख रहा था। हक्का-बक्का। खिड़की के पीछे, पर्दे की ओट में खड़ी सीता, सुन रही थी और फिर उसे गश आ गई।

घर की पुरानी माई कभी सोहणेशाह के सामने हाथ जोड़ती, उसे घर की इज्जत का वास्ता देती; कभी भीतर बड़े कमरे में आकर सीता के तलवे मसलती, उसके मुंह पर पानी के छींटे मारती, किसी तरह लड़की को होश आ जाये।

कुलदीप सोचता, यह आंगन कितना अभिशप्त है। इस आंगन में क्या-क्या कहर टूटा है। आज पता नहीं क्या होकर रहेगा।

और सोहणेशाह बार-बार अपने पुराने गांव को याद करने लगता। इस तरह का कुछ उसने अपनी सारी उम्र में कभी नहीं सुना था। उधर उनके गांव में कोई पराया मर्द एक से दूसरी बार किसी लड़की की ओर देख लेता, तो वह रो-रो कर, पीट-पीट कर अपना बुरा हाल कर लेती। और सीता थी कि किसी पराये लड़के से मुंह काला करती रही थी, बिना ब्याह किए, उसका बच्चा अपने पेट में लेकर, उसने सोहणेशाह की आबरू मिट्टी में मिला दी थी। किस मुंह से अब दूध की तरह सफेद दुपट्टा गले में डाल कर वह बाहर निकला करेगा। लोग उस पर फबतियां कसेंगे। उधर, उनके गांव में करमू मीरासी की बेटी, नेकी के घर के आगे से निकलते हुए फफरियों के एक लड़के ने, माहिया का टप्पा गाया था, और नेकी ने बाहर निकल कर उसका मुंह-सिर नोच लिया था। कहने लगी – इसने हमारे घर के सामने से गुज़रते हुए मुझे सुना कर माहिया के बोल क्यों बोले? मैं बरामदे में अकेली थी। बिल्कुल अकेली, जवान-जहान लड़की। लड़का लाख-लाख कसमें खा रहा था कि उसे मालूम नहीं था कि वह घर में अकेली थी। मीरासियों की लड़की की शराफत का यह हाल था और सीता की करतूत यह थी। सोहणेशाह सोचता, सीता उसके गले में पड़े कुर्ते के समान थी उसने अपने गले में

जो डाल रखा है,उसे वह फाड़ कर फेंक देगा। और तो और,भगतू बढ़ई का होने वाला दामाद, एक दिन पानी पीने के बहाने उनकी डयोढ़ी में आ घुसा। घर में भगतू की बेटी अकेली थी। लड़की ने रो-रो कर अपनी आंखें सुजा लीं। सारे गांव ने पंचायत की थी। तब तक लोगों ने सांस नहीं लिया जब तक उसने लड़की का रिश्ता लौटा नहीं लिया। और सोहणेशाह स्वयं, क्या मजाल जो अपनी विवाहिता पत्नी की ओर अपने माता-पिता के सामने आंख उठा कर देखा हो। वर्षों तक वे इस तरह रहते रहे जैसे जान-पहचान ही न हो। यह तो जब उनके यहां राजकरणी हुई,तब कहीं जाकर सोहणेशाह का संकोच कम हुआ। और चुड़ैल सीता,जिसे उसने इतने बरस बेटियों की तरह पाला था,इस तरह खुल-खेल गई थी। तभी तो उसका सगा बाप,उसे गांधी वनिता आश्रम में छोड़ कर चला गया। तभी तो उसकी सगी मां ने इतने बरस कभी उसे मुंह नहीं लगाया। वे जरूर जानते रहे होंगे,उसकी बेटी किस करतूत की मालिक है। हो सकता है,जिस कमबख्त का बच्चा पेट में लेकर पाकिस्तान से आई,उससे इसकी पहले से ही आशनाई हो। इस तरह की चालू लड़कियों का कुछ पता नहीं होता। पाकिस्तान में मुंह काला करती रही होगी। अब इसने इधर अपनी करतूतें शुरू कर दी थीं। सोहणेशाह के घर को वेश्यालय बना देगी। इसके तो रंग-ढंग ही कुछ के कुछ हो रहे थे। सोहणेशाह सोचता, पता नहीं क्यों उसकी आंखों पर पट्टी बंध गई थी। इस लड़की के नित्य नये कपड़े; नित्य नये फैशन। कभी किसी तरह का जूड़ा बनाती कभी किसी तरह का। कोई न कोई हमेशा इनके आंगन में उतरा रहता। गुरमीत ने तो जैसे इस घर को अपना अड्डा ही बना लिया हो। गुरमीत और गुरमीत का कुत्ता; सोहणेशाह सोचता,वह किसी को इधर घुसने नहीं देगा; टांगें तोड़ कर रख देगा उसकी,जो कोई इधर झांक कर भी देखेगा।

पर सवाल यह था कि वह सीता का क्या करेगा। उसके आंगन में विष घोल रही इस नागिन का वह क्या करेगा जिसने उसे इस उम्र में आ डसा था। सोहणेशाह सोचता,राजकर्णी कभी ऐसा न करती। उसकी बेटी ने जान दे दी होगी,पर किसी पराये मर्द को अपना अंग न छूने दिया होगा। किसी मर्द की मजाल नहीं जो किसी औरत को हाथ भी लगा जाये,अगर उसकी अपनी इच्छा न हो तो!

सोहणेशाह इस प्रकार कुढ़ रहा था कि सामने अपने कमरे में परेशान,ऐसे ही किताबें टटोल रहे कुलदीप के हाथ में पाकिस्तान की वह पत्रिका आ गई जिसमें राजकर्णी की आप-बीती छपी थी। और कुलदीप फिर उस कहानी को पढ़ने बैठ गया।

अभी वह कुछ पंक्तियां पढ़ पाया होगा कि सामने बड़े कमरे से सोहणेशाह के खफ़ा होने की आवाज़ें फिर आनी शुरू हो गईं। ऊंचे स्वर में वह सीता को डांट रहा था। और कुलदीप ने बाहर निकल कर देखा,सीता होश में आते ही,गिरती-पड़ती,सोहणेशाह के क़दमों में ढेर हो गई थी। सोहणेशाह ने उसे देखा और उस पर बरसना शुरू कर दिया। उसे कुतिया,वेश्या और न जाने क्या क्या बके जा रहा था।

और कुलदीप सोचता किस तरह कोई एक अबला स्त्री का अपमान कर सकता है। पर फिर कुलदीप का मन कहता,सोहणेशाह के साथ जीवन ने सदा अन्याय किया था। उसके सब

का प्याला अब छलकने लग गया था। अब उससे ज़िंदगी के और थपेड़े नहीं सहे जा सकते। अब तो वह जो भी करे वही थोड़ा है।

और कुलदीप ठिठक कर रह गया। गुस्से में सोहणेशाह सीता पर हाथ उठा बैठा था। उसने उसे ठोकर भी मारी, घूंसा भी मारा था। सीता लुढ़क कर बरामदे में जा पड़ी थी। पर फिर भी बेचारी बेसहारा औरत उठ कर, उसके सामने हाथ जोड़कर बिनती कर रही थी।

कुलदीप से यह देखा नहीं जा रहा था। इतने में बाहर ड्योढ़ी का दरवाज़ा किसी ने खटखटाया। उसने सोचा, शायद बेबी राजकर्णी स्कूल से पढ़कर लौटी थी। कुलदीप, फूले हुए सांस से ड्योढ़ी की ओर गया। माई रसोई में, मुंह भींच कर बैठी थी। डर के मारे सामने नहीं आती थी, कहीं वह भी बीच में न पिस जाये।

कुलदीप ने ड्योढ़ी का दरवाजा खोला तो सामने मुट्ठीभर हड्डियों का ढांचा, एक खूसट बूढ़ा खड़ा था। उसके हाथ में छड़ी थी। ऐसे लगता था जैसे उसे आंखों से दिखाई नहीं देता था।

"चौधरी सोहणेशाह का यही घर है ?" बूढ़ा अपनी कमज़ोर आवाज़ में पूछ रहा था।

"हां," कुलदीप सहमा हुआ था, इस समय उनके घर में किसी मेहमान का आना उसे अजीब-अजीब लग रहा था। भीतर दंगल जो मचा हुआ था।

"मैं सीता का बापू हूं, मेरी बेटी आपके यहां है।" बूढ़े ने बिना सूचित किए अपने आने का कारण बताया। कुलदीप के पांव के नीचे से जैसे जमीन निकल गई हो।

"और इसे आज ही आना था ?" कुलदीप ने अपने मन में कहा और बूढ़े मेहमान को अपने साथ ले कर आंगन की ओर चल पड़ा।"

चाहे कई बरस बीत चुके थे, लाख अन्याय उसके बाप ने उसके साथ किए थे, सीता ने अपने बापू को देखा तो उसके सीने से आ लगी। सुबक-सुबक कर उससे मिल रही थी।

सीता के पिता की अजीब दर्दनाक कहानी थी। जिस दिन से वह अपनी बेटी को इस तरह दुतकार कर गया था, उसने एक क्षण सुख की सांस नहीं ली थी। उसकी अंतरात्मा कहती कि भगवान दंड दे रहा था, उस ज्यादती के लिए जो उसने अपनी जाई के साथ की थी। पर उसके भीतर का कट्टरपंथी हार नहीं मानता था। एक-एक करके उसके परिवार के सारे प्राणी उसे छोड़कर चले गये। बस वह अकेला रह गया था, फिर भी वह अपने किए पर पश्चात्ताप न करता। अब अंत में बेबस होकर आया था। इससे पहले कि उसकी आंखों की रोशनी पूरी तरह जाती रहे वह अपनी जाई को एक नज़र देखना चाहता था। बार-बार कहता, एक नज़र अपनी सीता-सावित्री से मिलकर सुर्खरू हो जाऊंगा।

कुछ देर बाद वह कहने लगा –

मैं अपनी बेटी को अपने साथ ले जाऊंगा। इतनी-सारी उसकी जायदाद थी, इतना-सारा उसके पास धन था, और सीता के बिना उसके परिवार में बीज डालने के लिए कोई भी नहीं बचा था। एक-एक करके सब विदा हो गए थे।

सोहणेशाह, सीता के बाप को इस तरह बातें करते हुआ सुनता और कसमसा कर रह

जाता। और फिर वह लपक कर बाहर निकल गया

79

सीता का पिता बार-बार अपनी जायदाद का ज़िक्र कर रहा था, अपनी पूंजी का ज़िक्र कर रहा था। बार-बार कह रहा था – मेरा कोई भी नहीं है।

सीता की मां नहीं रही थी। सीता का बहन-भाई कोई भी नहीं रहा था। एक-एक करके सब चले गये थे। और अब सीता का पिता पंडित राम लुभाया, कट्टर ब्राह्मण, चिन्तित था कि किसी दिन उसके प्राण पखेरू उड़ जायेंगे तो उसे संभालने वाला भी कोई नहीं होगा।

उधर सोहणेशाह कहीं बाहर गया था। वह सोहणेशाह, जिसने सीता से कभी ऊंचा बोल नहीं बोला था, आज किस तरह उस पर टूट कर पड़ा था। 'बेटी-बेटी' कहते जिसकी ज़बान नहीं थकती थी, आज किस तरह उसने सीता को कुवचन कहे थे।

"बेटी, अब तुम अपना कपड़ा-लत्ता संभाल लो", पंडित राम लुभाया ने आखिर सीता को मशवरा दिया। कुछ दिनों से पंडितजी ने हिंदी बोलना शुरू कर दिया था। एक तो अंबाला में रहने का प्रभाव, दूसरे सिक्खों से पंजाब के हिन्दुओं के भाषा-संबंधी वाद-विवाद की बदौलत, पंडित जी अपनी भाषा हिन्दी बताते थे। नाराज़, पंजाबी में होते, गालियां पंजाबी में देते, प्यार आता तो पंजाबी बोलते, पर वैसे कुछ वर्षों से उन्हेंने अपनी भाषा हिन्दी बना ली थी। इतनी कठिन हिन्दी बोलते जैसे कोई वेद-पाठ कर रहे हों। उनका इस तरह का लहजा होता जैसे किसी पंजाबिन को कोई घाघरा पहना दे, उसकी शलवार-कमीज़ उतार ले।

"बेटी! अब तुम तैयार हो जाओ।" पंडित जी ने सीता से फिर कहा। कुछ समय से, कुलदीप भी उनके पास आकर बैठ गया था। माई से चाय बनवा कर पंडित जी की खातिर कर रहा था। इस बार सीता के पिता ने उसे तैयार होने के लिए कहा तो सीता ने एक नज़र कुलदीप की ओर देखा। शान्त-अचल, मूर्ति-सा बना बैठा था। कुलदीप की ओर दृष्टि डालते ही सीता के मन-मन्दिर के घुप-अंधेरे में, जैसे एक ज्योति-सी जगमगाई, एक प्रकाश-सा हुआ और बस।

हाय, पिछले कुछ दिनों से सीता किस तरह की यातना से गुज़र रही थी! किस तरह की टीस उसके हृदय में थी! और आज किस तरह सोहणेशाह उस पर बरसा था! उसका तो जी चाहता कि कुछ खाकर मर जाये। अब किस मुंह से वह सोहणेशाह के सामने जाये? यही अच्छा था कि यहां से निकल जाये। क्या उसके पिता के घर गुरमीत आ सकेगा? अपने पिता के घर गुरमीत से उसका ब्याह हो सकेगा? सोहणेशाह ने तो कुत्तों की तरह दुतकार कर गुरमीत को अपने आंगन में से निकाल दिया था।

"मैं कहता हूं बेटी, हमारी गाड़ी का वक्त हो रहा है।" पंडित जी ने फिर सीता को तैयार

होने के लिए याद दिलाया।

सीता ने कुलदीप की ओर देखा। एक नज़र – और जैसे उसके भीतर एक बिजली कौंध गई हो।

"आपकी गाड़ी का वक्त हो रहा है तो आप जा सकते हैं, पिताजी, मैं आपके साथ नहीं जाऊंगी।" सीता ने दुखी स्वर में कहा।

"क्या मतलब, बेटी ?"

"मैं इस घर की मालिक हूं। यह मेरा घर है। मैं अपना घर छोड़ कर नहीं जाऊंगी।

"यह तुम क्या कह रही हो ?"

"मैं जो कुछ कह रही हूं, ठीक ही कह रही हूं। आज इतने बरसों से यह मेरा घर है। पंद्रह साल की कच्ची कली थी, जब आपने मुझे, मुंह लगाने से इंकार कर दिया। मुझे रोता-बिलखता छोड़कर आप चले गये।"

"बेटियों को कोई छोड़ सकता है ? मैं तो हमेशा तुम्हारी खबर रखता रहा। बेटियां जहां भी बसें खुश-खुश बसें।"

"और मैं अब खुश हूं। अब कैसे आपको मेरी याद सताने लगी है ?"

"बेटी, अब तुम्हारे सिवाय मेरा कोई भी नहीं है। जो कुछ मेरे पास है, तुम आकर उसे संभाल लो, इससे पहले कि मैं आंखें मूंद लूं। अब मेरे दिन भी कितने बाकी हैं ?"

"पिताजी, मैं यह घर कभी नहीं छोड़ूंगी। आपको जरूरत है अब कोई आपकी मर चुकी पत्नी, और गुज़र चुके बाकी परिवार के लिए, आपके साथ मिल कर रोये। दिन रात उनकी याद में आंसू बहाया करे।

"पागल नहीं बनते बेटी।" पंडित जी को एकदम ध्यान आ गया, वह तो पंजाबी बोल रहे थे। उन्हें तो अपनी नई भाषा बोलनी चाहिए। सारे भारत की राज भाषा।

"यह आप हिंदी बोलना कहां से सीख गए हैं ?"

"हिन्दी हमारी भाषा है।"

"आपकी भाषा हिन्दी है ?"

"हां।"

"आप कट्टरपंथी हैं, मर्यादा के पक्के, पुरखों की घिसी-पिटी परंपराओं का आपको हमेशा बहुत ध्यान रहता है। आप में और मुझमें कितनी कम बातें मिलती हैं।"

"यह तू क्या बातें कर रही है, लड़की ?" पंडित जी को गुस्सा आ रहा था।

"मैं कह रही हूं कि हम में कुछ भी तो नहीं मिलता है। मैं और हूं, आप और हैं। हमारा कोई संबंध नहीं। तब आप मुझे कैसे फेंक कर चले गये थे, जैसे दूध में से मक्खी निकाल दी जाती है।"

"और अब हारकर आया भी तो मैं ही हूं। कितने बरसों बाद अपनी जायी को अपने कलेजे से लगाने के लिए।"

"और उसका क्या होगा, जिसने मुझे इतने बरस अपनी बेटी बनाकर अपने सीने से लगाये

रखा। इतने बरस परायी बेटी को, जिसने अपनी बेटी बनाये रखा, अपनी बेटियों जैसा प्यार दिया, अपनी बेटियों जैसा आदर दिया। जो मेरा जी चाहे निकालूं, जो मेरा जी चाहे पहनूं। इस घर में मैंने राज किया है। हर संदूक की चाभी मेरे पास है। मुझे पैसे देकर कभी किसी ने हिसाब नहीं पूछा।"

"पैसों का क्या है बेटी ? पैसों से मैं तुझे लाद दूंगा।"

"जब मैं बीमार हुई, इस घरवाले रात-रात भर जाग कर मेरी तिमारदारी करते रहे। मेरी खुशियों में खुश। मेरे माथे पर बल पड़ा तो इन्हें लाख चिन्ताएं सताने लगती थीं। इन्हें छोड़ कर मैं कैसे जाऊंगी ?"

"तू तो पागलों की-सी बातें करे है।" पंडित जी ने हरियाणवी रंग में कहा।

"मैं पागल सही, दीवानी सही, पर घर मेरा यही है। इस घर को छोड़ कर मैं नहीं जाऊंगी।"

अभी ये बोल सीता के मुंह में थे कि सोहणेशाह कमरे के अंदर आ घुसा। शायद कुछ देर से बाहर खड़ा, भीतर चल रही बहस को सुन रहा था। अंदर आ कर एक स्तंभ की तरह चुपचाप खड़ा हो गया। जैसे पत्थर का बुत हो। मुंह से कुछ नहीं बोल रहा था, बस बिट-बिट देखे जा रहा था, कभी सीता की ओर, कभी सीता के पिता की ओर।

कुलदीप ने सोहणेशाह की यह हालत देखी तो उसके हाथ-पांव फूल गये। सोहणेशाह को शायद पुरानी बीमारी का फिर दौरा पड़ रहा था, जो बरसों पहले उसे रावलपिंडी के शरणार्थी शिविर में हुई थी। वही बीमारी, जिसकी झलक-सी पड़ी थी जब कुलदीप ने सतभराई को निकलवा कर पाकिस्तान भिजवा दिया था।

इतने में बेबी राजकर्णी स्कूल से पढ़कर लौट आई। और वह सोहणेशाह को अपने स्कूल की नई अध्यापिका की बातें बताने लग गई। बातें करते-करते वह सोहणेशाह को बाहर ले गई।

"...बाबा हमारी नई टीचर ने मुझे होली पिक्चर दी है। मैंने होली पिक्चर से इकरार किया है, अब मैं किसी से कभी नहीं लड़ूँगी। तुम्हें पता है बाबा, भगवान ईसा मसीह को किसी ने एक थप्पड़ मारा, उन्होंने दूसरा गाल भी उसके सामने कर दिया ताकि वह एक और थप्पड़ मार सके। सामने वाला लज्जित हो गया। भगवान ईसा मसीह की इतनी सारी बातें वह हमें बताती है। एक बुरी औरत को लोग पत्थर मार रहे थे। पत्थर मार-मार कर उसे मार डालना चाहते थे। भगवान ईसा मसीह ने कहा, इस औरत को बस वही पत्थर मारे जिसने आप कभी कोई गुनाह न किया हो। पत्थर उठा कर जो लोग वहां इकट्ठा हुए थे, एक दूसरे का मुंह देखने लग गए। बाबा उस औरत ने कौन-सा पाप किया था ?"

"बेटी, पाप कोई भी हो, सब पाप बुरे होते हैं। एक जैसे बुरे।"

"हाय बाबा ! मैंने तो कई बार झूठ बोला है। मैंने तो आज भी झूठ बोला। सुन्दरी मुझ से रबर मांग रही थी, रबर मेरे बस्ते में पड़ा था और मैंने उससे कह दिया, मेरा रबर गुम हो गया है। बाबा, सुन्दरी अपना रबर क्यों नहीं लाती ? हर रोज़, 'राजी प्लीज़, मुझे रबर लैंड कर दे।' कोई बात भी हुई। मैंने कह दिया – मेरा रबर खो गया है।"

"बातें खत्म करते-करते जब राजी नाश्ता खत्म कर चुकी तो स्कूल से मिला, घर का काम करने बैठ गई। सोहणेशाह सुन रहा था, सीता अपने कमरे में अब भी अपने पिता से बहस कर रही थी। सोहणेशाह सोच रहा था, सीता को इस तरह अपने पिता के सामने ऊंचा नहीं बोलना चाहिए।

और फिर राजी सुबकती हुई आई – "बाबा मेरा रबर गुम हो गया है। मैंने आप बस्ते में रखा था सवेरे, पता नहीं मेरा रबर कहां उड़ गया है?"

"शुक्र कर बेटी, तूने झूठ नहीं बोला। जब सुन्दरी ने तुझ से रबर मांगा, तूने सच बोला।"

मासूम लड़की बिट-बिट सोहणेशाह के मुंह की तरफ देखने लग गई। सचमुच यह तो बड़ा अच्छा हुआ कि उसका रबर खो गया। उसे अल्लाह ने झूठ से बचा लिया था। सोहणेशाह कह रहा था, रबर तो और भी मिल सकता है, बाज़ार से खरीदा जा सकता है। पर झूठ बोल कर आदमी सारी उम्र किसी को पत्थर नहीं मार सकता।

80

गुजरी, पूरन के बारे में सोच-सोच कर कसमसाती रहती। पूरन उसकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी जीत थी, पूरन उसकी ज़िंदगी की सबसे बड़ी हार थी।

आज कई बरस हो गये थे, अपने घरवाले को उसने मुंह नहीं लगाया था।

रात को कितनी-कितनी देर चारपाई पर पड़ी करवटें बदलती रहती, जैसे भाड़ में कोई दाना भुन रहा हो। रह-रह कर उसके दिल में तूफान-से उठते। एक अजीब-सा दर्द उसके अंग-अंग में घुसकर बैठ गया था। आठों पहर उसे एक बेचैनी-सी रहती। उसका पति, जिसने कभी उसकी ओर आंख उठा कर देखने का साहस नहीं किया था, आजकल कई बार उससे बदतमीज़ी कर बैठा था। उस दिन तो बेंत पकड़ कर उसने इसकी खाल ही उधेड़ दी थी। घूंसे-थप्पड़ तो कई बार इसने खाये थे। गुजरी सोचती वह भी बढ़ कर उस पर हाथ उठाये। पुरानी गुजरी तो कभी भी बाज़ न आती, पर आजकल उस से ऐसा नहीं हो सकता था। पूरन सुनेगा तो क्या कहेगा? पड़ोसी सुनेंगे तो क्या कहेंगे? गली-गली में चर्चा होगी। आजकल तो उसके मुंह से ऊंचा बोल भी नहीं निकलता था।

हाय वह पूरन! जो मंजिलें काटकर आता था – इसे एक नज़र देखने के लिए। किसी न किसी बहाने इनके गांव में मंडराता रहता। उन दिनों पूरन अपनी घोड़ी पर रकाब में पैर रखता और वह, गुजरी के गांव की ओर चल पड़ती। पूरन से ज्यादा उतावली उसकी घोड़ी होती – गुजरी से मिलने के लिए। और कैसे मुंह उठा कर इसकी ओर देखती थी। जब अवसर मिलता अपनी झागों से भरी थूथनी इसकी लंबी गर्दन पर टिका देती और गुजरी के गुदगुदी मचा देती। अपने नथनों से गुजरी की चोटियों में से चंपा की कलियों की खुशबू की लपटें

सूंघती रहती। बार-बार इसके बालों से खेलने लग जाती। और पूरन को बड़ी खीझ आती थी। उन्हीं बालों से तो वह खेला करता था। कभी उन्हें अपनी आंखों पर रख लेता, कभी उन्हें गुजरी की गर्दन के चारों ओर लपेट देता। कभी गुजरी का गोरा मुखड़ा उनमें छिपा कर इसके गालों को, इसके होंठों को सहलाता रहता।

और आज तक, उस शाम की याद आने पर, गुजरी के पसीने छूटने लगते। सोमा का ब्याह था; गुजरी की बहन का। गुजरी के घर में गीत बिठाए गए। लड़की का ब्याह, लड़कियों के गीत, पूरन उनमें कैसे शामिल हो सकता था ? और फिर पूरन, कोई उनके गांव का थोड़े ही था ? गांव का होता तो किसी बहाने उसे अपनी हवेली में बुला भेजती। पर पूरन तो अपनी ज़िद पर अड़ा था। पूरन का हठ। और फिर गुजरी की सहेली प्रीतो पूरन को लड़कियों के कपड़े पहनाकर अपने साथ ले आई। सरदारों का बेटा चुटिया बनाकर बिल्कुल लड़की लगता। तब तक अभी उसकी मसें नहीं भीगी थीं और वह लड़की भी ऐसी लग रहा था कि जो कोई भी उसको देखता, नज़र उस पर टिक जाती। प्रीतो और गुजरी बक-बक करती दीवानी हुई जा रही थीं। किसी से कुछ कहतीं, किसी से कुछ और। पूरन ढोलक बजाता, टप्पे पर टप्पा गाता रहा। एक गीत समाप्त होता तो दूसरा शुरू कर देता। पूरन के गालों की लाली, उसकी आंखों की चमक, उसकी मोटी भारी चोटी और उसका सजीला कद-बुत; जो कोई भी देखती मन ही मन में उसे अपने बेटे के लिए तय करके बैठ जाती। और फिर गुजरी के पांव से जमीन खिसकने लगी, उसका दादा-पोता ज़िद पकड़ कर बैठ गया – बहन ! तेरी इस सहेली ने तो हमें गुलाम बना लिया है। मैं तो टूटी खाट लेकर पड़ जाऊंगा अगर तूने इससे मेरा मिलाप न करवाया। गुजरी को मालूम था कि हरनामा बड़ा अल्हड़ है, जो कर बैठे वही कम है। और वह बार-बार अपने मुंह में 'वाहिगुरु' 'वाहिगुरु' कहने लग जाती, कहीं उसका पर्दाफाश न हो जाये। बड़ी मुश्किल से उसने गीत समाप्त होने से पहले ही किसी तरह पूरन को वहां से खिसका दिया। पूरन चला तो गया पर कितने ही दिन उस लड़की की गांव में धूम मची रही। पता नहीं कहां से आई थी, कहां चली गई। कई नौजवान लड़के जिन्होंने उसे उस शाम देखा था, उसे याद करके ठंडी आहें भरते रहते। उनमें से कुछ तो पूरन को उस लड़की का किस्सा सुनाने बैठ जाते। उसके हुस्न की कहानियां सुनाने लगते। कोई झूठ-मूठ कहने लगता, मेरी तरफ देखकर वह मुस्कराई थी। कोई कहता – मुझे उसने आंख मारी थी। कोई कहता मैंने उसके पास बैठकर उसे च्यूंटी काटी थी और वह बोली नहीं। पूरन सुन-सुनकर हंसता रहा।

गुजरी, पूरन के गालों और ठोड़ी पर हाथ फेर कर कहती, "तेरी मसें भीग चली हैं, मैं तुझे दाढ़ी नहीं रखने दूंगी।"

"मेरी मां सिंह सभाइन है, गुजरी ! वह तो मेरी बोटियां नोच लेगी।"

"तेरी मां के मायके-घर तेरे मामा का बेटा मोना है।"

"मेरी मामी ने सबसे बड़े बेटे के केश रखवाये। मोनों की बेटी कहती; एक बेटा गुरु के हवाले, मेरे बाकी बेटे सहजधारी होंगे।"

"दो नावों पर पैर।"

"मेरे नाना ने कितना सर पटका, पर वह टस-से-मस नहीं हुई।"

गुजरी सोचती इस तरह के नाना का दोहता पूरन आजकल उसकी आंख से आंख नहीं मिलाता था। सुबह शाम गुरुद्वारे में घुसा रहता था। जिस दिन से पूरन ने गुरुद्वारे में जाना शुरू किया, गुजरी को गुरुद्वारा ज़हर-सा लगने लगा, जैसे किसी की सौत हो। भाई साहब के पाठ की आवाज़ सुन कर गुजरी के मुंह का स्वाद कड़वा हो जाता।

एक दिन गुजरी ने हद ही कर दी। दोपहर का समय था। बैठे-बैठे उसके जी में पता नहीं क्या आई ? गुजरी ने पांव में जूती अड़ाई और पूरन के घर की ओर चल पड़ी। उस दिन ही तो सुबह, गांव से बाहर किसी काम पर जाने से पहले उसके घरवाले ने उसे गंदी गाली बकी थी। मां की गाली। और गुजरी की छाती में जैसे आग सुलग रही हो। सारा दिन, गीले उपले की तरह वह सुलगती रही। और जब वह पूरन के आंगन में पहुंची, सामने कमरे में वह लंबी ताने सो रहा था। गुजरी ने पहले ड्योढ़ी के दरवाजे की कुंडी लगाई। फिर पूरन के कमरे का दरवाजा भेड़ा, और चुनरी उतार कर, एक ही सांस में, सोये पड़े पूरन की गालों को, माथे को, चूमना शुरू कर दिया। सोते-सोते हड़बड़ा कर पूरन उठा तो उसने उछाल कर गुजरी को नीचे गिरा दिया। घायल शेरनी की तरह गुजरी उठी और छलांग लगा कर लेटे हुए पूरन की छाती पर बैठ गई। एक अकथनीय वेग में उसने पूरन का कुरता फाड़ कर चिथड़ा कर दिया। पूरन, बार-बार उसे समझा रहा था, पर गुजरी पर जैसे भूत सवार हो। उसने जैसे पूरन को अपने आलिंगन में लेकर उसकी छाती के मांस का पूरा लोथड़ा ही अपने दांतों से चबा लिया हो। और पूरन हक्का-बक्का देख रहा था कि इतने में गुजरी ने अपने महबूब को लहू-लुहान कर दिया, उसके दांत पूरन के मांस में उतर गए थे, बूंद-बूंद लहू उसमें से फूट निकला। लहू, गुजरी के होंठों पर लगा हुआ था, गुजरी की गर्दन पर अपने दाग छोड़ रहा था। और फिर गुजरी रोने लगी। रोती जाती और पूरन की छाती में घूंसे मारती जाती। बार-बार उस पर ताने कसती। बार-बार उसे सलवातें सुनाती। बार-बार कहती — तूने मुझे कहीं का न रखा। न मायके के योग्य न ससुराल के योग्य। न घरवाले के काबिल न बच्चों के काबिल। न बहनों के काबिल न भाइयों के। न अड़ोस के न पड़ोस के। तूने मुझे कहीं का न रहने दिया। और कितनी देर आप ही आप रोती रही। रो-रो कर जब शांत हुई, छत के रास्ते घर लौट गई। न पूरन की ओर उसने मुड़ कर देखा न पूरन ने उससे कोई बात की।

न किसी की भलाई में न किसी की बुराई में। गुजरी देख-देख कर, सुन-सुन कर हैरान होती रहती। और फिर एक दिन कुएं पर पानी भरते हुए गंडा सिंह की पत्नी संती ने गुजरी को छेड़ा — पूरन को तो उसकी मां ने खस्सी करवा दिया था। गुजरी ने सुना तो पानी की भरी डोलची डोर-सहित उसके हाथों से छूटकर कुएं में जा गिरी। जैसे उसके पांव तले से ज़मीन निकल गई हो, गुजरी का रंग पीला-फक् हो गया। और फिर संती खिल-खिल हंसने लगी। शैतान औरत हँसे जा रही थी, हँसे जा रही थी। "मैं कहती हूं गुजरी ! तू अपने आंगन में नल लगवा ले। नत्थूशाह की घरवाली होकर तुझे क्या मुसीबत पड़ी है कि कुएं से पानी भरे।" जब कोई उसके पति की जायदाद या रुपये-पैसे का जिक्र करता, गुजरी को चारों कपड़े आग

लग जाती। जैसे वह किसी की ज़र-खरीद लौंडी हो। जैसे उसने अपने अंग-अंग को तराज़ू पर तौल कर बेच दिया हो। अब गुजरी कुछ भी नहीं थी। बस नत्थू की घरवाली थी या नत्थू के बच्चों की मां।

संती उसे कभी एक आंख नहीं भायी थी, पर आजकल गुजरी और संती की बड़ी दोस्ती हो गई थी। जब फुरसत होती, जब भी एक-दूसरे से मिलतीं, बैठकर दिल की भीतरी बातें कहती-सुनती रहतीं।

"संती कोई दिन थे जब वह मुझे अपनी बांहों में भरकर एकटक मेरी आंखों में आंखें डाले देखने लग जाता, जैसे कोई किसी को बींध रहा हो। और फिर जैसे पृथ्वी की गति रुक जाती हो, जैसे हमारे चारों तरफ रेशम के सुगंधियों में गुंथे पर्दे तान दिए गए हों। धीमा-धीमा अंधेरा जैसे उतर रहा हो। और वह धीरे-धीरे मेरी तरफ झुकता जाता, नीचे और नीचे। और उसके नाक की नोक धीरे से मेरे नाक की नोक को छूने लगती। जैसे सोये हुए साज़ को कोई छेड़ रहा हो, मेरे भीतर एक लहर-सी उठती। वह अपने नाक की नोक को मेरे नाक की नोक से फिर छुआता। मेरे भीतर एक और लहर उठती। तैरती-तैरती पहली लहर की ओर चल पड़ती। कुछ देर बाद वह फिर अपने नाक की नोक को मेरे नाक की नोक के पास लाता, इस बार जैसे चुंबक की शक्ति से मैं आगे होकर उसके स्पर्श को दबोच लेती। और फिर लहरों की एक झनकार छिड़ जाती। मेरा अंग-अंग, सरशार होने लग जाता। हल्का फूल, स्वाद-स्वाद। जैसे हवा के झोंके की तरह मैं झूल रही होऊं। कुछ देर बाद, उसकी गरम-गरम सांसे मेरे होंठों के ऊपर-नीचे, दायें-बायें सुलगने लगतीं। और मेरे भीतर ऐसा होने लगता जैसे भाड़ में दाने भुने जा रहे हों। मुझे लगता मक्का के भुने दाने की तरह उछल कर मैं उसके दांतों में चली जाऊंगी, उसमें खो जाऊंगी। और मैं ऐसे उसकी तरफ देखती जैसे कोई फिसल रहा हो, मुंह के बल गिर रहा हो और किसी अदृश्य सहारे के लिए तिलमिला रहा हो। इतना सोचने ही उसके होंठ मेरे होंठों पर आ टिकते। जैसे रुई का गरम-गरम फाहा रुई के गरम-गरम फाहे पर रख दिया जाए, उसमें उसकी खुशबुओं से भरी सांस मचल रही होती। एक बार, दो बार, तीन बार। और फिर उसके होंठ मेरे होंठों पर जैसे जुड़ कर रह जाते। मीठा शहद सा स्वाद, और बस। और फिर वह तड़प कर मेरी गर्दन के गिर्द अपनी बांहों को लपेट देता और फिर उचकते हुए हम दोनों जैसे लहर की चोटी पर जा टिकते। दांतों में दांत, होंठों पर होंठ, पता नहीं कितना समय यूंही बीत जाता। मुझे तभी होश आता जब उसकी जीभ मेरी जीभ पर मचलती हुई, आगे ही आगे, नीचे ही नीचे उतरती जाती। और मैं मदमस्त होकर जैसे उसके लिए रास्ता देती चली जाती। किसी के स्वागत के लिए जैसे कोई द्वार पर द्वार खोलता जा रहा हो। और आगे, और नीचे। और मैं पारे की तरह कांपने लग जाती। इस कँपकँपी में मुझे लगता जैसे दूध के कटोरे में मिश्री की डली हो। गर्म-गर्म झाग में जैसे कोई मुर्गाबी फिसल रही हो। और फिर अचानक कोई खटका होता और मैं उछल कर उसकी बांहों से निकल आती। अपने बालों को चुन्नी के पल्लू से ढककर, जल्दी-जल्दी अपनी राह पकड़ लेती। वह मेरी पीठ की ओर देखता रह जाता। और फिर उसे होश आता, अरे, उसने अगली मुलाकात का समय और स्थान

तो निश्चित नहीं किया था। हाय वे दिन...।

उस दिन, इसी प्रकार गुजरी संती से बातें कर रही थी कि गुजरी ने देखा, पूरन का कुत्ता मोती और उसकी कुतिया मोतिया कल्लोल करके, सामने नांद की ओट में हो गये। नांद में चारा पड़ा था। यह देखकर गुजरी की जबान अचानक रुक गई। बिट-बिट वह सामने नांद की ओर देख रही थी। उसे न मोती दिखाई दे रहा था न मोतिया। कुछ देर बाद मोतिया के च्याऊं-च्याऊं करने की आवाज़ आने लगी। जैस कोई बयान न हो सकने वाले मीठे दर्द से कराह रहा हो। गुजरी सुन-सुन कर जैसे मदहोश हो रही थी। एक नशे-नशे में डूबी, वह वैसी की वैसी लेट गई। बार-बार अपनी चूड़ियों भरी कलाई को झटकती, बार-बार उसे पलंग की पाटी पर मारती। और फिर जैसे उसे मूर्छा आ गई। संतो की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। कभी उसके हाथ मलती कभी उसके पैर मसलती। कभी उसके मुंह पर पल्लू से हवा करती, कभी उसके दांतों में पानी की बूंदे टपकाती। कितनी ही देर इस प्रकार वह उसके साथ सिर खपाती रही और फिर कहीं गुजरी ने आंखें खोलीं। जैसे कोई ठंडा-यख़ हो गया हो, हल्का फूल, स्वाद-स्वाद, और करवट बदल कर वह सो गई। जैसे कोई कई जागरण करके सोया हो; गुजरी ऐसी सोई कि सांझ ढल आई।

81

कुलदीप हर प्रकार से यत्न कर चुका पर सोहणेशाह गुरमीत को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। पाकिस्तान से, कच्छ के मामले में समझौता हो गया था और कुलदीप इसलिए परेशान था कि सीता की दुविधा बीच में से हटे तो वह राजकर्णी को ढूंढ़ने के लिए पाकिस्तान का चक्कर लगाये। जिस प्रकार उसने सतभराई को सोहणेशाह से छीना था, कुलदीप की हसरत थी कि किसी दिन उसी तरह वह राजकर्णी को सोहणेशाह के आंगन में ला खड़ा करे। मन ही मन कुलदीप ने फैसला किया था कि वह अपना यह ऋण जरूर चुकायेगा।

पर उससे भी महत्वपूर्ण समस्या थी, किसी तरह सीता से गुरमीत की शादी।

सोहणेशाह एक ही बात को पकड़ कर बैठा हुआ था। बबूल पर बेर कभी नहीं लगते। बुराई में से अच्छाई कभी नहीं निकलती। बदी से समझौता करने के लिए वह बिल्कुल तैयार नहीं था।

"तो फिर इस लड़की का क्या होगा?" कुलदीप पूछता।

"जो पहले हुआ था।" सोहणेशाह ज़िद पर अड़ा था। पहले भी तो सीता के पेट में किसी का बच्चा था जिसे सोहणेशाह ने स्वीकार कर लिया था?

"वह समय और था। अब लड़की बाहर मुंह दिखाने योग्य नहीं रहेगी। हमारी यह बिरादरी उसे कभी क्षमा नहीं करेगी। गली-मुहल्ले की औरतें ताने कस-कस कर उसका जीना

हराम कर देंगी। और फिर गुरमीत में खराबी क्या है ? उसका दोष बस यही है कि उसने आपकी लड़की से प्रेम किया है ? प्रेम करना कोई गुनाह..."

यह शब्द कुलदीप के मुंह में थे कि उसकी ज़बान रुक गई। लेडी डाक्टर कुसुम की तस्वीर उसकी आंखों के आगे तैरने लगी। सोहणेशाह बिट-बिट उसके मुंह की ओर देख रहा था। इस लड़के को हो क्या गया है ? बोलते-बोलते अचानक चुप हो गया था। उसका चेहरा सहमा-सहमा, रुआँसा-रुआँसा लग रहा था।

सीता और गुरमीत की शादी में जितना विलंब हो रहा था, उतनी ही उनकी कठिनाई और बढ़ती जा रही थी। कुछ दिनों से सीता परेशान-परेशान नज़रों से इस तरह कुलदीप की ओर देखती कि उसके दिल को कुछ होने लगता। हर बार जब सीता उसकी ओर देखती तो उसकी निगाहों में एक याचना होती, फरियाद होती, और फिर एक दिन सीता फूट पड़ी –

"मैं अब क्या करूं ? मेरे लिए सब से आसान तरीका था, मैं अपने पिता के साथ चली जाती और उस घर में अपनी मन-मर्जी कर लेती। पर मुझसे यह नहीं हो सका, यह मुझसे कभी नहीं हो सकेगा। इस आंगन में मुझे शरण मिली, जब मेरा कोई भी नहीं था। मैं इस तरह इस घर को छोड़ कर कभी नहीं जाऊंगी।"

कुछ दिन बाद गुरमीत आया और कुलदीप को बांहों में भरकर एकान्त में ले गया। "अगर मुझे मालूम होता, ताऊ सोहणेशाह इस तरह हठ करके बैठ जायेंगे तो मैं इस घर की ओर आंख उठाकर न देखता। मुझे इस लड़की की सारी व्यथा मालूम है। मैंने सोचा, इसे सारी उम्र यूं ही अकेले रहना पड़ेगा। कुलदीप, सारी उम्र ब्याह किए बिना काटना औरत के लिए कोई आसान काम नहीं होता। ताऊ सोहणेशाह कब तक बैठा रहेगा ? और तुम हमेशा-हमेशा के लिए एक लड़की की जिम्मेदारी कैसे ले सकते हो ? सगे-संबंधियों का कोई भरोसा नहीं कर सकता। कल-परसों, कुलदीप जब तुम्हारा ब्याह हो गया, तुम्हारी ब्याहता को, पता नहीं, तुम्हारे घर किसी लड़की का यूं पड़े रहना अच्छा लगे या न लगे। और फिर अब जो होना था वह हो चुका, जो कदम उठाया जाना था उठाया जा चुका है, अब जिस हालत में सीता है उसे कैसे छोड़ा जा सकता है ? मेरा उससे ब्याह होगा चाहे ताऊ सोहणेशाह को यह मंजूर हो या नामंजूर हो। हम उसके मुंह की तरफ इतने दिन देख चुके हैं।"

तो फैसला यह हुआ कि गुरमीत और सीता का विवाह, कचहरी में जाकर करवा दिया जाये। लड़का लड़की दोनों बालिग थे, उनकी जैसी इच्छा थी वैसा कर सकते थे।

सीता ने सुना तो सोच में पड़ गई। मुझे कचहरी चढ़ना होगा ? अर्ज़ी डालनी होगी। वकाल करना पड़ेगा। मुंशियों और चपरासियों की मुट्ठी गरम करनी पड़ेगी। और कचहरी से बाहर, बरामदे में चारों ओर चोर-बाज़ारियों की भीड़ में खड़े होकर किसी आवाज़ का इंतज़ार करना होगा – सीता देवी, सुपुत्री पंडित राम लुभाया – और फिर मजिस्ट्रेट के सामने बयान। कैसे वह कहेगी, मैं गुरमीत से, अपनी मर्ज़ी से ब्याह करना चाहती हूं। ...नहीं, उससे यह नहीं हो सकेगा।

और फिर सीता कहने लगी, किसी दूसरे शहर में जाकर क्या वे यह सब कुछ कर सकते

हैं ? जालंधर में उससे यह नहीं हो सकेगा।

कुलदीप हंस दिया। उसने अपना इरादा बना लिया था। अब उसे कोई नहीं रोक सकता था। और वह अपने काम में लग गया। अगले दिन उसने अर्ज़ी दाखिल की। सरकारी कार्यवाही जब खत्म हुई, सीता और गुरमीत की सिविल मैरिज हो गई।

सोहणेशाह देखता रह गया। कहने लगा – मैं कब कहता था, यह ब्याह न हो, बस अपने हाथों मैं यह कारज करना नहीं चाहता था। लड़की ने अपनी मन-मर्ज़ी कर ली। घर में से दुविधा मिटी।

एक बार जब सिविल मैरिज हो गई तो सोहणेशाह भी, और गुरमीत के घरवाले, सभी यह कहते सुने गये कि वे तो बाकायदा ब्याह करेंगे। बारात चढ़ेगी, ढोल-ढमाका होगा, दावत उड़ेगी, और लड़की डोली में अपने ससुराल जायेगी। पर सीता इसके लिए रज़ामंद नहीं हुई। फिर भी सीता जब गुरमीत के घर गई तो गुरमीत की मां ने शकुन किए, आंगन में पैर रखने से पहले उस पर पानी वार कर पिया। सीता का श्वसुर गुरांदित्ता रेज़गारी की थैली, शहर से भरकर ले आया था, सीता ने आंगन में कदम रखा तो उसकी गली में जमा हुए बच्चों के ऊपर से उचक-उचक कर पैसों की वर्षा की। घर में दाखिल हुई तो उसी तरह दुलहन के घूंघट को उठाने के लिए चोंचले हुए। कुछ देर बाद सास - रानी बहू के लिए चूरी कूट कर ले आई। सीता ने गुरमीत के मुंह में चूरी डाली। उसी तरह से दोस्त, रिश्तेदार, अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठे हुए, फिर रात ढलने तक लड़कियां ढोलक के गीत गाती रहीं, मर्द दारू पीकर आंगन में नाचते रहे।

अगली सुबह गुरांदित्ता एक ही ज़िद पकड़ कर बैठ गया कि वह तो आनन्द कारज जरूर करायेगा। कचहरियों में भी कभी ब्याह हुए हैं। और हारकर सीता ने अपने आपको उनके हवाले कर दिया। एक बार सीता मान गई तो गुरांदित्ता तथा उसकी पत्नी और भी सातवें आसमान पर चढ़ गये। लड़के, लड़की और बाकी परिवार को बस में बिठाकर वे अमृतसर ले गये। गुरांदित्ता शहर में जाकर बस किराये पर ले आया था।

हरिमंदिर अमृतसर वालों ने कहा, पहले लड़का-लड़की अमृत पान करें फिर इनका आनन्द कारज होगा। गुरांदित्ता और सोहणेशाह को अमृतपान वाली बात बहुत अच्छी लगी। दोनों परिवारों ने मिलकर अमृत छका। फिर लड़के लड़की का विवाह हुआ। सारी गुरु मर्यादा पूरी की गई। फेरे लेते हुए सीता सोच रही थी, अगर ये सब कुछ इन्हें करना था तो मुझे कचहरी में ले जाकर क्यों परेशान किया गया ?

अमृतसर से लौटती बार सीता के पास कुलदीप बैठा था। उसके हाथों पर लगी मेंहदी, उसकी कलाइयों पर चढ़ी चूड़ियों की ओर देखकर कहने लगा,

"बच्चू ! अभी एक बार और तेरा ब्याह होगा।"

"क्या मतलब ?" सीता धक-से रह गई।

"अब जब तेरे पिताजी को पता चला तो वह अपनी पुत्री का ब्याह सनातन धर्म की रीति के अनुसार करेंगे।" कुलदीप ने हंसते हुए कहा।

कुलदीप ने तो यह बात मज़ाक में कही थी, पर अभी चार दिन नहीं बीते थे कि सीता का पिता उसके श्वसुर-घर आ धमका। बूढ़ा बार-बार यही कहता, "मुझे कन्यादान करना है। नहीं तो मेरा जन्म भ्रष्ट हो जायेगा।" सीता अपने बूढ़े बाप की एक नहीं सुन रही थी, पर गुरमीत उसकी हां में हां मिलाता जा रहा था। और फिर स्वयं सीता को विश्वास नहीं हो रहा था। गुरमीत से वह तीसरी बार ब्याही गई। उसके पिता ने महूरत निकलवाया, पंडितों को बुलवाया। सारी सामग्री इकट्ठी की गई। और पूरी वैदिक रीति से लड़के-लड़की का विवाह हुआ। यह रस्म रात के कोई बारह बजे हुई। पंडितों के अनुसार वही घड़ी शुभ थी।

गुरमीत के साथ इस बार फिर फेरे ले रही सीता को लगता, जैसे ज़री से जड़ी उसकी रेशमी कमीज़, सामने से ज्यादा उठी-उठी सी लग रही हो। सीता बार-बार अपने पेट को अंदर सिकोड़ने की कोशिश करने लग जाती।

अभी कोई ज्यादा दिन नहीं हुए थे, पर सीता पर एक अजीब वहम सवार हो रहा था। उसे लगता जैसे उसका पेट क्षण-क्षण फूलता जा रहा था। वह शलवार का अज़ारबंद कस-कस कर बांधती। हर समय सांस को अंदर खींच कर पेट को छिपाने की कोशिश करती रहती।

एक अजीब मुसीबत थी सीता की। उसे लगता, उससे मिलने के लिए आये हुए लोग जैसे चोर-आंखों से उसके पेट की ओर देख रहे हों। कभी कोई औरत आगे बढ़कर उसके किसी सूट को हाथ लगा कर देखने लगती तो सीता के सोते सूख जाते।

और फिर गुरांदेई के अड़ोस-पड़ोस की औरतों ने, इशारों-संकेतों में कहना शुरू कर दिया - गुरमीत ने ब्याह करने में जितनी देर लगाई थी, उतने ही जल्दी वे उसके घर बच्चा देखने के लिए उतावली थीं। कोई कहती – इस उम्र में दो-चार, जितने भी बच्चे चाहिएं पैदा कर लेने चाहिएं, फिर उनको पालने, पढ़ाने, ब्याहने की भी तो चिंता करनी पड़ती है। और हर बार जब कोई इस तरह का जिक्र करती, सीता का कलेजा धक-से रह जाता। उसे लगता जैसे उसी पर चोट की जा रही हो।

एक दिन गली में खड़ी सीता, संती से बातें कर रही थी कि उधर से गुजरी आ पहुंची और हंसती हुई कहने लगी – अय लड़की। इसका साया अपने ऊपर न पड़ने देना, इसने तो जन-जन कर आंगन भर दिया है। यह तो सूअर की तरह हर साल बच्चे पैदा करती है। बच्चा, अच्छा हैं, एक ही हो। नहीं तो दो। दो से ज्यादा बच्चे तो बस शोर होते हैं।"

"तू अपनी बात कर। कभी अपने पलंग के नीचे भी तू ने छड़ी फेर कर देखी है?" संती ने चिढ़कर गुजरी से कहा।

"मेरी और बात है, मैं तो बीरे के बापू से जान छुड़ाने के लिए हमेशा यही सोचती रही – फांक ले जो धूल यह फांकना चाहता है...कई बार तो सच..."

"तू सोई होती है और वह अपना काम निपटा कर चला जाता है।" संती हँसने लगी।

"मर्दज़ात को ज्यादा मुंह नहीं लगाना चाहिए।"

"तुझे नई-ब्याही लड़की के सामने ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

"इसने तो पहले ही मुंह लगा लिया होगा। इसका क्या है। वह तो नये ज़माने की लड़की

है। कचहरी से होकर आई है।"

"नया ज़माना क्या और पुराना ज़माना क्या! इस हमाम में सभी नंगे हैं। तुझे भी तो कोई साहिबां की तरह घोड़ी पर बिठा कर निकाल लाया था।"

"निकली किसी के साथ, किस्मत में लिखा था कोई और।"

"इश्क तो किसी-किसी का आखिर तक पहुंचता है।"

"जिनका इश्क आखिर तक पहुंचता है, उनके बटन इस तरह से बंद नहीं होते। देख तो सही इस लड़की की तरफ।"

और फिर गुजरी और संती ने आंखें भरकर सीता के बटनों में बंद न होने वाले जोवन को देखा। और फिर उनकी नज़रें जैसे उसके रेशमी कुर्ते से फिसलती-फिसलती नीचे, और नीचे उतरती गईं। और फिर दोनों ने एक ही सांस में कहा – "हाय मैं मर जाऊं। और फिर दोनों ने हाथ बढ़ाकर, सीता के कुरते के नीचे, किसी छिपे हुए भेद को टटोलने की कोशिश की।

सीता का ऊपर का सांस ऊपर, नीचे का सांस नीचे, उनकी बांहों में वह ढेर हो गई। उसके हाथ-पांव ठंडे हो गये। उनके माथे पर पसीने की की बूंदे फूट निकलीं। सारी शाम घर के लोग, सीता से जूझते रहे, उसे होश नहीं आई। आंख खोलती, इधर-उधर देखती, और फिर उसके दांत भिंच जाते। एक बार उसका निचला होंठ उसके दांतों के नीचे आ गया और उसने अपने आपको लहू-लुहान कर लिया। उसके हाथ-पांव मुड़ते जा रहे थे। हार कर घरवालों ने लेडी डाक्टर को बुलाया। डाक्टर कुसुम उनके यहां पहुंची ही थी कि उसने देखा, सीता के पलंग की चादर जैसे लहू से निचुड़ रही हो। एंबुलेंस मंगवाकर सीता को, डाक्टर कुसुम अपने क्लिनिक में ले गई। उस रात सीता का फिर आपरेशन करना पड़ा। इस बार फिर उसके पेट में पनप रही एक आशा स्लेट पर लिखे अक्षर की तरह मिट गई।

82

सीता के किस्से से निबट कर कुलदीप किसी तरह पाकिस्तान जाना चाहता था ताकि राजकर्णी की तलाश करे। पर कुछ दिनों से कुसुम जैसे उसे जकड़ कर बैठी हुई थी। डाक्टर कुसुम को जिस क्षण से यह यकीन हो गया कि सीता की दोस्ती तो गुरमीत से थी और जिस बच्चे को वह कुलदीप का समझ बैठी थी वास्तव में वह गुरमीत का था, उस क्षण से जैसे वह कुलदीप की दीवानी हो गई हो। प्रेम तो वह उससे कितने अर्से से कर रही थी, एक दबी-घुटी चिनगारी, पर कुछ दिनों से सुलग रही यह आग जैसे ज्वाला की लपटें बन गई हों।

उधर कर्तव्य, इधर प्रेम।

कुलदीप सोचता, यह तो पुराना संघर्ष है, मैं इससे निकल जाऊंगा। नये ज़माने का आदमी

दकियानूसी बंधनों में बंधकर नहीं रह जाता। इस तरह की कोई मुसीबत उसे कभी डगमगा नहीं सकी थी, इस पड़ाव से वह चुपके से ही निकल जायेगा।

लेडी डाक्टर कुसुम पर जैसे पागलपन सवार हो। दिन-रात, दिन-रात कुलदीप के पीछे लगी रहती। न स्वयं कुछ करती न उसे कोई काम करने देती। कभी होटल कभी सिनेमा, कभी बाज़ार। छोटा-सा शहर, लोगों ने उनकी ओर घूर-घूर कर देखना शुरू कर दिया। कुलदीप को यह अच्छा नहीं लगता था। कुसुम कहती, मुझे तो यह बड़ा अच्छा लगता है। लोग कनखियों से देखें, खुसुर-फुसुर बातें उड़ाये, कुढ़ें, मुझे तो यह बहुत अच्छा लगता है। सिनेमा घर के अंधेरे में कई लोगों ने कुसुम को कुलदीप के कंधे पर सिर रख कर, आंखें मूंदे पड़े देखा था। पिक्चर देखने के लिए आई, वह पिक्चर नहीं देखती थी, आंखें बंद किए कुलदीप के कंधे पर सिर रखे, सुस्ता रही होती, एक नशे-नशे में डूबी हुई। कभी उससे धीमे-धीमे बातें करने लग जाती। उधर पिक्चर चल रही होती, इधर ये मुंह से मुंह जोड़े सरगोशियां कर रहे होते। आगे-पीछे बैठे लोगों को कितना अजीब-अजीब लगता। बाज़ार में कितनी-कितनी देर कुलदीप के साथ सट कर खड़ी होकर, छोटी-मोटी चीज़ें देखती रहती, मोल-तोल करती रहती। जिस दुकान में घुसती, सैकड़ों रुपयों का सामान खरीद कर मोटर-कार भर लेती। काफी रात गए तक बाग में टहलते, शहर से बाहर खेतों के किनारे घूमते, हाथ में हाथ डाले हुए, लोगों ने उनको देखा था।

और फिर एक दिन सुबह सूरज निकलने से पहले, कुसुम अपनी मोटर में कुलदीप को बिठाकर सुलतानपुर ले गई। कहने लगी, मैंने मन्नत मानी थी, सुलतानपुर के गुरुद्वारे में मैं माथा टेकूंगी। रास्ते में एक गांव पड़ता था, जहां के चौधरी की बहू का, कुसुम ने कभी इलाज किया था। ऐसा लगता था, उनको लेडी डाक्टर के आने की सूचना मिल चुकी थी। इनकी खातिरदारी का पूरा-पूरा प्रबंध किया गया था, और इनकी तफरीह का भी इंतज़ाम था। दो बंदूकें और ढेर-सारे कारतूस उन्होंने इकट्ठे कर रखे थे। और चाय-पानी के बाद वे इन्हें मुर्गाबियों के शिकार के लिए ले गये। इस इलाके में मुर्गाबियों ही मुर्गाबियां थीं। कुलदीप को यह मालूम ही नहीं था कि कुसुम शिकार की इतनी शौकीन है। धड़ा-धड़ फायर करती, दायें-बायें मुर्गाबियों को गिराती जा रही थी। कुलदीप उसके मुंह की ओर देख-देख कर हैरान हो रहा था। तभी तो स्लैक पहन कर आई थी। हल्के सलेटी रंग के स्लैक पर बैंगनी ब्लाऊज़। शिकार की दौड़-धूप में उसके गाल तमतमाने लगे थे। उसके जोबन पर आंख नहीं टिकती थी। और फिर कुलदीप के कानों में आवाज़ पड़ी, उन्हें शिकार खिलाने आया एक किसान लड़का अपने साथी से कह रहा था – डाक्टरनी शिकार बड़ा अच्छा करती है। और जैसे आंख मार कर, उसने अपने साथी को यह कहते हुए होंठ चटखाये, कुलदीप ने यह सुना तो बरबस मुस्करा दिया। वे मोटर, पीछे गांव में छोड़ आए थे। शिकार खेलने के लिए, घोड़ियों पर ये लोग आये थे। जब मुर्गाबियों का शिकार खेलते-खेलते थक गई, तो कुसुम घोड़ी पर सवार होकर हिरण का शिकार करने लगी। कुलदीप, इस लड़की को देख-देख कर हैरान हो रहा था। गांव से आये लड़के और उनके कुत्ते, उनकी गिराई मुर्गाबियों को अभी इकट्ठा नहीं कर पाये थे कि वह एक हिरण

के पीछे यह-जा, वह-जा हो गई। कुलदीप निशाना ही बांधता रहता कि शिकार उसकी ज़द से निकल जाता। डाक्टर कुसुम शिकार देखती, बंदूक कस कर जैसे उसके कंधे पर जा टिकती। ठा-ठा, उसकी गोलियां चलने लग जातीं। एक-एक फायर में दो-दो, तीन-तीन मुर्गाबियां नीचे गिराती। कुलदीप को अपने घोड़े से इतना डर लग रहा था और कुसुम का यह हाल था कि हिरणों से तेज़ जैसे उसकी घोड़ी दौड़ रही हो। और फिर लड़कों ने आकर उसे बताया, कुसुम ने एक हिरण को मार गिराया था, एक और को घायल कर दिया था, अब उसके पीछे लगी हुई थी; घायल हिरण को तकलीफ होगी, उसे मारना जरूरी था। कई मील, कुसुम उस हिरण के पीछे निकल गई। कुलदीप बाट देख-देख कर थक गया। धूप निकल आई थी। कोई एक घंटे बाद, कुसुम हांफती हुई लौटी। कहने लगी, आखिर मैंने उसे ढूंढ़ लिया। लड़के उसे उठाकर ला रहे हैं। शिकार का उसूल है, जहां तक हो सके, किसी घायल जानवर को जंगल में नहीं छोड़ना चाहिए।

"अजीब तर्क है!" कुलदीप हंसने लगा। "तभी तो कई बाघ नरभक्षी हो जाते हैं।" थकी-थकी कुसुम, कुलदीप को अपने शिकार की कहानियां सुनाने लगी। इतने में लड़के सारे शिकार को इकट्ठा करके ले आये। कोई तीन दर्जन मुर्गाबियां और दो हिरण। इनमें से कोई भी चीज कुलदीप द्वारा शिकार नहीं की गई थी। दो-चार फायर उसने अवश्य किए थे, पर वह ऐसे ही बेकार गये थे। किसी पक्षी का पंख भी नहीं गिरा सके थे।

जैसे किसी की भूख न मिटी हो, शिकार-खिलाने आये लड़के, सारे-का-सारा शिकार उठाकर गांव की ओर चल पड़े, पर कुसुम वहां से हिल नहीं रही थी। अलसाई-अलसाई नज़रों से कुलदीप की ओर देखती हुई, एक बूढ़े-पुराने पेड़ के ठूंठ के साथ सट कर बैठी थी।

"यहां से सुलतानपुर कोई दूर नहीं। अभी पहुंच जायेंगे।" कुसुम कह रही थी।

"फिर तो शायद गुरुनानक कभी इन जंगलों में से गुज़रे होंगे।"

"शायद इस पेड़ के नीचे बैठे हों। मरदाना ने रुबाब छेड़ी होगी और कवि गुरुनानक ने "कुदरत वस्यिा" की महिमा में ईश्वरीय वाणी का उच्चारण किया होगा।"

"उस ज़माने में तो यह बड़ा घना जंगल रहा होगा। जैसे-जैसे समय बीतता है लोग खेती के लिए भूमि की तलाश में जंगलों को निगलते जाते हैं। हमें ऐसा नहीं करना चाहिए, इस तरह प्रकृति का संतुलन बिगड़ जायेगा।

"कुलदीप! तुम्हारा क्या विचार है, बाबा नानक तुम्हारे मेरे जैसे हाड़-माँस के बने थे, जब कोई कांटा चुभता तो उन्हें पीड़ा होती थी? जब किसी प्यारे की याद आती, उनकी आंखें सजल हो उठती थीं?"

"कांटा चुभने पर पीड़ा तो होती है, पर कई लोग होते हैं जो इस पीड़ा को पीड़ा मानते ही नहीं। और किसी की याद में आंखों का सजल हो जाना; कुसुम तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि बाबा नानक का ब्याह हुआ था, उनके दो बेटे भी थे।"

"तुम्हारा मतलब है, तुम्हारा मतलब है..." और कुसुम ने कुलदीप की आंखों में आंखें डाल कर देखा और आलिंगन में ढेर हो गई।

इस तरह उसको अपनी बांहों में बेसुध पड़ी हुई देख कर कुलदीप ने धीमे से उसके कान में कहा, "जैसे कोई मुर्गाबी हो।"

"घायल, अधमरी।" कुसुम ने सरगोशी की; और एक अनन्त प्यास अपने होंठों में भरकर उसके होंठों की ओर देखा।

और किसी चुंबकीय शक्ति से कुलदीप की गर्दन झुक गई, होंठो पर होंठ। और फिर उसकी पलकें मुंद गईं, जैसे कुसुम की पलकें मुंदी हुई थीं।

और फिर जैसे घुप-अंधेरी रात उतर आई हो। अंधेरे की दीवारें, उसके पीछे अंधेरे की और दीवारें। दीवारों पर दीवारें चढ़ती जा रही थीं। घुप अंधेरी रात का अंधकार, घने काले बादल; कुसुम को लगता जैसे सुरमई रंग की मखमली चादरों में वह लिपटी जा रही हो। कुछ क्षण, और जैसे अचानक बिजली कौंध गई; चकाचौंध कर देनेवाली एक झलक और बस। बिजली एक बार कौंधी, दो बार, तीन बार और कुसुम को लगा जैसे वह समूची की समूची एक अंगारा बन गई हो। जैसे वह तप रही हो और अब एक ही लपट उसे जलाकर भस्म कर देगी। राख की एक ढेरी, और बस कुछ नहीं। और फिर रंग-बिरंगे तारे उसकी आंखों के आगे तैरने लगे। तारों में से तारे निकल रहे थे, रंगों में रंग विलीन हो रहे थे। रिमझिम-रिमझिम फुहार जैसे पड़ने लगी हो। जैसे मिट्टी-गारे में लथपथ कोई ठंडी-ठार तलैया में डुबकियां मारने लगे। एक स्वाद-स्वाद, एक नशा-नशा। तैर रही – डूब रही, तैर रही - डूब रही, तैर रही – डूब रही, और फिर पूरी की पूरी डूब गई।

और फिर जैसे अचानक किसी का सपना टूट जाये, कुसुम एक झटके से उठ कर गांव की ओर लौटने को तैयार हो गई। शिकार खिलाने के लिए आये लड़के, कहां के कहां निकल गये थे। कैसा सुनसान जंगल था और वे बिल्कुल अकेले थे। छितरे हुए पेड़, सघन झाड़ियां, पानी के भरे गड्ढे, हरियाले टीले।

घोड़ियों पर सवार गांव की ओर जाते हुए, कुलदीप अपने ध्यान में डूबा हुआ था, कुसुम अपने विचारों में खोई-खोई सी लगती थी। न उसने इससे कोई बात की, न इसने उससे कोई बात की। जैसे दो अजनबी हों।

गांव पहुंच कर कुसुम फिर वैसी की वैसी हो गई। हंस रही, खेल रही, मज़ाक कर रही। अपने हाथों से उसने कुलदीप के लिए चाय बनाई। कहने लगी – ये लोग तो चीनी में चाय पीते हैं, चीनी और दूध में सारा-सारा दिन इनकी चाय उबलती रहती है।

गांव में चाय पी कर उन्होंने शिकार को वहीं छोड़ा और स्वयं सुलतानपुर चले गये। शिकार को लौटती बार वे इकट्ठा कर लेंगे।

सुलतानपुर गुरुद्वारा, एक अत्यन्त रमणीक स्थल है। बाहर बूढ़ी-बेरी, जिसके नीचे कभी बाबा नानक बैठे थे। गुरुद्वारे के विशाल भवन में घूम रही कुसुम पर जैसे नशा-सा सवार हो रहा था। गुरुद्वारे की पीछे बेईं नदी बह रही थी। गुरुद्वारे से बाहर निकली तो कुसुम, कुलदीप को गांव से दूर नदी किनारे एक वीरान जगह पर ले आई। कुलदीप, कुसुम को बेईं नदी की कहानी सुना रहा था।

"बाबा नानक तब जवान थे। मुश्किल से उनकी मसें भीगने लगी थीं। अनन्त यौवन के वे दिन जब हर चीज सुन्दर लगती है; हंसना, खेलना, गाना। मोदीखाने की नौकरी में बाबा का मन नहीं लगता था; कैसे कोई सारा दिन आटे-दाल के हिसाब-किताब में गंवाये? सुबह-शाम अपने काम से निबट कर गुरुनानक बेईं नदी के किनारे आ बैठते। प्राय: अकेले होते। आजकल बाबा को एकान्त भाता था। उनके जवान-जहान साथी रास रचाते, भाँगड़ा डालते, नाचते-गाते, गली-गली में ऊधम मचाये रखते। लेकिन बाबा नानक को एक नयी लगन लग रही थी। एक अनोखी घुटन, एक खोज, एक तलाश। हर समय आँखें रुआंसी-रुआंसी रहतीं। हर समय होंठों पर कोई याद जैसे तैर रही हो। बाबा को आजकल एकान्त प्रिय था। न खाना अच्छा लगता, न पीना अच्छा लगता।

"कई दिनों से बाबा के बचपन का एक साथी रुबाब वादक मरदाना भी सुलतानपुर आ गया था। मरदाना रुबाब बजाता, बाबा नानक ईश्वर की स्तुति में सोहिले गाते रहते। सबसे ज्यादा हैरान बाबा नानक के वे मित्र थे, जिनको बाबा ने, पीछे, अपने गांव से, संदेश भेज-भेजकर मंगवाया था कि इस शहर में मेरा जी नहीं लगता, और अब कई दिनों से वे बाबा का मुंह देखने के लिए बेताब थे। बस रुबाब वादक मरदाना और बाबा दिन-रात, दिन-रात अपनी धुन में मस्त रहते।

"और फिर एक दिन मुंह-अंधेरे, बाबा, बिलकुल अकेले बेईं नदी में स्नान के लिए निकल आए। मरदाना आज उनके साथ नहीं था। सारी रात बाबा की आंख नहीं लगी थी। एक बेचैनी-सी हो जैसे किसी को, जैसे किसी खोये हुए से मिलने की भनक किसी के कान में पड़ गई हो। आंखें फाड़-फाड़कर, गलियों के अंधेरे में किसी को ढूंढ़ते हुए, बेईं के तट पर आ निकले। अंधेरे के पर्दों में ढूंढ़-ढूंढ़कर बाबा की कोमल पलकें थक गईं। और बाबा ने आंखें मूंदे हुए जैसे अपने आपको किसी की बांहों में गिरा दिया। सोई-सोई बेईं नदी की लहरों में एक उछाल आई और फिर बेईं वैसी-की-वैसी बहने लग गई। शान्त, अडोल।"

"उधर मरदाना की आंख खुली, बाबा को अपने पलंग पर सोया हुआ न देखकर, दीवानों की तरह उठकर उन्हें ढूंढ़ने लगा। कैसा बुरा सपना उसने देखा था। बाबा तो कहीं भी नहीं था, न अपनी कोठरी में न बाहर आंगन में। न गली-कूचे में। और फिर शहर के चौकीदार ने बताया, उसने बाबा को बेईं की ओर जाते देखा था। उसने सोचा, साईं-बाबा आज तड़के ही उठ बैठा है। और फिर उन दिनों बाबा के तौर-तरीके भी तो और के और हो रहे थे।"

"मरदाना बाबा को ढूंढ़ता हुआ बेईं के किनारे आ पहुंचा। बेईं के इस किनारे उन दिनों घना जंगल होता था। मरदाना ऊंची आवाज़ में बाबा को पुकारने लगा। इधर से उधर, दौड़-दौड़कर, आवाज़ें लगाते-लगाते वह बेहाल हो रहा था।"

"बाबा तो कहीं भी नहीं था। और फिर सारा शहर काम-काज छोड़कर नानक को ढूंढ़ने में जुट गया। गली-कूचे, जंगल-बियाबान, चारों ओर 'नानक' 'नानक' की पुकार होने लगी। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गए। तीसरा दिन होने को था। बड़े-बड़े तैराक बेईं का चप्पा-चप्पा छान रहे थे। बाबा नानक तो कहीं भी नहीं था।"

एक स्वाद-स्वाद में बाबा नानक की यह कहानी सुनाते हुए,कुलदीप,कितनी देर से नदी के एक बहुत सुनसान किनारे पर खड़ा था। अचानक कुलदीप ने मुड़कर देखा,कुसुम सुलफे की लाट की तरह,कूदकर नदी में गायब हो गई। हक्का-बक्का कुलदीप सामने,ढेर की तरह पड़े कुसुम के कपड़ों को देख रहा था। उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। पसीना-पसीना हो रहा,अवाक्,अभी वह बिट-बिट,नदी के बह-रहे पानी को देख रहा था कि कुसुम ने अपना सिर बाहर निकाला और कहने लगी,"मैं बाबा नानक को ढूंढ़ रही हूं।" एक नशे-नशे में मखमूर,बांहों को ऊपर उठाकर वह कह रही थी,"कुलदीप,बाबा नानक यहीं कहीं खो गए थे?" इतना कह कर उसने गोता लगाया और पानी में गायब हो गई। नदी के इस किनारे से उस किनारे,उस किनारे से इस किनारे,एक अकथनीय वेग से तैर रही थी। फिर सामने नदी की लहरों पर झुक-झुक पड़ रहे एक पेड़ पर चढ़ गई। जैसे गिलहरी हो,टहनियों पर फुदकती हुई वह पेड़ की चोटी तक जा पहुंची और इससे पहले कि कुलदीप उसको रोक सकता,छलांग लगा कर फिर पानी में गायब हो गई। और फिर जैसे उसे यह खेल मिल गया हो। पेड़ों की टहनियों पर फुदकती हुई चोटी तक पहुंच जाती,ऊपर पहुंच कर कहती,"मैं बाबा नानक को ढूंढ़ रही हूं।" और फिर बेईं के सोये-सोये पानी में कूद पड़ती। कितनी देर यह खेल खेलती रही। जैसे जल-परी हो,उसके गज़-गज लंबे बाल उसके पीछे पानी में तैर रहे थे। और फिर वह चंपा की कलियां बिखेरती,खिल-खिल हंसती बाहर आई और हक्के-बक्के अवाक्,खड़े कुलदीप के कपड़े उतार,उसे पकड़कर पानी में ले गई। बार-बार कहे जा रही थी,कुलदीप आओ हम मिलकर बाबा नानक को ढूंढ़ें।" वह तैर रही थी,डुबकियां लगा रही थी,बार-बार टहनियों पर झूलने लगती। बांह फैलाकर कुलदीप को ऊपर खींच लेती। फिर अपना हाथ छोड़ देती और वह धम-से पानी में जा गिरता। कितनी देर वे यह खेल खेलते रहे। कुसुम पर जैसे दीवानगी सवार हो,बार-बार डुबकी लगा कर नदी के तल तक पहुंच जाती और मुट्ठी भर कर कुलदीप को ला दिखाती। "कुलदीप,बाबा नानक तो कहीं भी नहीं।" कुलदीप बाहर निकल कर अपने आपको सुखाने के लिए खड़ा होता और कुसुम चुपके से आकर उसके मिट्टी मल देती,उसकी बांह पकड़ कर फिर पानी में उसे ले जाती। फिर वे तैरने लग जाते,फिर डुबकियां लगाने लगते।

83

बेबी राजी बड़ी हो रही थी। उसके मां-बाप की कभी-कभी चिट्ठी आ जाती। कई दिनों से आजकल कोई चिट्ठी-पत्री नहीं आयी। राजी को जैसे वे कभी याद ही न आये हों। बस अपने भाइयों का कभी ज़िक्र करती। उसके भीतर की बहन को ऐसा करना अच्छा लगता था। खास तौर पर 'कमाल भाई' को याद करती। बातों-बातों में किसी अच्छी घटना या किसी अच्छी

चीज का जिक्र करते हुए जब कोई कहता – भई कमाल है,तो बेबी राजकर्णी खिल-सी जाती। कितनी-कितनी देर अपने भाई का नाम उसके कानों में गूंजता रहता।

सोहणेशाह हैरान था,कई बार जब बेबी राजकर्णी बातें कर रही होती,उसे अपनी बेटी राजकर्णी के बोलने की आवाज़ सुनाई देने लग जाती। हू-ब-हू उसी तरह कहती – जी नहीं। "जी" पर ज़ोर देकर,"नहीं" ज़रा लटका कर झटके से खत्म कर देती। हू-ब-हू उसी तरह हँसती, उसी तरह गाती,ज्यों-ज्यों बेबी राजी बड़ी हो रही थी,हू-ब-हू,सोहणेशाह की अपनी बेटी राजकर्णी जैसी निकलती आ रही थी।

"मुझे तो अब वह कभी याद भी नहीं आती।" एक दिन कुलदीप के पास बैठा सोहणेशाह कहने लगा।

"कौन ?"

"राजकर्णी और कौन ? अब वह मुझे कभी याद भी नहीं आती। मर-खप गई होगी। इतने लोग मारे गये; वह भी उपद्रव में कहीं खत्म हो गई होगी।"

"आज आप कुछ ज्यादा उदास लगते हैं।"

"मेरी उदासी कोई न्यारी है ? वे भी तो हैं जिनके गांव के गांव धराशायी कर दिए गये, मुहल्लों के मुहल्ले तहस-नहस हो गये। माँयें जी रही हैं – जिनकी छाती से बच्चे छीन कर फसादियों ने आग की धधकती लपटों के हवाले कर दिए। मैं सोचता हूं,मेरा दुख कौन-सा इनसे अलग है।"

"यह तो ठीक है। पर राजकर्णी को ढूंढ़ना तो बड़ा जरूरी है। आज कल के जमाने में इस तरह लड़की का गुम हो जाना,यह बात कुछ समझ में नहीं आती है।"

"लड़कियों का क्या है,अरे लड़के। सतभराई जो बच कर मेरे साथ आ गई,वह कौन सी मेरे पास बैठी रही ? वक्त आया तो कान लपेट कर चली गई। जैसे कोई पंछी पर तोल कर उड़ जाता है।"

"सतभराई को तो जाना ही था।"

"सतभराई क्या और राजकर्णी क्या,लड़की-बेटी कभी घर नहीं बैठी रहती। उसे तो जाना होता है।"

"पर राजकर्णी जिस तरह बिछड़ी,उसे तो ढूंढ़ना ही होगा।"

"अरे लड़के। अब वह कहां मिलेगी ? अठारह बरस होने लगे हैं। अब वह नहीं मिलेगी। कुछ की कुछ हो गई होगी। मैं तो उसकी शक्ल भी भूलने लगा हूं। उसकी मां चली गई। मेरे रोकने से कोई रुकी थी ? मर खप गई होगी।"

"हां,साल भी तो कितने हो गये हैं।"

"हमें अपनी बोली बिसरती जा रही है,अपनी पोठोहारी,मीठी शहद -- जैसी भाषा।"

"ज़िंदगी का नाम ही तरक्की करना है,बदलना है,कुछ का कुछ हो जाना है।"

"ये क्यों नहीं बदलते – इस तरफ के लोग ?"

"बदल रहे हैं। दिल्ली,कलकत्ता और मद्रास तक औरतों ने हमारी शलवार पहननी शुरू

कर दी है।"

"बस हमारी शलवार ही इन्हें पसन्द आई।"

"हम इस छोर को हरा-भरा कर डालेंगे। पूर्वी पजाब अनाज का भंडार बन जायेगा,हमने नहरों का जाल बिछा दिया है, अब अनाज की जाति बदल देंगे। पंजाब सारे देश को अनाज दिया करेगा। विदेशों से हमने बीजों की ऐसी नस्लें मंगवाई हैं कि एक खेती में पांच खेतियों के बराबर गेहूं पैदा हुआ करेगा।"

"नई नस्ल का बीज आयेगा, इसके साथ नई बीमारियों के कीड़े भी आ जायेंगे। नई बीमारियैां फैलेंगी। फिर हम नये इलाज ढूंढ़ते फिरेंगे।"

"इसका तो यह मतलब हुआ कि आदमी हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाये, तरक्की के लिए कोई उपाय न करे।"

"बेशक तरक्की करो। नहरें निकालो, बिजली पैदा करो, ट्रैक्टर चलाओ, अनाज के ढेर लगा दो, किसी दिन पाकिस्तान से लड़ाई छिड़ जायेगी और सब कुछ मलियामेट हो जायेगा। सारे मन्सूबे धरे के धरे रह जायेंगे।"

"तभी तो मैं कहता हूं, हमें अपने पड़ोसी देश से मिल कर रहना भी सीखना चाहिए।"

"यह तो ठीक है, पर अगर पड़ोसी देश मिलकर न रहना चाहे तो कोई क्या करे?"

"कभी भाई, भाइयों से अलग हुए हैं? लाख लड़ाइयां हों, लाख झगड़े हों, कभी कोई अपनी बांहें काट कर नहीं फेंक देता। हमारी ओर कहते थे – "भरा भरांवाँ दे ते ढोडर कांवाँ दे।" अपना मारेगा भी तो छाया में फेंकेगा, तपती धूप में छोड़ कर नहीं चला जायेगा। पाकिस्तान की बड़ी मुश्किल यह है कि उनके पास कोई लीडर नहीं है। पाकिस्तान में पिच्छलग्गुओं के हाथ में लीडरी आ गई है। लीडर भीड़ के पीछे चलते हैं, भीड़ की अगवानी करने वाला कोई नहीं। जब उस देश में कोई लीडर पैदा होगा, हम से उनकी दोस्ती हो जायेगी। हमारी पहाड़ों की साझेदारी है, हमारी दरियाओं की साझेदारी है, हमारी सर्दियां एक हैं, हमारी गरमियां एक हैं। वर्षा इधर हमारी ओर होती है, सैलाब उधर आते हैं। धूप उधर चमकती है, लू हमारी ओर चलने लगती है।

"क्या तुम्हारा मतलब है, हम कभी फिर मिल जायेंगे? हिन्दुस्तान और पाकिस्तान फिर से एक हो जायेंगे?"

"मैं यह नहीं कहता कि पाकिस्तान का अस्तित्व खत्म हो जायेगा। एक नया देश बना है। इतने बरसों से कायम है, उस देश के बने रहने में ही उस देश का भला है और हमारा भी।"

पाकिस्तान को खत्म करना होगा, अगर हिन्दुस्तान शान्ति से रहना चाहता है तो इस नफरत के बरतन को फोड़ना होगा। मज़हब के नाम पर अलग देश खड़ा करने वालों को यह बताना होगा कि मज़हब बांटा नहीं करता, मज़हब तो जोड़ता है। मज़हब तो लोगों को मिलाता है। एक-दूसरे का आदर करना सिखाता है।"

"पाकिस्तान खत्म हो जाये ताकि आप जिधर मुंह उठायें, उधर जा सकें, कश्मीर से कन्याकुमारी और पेशावर से गुवाहटी तक जहां आप चाहें घूम सकें। आपको कोई पूछनेवाला

न हो।"

"यह बात नहीं,हिन्दुस्तान में कौन-सा भला कोई घूमता रहता है,जालंधर से तो मैं कभी बाहर नहीं निकला। मैं तो पाकिस्तान को खत्म करना चाहता हूं,क्योंकि नफरत की नींव पर वह देश खड़ा है। हम खत्म नहीं करेंगे तो कभी यह दीवार आप से आप गिरकर ध्वस्त हो जायेगी।"

पाकिस्तान को बनाने के ज़िम्मेदार पाकिस्तानी ही नहीं,हिन्दुस्तानी भी हैं। ताली दोनों हाथों से बजती है। अगर यहां के लीडर जिनमें जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल शामिल थे,न चाहते तो पाकिस्तान नहीं बन सकता था। ज्यादा से ज्यादा देश की आज़ादी दो-चार साल और पीछे खिसक जाती,देश को इस तरह बांटने की शायद जरूरत न पड़ती।"

"दिल बंटे हुए थे,देश बंट गया।"

"अब दिलों को जोड़ना चाहिए। दिल जुड़ जायें तो देश चाहे बंटा रहे। पराये भी अपने हो जाते हैं।"

"हमने तो उन्हें अपने दिल के टुकड़े दिए हुए हैं। मेरी राजकरणी उधर है,मेरी सतभराई उधर है।"

"यह तो निजी मामला है। उसूल की मांग है कि पाकिस्तान की दरिद्रता दूर की जाये। पाकिस्तान के किसानों और पाकिस्तान के मजदूर की सदियों से लूट-खसोट हो रही है। हिन्दुस्तान के किसान-मजदूरों के साथ मिल कर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करें। इस जंग में एक साझेदारी पैदा होगी,जो स्थायी बन सकती है।"

"पाकिस्तान खुशहाल हो।"

"उनको अमरीकियों और रूसियों के आगे हाथ न फैलाने पड़ें।"

"मुझे याद है,अंग्रेज के राज में गोरे बदमस्त होकर पागल कुत्तों की तरह घूमते रहते थे। गरमी के दिनों में बालिश्त-बालिश्त भर जांघिये कमर में फंसाकर,नंग-धड़ंग साइकलों पर सवार होकर हमारे गांव में घुस आते थे। बहु-बेटियां मारे डर के घर से बाहर नहीं निकलती थीं। एक दिन हरनाम लीखल की बीवी को किसी गोरे ने पकड़ लिया। जो कहता,हरनाम की बीवी को ही बुरा कहता – आखिर वह बड़ के नीचे गई ही क्यों थी ? किसी की मजाल नहीं थी,गोरे की उस हरकत की शिकायत तक भी कर सके।

"यही हाल अमरीकी आजकल पाकिस्तानयों का कर रहे होंगे। जिस सड़क पर सफेद चमड़ीवाला चले,उस पर कोई देसी नहीं चल सकता।"

"तो फिर क्या खाक इनको आजादी मिली है ? अंग्रेज की गुलामी गई तो अमरीका की गुलामी गले लगा ली। जो टका दिखाता है वही नाचनेवाली को नचाता है। इन बेचारों की तो मदद करनी चाहिए। असल में पाकिस्तानियों की यह मुश्किल है कि उनके पास ऐसे लीडर बहुत कम हैं जिन्होंने आजादी की जंग में अंग्रेज के खिलाफ लड़ाई लड़ी हो। पाकिस्तान को तो आज़ादी बस मुफ्त में मिल गई। इनकी तो मदद करनी चाहिए।"

"हर मुल्क को अपनी मदद आप करनी होती है। कोई पराया किसी देश की मदद नहीं

कर सकता।"

"हम पराये कब से हो गये ? पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी भाई-भाई हैं,हम पराये बिल्कुल नहीं। हमारी साझेदारी बड़ी पुरानी हैं। हमने पगड़ियां बदली हुई हैं। अभी तो लाख राजकर्णियां उधर हैं। हमें कौन अलग कर सकता है ? बरतन से बरतन टकरा जाता है। हम एक दूसरे पर अब भी जान दे सकते हैं।"

"आपको समझना भी मुश्किल है। एक पल में आप पाकिस्तान के विरुद्ध बोलने लग जाते हैं,दूसरे पल पाकिस्तान के पक्ष में।" कुलदीप ने खीझ कर कहा। और आंगन में टहलने लग गया।

84

कुलदीप को आंगन में टहलता हुआ छोड़कर, सोहणेशाह छड़ी उठाकर बाहर सैर के लिए निकल गया। उसका सैर का समय हो गया था। हर शाम सोहणेशाह सैर करने ज़रूर जाता था। उसके साथ उसकी उम्र के कई बुज़ुर्ग भी होते थे। कोई समय था,इनकी पार्टी इतनी बड़ी होती थी कि सड़क पर चलते रिक्शावाले घंटियां दे-दे कर थक जाते थे,सब बूढ़े थे,सब ऊंचा सुनते थे और फिर हर कोई बोलने लग जाता था ताकि सुनने की मुसीबत से बचा जा सके। पक्की सड़क पर ठक-ठक छड़ियां टेकते हुए चलते थे। सफेद दाढ़ियों वाले सिंह-सभाई, चूड़ीदार तंग पाजामों वाले सनातन धर्मी; सर्दी-गरमी दोनों में कोट-पतलून पहनने वाले देसी ईसाई। कोई सरकारी अफसर रिटायर हुए थे,कोई राजनीतिक नेता थे,जिन्हें चुनावों में सफलता नहीं मिली थी। कोई व्यापारी थे – अपने बेटे-पोतों को काम-काज सौंप कर सुर्खरू हो गये थे। बूढ़ा-पार्टी में ज्यादातर ऐसे थे जिन्हें डाक्टरों की हिदायत थी कि सुबह-शाम सैर जरूर किया करें। कुछ वे भी थे जिन्हें वक्त गुज़ारना होता था,सारा दिन बेकार पड़े रहते थे,सुबह-शाम सैर के बहाने,जो समय कट जाता था,वही भला था। कुछ ऐसे थे जो घर की कुड़-कुड़ से बेज़ार थे,जिनकी घरवालियां उनको दम नहीं मारने देती थीं और सैर के बहाने सुबह-शाम वह कुछ पल सुख-शांति से गुज़ार लेते थे। कुछ ऐसे थे,जिन्हें बातों का चसका था;सुबह-शाम चार लोग,उन्हें बातें सुनने के लिए मिल जाते। उनका गुज़ारा चल जाता।

इनमें से कुछ ऐसे थे जिन्हें अपने बहू-बेटों की बुराई करना अच्छा लगता था,हर रोज़ नया किस्सा लेकर बैठ जाते। कुछ ऐसे थे जिन्हें हर रोज़ जैसे नया रोग आ चिमटता हो, संगी-साथियों से उनका ज़िक्र करते। कुछ ऐसे थे जिन्हें ज़माने भर का गम लगा रहता था; फलां यह खाता है,फलां वह पीता है,फलां वहां बैठता है,फलां वहां खड़ा होता है। कुछ थे, जिन्हें खबरें सुनने-सुनाने का शौक था,हर खबर को तोड़-मरोड़ कर सुनाते,कुरेद-कुरेद कर खबर में से खबर निकालने की कोशिश करते। कुछ ऐसे थे,जिन्हें पर-निंदा करना अच्छा

लगता था, निंदा सुनना अच्छा लगता था। निंदा शुरु हो तो उनके चेहरे खिल-खिल जाते। कुछ धर्मात्मा थे, हर बात में ईश्वर की लीला देखते थे, हर क्षण जिनके होंठों पर भगवान का नाम रहता था।

पिछले कुछ दिनों से फिर पाकिस्तान की चर्चा शुरू हो गई थी। जब पाकिस्तान का किस्सा शुरू होता तो हर किसी को और सब कुछ भूल जाता था। परमात्मा का नाम लेने वाले परमात्मा का नाम भूल जाते, निंदा के शौकीन को निंदा बिसर जाती, बीमारों को बीमारी की सुध न रहती। कचहरी में मुकदमा लड़ने आये लोग, पाकिस्तान को सलवातें सुनाते हुए, आपस में समझौता कर लेते। गली-कूचों में, बाज़ार-मुहल्लों में, नल पर पानी भरने के लिए आई औरतें, खेल के मैदान में इकट्ठे हुए नौजवान, पाकिस्तान के नित्य नये शोशों की बातें करते, अपने मन की भड़ास निकालते रहते।

गली-गली घूमता हुआ मास्टर काला नित्य नई खबरें लोगों को सुनाता रहता।

गुरांदित्ता को बिल्कुल यकीन न आता। वह सोचता - मास्टर काला यूं ही कूद-कूद पड़ता है। इस पर तो सनक सवार रहती है। कहीं कुछ हो जाये, यह राई का पहाड़ खड़ा कर देता है।

पर मास्टर काला को तो जैसे एक-एक समाचार पूरे विस्तार से मालूम होता था। लोग सुनते तो उनकी आंखें, खुली की खुली रह जातीं।

और जो कुछ मास्टर काला कहता था, उसका प्रमाण मिल रहा था। पाकिस्तानी घुसपैठिये भारतीय-कश्मीर में घुस आये थे।

मेंधर के क्षेत्र में धबंरोत नामक गांव में एक गूजर ने ३ अगस्त, १९६५ को पीर पंजाल के दर्रे में से पाकिस्तानी घुसपैठियों को गुज़रते देखा। गूजर भागता हुआ पुलिस-थाने में रपट दे आया। पुलिस वालों ने भारतीय रक्षा-सेना को खबर दी। गढ़वाल राइफल के कप्तान चन्द्र नारायण सिंह की अगवानी में एक फौजी टुकड़ी को घुसपैठियों की तलाश में भेजा गया। भारतीय फौजी सारा दिन पाकिस्तानी घुसपैठियों को ढूंढ़ते रहे। सांझ ढलने लगी थी कि जब पास में एक पहाड़ी से उन पर हल्की मशीनगन और हथगोलों से हमला किया गया। कप्तान चन्द्र नारायण सिंह अपनी फौजी टुकड़ी सहित पहाड़ी पर चढ़ गया। और दुश्मन से कोई पचास गज़ इधर पहुंच कर उन्होंने देखा, घुसपैठिये तो उनसे तीन गुणा ज्यादा गिनती में थे। बहादुर कप्तान ने फिर भी हौसला नहीं हारा और शत्रु पर हल्ला बोल दिया। इस टक्कर में कप्तान चन्द्र नारायण सिंह को शहादत देनी पड़ी, लेकिन पाकिस्तानी मारे गये। कई घायल हुए और उनका ढेर-सारा असलहा भारतीय सेना के हाथ लगा।

अगले दिन दारकसी गांव के एक और गूजर मुहम्मद दीन जगाल ने गुलमर्ग से कोई तीन मील की दूरी पर घुसपैठियों को देखा। बीस वर्षीय मुहम्मद दीन ढोर चरा रहा था। घुसपैठियों ने उसे फुसलाने की कोशिश की, "अगर तुम हमारा काम कर दोगे तो हम तुम्हें मुंह-मांगा इनाम देंगे।" और घुसपैठिये उसे गुलमर्ग से कोई आठ मील दूर एक ठिकाने पर ले गये। दीन मुहम्मद ने देखा कि एक खुली जगह में कोई एक हज़ार घुसपैठिये डेरा जमाये हुए हैं। उनके पास असलहा, बारूद और वायरलैस सैट हैं। उन्होंने उससे कहा - हम

पाकिस्तान से अपने कश्मीरी भाइयों को आज़ाद कराने के लिए आये हैं। तुम हमें गुलमर्ग का रास्ता बता दो। मोहम्मद दीन को कई लालच दिए गये। जो लोग उनको बड़गाम, बारामूला और श्रीनगर ले जायेंगे उनको चार-चार सौ रुपये इनाम मिलेगा। शाम को जब उसे सिग्रेट लेने के लिए भेजा गया, वह सीधा टन मर्ग पहुंचा, जहां उसने पुलिस को सारी खबर दी। कुछ ही घंटों में श्रीनगर से भी मदद आ पहुंची।

तीसरा आदमी जिसने घुसपैठियों की खबर दी, वह वज़ीर मुहम्मद था। ५ अगस्त, १९६५ की शाम, कोई सौ से अधिक घुसपैठिये मेंधर और राजौरी के बीच गलूथी के साथ लगते जंगल में आ छिपे। खेतों में से लौट रहे वज़ीर मुहम्मद ने उन्हें ताड़ लिया। जब उसने आगे बढ़कर पूछताछ की तो घुसपैठिये उसे रिश्वत देने के लिए तैयार हो गये। वज़ीर मुहम्मद ने उन्हें मदद का झांसा दिया और आप भागा हुआ फौजी ठिकाने पर पहुंचा जहां उसने सारी दास्तान कह सुनाई। रात होने से पहले पहले एक झड़प में घुसपैठियों को भगा दिया गया। अपने पीछे वे ढेरों असलहा और बारूद छोड़ गये।

कई घुसपैठिये यात्रियों के वेश में आये थे – यह दिखाने के लिए कि वे हज़रत पीर दस्तगीर के उर्स पर जा रहे हैं। उनके साथ १९४७ में, इस ओर से उजड़ कर गये ट्रक ड्राइवर थे जिनको श्रीनगर और घाटी का चप्पा-चप्पा मालूम था। पीर दस्तगीर का उर्स अगस्त की ८ तारीख को होता है। घुसपैठियों का मंसूबा यह था कि ९ अगस्त के दिन रेडियो स्टेशन पर कब्ज़ा करके एलान किया जायेगा कि कश्मीर में बगावत हो गई है। यह सुनकर पाकिस्तानी हवाई फौज जो तैयार बैठी थी, हज़ारों की गिनती में फौजियों को उतारना शुरू कर देगी।

हर एक की जिम्मेदारी तय की गई थी। हर एक को अपना-अपना फर्ज़ निभाना था। करीम खान और रहीम खान का काम सब से अधिक महत्वपूर्ण था। करीम खान उस पार्टी का लीडर था जिसने गवर्नर के घर पर कब्ज़ा करना था और रहीम खान के नेतृत्व में घुसपैठियों की टुकड़ी की ड्यूटी यह थी कि चीफ मिनिस्टर की कोठी को संभाल लिया जाये। दोनों मुजफ्फरपुर के रहने वाले थे। बचपन के लंगोटिया दोस्त। दोनों को १९४७ में मुसलमान बनाया गया था। करीम खान का पहला नाम कर्म सिंह और रहीम खान का रतन सिंह था। इतने बरस हो गये, वे मां-बाप के रखे हुए अपने नाम भूल भी चुके थे। पर आज पता नहीं उन्हें क्या हो गया था। श्रीनगर में अपने साथियों के साथ लुके-छिपे, बार-बार उनको १९४७ के फसादों के दिन याद आ रहे थे। तब भी हू-ब-हू इस तरह की अफरा-तफरी थी, इधर-उधर। इस तरह का आतंक, इस तरह की जल्दबाजी, इस तरह की खामोशी – जिसमें फरियादें सोई हुई होती हैं, हाहाकार लिपटा होता है, बैठे-बैठे करीमा के कानों में उस कैंची की आवाज़ आने लगी जिससे फसादियों ने उसके केश कतरे थे। गाय के मांस की बोटियां उसके मुंह में देते, उसे बार-बार कलमा पढ़ने के लिए कहते और उसके बाल टेढ़े-मेढ़े काटते जाते। अब तो उसके सिर पर सिक्खों वाले केश थे न मुसलमानों वाले, अब तो उनका सिर घुटा हुआ था। एक बार उसके बाल झड़ने शुरू हुए तो फिर सारी की सारी खोपड़ी गंजी हो गई थी।

कुछ इस तरह की उथल-पुथल रहीमा के मन में भी हो रही थी। बिल्कुल इसी तरह के

हाव-भाव, इसी तरह के चित्र उसकी आंखों के आगे तैरते आ रहे थे। छटी पातशाही का गुरुद्वारा उस ओर गली में था, फिर भी नसीम बाग की ओर से तांगे में आते हुए उसके हाथ अपने आप जुड़ गये थे, खण्डेवाले पीले झंडे को दूर से देख कर उसका सिर झुक गया था। सड़क पर आ-जा रहे किसी सिक्ख को देखता तो उसका जी चाहता कि उसकी ओर देखता ही रहे। उसके नज़रें जैसे रास्ता चलने वालों पर खुभ कर रह जातीं।

और फिर तांगे को छोड़ कर जब वे एक तंग-सी गली में से निकल रहे थे, उसने अपने साथी की बांह पकड़ते हुए कहा – "करम सिंह।"

"क्या बात है, रतन सिंह ?"

आज पहली बार, कितने समय के बाद, उन्होंने एक दूसरे को अपने पुराने नामों से बुलाया था।

और फिर दोनों को ऐसा महसूस हुआ जैसे उनके भीतर से कोई प्रचंड तूफान उभर रहा हो। जैसे दोनों आग की लपटों में घिर गए हों। और फिर दोनों कितनी ही देर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर, अंधेरे के घने विस्तार में खड़े रहे।

वे इस प्रकार खड़े थे कि उन्हें सीटी की आवाज़ सुनाई दी। गश्ती-पुलिस वाला था। वे वैसे के वैसे खड़े रहे। कुछ देर बाद सीटी की आवाज़ फिर आई। इस बार आवाज़ निकट से आ रही थी। शायद गली के मोड़ से कुछ हट कर। वे तब भी एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए थे। उसी प्रकार जैसे सिहर गये हों। और अब गश्ती-पुलिस वाले की सीटी की आवाज़ भी आ रही थी और उसकी टार्च की रोशनी उनके मुंह पर पड़ रही थी। करम सिंह और रतन सिंह, उसी प्रकार बिट-बिट टार्च की रोशनी की तरफ खड़े-खड़े देखते रहे। जैसे उन पर जादू कर दिया हो, शिला-पत्थर बन गये हों।

और अगले क्षण वे पुलिस के सिपाहियों के कब्जे में थे। संदेहास्पद व्यक्ति। संदेहास्पद क्यों ? वे तो घुसपैठिये थे। उन्होंने पुलिस-थाने में जाकर एक-एक बात का इकबाल कर लिया।

85

करम सिंह और रतन सिंह ने पाकस्तानियों का पूरा कच्चा-चिट्ठा खोल कर पुलिस के सामने रख दिया।

पाकिस्तान ने चीन की मदद से कश्मीर पर ज़बरदस्ती कब्जा करने की योजना बनाई थी। इस उद्देश्य के लिए चीनी माहिर पाकिस्तानी फौजियों को गुरिल्ला लड़ाई का प्रशिक्षण दे रहे थे। मर्री में लैफ्टिनेंट जनरल अख्तर हुसैन मलिक की कमान में सिखलाई का एक केन्द्र स्थापित किया गया था। पाकिस्तान के प्रेज़िडेंट ने मुजाहिद फंड खोल दिया था। और

जगह-जगह मुजाहिद भरती हो रहे थे। इनमें खास तौर पर गुंडे और बदमाश लोग शामिल किए जा रहे थे, जिन पर या तो मुकदमें चल रहे थे, या जो अभी-अभी जेल से छूट कर आये थे।

इरादा यह था कि शरारत तीन स्तरों पर शुरू की जाये। पहले लुक-छिप कर हमले किए जायें। घुसपैठिये हमला करें, नुकसान पहुंचायें और भाग आयें। फिर दूसरे पड़ाव पर यह हमले बढ़ा दिए जायें। हमलावरों को जीपें और ट्रक इस्तेमाल करने के लिए दिए जायें ताकि वे एक जगह से दूसरी जगह जल्दी से पहुंच सकें। और तीसरी स्टेज बाकायदा पाकिस्तानी फौजों का कश्मीर पर हमला होगा। जिसमें मैदानी फौज भी शामिल होगी, हवाई फौजें भी योगदान देंगी। इस प्रकार कश्मीर पर कब्जा कर लिया जायेगा।

गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण १९६३ से शुरू हो गया था। १९६४ में इस सिखलाई को ज्यादा तेज़ कर दिया गया। प्रशिक्षण के लिए कई नए केंद्र खोले गये। और सिखलाई प्राप्त कर चुके जवान मर्री में इकट्ठे किए जाते जहां से उन्हें कश्मीर में लुढ़का दिया जाता।

अप्रैल १९६५ तक पूरे पाकिस्तान में खुल्लम-खुल्ला हमले की तैयारियां शुरू हो गई थीं। पाकिस्तानी फौजें अपने हवाई अड्डों और दूसरे फौजी ठिकानों को मटियाले रंग में रंग रही थीं। कश्मीर को मुक्त कराने के अभियान के लिए पूरे पाकिस्तान में २१ मई को जिहाद दिवस मनाया गया। कबाइलियों को फिर शह दी गई कि वे दुबारा कश्मीर पर हमला करें। अधिकृत कश्मीर में सोलह से पच्चीस साल के हर नौजवान के लिए फौजी सिखलाई अनिवार्य घोषित कर दी गई थी। ८ जून के एक आदेशानुसार मुजाहिद फौज को पाकिस्तानी सेना में बाकायदा तौर पर शामिल कर लिया गया। इस फैसले को पाकिस्तान की नेशनल असेंबली ने २७ जून को स्वीकृति दे दी। और मुजाहिद फौज की संख्या डेढ़ लाख निश्चित की गई।

योजना यह बनाई गई कि घुसपैठिए पहले हवाई अड्डे और रेडियो-स्टेशन पर कब्ज़ा कर लेंगे। और फिर हुकूमत उनके हाथ आ जायेगी। १४ अगस्त को पाकिस्तान का आज़ादी का दिन श्रीनगर में मनाया जायेगा। अगर इस बार कामयाबी न हुई तो पाकिस्तान की फौज छंभ-जौड़ियां के क्षेत्र पर हमला करके अखनूर और जम्मू पर अधिकार जमा लेगी। अगर इसमें भी सफलता न मिली तो पाकिस्तान टैंकों और सेबर जेटों की सहायता से पंजाब पर हमला बोल देगा। जम्मू और कश्मीर को बाकी देश से अलग करके पाकिस्तानी दिल्ली में जा घुसेंगे। प्रेज़िडेंट अयूब का यह हुक्म था कि जुलाई के अंत में घुसपैठिए अपनी कार्यवाही बाकायदा शुरू कर दें। ७ सितंबर तक ग्रांड ट्रंक (जरनैली सड़क) पर व्यास पर बना पुल कब्जे में कर लिया जाये। ८ सितंबर के दिन लुधियाना और १० सितंबर को दिल्ली पर कब्ज़ा करके, ११ सितंबर को शाहजहां के बनाये लाल किले में प्रेजिडेंट अयूब फतह के जशन में शरीक होंगे।

इस सारी योजना को "मालटा आपरेशन" का नाम दिया गया था। और घुसपैठियों को "जिब्राल्टर फौज"। हर सिपाही और हर घुसपैठिये को हिदायत थी कि वह कुरान शरीफ में से आयतें पढ़ कर हमला करे और लोगों में मज़हबी जुनून और दूसरे धर्म के लोगों के लिए

नफरत पैदा करने में मदद दे।

जिब्रालटर फौज में तीन तरह के जवान थे – बाकायदा फौजी, मुजाहिद और रज़ाकार। हर एक टुकड़ी की संख्या साढ़े तीन हज़ार थी। घुसपैठियों को दो महीने की सख्त ट्रेनिंग दी जाती थी जिसमें उनको हथ-गोले फेंकना, असलहा का इस्तेमाल, रातों-रात सफर करना, धावा बोलना तथा इस तरह के और भी ढब सिखाये जाते थे। चार अड्डों पर यह सिखलाई जारी थी जिनमें मुजफ्फराबाद के पास शिंकियारी भी था।

कई घुसपैठिये बाज़ीगर बनकर आये थे। कई ज़िआरत करने वालों के भेस में थे, कइओं के पास औरतों के केश-चोटी के विग और बुर्के थे। जिस तरह का मौका होता उस तरह का भेस वे बना लेते थे। घुसपैठियों में औरतें भी थीं जिन्हें हथगोले फेंकने की महारत थी।

करम सिंह और रतन सिंह, बारी-बारी पाकिस्तानियों का एक-एक भेद पुलिस अफसर को सुना रहे थे, पर वे हैरान थे, उस पर जैसे कोई असर ही नहीं हो रहा हो। कभी वह टेलीफोन सुनने लग जाता। कभी टेलीफोन नंबर घुमाने लगता। और फिर खीझ कर चोंगा पटक देता। कभी किसी मातहत को बुलवा कर कोई हिदायत करता, कभी कोई।

करम सिंह सोचता, जो कुछ वे उनको बता रहे थे शायद उसे वे पहले से ही जानते थे। और इस प्रकार बक-बक करके जैसे वे अपना ही मुंह दुखा रहे हों।

रतन सिंह की पैनी नज़र कहती – दाल में जरूर कुछ काला है।

समय हाथ से निकल रहा था। किसी क्षण भी नीचे-ऊपर हो सकता था। और एक बार पाकिस्तान का श्रीनगर पर कब्ज़ा हो गया तो फिर उसे कोई वहां से हिला नहीं सकेगा, न भारत सरकार न कोई और। फिर घाटी का भी वही हाल होगा जो कश्मीर के बाकी मकबूज़ा इलाके का हो रहा था। इतने बरस आज़ादी मिले हुए हो गये थे, पर मकबूजा इलाके के कश्मीरी वैसे के वैसे गुलाम थे, वैंसे के वैसे गरीब थे। न कोई स्कूल खुले थे, न कोई सड़कें बनी थीं। हर कश्मीरी नौजवान को जिहाद का झांसा देकर भरती कर लिया जाता और फिर हिन्दुस्तानी फौजों से उनको दानों की तरह भुनवा दिया जाता। चार दिन अड़ोस-पड़ोस वाले मरने वाले को 'शहीद', 'शहीद' कह कर याद करते फिर हर कोई भूल जाता। पीछे अगर कोई विधवा रह जाती तो बेचारी भूखी मरती, अगर बूढ़े मां-बाप रह जाते तो उनकी खैर-खबर लेने वाला कोई न होता।

करम सिंह चाहता था कि पुलिस-अफसर उसके साथ चले और वह बाकी घुसपैठियों का ठिकाना उनको दिखाये, ताकि वे सब गिरफ्तार कर लिए जायें। रतन सिंह चाहता था, कोई उसके साथ चले और उसको वह जगह दिखाये जहां मनों असलहा छिपा कर रखा हुआ था। उस असलहा से तो सारे श्रीनगर को स्वाहा किया जा सकता था।

अभी वे इस तरह की कोई शिकायत मुंह से निकाल भी नहीं सके थे कि उनके पांव तले से ज़मीन खिसक गई, पुलिस के अफसर ने दो अर्दलियों को बुलवाया और करम सिंह तथा रतन सिंह को हथकड़ी लगा कर हवालात में बंद कर देने का हुक्म दे दिया।

दोनों उसके मुंह की ओर देखने लग गये। वे तो यह भेद बताने के लिए लाख-लाख

खातिरदारी होने और इनाम पाने के सपने देख रहे थे और इधर अपने कश्मीर का पुलिस अफसर उनको हवालात में बंद करने का हुक्म दे रहा था। इस प्रकार उन्हें अपनी ओर अवाक् खड़े देखते पा कर पुलिस अफसर ने उन्हें एक गंदी गाली दी और धक्के देकर दोनों सिपाहियों के साथ हवालात में धकेल दिया। करम सिंह और रतन सिंह को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं आ रहा था। अगले क्षण वे सीखचों वाले दरवाज़े के पीछे थे। जैसे दो जानवर हों।

उन्होंने सोचा क्या था और हो क्या गया था। किसी समय भी आग सुलग सकती थी, किसी समय भी लपटें उठ सकती थीं। करम सिंह और रतन सिंह, परेशान, एक-दूसरे के मुंह की ओर देख रहे थे।

कुछ देर बाद उन्होंने सुना, बगल के कमरे में पाकिस्तान रेडियो से कोई खबरें सुना रहा था। पहले मलिका पुखराज का गाना आता रहा फिर खबरें शुरू हो गईं। भारत के विरुद्ध प्रोपेगैंडा।

"यहां तो आवा ही बिगड़ा हुआ है।" रतनसिंह, करम सिंह के कान में फुसफ़साया।

और उसके साथी ने आंखों ही आंखों में उसकी हामी भरी।

86

और उधर घुसपैठिये सारी घाटी में फैल गये थे। जहां-जहां उनका दांव लगता, वे नुकसान पहुंचाने की कोशिश करते। फलों के बागों को उजाड़ा जा रहा था; उस वर्ष कोई भी फल कश्मीर से निर्यात नहीं किया गया।

कोई दो सौ घुसपैठियों ने हवाई अड्डे पर हमला कर दिया था। हवाई अड्डे की रक्षा के लिए केवल एक फौजी अफसर, और कोई बीस सिपाही थे। फौजी अफसर ने घुसपैठियों का मुकाबला किया। कई घंटों तक मोर्चे बनाकर गोली चलती रही। इससे पहले कि उसके लिए कुमक पहुंच सकती, बहादुर अफसर शहीद हो गया। भारतीय सेना के पहुंचने पर घुसपैठिये दुम दबाकर भाग खड़े हुए। इस प्रकार हवाई अड्डे पर उनके अचानक हमले के बावजूद, उनका अधिकार न हो सका।

फिर घुसपैठियों ने पुलों को उड़ाने की कोशिश की, इसमें भी उनको कोई सफलता न मिली। वे हैरान थे, कश्मीर की जनता तो उन्हें मुंह लगाने को तैयार नहीं थी। जो यह बात उन्हें बताई गई थी, कि वे सामने होंगे तो लोग, उनका हारों से स्वागत करेंगे, बिल्कुल गलत थी, कोरा कुफ्र साबित हो रही थी। चप्पे-चप्पे पर घुसपैठियों का मुकाबला हो रहा था, जगह-जगह पर उन्हें घेर कर खत्म किया जा रहा था। सैकड़ों गोली का निशाना बनाये जा चुके थे, हज़ारों पहाड़ों की कन्द्राओं में छिपे हुए भूखे प्यासे थे, न इधर आने योग्य न उधर जाने योग्य। जो राशन उनके साथ बांधा गया था, खत्म हो चुका था। पूरियां, हलवा और पुलाव

केवल पांच दिनों के लिए थे और पांच दिन बीत चुके थे। जो सब्ज़बाग उन्हें दिखाये गये थे, उनमें से कोई बात भी तो ठीक नहीं निकल रही थी।

श्रीनगर – बड़गाम की सड़क पर श्रीनगर से कोई चार मील की दूरी पर गंगाबाग नामक गांव है। इस गांव में कोई ७५ घुसपैठिये कश्मीरी चोगे पहन कर एक दिन सुबह सूरज निकलने से पहले आ घुसे। गांव की मस्जिद में उन्होंने डेरा डाल लिया। मुसलमान भाई खुदा के घर में पनाह लेने के लिए आ बैठे थे, गांव के लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि उनके साथ क्या सलूक किया जाए। लोग इसी दुविधा में थे कि कुछ नौजवानों ने श्रीनगर पुलिस को जाकर रपट दे दी। कुछ ही देर में, डिप्टी सुप्रिंटेंडेंट पुलिस अमानुल्ला की अगवानी में, पुलिस की एक टुकड़ी गांव में पहुंच गई। इन्हें यह मालूम नहीं था कि घुसपैठिये इतनी बड़ी गिनती में थे, और कश्मीरी चोगों के नीचे उन्होंने काफी असलहा छिपाया हुआ था। उनके पास हल्की मशीनगनें और हथगोले थे। छूटते ही उन्होंने इंस्पेक्टर ओ.एन. धर और कांस्टेबल मुहम्मद बशीर को गोली का निशाना बना लिया। फिर अमानुल्ला भी उनके कब्जे में आ गया। पुलिस की टुकड़ी इतने कड़े मुकाबले के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थी। घुसपैठियों ने अमानुल्ला के हथियार छीन लिए और उसके हाथ-पैर बांध कर क़ैदी बना लिया। अब उन्होंने पुलिसवालों को ललकार कर धौंस दी कि अगर वे अपने आपको घुसपैठियों के हवाले नहीं करेंगे तो अमानुल्ला को भी गोली से उड़ा दिया जायेगा। अभी वे इस तरह की धमकियां दे ही रहे थे कि शहर से कुमक आ गई और घुसपैठिये गांव छोड़कर भाग खड़े हुए। जाने से पहले, गांव के कोई एक सौ घरों में आग लगा गये। इनमें से ज्यादातर धर, बेचारे उन भोले ग्रामीणों के थे, जिन्होंने उनको अपना मुसलमान भाई समझ कर मस्जिद में पनाह लेने के लिए, एतराज़ नहीं किया था। बल्कि चाय के समावार उनकी खातिर के लिए भेजे थे। इनकी औरतें, उनके भोजन के लिए इतना तकल्लुफ करती रही थीं।

जान बूझ कर आग लगाने की सबसे भयंकर घटना बाटामालू में हुई। श्रीनगर की इस बस्ती में ज्यादातर मुसलमान रहते थे। खाते-पीते और खुशहाल। मुश्किल से कोई घर गैर-मुसलमानों का होगा। एक शाम, अंधेरा होते ही कुछ घुसपैठिये इस बस्ती में आ घुसे। बस्ती के लोगों ने उन्हें मुंह नहीं लगाया। न किसी ने उन्हें खाने के लिए पूछा न छिपने के लिए जगह दी। घुसपैठियों में से, अज़ीज़ नाम के एक घुसपैठिये की इस बस्ती में, दूर-पार की रिश्तेदारी निकल आई। अभी कुछ दिन पहले ही वे लोग इस बस्ती में आकर बसे थे। अपने परिचितों के आंगन में दाखिल होते ही, वह देख-देख कर हैरान हो रहा था। उनके घर में अजीब शानो-शौकत थी। मोटर-कार थी, टेलीफोन था, क़ालीन थे। सारे बच्चे ऊंची से ऊंची पढ़ाई करके अपने-अपने काम पर लगे हुए थे। एक डाक्टर था, दूसरा इंजीनियर था, तीसरा यूनिवर्सिटी में पढ़ाता था। लड़कियां, सबकी सब ब्याही जा चुकी थीं। अपने-अपने घरों में सुख-चैन से बस रही थीं। और उन्होंने दूसरी ओर पाकिस्तान में रह रहे अपने जिस-जिस रिश्तेदार के बारे में पूछा, उनका बुरा हाल था। बेकारी, भूख, बीमारी की दास्तान। इतने में उनकी सबसे छोटी बेटी यूनिवर्सिटी से लौटकर आई। ऊंची-लंबी, गोरी-चिट्टी कश्मीरन, जैसे

अर्श से उतरी हो। नौजवान घुसपैठिये ने यासमीन को देखा और देखता रह गया। अभी वह घर पहुंची ही थी, अभी उनकी मुलाकात भी नहीं हुई थी कि यासमीन का टेलीफोन आ गया। उसका सहपाठी, कोई राज नाम का हिन्दू लड़का था। यासमीन कितनी देर सामने बरामदे में बैठी उससे टेलीफोन पर बातें करती रही। कभी वह हंसने लगती, कभी कुछ, कभी कुछ। और वे घुसपैठियों की कार्यवाही का जिक्र करने लग गये –

"मैं कहती हूं, इस बार इनको हम ऐसी मार लगायेंगे कि तौबा-तौबा करेंगे", यासमीन बोल रही थी, "हर चौथे रोज़ ये लोग उपद्रव शुरू कर देते हैं। न आप आराम करते हैं, न चैन से किसी को बैठने देते हैं। असली बात यह है कि जब पाकिस्तान की जनता अपने अधिकारों की बात छेड़ती है; जब वहां के लोग डिक्टेटरशिप से तंग होते हैं; उनके हाकिम, लोगों को हिन्दुस्तान के पीछे पड़ने के लिए उकसाने लगते हैं। तब इस्लाम खतरे में पड़ जाता है। तब कश्मीरियों के लिए न्याय की बात छिड़ जाती है। मैं कहती हूं, जो न्याय वे कश्मीरियों के लिए ढूंढ़ते हैं, पहले अपनी जनता को, वह इंसाफ दें... हां, तुम्हारी यह बात ठीक है। अयूब इतने वर्षों से झांसा दे रहा है कि वह पाकिस्तान को कश्मीर लेकर देगा। अब कुछ न कुछ कारगुज़ारी तो उसे दिखानी ही है। आखिर कब तक लोगों को सब्ज़बाग दिखाये जा सकते हैं।...क्या तुम लोगों ने खदेड़ दिए? एकाध को पकड़ कर सूली पर लटका दें ताकि उनको तंबीह हो। सुना है, हमारी तरफ भी घूम रहे हैं। यह तो मुसलमानी बस्ती है। सोचते होंगे, इधर लोग, हार लेकर उनके स्वागत का इंतज़ार कर रहे हैं। ..यही तो बात है, इस्लाम के नाम पर मुसलमान से चाहे कुछ करवा लो। इस्लाम के नाम पर बाप, बेटे को और बहन, अपने सगे भाई को मारने के लिए तैयार हो जाती है। पर, कश्मीरी मुसलमानों की आंखें खुल गई हैं। अब हम किसी के धोखे में नहीं आ सकते। ..मैं? मेरे हाथ कोई आ जाये तो एक बार मैं उसको मज़ा चखा दूंगी। मेरा जी चाहता है किसी घुसपैठिये को पकड़ कर उसका मुंह काला किया जाए...

यासमीन टेलीफोन पर बोले जा रही थी। उसकी मां कई बार खंखार कर उसका ध्यान अपनी ओर बंटाने की कोशिश करती रही, पर उसने एक न सुनी और फिर उनका मेहमान किसी बहाने बाहर निकल गया और वहीं से कहीं गायब हो गया।

अंधेरा हो रहा था। वही मेहमान लौटकर, यासमीन की गली में आया। कुछ देर इधर-उधर फिरता रहा। बार-बार अपनी कलाई पर बंधी घड़ी को देखता। फिर अचानक उसने अपने कंधे पर लटक रहे झोले में हाथ डाला और उस औरत के घर में, जिसे कुछ देर पहले, "मौसी", "मौसी" पुकारते इसका मुंह नहीं थकता था, एक हथगोला फेंका। एक हथगोला, उसके बाद एक और हथगोला। फिर एक और। इधर इसके हथगोले की आवाज आई, उधर इसके साथियों ने बाकी घरों पर हथगोले फेंकने शुरू कर दिए, आग लगानी शुरू कर दी। हथगोले भी ऐसे थे कि जहां फटते, आग की लपटें उठ खड़ी होतीं। बाटामालू की सारी बस्ती में हाहाकार मच गया। ऐसे लगता था जैसे कोई झाड़ झंकाड़ जल रहे हों। सारी-की-सारी बस्ती चारों तरफ से जल रही थी। सारी उस रात, लोग बिलखते रहे, सारी उस रात, शहर से आये फायर ब्रिगेड के इंजन आग बुझाने की कोशिश करते रहे। और उधर पाकिस्तान का

रेडियो दुनिया को खबर दे रहा था कि बाटामालू को, आज़ादी के लिए लड़ रहे कश्मीर के लोगों ने खुद आग लगाई है। इस आग की आंच, भारत सरकार को भस्म कर देगी। यह तबाही शायद भारत सरकार की आंखें खोल सके।

बगल के कमरे में पाकिस्तान रेडियो पर इस तरह की खबरें सुन रहे पुलिस अफसर की करतूत पर, हवालात में बंद करम सिंह और रतन सिंह दांत भींच रहे थे। यह किस तरह का देश है जिसमें इस तरह के गद्दार फलफूल रहे थे। रतन सिंह का जी चाहता, अगर उसका बस चले तो जाकर पुलिस अफसर को गर्दन से पकड़ ले और भरे बाजार में उसे ज़लील करे। रतन सिंह सोचता, अगर पाकिस्तान की चाल कामयाब हो गई तो फिर श्रीनगर को बचा सकना नामुमकिन होगा। पाकिस्तानी रेडियो पर झूठ और फरेब के किस्से वैसे के वैसे उगले जा रहे थे कि अचानक पुलिस के थाने पर, फौज ने छापा मारा। पुलिस अफसर को, पाकिस्तान से खबरें सुनते हुए, और ड्यूटी पर शराब पीते हुए पकड़ लिया गया।

करम सिंह और रतन सिंह की यह देख कर जान में जान आई। अब उन्होंने फिर अपनी कहानी सुनाई। और उनके देखते-देखते टेलीफोन खड़कने लग गये, मोटर साइकिलें दौड़ने लग गईं, तारें भेजी जाने लगीं।

और फिर रतन सिंह और करम सिंह भारतीय फौज को असलहा के वह अंबार दिखाने ले गये जो पाकिस्तानी घुसपैठियों ने, घाटियों में इकट्ठे किए हुए थे।

कुछ घंटों में घुसपैठियों की गतिविधियों पर पूरा काबू पा लिया गया। पाकिस्तानी फौजी, देख-देख कर हैरान होते। उनकी चाल बेकार जा रही थी। जहां-जहां भी उन्होंने अपने फौजी भेजे थे, उन्हें या तो गिरफ्तार कर लिया गया था, या खत्म कर दिया गया था, या पीछे खदेड़ दिया गया था।

87

बाटामालू की बस्ती को आग लगाकर, अज़ीज़ रातों-रात भाग खड़ा हुआ। उसके कुछ साथी तेरा पुरा और दारवाण नामक गांवों में जा छिपे। पर अज़ीज़ के कानों में यासमीन के टेलीफोन पर कहे गये शब्द गूंज रहे थे। उसने कहीं पांव नहीं टिकाये और छिपता-छिपाता, श्रीनगर की घाटी में से किसी तरह जान बचा कर निकलने की कोशिश कर रहा था।

अगली सुबह उनकी टोली का सरदार और बाकी साथी बाटामालू के साथ लगते गांवों में छिपे हुए पकड़े गये।

"एकाध को पकड़ कर सूली पर लटका दें ताकि इनको तंबीह हो।" परियों की तरह सुन्दर एक कश्मीरन के यह बोल, बार-बार अज़ीज़ के कानों में गूंजते और उसके क़दम और भी तेज़ होते जाते।

अज़ीज़ सोचता, उनकी गुरिल्ला लड़ाई पूरी तरह से फेल हो गई थी। इस तरह की जंग के लिए खूब ज्यादा सिखलाई की ज़रूरत थी, जिसको देने के लिए पाकिस्तान के पास फुरसत नहीं थी। गली-मुहल्लों में से लड़के पकड़ कर उनको छह-आठ हफ्ते ऊठक-बैठक सिखाते और असलहा के थैले पकड़ा कर पराये देश में भेज देते। गुरिल्ला जंग के लिए जरूरी था कि गुरिल्लों को स्थानीय मदद मिले। जिधर ये जाएं लोग हमदर्दी से इनको ठीक रास्ते पर डालें, उनकी खातिर करें। घाटी के अंदर के लोग इनको मुंह लगाने के लिए तैयार नहीं थे। यासमीन के शब्द "एकाध को पकड़ कर सूली पर लटका दें ताकि इनको तंबीह हो", उसके कानों में बार-बार गूंजते और उनके हाथ-पांव फूल जाते। उनको तो बताया गया कि कश्मीर के लोग उनकी राह में आंखें बिछाये बैठे हैं; वे इंतज़ार कर रहे हैं कि पाकिस्तानी फौजें आयें और उनको भारत के चंगुल से निजात दिलायें। गुरिल्ला युद्ध के लिए यह भी जरूरी था, कि पीछे अपने देश के साथ, गुरिल्लों का तालमेल बना रहे। यहां तो एक बार घाटी में उतार कर किसी ने उनकी बात नहीं पूछी थी। गुरिल्ला युद्ध के लिए वायुसेना गुरिल्लों की पीठ पर होनी चाहिए। ज़रूरत पड़े तो हथियार पहुंचाये जायें; जरूरत पड़े तो खुराक पहुंचाई जाये। पाकिस्तानी हवाई जहाज भारत की धरती की ओर मुंह उठाने में हिचकिचाते थे। अगर कोई आये भी, तो उनको देखते ही देखते खदेड़ दिया गया।

और अज़ीज़, आज कितने दिनों से भूखा-प्यासा था। बाटामालू में उसकी मौसी के घर ढेर-सारी खाने की चीज़ें उसके सामने रखी गई थीं, पर यासमीन की टेलीफोन पर बातें सुनकर एक कौर उसके गले से नहीं उतर सका। मिठाई का जो टुकड़ा उसके मुंह में था, उसे लगता जैसे उसके गले में अटक गया हो।

सारा दिन जंगलों में, कंद्राओं में छिपा रहता, रात को निकलता और अपना रास्ता पकड़ता। रात में भी सफर करना खतरे से खाली नहीं था। चप्पे-चप्पे पर भारतीय सेना तैनात कर दी गई थी।

अज़ीज़ के पांव, छालों से भरे पड़े थे। उसके जूते टूटे हुए थे, न पहने जा सकते थे, न पहनने योग्य थे। पीने के लिए बरसाती नालों का पानी और खाने के लिए जंगली जड़ें और पत्ते। अज़ीज़ को खून के दस्त आने लगे। आंतों में ऐंठन मचती और टीस उठती। उसे ऐसा लगता जैसे उसका बदन तप रहा हो। कई बार उसकी आंखों से आंसू फूट निकले। अच्छा-भला वह कालेज में पढ़ रहा था। क्या हुआ जो एक बार वह फेल हो गया था। फेल पास तो लगा ही रहता है। फेल होकर उसने कालेज छोड़ दिया और बेकार फिरने लग गया। फिर किसी ने उसे अक्ल दी, कि वह कश्मीर की लड़ाई में भरती हो जाये। यह कैसी जंग थी, हर कोई ख्वार हो रहा था।

उस दिन, जिस कंद्रा में वह छिपा था, उसे बड़ी बदबू आ रही थी, जैसे उसकी नाक सड़ रही हो। सूरज निकलने से पहले जब वह इस ठिकाने पर पहुंचा था तो कोई बदबू नहीं थी, पर जैसे-जैसे दुपहरी होती गई, उसे लगता, टीले के पीछे जैसे मुर्दे पड़े हों। धीमा-धीमा अंधेरा हुआ तो अपनी कंद्रा से निकल कर वह टीले पर चढ़ गया। इतने में चांद निकल आया था,

चांद के मद्धिम से उजाले में उसने देखा की लाशें सड़ रही थीं। जहां तक उसकी नज़र जाती, लाशें ही लाशें थीं। लहू के कीचड़ में लथ-पथ। ऐसा लगता था, तीनों ओर से घेर कर, सारी-की-सारी घुसपैठियों की टुकड़ी को, खत्म कर दिया गया था। पिछली तरफ पहाड़ था, पहाड़ पर चढ़ना मुश्किल था।

लाशों पर लाशें औंधी पड़ी थीं। कच्ची उम्र के लड़के, जिनके अभी मसें भी नहीं भीगी थीं। नौजवान सिपाही, जिनके यौवन की ओर निहारा नहीं जाता था। हट्टे-कट्टे पोठोहारी और पठान, अधेड़ उम्र के रंगीले फौजी, लंबी-लंबी कलमें और तेल-मल कर चमकाए हुए बाल। उलटे-सीधे पड़े थे। किसी की किसी पर टांग चढ़ी हुई थी, किसी की किसी के नीचे बांह दबी हुई थी। एक आदमी का मुंह किसी और के कंधों पर रखा था। कितना अजीब लगता था। एक औंधी पड़ी लाश, एक और लाश पर चढ़ी हुई थी। जैसे कोई छिपकली किसी दूसरी छिपकली से भिड़ रही हो। किसी की एक आंख खुली थी, एक बंद थी। किसी की दोनों आंखें खुली थी, पुतलियां, आंवलों की तरह बाहर आ रही थीं। कोई ऐसे पड़े थे जैसे अभी-अभी लेटे हों, लेटे-लेटे उनकी आंख लग गई हो। कुछ चेहरों पर बेहद पीड़ा लिखी हुई थी। कुछ पर अत्यन्त वेदना झलक रही थी। किन्हीं चेहरों पर यादें चित्रित थीं, किन्हीं पर सपने। किन्हीं चेहरों पर डर झलक रहा था, किन्हीं पर आतंक। और नीचे जाकर उसने देखा, जंगली जानवरों ने लाशों का बुरा हाल किया हुआ था। जिसकी जो इच्छा हुई उसने खा लिया। इतनी लाशें थीं। चाहे एक सप्ताह तक उस घाटी के सारे जानवर खाते रहें, उनसे खत्म होने वाली नहीं थीं। जल्दी-जल्दी, जिसको जो चीज़ अच्छी लगती, नोच लेता। किसी लाश की एक बांह नहीं थी। किसी की एक टांग नहीं थी। किसी के गालों का मांस गायब था तो किसी की छाती चटकी जा चुकी थी। एक ओर पड़ी लाशों को गिद्धों ने नोचा महसूस होता था। प्रायः लाशों की आंखें गायब थीं। आंखों की जगह सुराख बने हुए थे जिनमें चोंचें मार-मार कर गिद्ध जैसे चुसकी लेते रहे हों। और फिर अज़ीज़ ने देखा, सामने पेड़ों पर गिद्धों के झुंड के झुंड बैठे हुए थे। आंखें मूंदे हुए, बदमस्त। मांस खा-खा कर खूब पेट भरे हुए। अगली सुबह, और खाने के सपने देखते हुए।

और अज़ीज़ पागलों की तरह वहां से भाग खड़ा हुआ। उसे लगा अगले ही क्षण सारे के सारे गिद्ध पेड़ों से उड़ कर उस पर टूट पड़ेंगे और उसकी बोटी-बोटी, टुकड़ा-टुकड़ा कर डालेंगे, उसके गोश्त का पोर-पोर नोच कर खा जाएंगे। भूखा-प्यासा, नंगे पांव, अज़ीज़ भाग रहा था। कहीं ठोकर खाता, कहीं लुढ़कता, कहीं गिरता, कहीं फिसलता। जैसे किसी के पीछे कोई लगा हो। वह बेदम हुआ दौड़ रहा था।

"एकाध को पकड़ कर सूली पर लटका दें", परियों की तरह सुंदर एक कश्मीरन के ये शब्द बार-बार अज़ीज़ के कानों में गूंजने लगते। और एक रोड़े की तरह वह लुढ़कता हुआ पहाड़ के नीचे ही नीचे उतरता जा रहा था, घायल लहू-लुहान। होश-हवास उड़े हुए।

इस प्रकार भागता हुआ अज़ीज़ पाकिस्तान से आई घुसपैठियों की एक टोली के हाथ लग गया, उसी दिन सवेरे उन्हें, इधर कश्मीर में भेजा गया था। उन्हें कश्मीर की भीतरी स्थिति

का कोई अनुमान नहीं था। उनके पास अगले पांच दिन के लिए राशन और गोला बारूद था। टोली के सभी व्यक्ति एक जगह बैठे रम पी रहे थे। आधी-चांदनी रात,उन्हें आगे बढ़ना चाहिए था,पर वे बैठे हंस रहे थे,खा रहे थे। उनसे किसी ने कहा था,कश्मीर पर पाकिस्तान का कब्ज़ा हो गया है। हाई कमान के हुक्म के मुताबिक उसी दिन सवेरे कब्जा हो जाना चाहिए था। अगले दिन तो प्रेज़ीडेंट अयूब को श्रीनगर के जशनों में शामिल होना था।

शाम से बैठी, रम पी रही, तथा पूरियां और हलवा खा रही, घुसपैठियों की यह टुकड़ी, कुछ ज्यादा ही मज़े में थी।

नये आये घुसपैठियों का विचार था कि अज़ीज़ पागल हो गया है; अज़ीज़ का विचार था कि वे सारे बदहवास हो रहे थे।

जिस तरह अज़ीज़ उनके खाने पर टूट पड़ा था, कोई होश-हवास में इस तरह थोड़े ही करता है।

कुछ देर बाद अज़ीज़ को लगा, घुसपैठियों की उस टुकड़ी में से कोई न कोई चुपके से उठकर पीछे टीले की ओर निकल जाता। एक लौटता तो दूसरा चल पड़ता। एक, दो, तीन, चार अब पांचवाँ जवान गया था। रम पी-पी कर बदमस्त हुआ, लड़खड़ाते क़दमों से वह टीले के पीछे छिप गया। कितने दिनों से भूखा अज़ीज़ पेट भरने में लगा हुआ था, उसने कोई खास ध्यान नहीं दिया। जब उसका खूब पेट भर गया तो उसे अचानक हाजत महसूस हुई। अज़ीज़ उठा और सलवार का अज़ारबंद खोलता हुआ टीले की ओर चल पड़ा। उसे इस प्रकार टीले की ओर जाते देखकर, टोली के बाकी जवान एक आवाज़ में बोल उठे, "अरे यार पहले दीनू को तो लौटने दे।" दीनू को गये हुए कोई दस मिनट हो गये थे। अज़ीज़ ने सोचा, आखिर दीनू मर्द है कोई औरत तो है नहीं, एक तरफ वह बैठा होगा, दूसरी तरफ यह बैठ जायेगा। बटवाणी करने के लिए ढेलों-पत्थरों का ढेर था। और वह सुनी-अनसुनी करके टीले की ओर निकल गया, "अरे कंजर। थोड़ा और सब्र कर।" एक पोठोहारी ने अज़ीज़ से कहा, पर वह इतना खाना ठूंस कर, अफराया हुआ टीले की ओर निकल गया। टीले के पीछे पहुंचा तो अज़ीज़ को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। एक टीले के पास खड़ी एक खच्चर के साथ दीनू अपना मुंह काला कर रहा था। उसकी सलवार उसके पैरों में गिरी हुई थी।

बार-बार अज़ीज़ अपनी आंखों को मलता। जो कुछ वह देख रहा था उस पर जैसे उसे विश्वास न हो रहा हो। इतने में दीनू फारिग हो गया और सलवार को संभालता हुआ, जब वह मुड़ने लगा तो सामने अजीज को देख कर उसने कहा, अरे तू कैसे आ गया, बारी तो करीम की है?

अज़ीज़ ने सुना तो एक ही सांस में वहां से भाग खड़ा हुआ। जैसे किसी को हलकान उठ खड़ा हो। टोली के बाकी जवानों ने सोचा, भूखा-प्यासा रह कर जवान पागल हो गया है।

कश्मीर की घाटी में हार होते देख, पाकिस्तान ने पैंतरा बदला। और नीचे छंभ-जौड़ियां के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय रेखा को पार कर लिया। ऐसा पाकिस्तान ने पहले कभी नहीं किया था। १५ अगस्त को पहली बार पाकिस्तान ने अंतर्राष्ट्रीय रेखा का उल्लंघन करके, खास पाकिस्तान की धरती से भारत पर हमला किया।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बाकायदा लड़ाई छिड़ गई थी।

ऊपर करगिल, तिथवाल और उड़ी के सैक्टरों में भारत ने पाकिस्तान की शरारत का मुंह तोड़ जवाब दिया। पाकिस्तान को यकीन हो गया कि ऊपर, उनकी दाल गलना मुश्किल थी।

छंभ का मोर्चा, पाकिस्तान को युद्ध के लिए कई कारणों से लाभकारी लगता था। छंभ का इलाका मैदानी है, बीच-बीच में बस नदी-नालों में बंटा हुआ; कोई विशेष पहाड़ इस ओर नहीं। इस तरफ, स्यालकोट, खारियां और गुजरात की पाकिस्तानी छावनियों से निकट होने के कारण, टैंकों को इधर लाने में आसानी थी। और फिर भारत के, इस इलाके में टैंक बिल्कुल नहीं थे। न टैंक थे न कोई ज्यादा फौज थी। यू.एन.ओ. के निर्देश के अनुसार भारत जम्मू-कश्मीर के इलाके में एक विशेष गिनती से ज्यादा फौज नहीं रख सकता था।

पाकिस्तान का इरादा यह था कि छंभ के इलाके पर हमला करके जम्मू से अखनूर, नौशहरा और झंगर की सड़क को काट दिया जाए। इस प्रकार ऊपरी इलाके में, उनके फंसे हुए, भूखे मर रहे घुसपैठिये जान बचाकर वापस घर लौट सकेंगे। और इस प्रकार भारतीय फौजों की नाकाबंदी भी हो जायेगी। जम्मू को श्रीनगर और लेह से अलग करके कश्मीर पर अधिकार हो सकता था। और पाकिस्तान की सरकार, हुकूमत की बाग-डोर अपने हाथों में ले सकती थी।

पाकिस्तान के घुसपैठिये इस इलाके में कब से जासूसी कर रहे थे। कई जगहों पर उन्होंने सुरंगें बिछाई थीं, कई गांवों में उन्होंने मुसलमान ग्रामवासियों को भड़काने की कोशिश की थी। ठंडी चोरी के पास एक घुसपैठिया ढेरों असलहे के साथ पकड़ा गया। फिर एक सिविल बस, सड़क पर बिछाई सुरंग का शिकार हो गई। कई मुसाफिर घायल हो गये। भारत सरकार ने यह देख गांवों को खाली करवाना शुरू कर दिया।

और फिर पहली सितंबर के दिन पाकिस्तान ने अपने पूरे जोर से सेबर-जेट हवाई जहाजों की ओट में पैटन टैंकों से हमला कर दिया। पाकिस्तानी एक तूफान की तरह कोई पांच मील दूर भारत के इलाके में घुस आये। और ऐसा लगता था कि वे छंभ को पार करके किसी समय भी अखनूर पर अधिकार जमा लेंगे। कर्नल गुरबंस सिंह की बटालियन, जो इतने दिनों से पाकिस्तानी हमले का मुकाबला कर रही थी, सारी की सारी तबाह हो गई। पर इतने में पठानकोट से मेजर भास्कर उनकी मदद के लिए पहुंच गया और उन्होंने पाकिस्तानी तोपखाने के हमले को धकेल दिया। पाकिस्तातन के छह पैटन टैंक बरबाद कर दिए गये।

फिर भी पाकिस्तानियों का दबाव वैसा का वैसा बना हुआ था। भारतीय फौजों की सबसे

बड़ी मुश्किल यह थी कि उनको इस मोर्चे पर अचानक लड़ना पड़ रहा था और असलहे की सप्लाई का उनके पास कोई इंतज़ाम नहीं था। उस दिन दोपहर तक सारा असलहा खत्म हो गया। उधर से दुश्मन की लगातार गोलाबारी हो रही थी। आकाश धुएं और धूल से अटा पड़ा था। बंकरों में बैठे सिपाहियों तक बारूद पहुंचाना जरूरी था। फिर एक जवान, इसक मुश्किल काम के लिए तैयार हो गया। बारूद के ट्रक लेकर वह आगे ही आगे मोर्चे पर बढ़ता गया। दुश्मन की गोलाबारी, लगातार हो रही थी। आगे एक नाला था, नाले को ट्रक से पार नहीं किया जा सकता था। उस बहादुर जवान ने ट्रक को एक ओर रोक कर, बारूद की एक-एक पेटी को सिर पर उठा कर, नाले से पार अपने फौजियों तक पहुंचाया। इस तरह उसको कई चक्कर काटने पड़े। दुश्मन की गोलाबारी वैसी की वैसी हो रही थी। और फिर अपना सारा बारूद ठिकाने पर पहुंचाकर, उस नौजवान ने तीन-टन का ट्रक चलाया और उसे सही सलामत वापस अपने डेरे पर ले आया। यह नौजवान पूरन था।

भारतीय जवान अपनी जान पर खेल रहे थे, फिर भी शत्रु का दबाव बड़ा भारी था। शाम तक हालत और बिगड़ गई। कोई पांच बजे, और कोई चारा न देखते हुए, भारतीय वायु सेना को मदद के लिए कहा गया। फिर क्या था, देखते ही देखते, २८ जहाज पाकिस्तानी फौजों पर बम वर्षा करते दिखाई देने लगे। १३ पाकिस्तानी टैंक बरबाद कर दिए गये। कई पाकिस्तानी ट्रकों और गोलाबारूद को भस्म कर दिया गया।

शत्रु के हमले को, भारतीय फौजें बस रोक सकी थीं, उनका मुंह नहीं मोड़ सकी थीं। अगले दिन, भारतीय फौजों को जौड़ियों के इलाके में हटना पड़ा। यह देख, पाकिस्तानी फौजें तवी नदी को पार करके आगे बढ़ आईं। अब घमासान की लड़ाई मच गई थी। भारत-निर्मित हवाई जहाज नैट, अमरीका द्वारा पाकिस्तान को दिए सेबर जैटों का मुकाबला कर रहे थे। "हम जानबूझ कर हमला कर रहे थे ताकि उनके जहाज मुकाबला करने के लिए आयें। हमने कुछ दांव-पेंच खेले और फिर शत्रु हमारे झांसे में आ गया। एक सेबर तो मेरे बिल्कुल नज़दीक पहुंच गया। और फिर उसको हमने घेर लिया। उसके सामने भी हमारे हवाई जहाज थे, उसके पीछे भी... मैंने देखा उसकी बगलों में मिसाइलें बंधी थी, पर मैं उसके निशाने से बाहर था। मैंने अपने जहाज को जंरा तेज किया और आंख झपकने की देर में उसे दबोच लिया। मेरा पहला गोला उसके दाईं तरफ लगा और सेबर भन्ना गया। अगला गोला और फिर वह लड़खड़ाता हुआ नीचे धरती पर था।" स्क्वाड्रन लीडर ट्रेलर जोसफ कीलर की यह कहानी अगले दिन भारत के सभी अखबारों में छपी। उधर पाकिस्तानी अपने साथ विदेशी पत्रकारों को लाये थे, जिन्होंने दुनिया भर को यह खबर दी कि पाकिस्तानी फौजें छंभ-जोड़ियों के इलाके में कई मील आगे बढ़ गई थीं।

पाकिस्तानी फौजों को यह गुस्सा था कि स्थानीय मुसलमान आबादी, उनकी बिल्कुल मदद नहीं कर रही थी। जौड़ियां के मुसलमानों को मज़ा चखाने के लिए, जुम्मे की नमाज़ के लिए जब वहां के लोग मसजिद में इकट्ठे हुए, पाकिस्तानी हवाई जहाज़ों ने बंबारी करके कई लोगों को हलाक कर दिया, कई घायल हो गये। ५१ नमाज़ी तो वहीं के वहीं खत्म हो गये।

जिस तरह सिजदे में गिरे थे वैसे के वैसे भस्म हो गये। फिर उठ नहीं सके। पाकिस्तानी हमलावर *आग लगाने* वाले नेपाम बम गिराने लग गये। उधर भारतीय वायुसेना, शत्रु के जहाज़ों को एक के बाद एक, गिरा रही थी।

पाकिस्तानी चिढ़ कर गांव के गांव बरबाद कर रहे थे। मासूम शहरियों पर बम बरसा कर, उनको अपने घर छोड़ने के लिए मजबूर कर रहे थे। ७ सितंबर तक पाकिस्तानी, भारतीय इलाके में बीस मील भीतर घुस आये थे। और अब भारत की जम्मू-कश्मीर के साथ यातायात-पंक्ति को सख्त खतरा बन गया था।

एक रात, मेजर मेघ सिंह कोई ४५ जवानों की टुकड़ी सहित शत्रु के घेरे में आ गया। शत्रु की गिनती बेशुमार थी। मेजर मेघ सिंह के संग, सारे साथी मुसलमान थे। सभी राजस्थान की ओर के थे। वह इलाका जो पाकिस्तान के साथ लगता है। अंधेरे में बार-बार अल्लाह-ओ-अकबर के नारों की आवाज़ आती। और फिर मेजर मेघ सिंह को महसूस हुआ कि जो आवज़ें दूसरी ओर से आ रही थी, उनका लहजा हूबहू वैसा था जैसा उनके साथियों का। और मेजर मेघ सिंह की, एक क्षण के लिए, जैसे दिल की धड़कन रुक गई हो। उसके आगे अंधेरे की दीवारें खड़ी होने लगीं। अचानक उसके साथियों ने इस तरह शोर मचाना शुरू कर दिया जैसे उनकी गिनती हज़ारों में हो। इस प्रकार एक दूसरे को आदेश दे रहे थे जैसे गोरखे भी वहां हो, सिक्ख भी वहां हों, मुसलमान भी वहां मौजूद हों। "अल्लाह-ओ-अकबर", "हर हर महादेव", "सत श्री अकाल" के जयकारे कई ओर से गूंजने लग गये। यह देख, शत्रु अंधेरे की आड़ में पीछे हट गया।

फिर भी जिस प्रकार पाकिस्तान, छंभ जौड़ियां के क्षेत्र में कदम-कदम बढ़ता आ रहा था, भारत को खतरा बन गया था कि किसी समय भी कश्मीर को बाकी देश से काट कर भारतीय सेना के लिए कठिनाई पैदा की जा सकती थी। भारतीय फौजें कश्मीर में घेरी जा सकती थीं। बाकी देश से उनका सम्पर्क काटा जा सकता था।

इस खतरे का, भारत को मुकाबला करना था। और इस फैसले में और देरी नहीं की जा सकती थी।

89

कुलदीप कहता, पाकिस्तान भारत पर कभी हमला नहीं करेगा। मास्टर काला की राय और थी। और अब, जब से पाकिस्तान ने अंतर्राष्ट्रीय रेखा को पार करके जम्मू के इलाके पर कब्ज़ा कर लिया था, कुलदीप सोचता, शायद मास्टर काला ठीक था और वह गलत। कुलदीप, पाकिस्तान की इस हरकत में अपनी बड़ी भारी हार मानता था। उधर जनरल निम्मो ने भी अपनी रिपोर्ट में राष्ट्र संघ को बता दिया था कि पाकिस्तान ने अंतर्राष्ट्रीय रेखा का उल्लंघन

किया है। राष्ट्र संघ के महासचिव यू थांट की अपील, कि पाकिस्तान को अपने इलाके में वापस लौट आना चाहिए; पाकिस्तान ने सुनी-अनसुनी कर दी थी। मास्टर काला हमेशा से कहता आया था, पाकिस्तानियों को चीनियों की शह है, चीनी यह देख नहीं सकते थे कि भारत प्रगति करे। और फिर वही बात हुई, चीन का विदेश मंत्री चैन यी कराची आया, और पाकिस्तान के विदेश मंत्री भुट्टो से छः घंटे की मुलाकात के बाद, उसने बयान दिया : "चीन को विश्वास हो गया है कि इस सारे झगड़े की ज़िम्मेदारी भारत पर है। भारत की शरारत के कारण ही यह लड़ाई शुरू हुई है। चीन की सहानुभूति पूरी तरह से पाकिस्तान के साथ है।"

उधर पाकिस्तान ने अमृतसर के इलाके में हवाई सेना के अड्डों पर राकेटों से हमले शुरू कर दिए। पाकिस्तान फौजों ने लाहौर-वाघा और लाहौर-खालड़ा की सड़कों पर खाइयां खोद लीं और बंकर बना लिए। असम के मुख्यमंत्री ने दिल्ली को सूचना दी कि पाकिस्तानी फौजें असम की सीमा पर इकट्ठी हो रही हैं।

सब प्रमाण मिल रहे थे, कि पाकिस्तान का पक्का इरादा था कि १० सितंबर के दिन, खुल्लम-खुल्ला भारत पर हमला करके, दिल्ली की ओर धावा बोल दिया जाये। भारत ने हमेशा यह कहा था कि कश्मीर पर हमला, भारत पर हमला समझा जायेगा। भारत ने हमेशा यह कहा था कि कश्मीर पर हमला करने आई फौजों का मुकाबला करने के लिए, अगर जरूरत हुई तो भारत, पाकिस्तान में उन छावनियों और उन हवाई-अड्डों पर हमला करने से नहीं झिझकेगा, जिन छावनियों से हमलावर आते थे या जिन हवाई अड्डों से उनके हवाई जहाज उड़ते थे। अब तो पाकिस्तान ने अंतर्राष्ट्रीय रेखा का उल्लंघन भी कर लिया था। और दिल्ली पर कब्ज़ा करने के सपने देखने शुरू कर दिए थे। यह देखते हुए ६ सितंबर के दिन भारत की फौजों ने पाकिस्तान पर हमला बोल दिया। यह खबर सुन कर देशभर में जोश की एक लहर दौड़ गई। लोग गली-मुहल्लों में नाचने लगे। लोक सभा में रक्षामंत्री के बयान पर, चारों ओर से इसकी वाह-वाह हुई। ऐसे लगता था जैसे सारे का सारा देश, एक-जान होकर पाकिस्तान पर टूट पड़ेगा।

संकेत मिलते ही भारतीय फौजें लाहौर की दहलीज़ पर पहुंच गईं। अब हमारे दस्ते शालीमार बाग पहुंच चुके थे, उन्हें याद दिलवाया गया कि उन्हें लाहौर शहर पर अधिकार करने की आज्ञा नहीं दी गई है। लाहौर शहर पर अधिकार करने का मतलब था कि लाहौर निवासियों को खिलाया जाये, उनके शहर का प्रबंध किया जाये। इसके लिए भारत तैयार नहीं था। न ही इसकी कोई जरूरत समझी गई।

उधर पाकिस्तान के राष्ट्रपति अयूब ने देश में हंगामी हालत का एलान कर दिया और अपनी फौजों को हुक्म दिया कि भारत को कुचल कर रख दिया जाये। "भारत नहीं जानता है, किस तरह के लोगों के साथ उसने टक्कर ली है।" रेडियो पर अपनी तकरीर में उसने कहा।

लाहौर शहर का हाल सुनकर, भारत में पश्चिमी पाकिस्तान से उजड़ कर आये लोगों के पांव, जमीन पर नहीं लग रहे थे। हर कोई फिर से लाहौर जाने के सपने देखने लगा। लाखों यादें उस शहर से जुड़ी हुई थीं। लाख वचन उस शहर में लोगों को पूरे करने थे। हर गली का

मोड़,हर पेड़ की छांह;हर चौक जैसे केन्द्र बिन्दु रहा हो। पश्चिमी पंजाब से आये हुए पंजाबियों ने हर एक चीज़ बना ली। लाहौर से कहीं सुंदर शहर चंडीगढ़ बसा लिया,उस तरह के भवनों का निर्माण कर लिया,उस जैसे बाज़ार बना लिए,शहर-शहर अनारकली जैसी गहमा-गहमी शुरू हो गई,पर लोगों को लाहौर नहीं भूलता था। अभी तक बात बात में पंजाबी कहते थे, "अरे वाह! लाहौर बनाने वाले।" चाहे वे इस ओर के थे चाहे उस ओर के। लाहौर का जादू बड़ा प्रबल था।

लाहौर की गलियां,लाहौर के मुहल्ले,लाहौर की सड़कें,पंजाबियों की आंखों के सामने तैरने लग गये। लाहौर के मंदिर,लाहौर के शिवालय,लाहौर के गुरुद्वारे पंजाबियों को पुकारने लगे। लाहौर की दुकानें,लाहौर के बाज़ार,लाहौर की मंडियों का हो-हल्ला,पंजाबियों के कानों में गूंजने लगा। हर कोई लाहौर जाने के सपने देखने लग गया,चाहे कोई बूढ़ा था,चाहे कोई जवान था,चाहे कोई बच्चा था। बच्चों से कोई न पूछता कि उनका लाहौर से क्या स्नेह था; न उन्होंने लाहौर देखा था,न वे लाहौर में रहे थे।

सोहणेशाह बार-बार बेबी राजी को रेडियो पर लाहौर स्टेशन लगाने के लिए कहता। लड़की बार-बार सुई उधर घुमाती। खामोशी फैली हुई थी। पांचवीं बार कोशिश करने के बाद,सोहणेशाह को विश्वास होने लगा कि जो कुछ उनका अपना रेडियो कह रहा था,वह ठीक था। उस दिन ठीक ग्यारह बजे लाहौर रेडियो के ट्रांसमिटर उड़ा दिए गये थे।

भारतीय फौजों को,इस तरह अपने शहर पर चढ़ाई करते हुए देख कर,लाहौर के वासियों के पांव तले से ज़मीन निकल गई। देखते-देखते शहर खाली किया जाने लगा। गाड़ियां,ट्रकें, लारियां,मोटरें,स्कूटर,तांगे,ठेले,जो कुछ भी किसी के हाथ लगा,लोग अपना जरूरी-जरूरी सामान लाद कर घर-बार छोड़ कर भाग गये। देखते-देखते आधा लाहौर खाली हो गया। कोई किसी ओर निकल गया,कोई किसी ओर चल पड़ा; जिधर किसी के सींग समाये लोग उधर भाग खड़े हुए। सड़कें चींटियों की तरह अटी पड़ी थीं।

लोग,लाख-लाख सलवातें,अयूब खान को सुना रहे थे। कश्मीर लेता-लेता यह पजांब भी गंवा बैठेगा। उधर,पूर्वी बंगाल तो,भारत की दो दिन की मार है। पूर्वी बंगाल वालों की तो पाकिस्तान ने हमेशा उपेक्षा की थी,जैसे कोई सौतेला हो।

सड़कों पर कहीं तांगे का घोड़ा बिदक जाता,कहीं कोई मोटर-गाड़ी बिगड़ जाती,कहीं किसी बैलगाड़ी का पहिया निकल जाता। जगह-जगह पर रास्ता रुकने से भीड़ इकट्ठी हो जाती। लोग एक-दूसरे को काटने को पड़ते। हर किसी के मुंह पर गंदी गाली थी। सरकार को गालियां दे-देकर थकते तो अपने तांगों,अपनी मोटरों को गालियां बकने लगते। इनसे हटते तो एक दूसरे के साथ तू-तू,मैं-मैं शुरू हो जाती। रास्ते में,घर से बेघर हुए लोग तुनक रहे थे। एक-दूसरे को खरी-खोटी सुना रहे थे।

टैक्सी और तांगेवालों की बहार थी। जो मुंह में आता वही भाड़ा मांगते और उनको कोई टोक न सकता। घबराये हुए शहरी,किसी भी कीमत पर जान बचा कर भागने के लिए उतावले थे। गलियां खाली हो रही थीं,मुहल्ले सुनसान पड़े थे।

मियां मीर बस्ती के एक मुहल्ले में ऊंची-लंबी एक पोठोहारिन ने अपनी जवान-जहान बेटी ज़ेबा को अपने पास बिठा कर आप से आप बोलना शुरू कर दिया :

"बेटी, इस शहर में जो कुछ होने वाला है, मैं उसे भुगत चुकी हूं। कोई अठारह बरस पहले, कुछ ऐसा ही हुआ था। दगड़-दगड़ करते कदम, तड़-तड़ छूटती बंदूकें, नफरत का ज़हरीला तूफान, खौफ़ और डर के घने-काले बादल। और फिर अंधेरा – बेदर्दी का, ज़ुल्म का, क़हर का। इस घुप-अंधेरी रात में आदमी, आदमी नहीं रहते, वहशी-दरिंदे बन जाते हैं। इस तरह के एक जानवर के, मैं पल्ले पड़ गई थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह मेरे साथ क्या करे। और वह पागल होकर मुझे नदी के किनारे बिल्कुल अकेला छोड़ गया। और फिर मैं भेड़-बकरियों की तरह बिकती रही, एक मंडी से दूसरी मंडी में, एक आंगन से दूसरे आंगन में, एक तरह के हाथों से दूसरी तरह के हाथों में। बस तेरा लिहाज़ था, एक तेरा मोह था जो मुझे इस जहान से बांधे हुए था। मेरी कोख में तू थी। अब मैं नहीं चाहती यह कहानी फिर दोहराई जाये। मैं नहीं चाहती मेरी जायी मर्द-ज़ात की वहशत का फिर शिकार बने, जैसे कभी उसकी मां बनी थी। अभी तक उस तशद्दुद के घाव मेरे दिल के पोर-पोर से रिस रहे हैं, नासूर बने हुए हैं। कुछ ही पलों में यह दगड़-दगड़ करते कदम हमारी गली में होंगे, हमारे आंगन में होंगे। कुछ ही लम्हों में तड़-तड़ गोलियों की यह आवाज़ हमारी दहलीज़ पर होगी, हमारे चूल्हे – बावर्ची खाने में होगी। कुछ ही देर में कहर का यह तूफान तुझे अपनी लपेट में ले लेगा, मेरी परियों जैसी बेटी को, उसके अछूते कुंवारेपन को। और फिर पता नहीं मेरी आंखों के सामने तुझे नोच कर रख दिया जाये; मर्द ज़ात की वहशत, जो कुछ भी करे थोड़ा है। पहले, इस देश में, उस देश में, क्या-क्या नहीं हुआ ? माँओं को खंभों से बांध कर, उनकी आंखों के सामने फसादी उनकी बेटियों के साथ मुंह-काला करते रहे। एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात...। मेरे अपने सिर पर यह सब कुछ बीता है। मै किसी को मुंह दिखाने योग्य नही रही। स्कूल में लड़कियों को पढ़ा देती हूं और तुझे पाल रही हूं। आज कितने बरस हो गये।

अब और वक्त नहीं है। कभी भी कुफ्र की इस कहानी को, फिर से दोहराया जा सकता है। तो, मेरी बेटी, जब हमारी ड्योढ़ी में किसी पराये मर्द के पांव पड़ें, यह एक गोली तू खा लेना, यह एक गोली मैं खा लूंगी। और फिर हम मां-बेटी एक दूसरे की उंगली पकड़ कर इस ज़ालिम दुनिया से चली जायेंगी। मर्द की हवस देखती रह जायेगी और हम उड़ान भर कर चिड़ियों की तरह उड़ जायेंगी। यह दुनिया जैसी भी है, इसे छोड़ना आसान नहीं, लेकिन बेहुरमती और ज़लालत की – सौ साल की ज़िंदगी से, गैरत के, शराफत के, दस दिन कहीं

अब आसमान पर हवाई जहाज़ तैरने लग गये हैं। अब बमों की गड़गड़ाहट और पास होती जा रही है। अब टैंकों की दहशत भरी खड़खड़ाहट कानों के पर्दे फाड़ रही है। अब ज़िंदगी घड़ी-पलों की मेहमान है, मुंडेर पर बैठी चिड़िया की तरह कभी भी उड़ जायेगी।

इस तरह भारत का पाकिस्तान पर खुल्लम-खुल्ला हमला, पाकिस्तानी कभी सोच भी नहीं सकते थे। उनका विचार था, कश्मीर की जंग कश्मीर तक ही सीमित रहेगी। क्या हुआ जो उन्होंने जम्मू से लगी अंतर्राष्ट्रीय रेखा को पार किया था ? कश्मीर को हथियाने के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। कश्मीर को बचाने के लिए जो कुछ भारत को करना था, वह कश्मीर में होना चाहिए था, उससे बाहर नही। भारत की यह धमकी कि कश्मीर पर हमला भारत पर हमला समझा जायेगा, इतने बरस बाद कोरी धमकी ही रही थी। इसका पाकिस्तान को गुमान तक न था कि यह धमकी कभी और रूप भी धारण कर सकती है। और फिर हमला भी पाकिस्तान के सबसे लाडले शहर लाहौर पर। पाकिस्तान के चारों-कपड़े आग लग गई। लाहौर उनके हाथों से निकला तो पश्चिमी पाकिस्तानी की छाती मे कटार खुभ कर रह जायेगी। लाहौर शहर तो पाकिस्तान की नाक थी। लाहौर हाथ से गया तो पाकिस्तान का गौरव समाप्त हो कर रह जायेगा। क्या फौजी और क्या शहरी, हर पाकिस्तानी एक-जुट होकर मुकाबले के लिए तैयार हो गया। पाकिस्तान की फौज में हर सिपाही जान हथेली पर रखकर जंग में कूद पड़ा। और उन्होंने भारतीय सेना को खदेड़ना शुरू कर दिया। यही नही पाकिस्तानी हवाई फौज ने भारत के हवाई अड्डों और शहरों पर जगह-जगह गंभीर आक्रमण शुरू कर दिए। सारे पाकिस्तान में हाहाकार मच गया। पाकिस्तान के लिए ज़िंदगी मौत का सवाल था। लाहौर हाथ से गया तो पाकिस्तान की कमर टूट कर रह जायेगी।

पाकिस्तानियों ने अमरीका से मिले टैंक, लड़ाकू विमान और दूसरे खतरनाक हथियार लड़ाई में झोंक दिए। पाकिस्तानी नौजवान अल्लाह का नाम ले कर सिर-धड़ की बाज़ी लगाने के लिए तैयार हो गये। सिर पर कफन बांध कर ग़ाज़ी अपनी पुरानी इस्लामी परम्परा को फिर से सजीव करने के लिए जंग में कूद पड़े।

इधर भारत में, लोगों का उत्साह अथाह-सागर की तरह ठाठें मार रहा था। नगर-नगर भरती के दफ्तर खुल गये। स्कूल-कालेजों के नौजवान, दफ्तर-कारखानों के कर्मचारी, खेतों पर काम कर रहे किसानं-मजदूर, फ़ौज में भरती होने के लिए क्यू लगाकर खड़े हो गये। हर कोई सुरक्षा-कोष में अपना भाग डालने के लिए उतावला था। कोई धन दे रहा था, कोई कपड़े इकट्ठे कर रहा था। स्त्रियां अपने गहने उतार कर, अधिकारियों के हवाले कर रही थीं। स्कूलों के बच्चे, अपने जेब खर्च में से बचाये हुए पैसे, जवान-फंड के लिए देकर खुश हो रहे थे, विधवा औरतें अपनी सुरक्षित पूंजी देश की रक्षा के लिए दान देकर सुर्खरू हो रही थीं, बूढ़े-बुज़ुर्ग अपने बेटे-पोतों को फौज में भरती भी करवा रहे थे।

पाकिस्तान की सीमा की ओर जा रही सड़कों पर, जगह-जगह गांववालों ने अड्डे स्थापित कर लिए थे जिन पर गरम दूध, चाय और मिठाइयों का प्रबंध था। फौजियों के ट्रक रोक-रोक कर वे उनको हलवा-पूरी खिलाते और दूध के कटोरे पीने के लिए पेश करते। गांव की जवान-जहान लड़कियां उनको राखियां बांधती और उन पर फूलों की वर्षा करतीं।

कश्मीरा सिंह पिछले कई दिनों से परेशान था। जिस इलाके में वह दुनाली पकड़े, बेताज बादशाह की तरह फिरता था आजकल उस इलाके के चप्पे-चप्पे पर सेना की चौकियां बनी हुई थीं, इधर भारतीय सीमा के इस ओर भी, उधर पाकिस्तानी सीमा के उस ओर भी। कश्मीरा सिंह, पंजाब में से गुज़रती हिन्दुस्तान और पाकिस्तानी सीमा-रेखा को बस नाम-मात्र ही समझता था। सिंह के समान वह नदी-नालों, सुनसान जंगलों में विचरता, किसी की मजाल नहीं थी कि उसकी ओर आंख उठाकर भी देख जाये। आम दिनों में सरहद की पुलिस कश्मीरा सिंह की मुरीद थी। छोटे-बड़े अफसर कश्मीरा सिंह के हम-प्याला हम-निवाला थे। बहुत दिन नहीं हुए, कश्मीरा सिंह भी उनके साथ काम करता था। देश के बंटवारे से पहले, लाहौर की पुलिस में; देश के बंटवारे के बाद, अमृतसर की पुलिस में ! कई पाकिस्तानी पुलिसवाले उसके नीचे काम कर चुके थे, कई उसके साथी अफसर थे। और फिर इधर हिन्दुस्तान में आकर जब उसकी ड्यूटी वाघा की सरहद पर लगी, उसने कभी एक दिन भी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अंतर नहीं जाना था। जिधर मुंह उठाता, निकल जाता। पाकिस्तानी पुलिस-अफसरों को हिन्दुस्तान से किसी चीज़ की जरूरत होती तो कश्मीरा सिंह पहुंचा देता, इसे पाकिस्तान से कोई चीज़ मंगवानी होती, एक इशारे भर में वे हाज़िर कर देते। इस तरह का असर-रसूख, कश्मीरा सिंह की मर्ज़ी से हज़ारों रुपयों का माल इधर से पाकिस्तान पहुंच जाता, उधर पाकिस्तान से भारत में आ जाता।

कश्मीरा सिंह ने इतने वर्ष तक पुलिस जैसे विभाग में काम किया था लेकिन हाथ का बड़ा साफ रहा था। कभी उसने रिश्वत नहीं ली थी, कभी उसने शराब नहीं पी थी, कभी किसी परायी औरत की तरफ आंख उठाकर नहीं देखा था। पर अब आज़ाद भारत में पता नहीं उस पर क्या भूत सवार हो गया था। हंसी-हंसी में ही सब कुछ होने लग गया। पहले तो उधर पाकिस्तानी दोस्तों की फरमाइश पर, वह इधर से केले और आम पहुंचाने लग गया। कश्मीरा सिंह के पाकिस्तानी दोस्त इसको बादाम और किशमिश ला देते। फिर इसने यह सब कुछ अपने दोस्तों के दोस्तों के दोस्तों के लिए भी करना शुरू कर दिया। बढ़ते-बढ़ते बात यहां तक बढ़ गई कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बाकायदा व्यापार होने लग गया। इस तिजारत के लिए कश्मीरा सिंह ने नये रास्ते खोज निकाले थे, नये ढंग निकाल लिए थे। और फिर एक समय ऐसा आया कि वाघा की चौकी से माल कम आयात-निर्यात होता था; कश्मीरा सिंह के निकाले रास्तों से ज्यादा। और अमृतसर के व्यापारी, कश्मीरा सिंह के गुण गाते रहते। कश्मीरा सिंह के घर ऐश्वर्य का सागर ठाठें मारने लगा। अमृतसरी-व्यापारी इसके हाथ-बांधे गुलाम थे। इसके मुंह से बात बाद में निकलती, चीज़ पहले इसके सामने हाज़िर हो जाती।

कश्मीरा सिंह को वह शाम कभी नहीं भूलती थी, जब पहली बार अमृतसर का एक व्यापारी उसके घर आया। बैठक में बैठा, कितनी देर बातें करता रहा। जब वह गया सौ-सौ के दस नोट पलंग की अदवाइन में खुँसे हुए थे। कश्मीरा सिंह ने देखा तो नोट पकड़ कर उसके पीछे दौड़ता हुआ गया। सड़क पर कश्मीरा सिंह उसको नोट पकड़ा रहा था। और व्यापारी रकम को हाथ नहीं लगा रहा था। बार-बार कहता, नोट उसके नहीं थे। कश्मीरा सिंह

कहता – लालाजी, इकट्ठा एक हज़ार रुपया तो कभी मेरे बाप ने भी नहीं देखा, आप सोचते हैं कि ये नोट पलंग में से पैदा हो गये हैं। और फिर अमृतसरी लाला कुछ इस तरह हँस पड़ा कि कश्मीरा सिंह जैसे लाजवाब हो गया हो।

वह दिन और यह दिन, कश्मीरा सिंह जैसे पैसे से खेल रहा हो। उसे पता नहीं था, किधर से रुपये आते थे और किधर को जाते थे। उसकी पत्नी सोने से लद गई। उसकी जेबों में ठसा-ठस नोट भरे रहते। पैसा आने लगा तो इसके साथ दस और चाहतें भी आ गयीं। कश्मीरा सिंह ने दारू पीना शुरू कर दिया। पराई औरतों से दोस्ती शुरू कर दी। फिर कई-कई रात वह बाहर ही रह जाता।

और फिर कश्मीरा सिंह एक व्यापारी की बेटी पर फिदा हो गया। लड़की कालेज से पढ़कर लौटी थी। गर्मियों के दिन थे, तमतमाया हुआ उसका लाल सुर्ख चेहरा, मोटर-गाड़ी से निकली तो कश्मीरा सिंह के तुर्रे की ओर देखती रह गयी। कश्मीरा सिंह को न खाना अच्छा लगता न पीना। बार-बार उस नौजवान लड़की की सूरत उसकी आंखों के सामने आ जाती। उसके मुंह-माथे पर बिखर रहे बालिश्त-बालिश्त भर बाल, उसके कंधे पर लटकी, खुशबू बिखेरती रेशमी चुनरी, उसकी सोई-सोई आंखें, ऊंची लंबी, लचक-लचक-सी रही, मोटर-गाड़ी से उतरी तो ऐसा लगा जैसे गेट के पास लगे शहतूत के झम-झम करते पत्ते, उसे दबोच लेंगे।

घर लौटने पर, अमृतसर के व्यापारी के बेटी की वह मनमोहिनी छवि उसकी आंखों के सामने से न हटती। ज़िंदगी में पहली बार उस रात कश्मीरा सिंह अपनी बीवी से झगड़ बैठा। बेचारी पोठोहारिन उसके मुंह की ओर देखती रह गयी। उसके बच्चे बिना खाये सो गये।

अगली सुबह कश्मीरा सिंह को अपने आपसे बहुत ग्लानि हुई। आईने के सामने खड़े होकर अपने आपको एक मोटी-सी गाली दी और फिर मुंह में भरा ज़हर खिड़की से बाहर थूक दिया। कई महीने बीत गये, उसने फिर कभी अमृतसर के व्यापारी की कोठी की ओर मुंह नहीं किया।

फिर एक दिन, ईश्वर की करनी से अमृतसर का वह व्यापारी सरहद पर कश्मीरा सिंह की पुलिस के काबू में आ गया। लाखों रुपये का माल वह चोरी-छिपे पाकिस्तान भेजता था, उधर से माल इधर मंगवाता था। उसका कुछ माल तो कश्मीरा सिंह की मर्ज़ी से आता-जाता था और कुछ वह कश्मीरा सिंह से भी आंख बचा कर इधर-उधर कर लेता था। कश्मीरा सिंह को इसकी खबर थी, पर वह सोचता-उसको क्या मुंह लगाये। अमृतसरी व्यापारी की कोठी पर जाने से वह हमेशा कतराता रहता। अब, जब कि वह इनके कब्जे में आ गया तो कश्मीरा सिंह के लिए बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। यह तो ईश्वर का शुक्र था कि जान बच गई थी। सरहद की पुलिस ने तो उस पर गोली चलाई थी। व्यापारी भागने की कोशिश कर रहा था। गोली उसकी टोपी को चीरती हुई निकल गई। एक पोर इधर या उधर हो जाता तो वह समाप्त हो गया होता। अभी तक कश्मीरा सिंह यह फैसला नहीं कर पाया था कि वह उसका क्या करे? ऊपर रपट पहुंची तो उसको पाँच-सात साल कैद ज़रूर हो जायेगी।

और फिर एक दिन दोपहर के समय, कश्मीरा सिंह एक चौकी का निरीक्षण कर रहा था।

उसने खिड़की से बाहर देखा, उसकी जीप के पास एक मोटर आ खड़ी हुई, इस वीराने में एक मरसीडीज़ गाड़ी। सरहद की यह चौकी खास तौर पर एक कोने-जैसे में थी। सामने टीले की ओट में पाकिस्तानियों का अड्डा था और यह चौकी ज्यादातर उनकी हरकतों पर नज़र रखने के लिए थी। मरसीडीज़ आकर रुकी तो कच्चे रास्ते की धूल का गिलाफ-सा जैसे उस पर चढ़ गया। कश्मीरा सिंह हैरान हो रहा था, इतनी बड़ी मोटर वहां तक कैसे पहुंच सकी, कि धूल मिट्टी के गुबार को चीरती हुई अमृतसरी व्यापारी की वही जवान लड़की, ऊंची एड़ी के सैंडल में लचक-लचक करती चौकी की तरफ आती दिखाई दी। कश्मीरा सिंह की ऊपर की सांस ऊपर, और नीचे की सांस नीचे रह गयी। ऐसा लगता था जैसे सब कुछ पहले से योजनाबद्ध हो, अभी वह कोई फैसला भी नहीं कर पाया था कि लड़की चिक उठाकर उसके अंदर आ घुसी।

"मेरा नाम नीलम है।"

और फिर उस लड़की के गाल तमतमाने लग गये। उसकी कजरारी पलकों से आंसू ढुलकने लग पड़े। वैसे खड़े ही खड़े उसने कुर्सी की पीठ का सहारा लिया। ऐसा लगता था जैसे उससे अपना-आप संभाला न जा रहा हो। कश्मीरा सिंह ने आगे बढ़ कर उसे कुर्सी पर बैठने के लिए कहना चाहा कि लड़की उसकी बाहों में ढेर हो गयी।

अपनी इस्मत की कीमत चुका कर, अमृतसर के व्यापारी की बेटी ने बाप को छुड़ा लिया। पर कश्मीरा सिंह, उस दिन से जैसे निढाल पर निढाल होता जा रहा था। जो काम करता, गलत; न घर में चैन न दफ्तर में आराम। मामूली-मामूली बातों पर उसकी जवाब-तलबी होने लग गई। और फिर वह अमृतसरी व्यापारी के जुर्म से भी बड़े अपराध में, स्वयं आप फंस गया। अगर कोई बचा सकता था तो राजनीतिक रसूख। अगर कोई मदद कर सकता था तो राज्य सरकार का कोई मंत्री। और कश्मीरा सिंह से सभी कहते थे कि अमृतसरी व्यापारी की चंडीगढ़ सरकार में बड़ी पहुंच थी। अगले महीने होनेवाले चुनावों में उसने ढेरों रुपये सत्ताधारी पार्टी को दिए थे। कश्मीरा सिंह सोचता, किस मुंह से वह व्यापारी की कोठी में जाये। पर कोई और चारा नज़र नहीं आ रहा था। आज कितने महीनों से वह नौकरी से मुअत्तिल था। आखिर वह उसी व्यापारी के यहां गया। चिक उठाकर, उसके दफ्तर में अभी कश्मीरा सिंह ने कदम ही रखा था कि लाला जी ज़हर-भरे लहजे से बोले – "आओ सरदार साहब। आपने तो बहुत दिन लगा दिए। मैं तो सोचता था कि आप अपनी "कुड़ी" को भेजेंगे – अपना काम करवाने के लिए..."

कश्मीरा सिंह ने सुना तो उसका हाथ कमर की ओर गया, पर वहां रिवाल्वर नहीं था। रिवाल्वर तो कब से, उससे जमा करवा लिया गया था।

उन्हीं कदमों से कश्मीरा सिंह वापस घर लौट आया।

कुछ दिन के बाद कश्मीरा सिंह को बाकायदा नौकरी से बरतरफ कर दिया गया। और फिर कई बरस कश्मीरा सिंह रोज़गार की तलाश में भटकता रहा। कोई काम नहीं मिला।

फिर कश्मीरा सिंह ने सरहद पर तस्करी का धंधा शुरू कर दिया। कुछ ही दिनों में उसके

वारे-न्यारे हो गये । लाखों रुपये का माल,इधर से उधर पहुंचाता । लाखों रुपयों का माल,उधर से इधर लाता । सरहद की पुलिस उसकी मुरीद थी ।

अब,जब पाकिस्तान से जंग छिड़ी उसने देखा,भारतीय जवान किस तरह अपने देश के लिए बलिदान दे रहे हैं । वह सरहद के फौजी कमांडर के पास गया और अपने आपको उनके हवाले कर दिया । उसे सरहद के चप्पे-चप्पे का पता था – इधर हिन्दुस्तान में भी,उधर पाकिस्तान में भी । और कश्मीरा सिंह किसी भी खतरे की परवाह न करते हुए अपने देश के जवानों की अगवानी करने लग गया । फौजी टुकड़ियों के साथ पाकिस्तान के इलाके में ऐसे चलता-फिरता जैसे कोई अपने दोस्तों के साथ घूमता हो ।

कश्मीरा सिंह की मदद से भारतीय सिपाही,कभी कहीं-कभी कहीं पाकिस्तानी इलाके में घुस जाते और दुश्मन के ठिकानों पर अचानक हमला करके भारी क्षति पहुंचाते । बूढ़ियां, अधेड़ उम्र की औरतें,जहां फौजी खड़े होते उन पर बलि-बलि जातीं और उनके सरों से वार-वार कर पानी पीतीं । सरहद के गांव वाले गोलियों की तड़-तड़ आवाज़ सुनते हुए भी अपने खेतों में हल चलाते जाते,क्यारियों में पानी देते जाते । सुबह-शाम पराठों से भरी टोकरियां और लस्सी से भरी मटकियां उठा कर अगली से अगली चौकी के फौजियों को खाना खिला आते ।

91

मास्टर काला गली-गली घूमता हुआ लोगों को समझा रहा था – "पहले तो अमरीका और ब्रिटेन के असर-रसूख से ऊंथाट ने जम्मू और कश्मीर में युद्धबंदी रेखा के निगरान,जनरल निम्मो की रिपोर्ट को दबाये रखा । आखिर ३ सितंबर के दिन उसने सुरक्षा परिषद् को बता दिया कि हिन्दुस्तान पर हमला करने का कसूरवार पाकिस्तान है । ऊंथाट ने यह भी माना है कि वह पाकिस्तान को इस बात के लिए राज़ी नहीं कर सका कि वह युद्धबंदी रेखा का आदर करे । इसके उलट, भारत इस बात पर राज़ी हो गया कि अगर पाकिस्तान छंभ के इलाके से निकल जाये और भविष्य में भारतीय इलाके में अनुचित हस्तक्षेप न करे तो वह लड़ाई बंद कर देगा ।"

"पाकिस्तान ने सीटो और सैंटो जैसे समझौते कर रखे हैं । पाकिस्तान के विदेश मंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने एलान किया है कि इन समझौतों के अंतर्गत उन्होंने कई देशों से मदद मांगी है । इस मदद के लिए ब्रिटेन सरकार ने एलान किया है कि भारत का अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को पार करके पाकिस्तान पर हमला करना ज्यादती है । जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान की घुसपैठ और बात है । और कई देश ब्रिटिश सरकार से सहमत हो गये प्रतीत होते हैं । अमरीका भी इन देशों में शामिल है ।"

"पाकिस्तान आज चीन से मदद मांग रहा है और उन देशों से भी,जिन्होंने उसके साथ

चीन के विरुद्ध समझौते किए हुए हैं। कोई और पाकिस्तान की मदद करे चाहे न करे, चीन ज़रूर कोई न कोई शरारत शुरू करेगा। चीनी हमेशा इस तरह की हालत से लाभ उठाने की कोशिश करते हैं।"

"पाकिस्तान के बनने के बाद, उस देश की बस एक यही कामना रही है कि किसी तरह हिन्दुस्तान पर हमला किया जाये। भारत पर हमले का मतलब यह है कि हिन्दुस्तान का जवाबी हमला लाहौर पर जरूर होगा। लाहौर को इस तरह के हमले से बचाने के लिए पाकिस्तान ने १९५६ में इच्छोगल नाम की नहर बनाई है। इस नहर का पानी सिंचाई के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाता, नहर के आगे पीछे सारा इलाका वीरान पड़ा है। स्यालकोट से उत्तर-पश्चिम की ओर मराला के निकट से यह नहर चिनाब नदी से निकाली गई है। डेरा बाबा नानक से कुछ मील ऊपर रावी नदी को यह पार करती है। और लाहौर शहर से कोई दस मील दूर गुज़रती है। यह नहर डोगराई शहर को दो हिस्सों में बांटती है, बरकी शहर के पश्चिम और कसूर से पूरब की ओर होती हुई दक्षिण में दीनापुर की नहर से जा मिलती है। यह नहर ४५ मील लम्बी है, १०४ फुट चौड़ी और १५ से २० फुट गहरी है। इसके किनारे सीमेंट के बने हैं। इतनी गहरी है कि इसमें गिरा कोई टैंक या ट्रक क्रेनों की मदद के बिना नहीं निकाला जा सकता। इस नहर के दोनों किनारों पर दो सौ गज़ का फासला छोड़कर पिलबाक्स बनाये हुए हैं, भूमिगत बारूद-खाने हैं। डोगराई और बरकी पर पुल बने हुए हैं। नहर किनारे के गांवों को फौजी अड्डों में बदल दिया गया है। हर देहाती को हथियारबंद कर दिया गया है। नहर पर पिलबक्से, छोटे-छोटे कमरे हैं, जिनकी दीवारें दो फुट और छतें चार फुट मोटी बनाई गई हैं। इन पर बमों का असर नहीं हो सकता। हर पिल बाक्स का एक दरवाज़ा होता है जो इस्पात का बना होता है और अन्दर से बन्द किया जा सकता है। इसके भीतर तीन आदमियों के बैठने की जगह होती है। इनमें लगाई गई मशीनगनें एक मिनट में २५०० गोलियां उगलती हैं। हर पिल बक्से पर बाहर से गोबर और मिट्टी का लेप करके छिपाया हुआ होता है। इस तरह के पिल बक्से नहर के दोनों किनारों पर भारतीय पंजाब को मिलाने वाली तीन सड़कों और सीमा के गांवों में जगह-जगह बनाये हुए हैं।"

उधर कर्नल हाइड को खदेड़ती हुई पाकिस्तानी फौजें, भारत के इलाके में घुस आईं। उन्होंने राणियां नामक भारतीय चौकी पर कब्जा कर लिया, फिर मुंझ नामक गांव भी उनके कब्जे में आ गया। पर यहां उनको रोक लिया गया। दो सप्ताह तक यहां लड़ाई होती रही, कभी किसी का पलड़ा भारी हो जाता, कभी किसी का। १७ सितंबर को मुंझ की लड़ाई में, पाकिस्तान से गांव खाली करवा लिया गया। फिर राणियां से भी पाकिस्तानियों को हटना पड़ा। यहां एक पाकिस्तान टैंक भी भारतीय फौजों के कब्जे में आ गया। फिर भारतीय सेनाएं पाकिस्तानी इलाके में जा घुसीं।

२१-२२ सितंबर की रात डोगराई की लडाई शुरू हुई। बड़ा कड़ा मुकाबला था। पाकिस्तान ने दोनों ओर बारूदी सुरंगें बिछा रखी थीं। न कोई टैंक उस तरफ जा सकता था न कोई पैदल। फिर भारतीय सूरमा रात के अंधेरे में मेजर आसा राम त्यागी की कमान में उत्तर-पूर्व

की ओर से होकर डोगराई के इलाके में जा घुसे। गोलियों की वर्षा हो रही थी। फिर भी ये बहादुर आगे ही बढ़ते गये। मेजर त्यागी को दो बार गोली लगी, पर उसने अपने जवानों की अगवानी नहीं छोड़ी। मेजर त्यागी की टुकड़ी, घुप अंधेरे में आगे बढ़ती गई और उन्होंने हथगोलों से तीन टैंक, जो उनका रास्ता रोके बैठे थे, ठंडे कर दिए। "जय भगवान", "जय बड़े बलवान" के नारे लगाते फौजी, अपनी जान पर खेलते हुए आगे ही आगे बढ़ते गये। मेजर त्यागी, तीन और गोलियों का निशाना बना।

उसकी कुरबानी देख कर उसके एक कप्तान को भी जोश आया। उसकी कमान में एक पंजाबी और मद्रासी सिपाही, गोलियों की बौछार में, पंजों के बल रेंगते हुए पिल बक्से की ओर बढ़ने लगे, जिस में से गोलियां पिचकारी की तरह छूट रही थीं। काली घुप अंधेरी रात में चींटियों की तरह धरती पर घिसटते हुए दोनों जवान पिल बक्से तक पहुंच गये। और उन्होंने पिल बक्से के दरवाजे को ज़ोर से ठोकर मारी। लोहे का दरवाज़ा खुला हुआ था। दरवाज़ा खुला और भारतीय जवानों ने अपने हथगोलों से सामने वालों को खत्म कर दिया। इस प्रकार एक पिल बक्से को ठंडा हुआ देख, पाकिस्तानी सिपाहियों ने सोचा, शायद पिछली तरफ से उनपर हमला हो गया है और वे अपने पिल बक्से छोड़ भाग खड़े हुए। भागते हुए दुश्मन ने दो भारतीय सूरमाओं को देख लिया और वहीं का वहीं उन्हें भून डाला। जवान मारे गये लेकिन २२ सितंबर की अगली सुबह, डोगराई का शहर हिन्दुस्तानी फौजों के कब्ज़े में था।

छः घंटे की यह लड़ाई भारत के इतिहास में हमेशा-हमेशा याद रहेगी। इसमें पाकिस्तान की १६ रेजिमेंट का पूरा सफाया कर दिया गया। उनके टैंकों की टुकड़ी और उनके हथियार भारतीय फौजों के कब्जे में आ गये। पाकिस्तानी कर्नल गोले-वाला, मेजर हाशिम बेग, एक बैटरी कमांडर, ४ सूबेदार और कोई १०८ फौजी जिन्दा पकड़े गये। ३०५ पाकिस्तानी फौजियों की लाशें गिनी गईं। भागते हुए पाकिस्तानी इच्छोगिल नहर का पुल उड़ा गये।

पाकिस्तानी फौजों ने डोगंराई के लोगों को यकीन दिलाया था कि भारतीय फौजें जरनैली सड़क पर डोगराई की तरफ कभी भी नहीं बढ़ सकतीं। जब भारतीय सिपाही शहर में घुसे तो लोग हक्के-बक्के रह गये। शहर से बाहर दो सौ गज़ के फासले पर लड़ाई हो रही थी और शहर में लोग आराम से सोये पड़े थे, सुबह उठ कर खेतों में हाजत से फारिग होने बैठे हुए थे।

एक घर के दरवाज़े को जब भारतीय सैनिकों ने जाकर खटखटाया तो भीतर से घर का मालिक बनियान-पाजामे में सोता हुआ जाग कर इस तरह ड्योढ़ी में आया, जैसे अचानक किसी मेहमान के लिए कोई दरवाज़ा खोलता है। घर के मालिक, उसकी औरत और बच्चों को हिरासत में ले लिया गया।

डोगराई के आसपास का इलाका बरबादी की एक भयानक तसवीर था। जगह-जगह गोलियों से खाइयां और गड्ढ़े बन गये थे। बिजली के खंभे टेढ़े-मेढ़े हो गये थे। पेड़ झुलस गये थे। चप्पे-चप्पे पर अमरीकी वायरलैस सैट, बारूद और हथियार बिखरे हुए थे। लहू की तलैया और क्षत-विक्षत पाकिस्तानी सिपाही। किसी की टांग उड़ गई थी, किसी की बांह गायब थी। किसी का सीना छलनी हुआ पड़ा था। किसी के पेट में छेद हो गये थे। किसी का कान

कुतरा हुआ था। कई ठंडे हो गये थे। कई अभी भी तड़प रहे थे। आहें और चीखें। फरियादें और क्रन्दन। एक सिपाही लाख-लाख गालियां दे रहा था – पाकिस्तान को, और पाकिस्तान बनाने वालों को। और इस तरह गालियां बकता हुआ वह खत्म हो गया।

बाटा शू कंपनी की फैक्ट्री नहर के पश्चिमी किनारे पर थी और नुमाइशी दूकान पूर्वी तट पर। इस दुकान में वैसे-के-वैसे जूतियां और बूट सजे हुए थे। वैसे-के-वैसे मूल्यों के कार्ड लटक रहे थे। पान की दुकानों पर पान-बीड़ियां वैसी-की-वैसी धरी थीं, पान लगाने वाले भाग गये थे।

रात हुई, लड़ाई धीमी पड़ी तो पाकिस्तानी सिपाहियों ने हिन्दुस्तानी सिपाहियों से बातचीत शुरू कर दी। "आप कौन हैं ? कहां के हैं ? हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने पश्चिमी पंजाब के अपने गांवों का हालचाल पूछना शुरू कर दिया। उधर से माहिया के टप्पे पाकिस्तानी गाते, इधर से भारतीय फौजी जवाब देते। इस भाईचारे में, दोस्ती-दोस्ती में हिन्दुस्तानी फौज ने पाकिस्तानियों को इस बात की इजाजत दे दी कि वे अपने फौजियों की लाशों को इकट्ठा करके ले जायें। फिर यह भी मान लिया गया कि घायल, तथा शहर में से पकड़े मर्द, औरतें और बच्चे भी वापस कर दिए जायेंगे।

पाकिस्तानियों की एक नाव अपने नागरिकों को लेने आई। होते-होते आधी रात हो गई। जब पाकिस्तानी जाने लगे, किनारे पर अलग से खड़े एक भारतीय मेजर को भी उन्होंने अपने साथ खींच लिया। हक्के-बक्के मेजर के मुंह में कुछ ठूंस दिया गया और उसे नीचे डाल कर छः जवान उस पर बैठ गये। भारतीय फौजों को पता भी नहीं चला, और इनके एक अफसर को पाकिस्तानी अगवा कर ले गये।

92

पाकिस्तानी सचमुच अपनी धरती के चप्पे-चप्पे के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगाये हुए थे। जब बरकी की तरफ से भारतीय फौज़ों ने हमला किया, तब पाकिस्तानियों ने इच्छोगिल नहर को उस काम के लिए इस्तेमाल किया, जिस काम के लिए उसे बनाया गया था। नहर का पानी छोड़कर सारे इलाको को जल-थल कर दिया गया। सड़क पर, पगडंडियों पर, खेतों में घुटने-घुटने तक पानी खड़ा था। साथ ही इस इलाके में सिर-सिर तक ऊंचे सरकंडे थे। भारतीय सेनाओं को, नये मार्ग बनाने के लिए, यह जरूरी था कि धान के खेतों और सरकंडों को काट कर साफ किया जाये। इस काम के लिए उन्होंने सीमा पर रहने वाले ग्रामीणों की सहायता मांगी। भारतीय जरनैल के मुंह से यह बात निकली और गांव के गांव दरांतिया पकड़ कर तैयार हो गये। अपने-अपने सरपंचों की अगवानी में सैंकड़ों जवान माहिया की बोलियां बोलते, फबतियां कसते, पाकिस्तानी इलाके में जा घुसे। उनके आगे पीछे बम फट रहे थे।

आसमान पर दुश्मन के हवाई जहाज दनदना रहे थे। फिर भी भारतीय शपा-शप खेतों की घास को काटने लग गये और देखते ही देखते उन्होंने अपने सिपाहियों के लिए नई राहें साफ करके रख दीं। फौजी ट्रक जब पूरे न पड़ते, तो इलाके के कमांडर, सिविल लारियों को सामान और सिपाही लादने के लिए इस्तेमाल करते। बाकी मोर्चों पर भी इस तरह की जरूरत पड़ी। कई ट्रक ड्राइवर अपनी लारियां ले कर फौजी अफसरों की सेवा में हाज़िर हो गये। एक-एक लारी दस-दस चक्कर लगाती। फुंकारती-फुफकारती गोलियों की, किसी को परवाह न थी। इस तरह का एक ट्रक ड्राइवर बारूद से भरी अपनी लारी ले कर, पता नहीं कब बरकी शहर में जा घुसा। अभी भारतीय सेनाएं बहुत पीछें थीं। शहर के लोगों ने उसका कीमा बना दिया। जब भारतीय सेना बरकी शहर में पहुंची, उन्होंने देखा, सब से पहले पहुंची भारतीय-लारी जली पड़ी थी।

बरकी, लाहौर-पट्टी की सड़क पर इच्छोगिल नहर के पूर्वी किनारे पर कोई ५०० गज़ के फासले पर है। यह शहर डोगराई से १० मील दूर है। इसकी आबादी दस हज़ार है। पंजाब के बंटवारे से पहले बरकी, यहां के गुंडों के लिए बदनाम था। बंटवारे के बाद यह शहर तस्करी के लए मशहूर हो गया। इस शहर में असगर नाम का, तस्करों का बादशाह रहता था। जनरल हरकिशन सिब्बल की कमान में भारतीय सेना ने खालड़ा से लाहौर की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में गांव खाली करवा कर, पाकिस्तान ने छावनियों में तबदील किए थे। सब से ज्यादा मुश्किल हुडियारा के नाले पर पड़ी जो १८० फुट चौड़ा है। इस नाले के पार, पाकिस्तानी, मशीनगनें ले कर जमे हुए थे। भारतीय सेना को इस शहर में घुसने के लिए कोई डेढ़ दिन लग गया। हुडियारा की गलियों में कदम-कदम पर लड़ाई हुई।

सुजान नाम का एक भारतीय तस्कर अपनी फौजों को पाकिस्तान के गांवों का रास्ता बता रहा था।

८,९ तथा १० सितंबर के तीन दिन, भारतीय फौजें पूरा जोर लगा चुकीं, लेकिन शत्रु ने उन्हें आगे नहीं बढ़ने दिया। पर भारतीय सिपाही बरकी शहर और इच्छोगिल नहर के पुल पर कब्जा करने पर तुले हुए थे। १०-११ की रात, भारतीय फौज ने जबरदस्त हमला किया जिस तरह का मुकाबला पाकिस्तान की ओर से किया गया, उस तरह का मुकाबला, किसी ने कभी नहीं सुना था, किसी ने कभी नहीं देखा था। भारतीय सेना ने पहली बार रात को लड़ाई में टैंक झोंके। पाकिस्तानियों ने पहली बार इस लड़ाई में ऐंटी-टैंक गाइडिड मिसाइलों का इस्तेमाल किया। घमासान युद्ध शुरू हो गया। अंधेरे में जल रहे टैंक जैसे झाड़ियां हों; पाकिस्तानी फौजी और भारतीय फौजी भूतों की तरह उनके गिर्द नाच रहे दिखाई देते थे। मौत का यह नाच पल-पल तेज होता जा रहा था। अनन्त धूल उड़ रही थी, अनन्त गुबार उठ रहे थे। उधर से पाकिस्तानी हवाई जहाज़ गरजते हुए हिन्दुस्तानी ठिकानों पर बम बरसा रहे थे, इधर से हिन्दुस्तानी बंबार पाकिस्तानी बंकरों और खाइयों को उड़ा रहे थे। पाकिस्तानियों ने, मरम्मत के लिए आये टैंकों को भी लड़ाई में झोंक दिया। जब कोई दुश्मन का हवाई जहाज गिरा लिया जाता, तो अंधेरे में जूझ रहे फौजियों का हौसला बढ़ कर दुगुना-चौगुना हो जाता।

जिन पिल-बक्सों से लगातार गोलियां बरस रही थीं, उनकी ओर, अपनी कमर पर हथगोले बांध कर, भारतीय जवान धरती पर रींगते हुए पहुंचे और अचानक हमला करके उनको ठंडा कर दिया, एक पिल बक्से की छत पर बैठकर भारतीय सिपाही ने मां-बहन की गाली दी और अंदर गोला फेंका। एक और पिल बक्से में से एक पाकिस्तानी सिपाही निकला और हाथ जोड़कर कहने लगा, "मेरी जान बख्शो, मैं आपको बड़े काम के भेद बताऊंगा।" इस प्रकार कुछ पिल बक्सों को ठंडा हुआ देख, बाकी पिल बक्सों में बैठी शत्रु की सेना भाग गई। अब दुश्मन ने आग लगाने वाले बम गिराने शुरू कर दिए। और इस तरह लपटों की तेज़ रौशनी में सारे का सारा जंग का मैदान आंखों को चकाचौंध कर रहा था। फिर लड़ाई हाथों-हाथ होने लगी। "जयहिंद" के नारे लगाते हुए भारतीय सिपाही आगे ही आगे बढ़ रहे थे। उधर पाकिस्तानी सूरमा अपनी धरती के चप्पे-चप्पे के लिए जान न्यौछावर कर रहे थे। मकानों को ढाह कर, उनके मलबे से सड़कें और अवरोध बना दिए गये। अंधेरे में भारतीय टैंक गलत रास्ते पर पड़ गये, और बारूदी सुरंगों से अटे इलाके में जा निकले। फिर १०-११ सितंबर की रात, साढ़े नौ बजे, बाकी का शहर हिन्दुस्तानी फौजों के कब्जे में था। सारे शहरी भाग खड़े हुए थे। बस दो बूढ़े बचे थे और एक बुढ़िया। उनकी उम्र सौ-सौ साल से ज्यादा होगी।

अब इच्छोगिल नहर के पुल पर कब्जा करना रह गया था। भारतीय सेना का एक कर्नल, गोलियों की अंधाधुंध हो रही बौछार की परवाह न करता हुआ, नहर के पार पूर्वी किनारे पर जा पहुंचा। पर इससे पहले पाकिस्तानी फौज ने पुल को बारूद से उड़ा दिया।

भारतीय फौजों ने जब बरकी शहर में प्रवेश किया, सैकड़ों घरों की दीवारों में छेद ही छेद थे। बरकी के इलाके में सारे गांवों में पाकिस्तानी जम कर लड़े। इन गांवों में भूतपूर्व सैनिक बसाये गये थे। हर गांव को किले की तरह सुरक्षित किया गया था।

बरकी के थाने पर तिरंगा लहरा कर भारतीय सेनाएं गांवों में फैल गईं। बरकी में ढेरों बारूद और अनगिनत हथियार भारतीय सेना के हाथ लगे। सारे का सारा शहर खाली कर दिया गया था। भायँ-भायँ करती गलियां, टेढ़े-मेढ़े बिजली के खंभे, टूटी-फूटी जीपें, तांगे, ट्रक, भूखे प्यासे ढोर, आवारा कुत्ते देख कर सुजान का दिल बैठा जा रहा था। अभी पिछले महीने वह इस शहर में था। असगर मुहम्मद का मेहमान। और फिर सुजान, असगर मुहम्मद के घर की ओर चल पड़ा। इस बंगले में कभी जनरल शिवचरण सिंह रहता था। १९४७ में देश के बंटवारे के समय उसे अपना घरबार छोड़ना पड़ा था।

सुजान की आशनाई, असगर मुहम्मद के पड़ोस में एक मालिन नाम की औरत से थी। वास्तव में मालिन से इसकी मुलाकात, असगर मुहम्मद ने ही करवाई थी। जब कभी सुजान, असगर के यहां आता, ढेर रात तक वे बैठे दारू पीते रहते। फिर मालिन आ जाती, कभी गाने लगती, कभी नाचने लगती। और इस तरह शराब पी-पी कर, जब बदमस्त सुजान को होश न रहती, वह मालिन को ले कर अपने सोने के कमरे में जा घुसता।

उस दिन जब भारतीय फौजें शहर में दाखिल हुईं, सदर थाने पर झंडा लहराने की रस्म के बाद सुजान, सीधा मालिन के घर गया। मालिन का आंगन भाँय-भाँय कर रहा था। सुजान

को यह देख कर एक धक्का सा लगा। उसे महसूस हुआ जैसे उसका कोई अंग किसी ने काट दिया हो। सुजान जो भारतीय फौजों को अपने पीछे-पीछे यहां लाया था, शहर पर कब्जा हो जाने के बाद, उसे यह सब कुछ अजीब अजीब लग रहा था। उसे लगता जैसे उसके पांव तले से जमीन निकल गई हो। अब वह पुलिस से छिप कर उधर से, और पुलिस से छिप कर इधर से असगर मुहम्मद के यहां कभी नहीं आ सकेगा। हज़ारों रुपये का माल इधर से उधर, और उधर से इधर नहीं कर सकेगा। अब मालिन उसे खालिस चांदी के कटोरे में देसी शराब पेश नहीं किया करेगी और न ही बुल्लेशाह की काफ़ियां सुनाया करेगी। सुजान को लगता जैसे जीत कर वह हार गया हो।

और फिर मालिन का कुत्ता 'परछावां' कहीं से आ निकला। सुजान को देख कर दुम को जल्दी-जल्दी हिलाने लगा। बार-बार सुजान की टांगों पर दोनों पंजे रख कर खड़ा हो जाता, जैसे उससे गले मिल रहा हो। फिर वह सुजान को, अपने पीछे ले कर चला। उसका टखना पकड़ कर बार-बार भौंकने लगता। पिछली गली में जाकर सुजान ने देखा, मालिन लहू के ढेर में पड़ी तड़प रही थी। ऐसा लगता है, जब लोग भाग रहे थे, किसी गोले की नोक उसकी छाती में आ लगी थी। सुजान को मालिन ने देखा तो उसकी आंखों में एकदम जैसे रोशनी आ गई हो। और फिर आंख झपकने की देर में उसने अपनी बांह को उठाया और तड़-तड़ गोलियां सुजान की छाती में दाग दीं। सुजान वहीं का वहीं ढेर हो गया। छाती में छेद ही छेद, सुजान मालिन से भी बड़े लहू के ढेर में लथ-पथ हो रहा था।

93

पाकिस्तान का, भारत के विरुद्ध यह युद्ध, राष्ट्रपति अयूब के लिए ज़िंदगी मौत का प्रश्न था। इतने वर्षों से अपने देशवासियों को यह चकमा देकर कि वह उन्हें भारत से कश्मीर छीन देगा, अयूब अपना सैनिक शासन चला रहा था। एक तानाशाह के लिए भी अब संभव नहीं था कि लोगों को और उल्लू बनाये रख सके। अब समय आ गया था कि वह अपने वायदे पूरे करे, नहीं तो दूसरे उसको गद्दी से उतारने के लिए उतावले हो रहे थे।

चीनियों से राष्ट्रपति अयूब की सांठ-गांठ के बदौलत, उसे यह मालूम थी कि भारत की आधी फौजें उत्तर और उत्तर पूर्वी सीमाओं पर तैनात थीं। चीनी अभी तक भभकियां दिखा कर भारत को डराते रहते थे। कभी कहते – तुमने हमारी सफेद भेड़ें पकड़ ली हैं। कभी कहते – तुम हमारे इलाके में हाजत फारिग करने क्यों आते हो ? शेष भारतीय सेनाओं का अधिकांश भाग कश्मीर में तैनात था।

अयूब की चाल यह थी, खेम करन की सरहद नंगी है, इधर से हमला करके ब्यास के पुल पर कब्जा कर लिया जाये। फिर जालंधर और लुधियाना। अयूब खां, पानीपत की चौथी

लड़ाई की बात सोच रहा था। और फिर दिल्ली के लाल किले की सैर। इस सारे चक्रव्यूह को तलवार का नाम दिया गया था। और अयूब का आदेश था कि पाकिस्तान का इस मोर्चे के कमांडर,इस समूचे आक्रमण की स्वयं अगवाई करे। फिर भी,पहल भारत ने की। ९ सितंबर की सुबह भारतीय सेना कसूर की ओर अग्रसर हुई। कोई चार-मील,पाकिस्तानी इलाके के भीतर घुस जानें पर,पाकिस्तान मुकाबले के लिए सामने आया। ६ घंटें तक दोनों ओर से घमासान की गोलीबारी होती रही। भारतीय फौजों को इस मोर्चे पर धकेल ही नहीं दिया गया बल्कि कुछ गांव भारतीयों को छोड़ने भी पड़े। भारतीय जनरल गुरबख्श सिंह फीरोज़पुर का रहनेवाला था। उसे इस इलाके का चप्पा-चप्पा मालूम था। उसने जानबूझ कर अपनी फौजों को पीछे हटा लिया और पाकिस्तानियों को आगे बढ़ने के लिए उकसाया। पाकिस्तानी इस चकमे में आ गये। वे खेम करण में आ घुसे। भारतीय फौजें उनके आगे-पीछे नालों में,और मक्का-बाजरे के खेतों में छिपी हुई थीं।

अवसर देख कर भारतीय सेनाओं ने आक्रमण किया और पाकिस्तानी टैंक जगह-जगह पर झाड़ियों की तरह जलने लग गये। कुछ टैंक दल-दल में फंस गये। बाकी टैंकों के चालक अपने साथियों सहित, टैंकों को खाली करके भाग खड़े हुए। उधर भारतीय नेटों ने पाकिस्तानियों के सेना में तहलका मचा रखा था। धरती से ५० से १०० फुट तक ऊंचाई पर उड़ रहे भारतीय हंटरों ने पहले एक असलहे से भरी गाड़ी को उड़ाया। फिर जगह-जगह पर इकट्ठे हुए टैंकों पर हमले किए और कई टैंकों को नुकसान पहुंचाया। रायविंड और कसूर के इलाके में, जिधर नज़र जाती, आग की लपटें दिखाई देतीं। धुएं से आकाश अटा पड़ा था। पाकिस्तान ने जवाबी हमले में भारतीय जहाजों पर अचूक निशाने लगाये। भारतीय हवाई जहाज, क्षत-विक्षत होकर वापस आये। किसी को कहीं गोली लगी थी, किसी को कहीं चोट आई थी। एक विमान चालक लौट कर आया; उसकी बांह का मांस उड़ा हुआ था, भीतर से हड्डी साफ दिखाई दे रही थी। फिर भी वह अपने जहाज़ को सुरक्षित उड़ाकर, वापस अपने ठिकाने पर ले आया।

पाकिस्तान ने और पैटन टैंक लड़ाई में झोंक दिए। पैंटन टैंक रात को भी निशानें पर चोट कर सकते थे। इसके विपरीत भारत के शर्मन टैंक अंधेरे में बेकार हो जाते थे।

सितम्बर की दस तारीख को पाकिस्तानियों ने असलुत्तर के स्थान पर जबरदस्त हमला किया। पाकिस्तान का पांचवां हथियारबंद ब्रिगेड अपनी पूरी शक्ति से भारत की ओर बढ़ने लगा। पाकिस्तानी टैंक जैसे फुंकार रहे थे। आंख झपकने की देर में जैसे तहस-नहस कर डालेंगे। उनके दोनों और छिपे हुए भारतीय सिपाही दम साधे पड़े थे। इन्हें निर्देश था कि पाकिस्तान ब्रिगेड को आगे बढ़ने दिया जाये। भारतीय टैंक और जीपों पर लदी मशीनगनें संकेत की प्रतीक्ष में थी। फिर एक जीप से गोलियां छूटीं और देखते ही देखते सारे ब्रिगेड को भस्म कर दिया गया। यह देख कर पाकिस्तान का चौथा हथियारबंद ब्रिगेड आगे बढ़ा, उसका भी यही हाल हुआ। और पाकिस्तानी फौज में अफरा-तफरी मच गई।

पाकिस्तान फौज की पहली हथियारबंद-डिवीजन के जनरल आफिसर कमांडिग, मेजर

जनरल नसीर अहमद को जैसे चारों कपड़े आग लग गई ।

"आगे बढ़ो, मेरा हुक्म है, आगे बढ़ो ।" जनरल नसीर अहमद ने वायरलेस पर कड़क कर कहा ।

"हम फंसे हुए हैं । हमारे टैंक कीचड़ में धंस गये हैं । चार-चार, पांच-पांच फुट के गड्ढों से हम निकल नहीं पा रहे ।" गड्ढों में पानी भर गया है ।" उधर वायरलेस से उसको उत्तर मिला ।

भारतीय जासूस यह सब कुछ सुन रहे थे ।

"यह बात है तो मैं खुद आ रहा हूं ।" जनरल नसीर अहमद ने क्रोध में कहा ।

"आप न आयें, आपको खुदा का वास्ता है, आप आगे न बढ़ें ।" परेशान अफसरों ने राय दी ।

"तो फिर तुम लोग किसी तरह आगे बढ़ो । तुम्हें इस्लाम का वास्ता है । तुम्हें पाकिस्तान का वास्ता है, इस सैक्टर में तो अपनी नाक न कटवाओ ।"

"हुज़ूर, आगे बढ़ने के लिए हम तैयार बैठे हैं । पर आगे बढ़ नहीं सकते । सब तरफ से हमें दुश्मन ने घेरा हुआ है । और इधर कीचड़ और नहर का पानी हमें दम नहीं लेने देता ।"

"तुम गाज़ी हो, मुसलमान को कोई चीज़ नहीं रोक सकती । अल्लाह-ओ-अकबर कहकर टैंकों को चलाओ, टैंक चलेंगे ।"

"हुज़ूर, अल्लाह का कीचड़ पर बस नहीं । हम इसे कई बार आज़मा चुके हैं ।"

"बकवास बंद करो । मैं खुद अपने टैंक को ले कर आ रहा हूं ।"

"जनरल नसीर अहमद खान का टैंक खेमकरन अमृतसर की ४३ मील लंबी सड़क पर ३८वें मील-पत्थर पर देखा गया । भारतीय फौजों ने उसको और आगे बढ़ने दिया । जनरल का टैंक ३६वें मील-पत्थर पर चीमा गांव के पास पहुंच गया । अब घात में बैठे भारतीय फौजियों ने चारों ओर से उस पर गोलियों की वर्षा कर दी । और टैंक की सारी की सारी सवारियां भुन गईं । जनरल का टैंक आग की एक लपट बनकर रह गया ।

और फिर भारतीय जासूसों ने वायरलेस पर सुना, "हमारे सबसे बड़े इमाम मारे गये ।"

जनरल नसीर अहमद खान, जान पर खेल गया था, पर पाकिस्तान का संकट वैसा का वैसे बना हुआ था ।

चीमा गांव की लड़ाई में हवलदार अब्दुल हमीद अपनी जीप में जा रहा था कि उसने एक पाकिस्तानी टैंक को आगे बढ़ते हुए देखा । हवलदार की जीप में बस, बज़ूका थी । उसने हौसला न हारते हुए डेढ़ सौ गज़ के फासले पर फुंकारते-फुफकारते इस्पात के किले पर हमला बोल दिया । उसके देखते-देखते पैटन टैंक आग की लपटों में घिर गया । इतने में एक और टैंक नज़र आया, इस बात की परवाह न करते हुए कि जिस तरह की रिकायललेस गन उसके पास थी, वह तो केवल एक बार ही कारगर वार करती है, हवलदार हमीद ने फिर हमला किया । एक बार फिर उसने दुश्मन के टैंक को भून कर रख दिया । इसके बाद दो और पाकिस्तानी टैंक सामने आये । निडर हवलदार ने इनमें से एक को भी उड़ा दिया । इतने में चौथे टैंक ने अब्दुल हमीद को निशाना बना लिया । अल्लाह का नाम उसकी ज़बान पर था, जब बहादुर

हवलदार अब्दुल हमीद ने प्राण त्यागे।

मंहमदपुरा की लड़ाई में मेजर वढ़ेरा ने ४ टैंकों से दुश्मन के २२ टैंकों का मुकाबला किया। शाम तक उसने सात पाकिस्तानी टैंक बेकार कर दिए थे। मेजर वढेरा के पास एक टैंक-भेदी गोली बच रही थी। उसने अपने कमांडर से आदेश मांगा –

"मैं पीछे हटकर और बारूद ले आऊं?"

"अपनी लाश पर...इससे पहले नहीं।" कड़क कर जवाब मिला।

मेजर वढ़ेरा ने लड़ाई जारी रखी। और इसकी टुकड़ी ने सुबह ८ बजे एक कर्नल, दो मेजर और कितने ही सिपाही, उनके टैंकों सहित काबू में कर लिए।

पंजाब आर्मर्ड पुलिस का हवलदार सुरजीत सिंह चुपके से कुछ मील आगे निकल गया। और एक पेड़ पर छिप कर पाकिस्तानियों की गतिविधियों के संबंध में वायरलेस पर अपनी फौज को सूचना देता रहा।

सिपाही धीरपाल सिंह ने ५ मिनटों में पाकिस्तान के ३ टैंक नष्ट किए।

१० सितंबर की शाम तक पाकिस्तानयों को इस बात का निश्चय हो गया कि और आगे बढ़ सकना उनके लिए संभव नहीं था। उनके दिल्ली-प्रवेश के सपने धरे के धरे रह गये थे। कई पाकिस्तानी अपने टैंकों को चलता छोड़ कर, स्वयं भाग गये थे ताकि टैंकों का पैट्रोल खत्म हो जाये। कइयों ने अपने टैंकों पर सफेद झंडे बांध कर हार स्वीकार की। कई टैंक नष्ट हो गये। खेमकरन के युद्ध का जब लेखा-जोखा किया गया तो पता चला कि पाकिस्तान ने ९७ टैंक इस लड़ाई में गंवायें। इनमें ६५ पैटन टैंक सही हालत में पकड़े गये। ४ सेबर जैटर मार गिराए गये। १२ घंटों की लड़ाई में एक मेजर जनरल, और एक ब्रिगेडियर मारा गया। २ कर्नल, ६ मेजर और ६ ही कप्तान तथा ५३ सिपाही पकड़े गये।

खेमकरण की लड़ाई के दस मील के क्षेत्र को पैटन टैंकों का कब्रिस्तान कहा जाता है। खेमकरण की लड़ाई पाकिस्तान का वाटरलू बन गई। सारा क्षेत्र अनफटे बमों से अटा हुआ था। सावधानी के तौर पर भारतीय सेना ने भिखी विंड के निकट कुछ स्थान खाली करवा कर पाकिस्तानी टैंकों को ला रखा। कोई ८० टैंक थे जिन पर पाकिस्तानी चिह्न थे, पर बने सब के सब अमरीका में थे। यह स्थान पैटन नगर से प्रसिद्ध हो गया और लोग इसकी यात्रा के लिए ऐसे टूट पड़े, जैसे तमाशा देखने जाते हैं।

अब भारतीय सेनाओं ने कसूर की ओर बढ़ना शुरू किया। तोपची गोले छोड़ रहे थे और आकाश पर वायुसेना आग बरसा रही थी। चारों ओर धुएं के बादल अटे पड़े थे जिनमें से हर क्षण छूट रही गोलियों की रोशनी आंखों को चुंधिया देती। इस लड़ाई में १३ और टैंक, उनके चालकों सहित, भारतीय सेना के कब्जे में आये। १२ सितंबर को भारतीय वायु सेना ने चार टैंक बरबाद किए, अगले दिन, स्थल सेना ने ४ टैंकों को क्षति पहुंचाई। कई पाकिस्तानी ट्रकों को उड़ा दिया गया। १६ सितंबर को एक भारतीय हवाबाज स्क्वाड्रन लीडर संधु ने एक पाकिस्तानी सेबर जैट का पीछा किया। चतुराई से, नैट किसी तरह दुश्मन के हवाई जहाज के पीछे हो गया। यह लड़ाई १५०० फुट की ऊंचाई पर शुरू हुई। सेबर ने गोता लगाकर भाग

की कोशिश की और नैट भी उसके पीछे कूद पड़ा। अगले क्षण यह सेबर के निकट पहुंचा और इसने गोली चलाई। १० मिनट की इस लड़ाई में छोटे से नैट ने पाकिस्तानी सेबर जैट को उल्टा कर दिया। आग का गोला बनकर सेबर धरती पर आ गिरा।

पाकिस्तानियों ने इस सेक्टर में और कई दिन लड़ाई जारी रखी। उनके कई विमान गिराये गये। कई और टैंक बरबाद किए गये। कई पाकिस्तानी सिपाही भारतीय फौज के हाथ लगे। और कई गांवों और सीमा चौकियों से पाकिस्तानियों को खदेड़ दिया गया।

इस क्षेत्र की एक और न भुलाई जाने वाली लड़ाई शहीद भगतसिंह की समाधि के लिए हुई। यह इलाका १९४७ में पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था। पर भारत ने एक और इलाके के बदले में इसको पाकिस्तान से ले लिया और यहां हमारे देश ने अमर शहीद की समाधि बनाई। इस समाधि पर कब्जे के लिए पाकिस्तानयों ने बार-बार हमले किए, पर हर बार उन्हें बेकार कर दिया गया।

भगत सिंह की समाधि को पाकिस्तानियों से बचाने के लिए २ अफसर और ६० जवानों को जान पर खेल जाना पड़ा।

94

१९५९ के समझौते के अनुसार डेरा बाबा नानक के रेल और सड़क के पुल, पाकिस्तान के हिस्से में आये थे। इसके द्वारा वे अपनी फौजें और असलहा सरहद तक ला सकते थे। इस पुल पर कब्जा करना भारत के लिए बड़ा जरूरी था, इस पुल पर कब्जा पाकिस्तन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण था। ९ सितंबर को सवेरे ४ बजे इस क्षेत्र में भारतीय फौज का चौथा दस्ता, पाकिस्तानी इलाके की तरफ बढ़ा। ६ बजे वे पुल पर पहुंच गये। पुल की रखवाली के लिए पाकिस्तान की तीसरी पंजाब रेजिमेंट, और सतलुज पुलिस रेंजर के जवान तैनात थे। जम कर लड़ाई हुई, पर पाकिस्तानयों को पीछे हटना पड़ा। रेल और सड़क के दोनों पुल भारत के अधिकार में आ गये। पर दोपहर बाद पाकिस्तान ने जबरदस्त जवाबी हमला किया। भारतीय फौजों को धकेलते-धकेलते उन्होंने पुल से पार खदेड़ दिया, बल्कि पाकिस्तान मंझौले किस्म के टैंकों की मदद से भारतीय क्षेत्र में जा घुसे। ऐसा लगता था जैसे भारतीयों को लेने के देने पड़ सकते थे।

८ सितंबर को करनैल छज्जू राम ने स्थिति पर काबू पा लिया। उसने अपने जवानों को चुनौती दी, और फैसला हुआ कि दुश्मन को हर हालत में अपने इलाके से निकालना है। उस रात भारत ने हमला किया। घमासान युद्ध हुआ। नायक महेन्द्र सिंह ने देखा, एक पाकिस्तानी टैंक घुसता-हुआ, जैसे आगे ही आगे बढ़ता आ रहा है। नायक किसी तरह टैंक के पीछे से हो कर उसके ऊपर जा चढ़ा और उसने टैंक के अंदर हथगोला जा फैंका। चाहे नायक महेन्द्र सिंह

का अपना हाथ उड़ गया, पर टैंक को आग लगते देखकर, उसके पांव धरती पर नहीं पड़ रहे थे। ५ घंटे लड़ाई होती रही। आखिर पाकिस्तानियों के कदम उखड़ गये। पीछे हटते हुए, वे अपनी ओर के पुल को उड़ा गये। पुल के टूटने का लाभ भारत को यह हुआ कि इस क्षेत्र में पाकिस्तानी हमले का खतरा समाप्त हो गया। गोरखा रेजिमेंट इधर से हटाकर खेमकरन के क्षेत्र में भेज दी गई।

डेरा बाबा नानक से निबट कर भारतीय सेनाओं ने अपना ध्यान विशेष रूप से स्यालकोट की ओर दिया। स्यालकोट पर हमले का मतलब यह था कि पाकिस्तानी फौजों का छंभ के क्षेत्र में ज़ोर कम किया जाये।

७-८ सितंबर की रात को जम्मू और संबा के इलाके में भारतीय सेनायें पाकिस्तान में घुस गईं। जम्मू के दस्ते स्यालकोट की ओर बढ़े, संबा के, ज़फरवाल की तरफ। पाकिस्तानी लड़ते-लड़ते पीछे हटते गये। अगले दिन भारतीय सेनायें स्यालकोट छावनी को छूते, सेला नामक गांव में जा पहुंचीं।

दूसरा भारतीय दस्ता चरवा और महराजके की तरफ बढ़ रहा था।

लड़ने वाले तो लड़ते ही, जरूरत पड़े तो जान पर भी खेल जाते, लेकिन जिस बहादुरी से, जिस लगन से, जिस तन्मयता से उनकी सहायता करने वाले मदद कर रहे थे, इसका उदाहरण युद्ध के इतिहास में बड़ी मुश्किल से मिलेगा। दुश्मन की मशीनगनें गोलियां बरसा रही थीं, दुश्मन के टैंक चारों तरफ दनदना रहे थे, दुश्मन के हवाई जहाज आकाश से आग बरसा रहे थे और इधर फौजी इंजीनियर सड़कें बना रहे थे, पुलों का निर्माण कर रहे थे ताकि फौजें आगे बढ़ सकें, सिगनल कोर वाले टेलीफोन की तारें बिछा रहे थे ताकि आगे निकल गये दस्तों से सम्पर्क बना रहे। डाक्टर और नर्सें घायलों की देखभाल में तल्लीन थीं। सप्लाई वाले, हर चीज को समय पर पहुंचाने के लिए चिंतित थे। कई बार ऐसा भी हुआ कि फौजी इंजीनियर तड़-तड़ बरस रही गोलियों में किसी टैंक की मरम्मत कर रहे होते, रातों-रात बेकार हिस्सों को बदल कर टैंकों को फिर से लड़ाई के मैदान में भेज देते। और उनका सब से मजेदार काम था – पाकिस्तानी असलहे, साज-सामान को इकट्ठा करना जो भागते हुए पाकिस्तानी पीछे छोड़ जाते। अमेरिकी ट्रक, ट्रकों में भरे हुए उत्तम अमरीकी हथियार। कहीं से वायरलेस सेट हाथ लगते, कहीं से हथगोले। कहीं पर मशीनगनों के ढेर और कहीं पर छोटे-बड़े टैंक, समूचे पड़े होते जैसे खेलते खेलते बच्चे खिलौनों को भूल कर चले गये हों।

और फिर दुनिया की दूसरी, टैंकों की सबसे बड़ी लड़ाई शुरू हुई।

यह लड़ाई स्यालकोट के दक्षिण की ओर लड़ी गई। इस क्षेत्र में स्यालकोट से ज़फ़रवाल की ओर सड़क जाती है औस स्यालकोट से पसरूर और नारोवाल की रेलवे लाइन। लड़ाई का बड़ा अखाड़ा फिलौरा नाम का शहर था, जहां पाकिस्तान ने अपना छठा हथियारबंद डिवीज़न जमा रखा था। इसमें टैंकों की ५ रेजिमेंट थीं जिनमें कुल मिलाकर ८६ पैटन, ८६ शर्मन और ४८ चैफ थे। भारत का इरादा, फिलौरा पर कब्जा करना था।

इस क्षेत्र में भारतीय फौजों को, बरकी और खेमकरन के मुहाज़ों पर अपने साथियों के

कारनामों की खबरें पहुंच चुकीं थीं। किस तरह उन्होंने पाकिस्तानी टैंकों के परखचे उड़ाये थे। अमरीकनों ने उन्हें टैंक तो दे दिए थे, पर चलाने की अटकल नहीं सिखाई थी। यह क्षेत्र जनरल राजेन्द्र सिंह के लिए एक चुनौती थी। उसकी सूझबूझ और सैन्य संचालन की कुशलता की एक और अग्नि-परीक्षा थी। और बहादुर जरनैल इस नई जिम्मेदारी से हिचकिचाया नहीं। उसने अपने टैंकों को एक नाले और देग नदी के मध्य, टीलों के पीछे खेतों में छिपा दिया। दुश्मन को चकमा देने के लिए, इधर अपने तोपखाने को गोली बारी जारी रखने का निर्देश दिया। १ सितंबर की सुबह, भारतीय टैंक, तोपखाने की मदद से फिलौरा की ओर बढ़े। पाकिस्तान ने १०० टैंक लड़ाई में झोंके। घमासान लड़ाई शुरू हो गई। टैंकों की हरकत से आसमान धूल और धुएं से अट गया। पाकिस्तानियों ने वजीरवाली की ओर से भी अचानक हमला कर दिया।

भारतीय सेनाएं आगे ही आगे बढ़ रही थीं। जैसे जैसे शत्रु पर उनका घेरा और मजबूत होता जाता, पाकिस्तानियों के हाथ-पांव फूलने लगे। उन्होंने अब हवाई हमले भी शुरू कर दिए। कुछ देर बाद भारतीय सिपाहियों ने देखा, एक हेलिकाप्टर से, दुश्मन की मदद के लिए कुछ अफसर जंग के मैदान में आकर उतरे थे। आंख झपकने की देर में हेलिकाप्टर उड़ा दिया गया। हेलीकाप्टर से उतर अफसर, ईख के खेत में छिपते हुए देखे गये। कर्नल बख्शी के टैंक को ज़र्ब आई और वह अपना रिवाल्वर थामे एक और टैंक में जा घुसा। तड़-तड़ आगे-पीछे बरस रही गोलियों की परवाह न करते हुए उसने सामने आ रहे पाकिस्तानी टैंक को नष्ट किया। कर्नल बख्शी के दूसरे टैंक को भी दुश्मन ने नुकसान पहुंचाया। और वह तीसरे टैंक में जा घुसा। पूरे १२ घंटे लड़ाई होती रही। बिना वायुसेना की मदद के इस क्षेत्र में भारतीय सेना ने पाकिस्तान के ६७ टैंक नष्ट कर दिए। भारत के अपने कोई ९ टैंक बरबाद हुए। शाम तक पाकिस्तानी फौज कहीं भी नज़र नहीं आ रही थी। और फिर कुछ अफसर जनरल राजेन्द्र सिंह के पास आये और उसे एक तख्ती पेश की जिस पर उर्दू में लिखा हुआ था — थाना फिलौरा।

पांच मील लंबा लड़ाई का मैदान, पाकिस्तानियों के भांति-भांति के टैंकों और फौजी साज-सामान से अटा पड़ा था। जगह-जगह पर उलटे पड़े ट्रक, टूटी हुई जीपें, बारूदी सुरंगों के ढेर, बेकार पड़े हुए टैंक चाहे वे पैटन थे, चाहे शर्मन थे, चाहें चैफ और जंग में काम आये फौजी, पाकिस्तानी जवान, खून से लथ-पथ हुए — कोई धड़ था और टांगे गायब थीं, कोई सीना था और बाजू उड़े हुए थे। कहीं कोई गर्दन पड़ी हुई थी और सिर नहीं था, ठंडी पड़ गई लाशें, तड़प रहे घायल जवान, शांत हुई लड़ाई के मैदान में दम तोड़ रहे सूरमाओं के निश्वास।

और फिर रात के अंधेरे में पाकिस्तानी आये ताकि अपने घायलों को समेट सकें, अपनी लाशों को संभाल सकें। भारतीय उनकी ताक में में थे। लाशें इकट्ठी करके वे टैंक और असलहा भी इकट्ठा करने लगे। यह देखकर भारतीय तोपखाने ने उन्हें एकाध भभकी से खदेड़ दिया।

१२ सितंबर को लछमन नाम का सबआलटर्न एक दीवार को उड़ाने के लिए आगे बढ़ा। उसके साथ इंजीनियर कोर के दो जवान थे। इनको हिदायत थी कि बारूद से एक दीवार को उड़ा दें ताकि भारतीय फौजों के सामने रुकावट न रहे। लछमन दीवार का एक हिस्सा उड़

चुका तो उसे लगा जैसे दीवार के दूसरी ओर खाइयों के पीछे हलचल हो रही हो। इतने में सूबेदार सुलेमान कूद कर उसके सामने आ खड़ा हुआ। हाथ जोड़ रहा था। वह और उसके १९ साथी हथियार डालने के लिए तैयार थे, बस उनकी जान बख्श दी जाये। लछमन का दिल धक-धक कर रहा था। यह और इसके दो साथी इतने सारे पाकिस्तानियों को कैसे संभालेंगे। लेकिन हौसला नहीं हारा। लछमन ने पाकिस्तानी सूबेदार की आंखों पर पट्टी बांधकर उससे कहा कि वह अपने साथियों को हिदायत दे कि वह अपने हथियार छोड़कर खाइयों से बाहर आ जायें।

और फिर एक-एक करके पाकिस्तानी सिपाही खाइयों से बाहर आने लगे। लछमन और उसके दो साथी उनकी आंखों पर पट्टियां बांधते जा रहे थे। बार-बार ये एक-दूसरे को देखते और आंखों ही आंखों में एक-दूसरे को धैर्य बंधाते। यह सोचकर कि अगर पाकिस्तानियों को पता चल गया कि जिनके आगे वे हथियार डाल रहे हैं, बस कुल तीन जने हैं, और वे भी इंजीनियर कोर के, लछमन और उसके दोनों साथियों के पांव तले से जमीन खिसकने लगती।

इतने में दो भारतीय टैंकों की गड़गड़ाहट सुनाई दी। पाकिस्तानी फौजी कांपने लग गये। फिर भारतीय सिपाहियों से भरा एक ट्रक उधर आ निकला, लछमन और इसके साथियों की जान में जान आई। सूबेदार सुलेमान ने बताया कि वे लोग ५० पाकिस्तानी फौजियों की टुकड़ी में से थे, जिन्हें भारतीय फौज के पीछे से घुसकर यातायात के साधनों को बरबाद करने के लिए नियुक्त किया गया था।

और फिर भारतीय सेना आगे ही आगे बढ़ने लगी।

१३ सितंबर

दो पाकिस्तानी जैट गिराये गये और तीन पाकिस्तानी पैटन टैंक भस्म किए गये। एक जैट हवाई जहाज़ को मशीनगन से निशाना बनाया गया।

१४ सितंबर

दो बार, घमासान लड़ाई हुई। दोनों बार पाकिस्तानियों ने हमला किया। ११ पाकिस्तानी टैंक उड़ा दिए गये। भारतीय सेनाएं स्यालकोट से चार मील के फासले पर पहुंच गईं। स्यालकोट -पसरूर रेलवे लाइन भारतीयों के कब्जे में आ गई।

१५ सितंबर

पाकिस्तानियों ने अपने ही एक गांव पर बमबारी करके उसको बरबाद कर दिया ताकि यू एनओ वालों को दिखाया जाये कि भारतीय फौजें मासूम नागरिकों पर जुल्म ढा रही हैं।

एक भयंकर लड़ाई के बाद भारतीय फौजों ने कलरवुंडा नामक गांव पर अधिकार कर लिया। इस गांव से गत संध्या, भारतीय खदेड़े गये थे। पाकिस्तानी दुबारा भारतीयों के पांव उखाड़ने की कोशिश करते रहे, पर सफल नहीं हुए। जब लड़ाई शांत हुई पाकिस्तानियों की ७० लाशें पाई गईं। ३ टैंक लड़ाई के मैदान में औंधे पड़े थे। भारतीय फौजें स्यालकोट से कोई साढ़े तीन मील दूर के इलाके पर अधिकार जमाये हुए थीं।

१६ सितंबर

स्यालकोट के दक्षिण-पूर्व की ओर चविंडा में पाकिस्तानी जम कर लड़े। भारतीय फौजों ने भी सख्त हमला किया। ढाई मिनट में दुश्मन के १४ टैंक बरबाद कर दिए गये। हमारे एक ही फौजी ने कुल ५ टैंक नष्ट किए। इस प्रकार इतने कम समय में इतने टैंक नष्ट करना कीर्तिमान था। दूसरे विश्वयुद्ध में भी इस तरह का चमत्कार कोई नहीं कर सका। पाकिस्तानियों ने हताश हो कर एंटी टैंक मिसाइल और नेपाम बम फेंकने शुरू कर दिए। सारे का सारा इलाका, आग की लपटों में लपेटा गया। कर्नल तारापुरवाला जो फिलौरा के युद्ध में घायल हुआ था, और कुछ दिन पूर्व ही जिसने वजीरवाली पर अधिकार किया था, आग की इन धधकती लपटों में घिर गया और शहीद हुआ। इस लड़ाई में २६ पाकिस्तानी टैंक बरबाद किए गये और ८ टैंकों पर चालू हालत में अधिकार कर लिया गया। चविंडा की लड़ाई में एक और कीर्तिमान भी स्थापित किया गया। दो भारतीय नैटों की चार पाकिस्तानी सेबर जैटों से १५०० फुट की ऊंचाई पर झड़प हुई। एक बार तो नेटों ने सेबरों को ३०० फुट की ऊंचाई तक खदेड़ दिया।

१७ सितंबर

स्यालकोट से कोई तीन मील के फासले पर, श्रीनगर का हमीदुल्लाह शाह वायरलेस आपरेटर, अपने लफटैन के साथ जीप पर जा रहा था। उनकी जीप पर हमला किया गया और हमीद जख्मी हो गया। घायल हमीद कुछ दूर तक छिपता-छिपाता निकल गया, पर दुश्मन से बच नहीं सका। पाकिस्तानी सिपाही उसे पकड़ कर उससे कश्मीर के सौन्दर्य की बातें करने लगे, बातें करते-करते पाकिस्तानी सिपाही सो गये। हमीद उनके कब्जे से निकल कर फिर उस स्थान पर जा पहुंचा, जहां उन पर हमला हुआ था। उसने देखा उसका लफटैन तो बेहोश पड़ा था, लेकिन जीप का ड्राइवर भला-चंगा था। हमीद ने अपने अफसर को कंधे पर उठा लिया, ये लोग रेलवे लाइन के एक ओर थे और ड्राइवर दूसरी ओर था। अंधेरा भी तो कितना था। बारूदी सुरंग पर पैर पड़ना था कि हमीद उछल कर आकाश की ओर उठ गया। जब वह वापस धरती पर गिरा, उसने देखा उसकी एक टांग रेलवे लाइन के किनारे पर उगे पेड़ से लटक रही थी। तीन घंटे तक लहू में लथ-पथ हमीद वहां पड़ा रहा। फिर भारतीय फौजों ने आकर उसे संभाल लिया।

१८ सितंबर

भारतीय सेनाओं ने जस्सौरां नामक पाकिस्तानी चौकी पर अधिकार कर लिया। पाकिस्तनियों के ६ पैटन टैंक बरबाद किए गये। जस्सौरा के, भारतीय सेनाओं के हाथ में आने से स्यालकोट-पसरूर रेलवे पर भारतीयों की पकड़ और मजबूत हो गई। इस से स्यालकोट शहर पर हिन्दुस्तानी फौज का घेरा और तंग हो गया। दक्षिण पूर्व की ओर भारतीय सेनाएं बुतूर और दोगांडी तक जा पहुंची।

१९ सितंबर

भारतीय सेनाओं ने उत्तर की ओर से स्यालकोट पर हमला किया। बड़ी घमासान की लड़ाई हुई। पाकिस्तान के चार पैटन, तीन चैफ और एक शर्मन टैंक नष्ट किया गया। एक भारतीय टैंक को क्षति पहुंची। स्यालकोट जम्मू सैक्टर में तीन पाकिस्तनी चौकियां भारत के

कब्जे में आ गईं। इसमें तिलकपुरा और मुहादीपुर शामिल थीं। ये चौकियां स्यालकोट-पसरूर सड़क पर हैं। इसी सड़क का इस्तेमाल पाकिस्तनी, अखनूर की ओर हमला करने के लिए करते थे। अब इस सड़क पर भारतीयों का अधिकार था। स्यालकोट पर इस हमले के लिए मैदानी फौजों को वायुसेना की मदद की भी जरूरत थी। इसीलिए स्क्वार्डन लीडर डेनजिल कीलर को तैनात किया गया। उसकी मदद के लिए तीन और हवाबाज थे, राय, कपिला और देव। ये लोग आदमपुर के हवाई अड्डे से स्यालकोट के लिए उड़े। चविंडा के निकट चार पाकिस्तानी जैट इनके मुकाबले के लिए बढ़े। भारतीय नैट धरती से कोई तीन सौ फुट ऊंचाई पर उड़ रहे थे। पाकिस्तानी सेबर चार हज़ार फुट की ऊंचाई पर थे। नैट सेबरों से टक्कर लेने के लिए ऊपर उठे। कपिला एक सेबर के पीछे लग गया। नैट से बचने के लिए सेबर ने अचानक अपना मुंह मोड़ा। कपिला ने उसका पीछा न छोड़ा। वह इस ताक में था कि दांव लगे और वह सेबर पर हमला करे। अब वे धरती से ५०० फुट ऊंचाई पर थे। सेबर ने ५०० फुट के फासले से कपिला पर हमला किया। लेकिन ऐसा लग रहा था जैसे उस का वार खाली जा रहा हो। कपिला ने सेबर का पीछा नहीं छोड़ा। धरती से कोई ३०० फुट की ऊंचाई से उसने फिर सेबर पर गोली चलाई। इस बार सेबर बच नहीं सका और उलट-बाजी खाता हुआ नीचे जमीन पर आ गिरा। इधर यह सेबर धराशायी हुआ उधर कीलर ने एक और सेबर को अपनी ओर बढ़ते हुए देखा। कीलर बड़ी चतुराई से उसके पीछे लग गया। ५०० फुट के फासले पर जाकर उसने तड़-तड़ गोलियों की बौछार की। उसके देखते-देखते सेबर कलाबाजियां खाने लगा और धरती पर आकर ढेर हो गया। अचानक कीलर ने महसूस किया, लड़ाई के जोश में उसका जहाज मुश्किल से पेड़ों की ऊंचाई तक उड़ रहा था। बड़ी कुशलता और तरकीब से उसने अपने नैट को काबू में किया और वापस अपने ठिकाने पर पहुंच गया। इस झड़प में भारत का एक नैट बरबाद हुआ, पर उसका चालक जान बचा कर निकल आया, और अपने इलाके में जा उतरा।

२० सितंबर

एक भारतीय पत्रकार ने युद्ध के इस मोर्चे पर आकर देखा, सिर पर तड़-तड़ करती गोलियों की परवाह न करते हुए एक मनचला जवान गन्ना चूस रहा था। यह पाकिस्तानी गंन्ना है, बड़ा मीठा है। पत्रकार को उसने दावत दी। इतने में कहीं से गोलियों की वर्षा हुई और सामने खड़ी जीप के शीशे टूट गये। इस जीप में पत्रकारों को लाया गया था।

२१ सितंबर

पाकिस्तानी, फिलौरा के इलाके में फिर इकट्ठा होते दिखाई दे रहे थे। भारतीय तोपखाने ने उन्हें धर दबोचा और दुश्मन के इरादे धरे के धरे रह गये। पाकिस्तानियों के दो टैंक इस झड़प में तबाह किए गये। दूसरी झड़प चविंडा के उत्तर पश्चिम में स्यालकोट-पसरूर रेलवे लाइन के दूसरी ओर हुई। इसमें तीन पैटन टैंक बरबाद किए गये। इसी दिन हवाई हमले में चविंडा के मोर्चे पर तीन टैंक पूरी तरह नष्ट किए गये और आठ अन्य को क्षति पहुंचाई गई। पग्गोवाल के निकट एक टैंक को चंगी-भली हालत में अपने कब्जे में कर लिया गया।

२२ सितंबर

पाकिस्तानियों ने तिलकपुर और मुहादीपुर गांवों पर हमला किया। ये गांव भारत के अधिकार में थे। तीन घंटे के युद्ध के बाद पाकिस्तानियों के कदम उखड़ गये और उन्हें एक मील पीछे हटना पड़ा। १३ पाकिस्तानी सिपाही और एक अफसर इस लड़ाई में काम आये। एक पाकिस्तानी सिपाही को बंदी बना लिया गया।

१५ दिन की इस लड़ाई में २०० पाकिस्तानी टैंक नष्ट किए गये और ३६ टैंक चालू हालत में भारतीय सेना के कब्जे में आये। भारत के ५० टैंक बरबाद हुऐ। क्योंकि युद्ध क्षेत्र भारतियों के अधिकार में था,इन्होंने अपने भी और दुश्मन के भी बेकार हुए टैंकों को ठीक-ठाक कर लिया। पाकिस्तानियों ने इस लड़ाई में २५० टैंक भेजे थे। इसके मुकाबले में भारत ने ९० टैंक। जब लड़ाई रुकी ६०० पाकिस्तानी मारे जा चुके थे और ३०० कैदी बना लिए गये। इस मोर्चे पर ३० मील लंबा पाकिस्तानी इलाका भारत के अधिकार में था,यह इलाका ही ४ मील और कहीं १६ मील तक अंदर फैला हुआ था।

दीपावली के दिन कुलदीप और मास्टर काला जालंधर से अपने साथियों के साथ मिठाई के पांच ट्रक भरकर ले आये। और इनकी ज़िद थी कि ये अपने हाथों से सिपाहियों को मिठाई बांटेगे। इस तरह लड़ाई के मोर्चे पर नागरिकों का जाना खतरे से कदापि खाली नहीं था,पर मिठाई लाने वालों क़ी श्रद्धा और प्यार के सामने फौजी अफसरों को हार माननी पड़ी।

मिठाई बांट कर लौटते हुए बची-खुची मिठाई कुलदीप कठूहा में जंगी कैदियों के शिविरों में बांटने के लिए चल पड़ा। मास्टर काला बार-बार उसे याद दिलाता,"अरे लड़के ये तो ससुरे पाकिस्तानी हैं।" "ये तो हमारे दुश्मन हैं।" पर कुलदीप उसकी सुनी-अनसुनी कर रहा था और ये एक ट्रक लेकर जंगी कैदियों के कैंप में जा घुसे। यह देखकर पाकिस्तनी कैदियों की आंखों से आंसू बहने लगे। मास्टर काला भीं उन लोगों से गले लग कर मिलने लगा। और इस ने दस दोस्तियां निकाल लीं। कई पुराने साथियों की याद ताज़ा कर ली। यही हाल कुलदीप का था। यही हाल इसके साथियों का था।

95

जैसलमेर के उत्तर पश्चिम की ओर,कोई सौ मील के फासले पर,भटनवाला नाम का एक गांव है। इस क्षेत्र में मीठे पानी का एकमात्र कुआं है। इस कुएं के पानी के लिए दूर-दूर से लोग आते,स्वयं पानी पीते,अपने पशुओं को पिलाते,अपने साथ पीने का पानी ले जाते। प्राय ऐसा भी होता कि सीमा के दूसरी ओर से पाकिस्तानी भी इस कुएं पर पानी के लिए आ जाते इधर,कुएं वाले आपत्ति न करते। कुएं के पानी में सबकी साझेदारी थी,न वह भारत का था,न पाकिस्तान का। उधर से पाकिस्तानी आते,दसियों सौगातें अपने साथ लाते,बीसियों संदेश

इधर से ले जाते । कई बार,इधर के लोग,उधर जाकर लड़कियां ब्याह लाते । कई बार,उधर के लोग,इधर से लड़कियां ब्याह कर ले जाते । हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सीमा अपानी जगह स्थिर थी,और लाखों रुपये का माल इधर से उधर स्मगल हो कर जाता,उधर से,इधर स्मगल हो कर आता । जो चीज़ हिन्दुस्तन में महंगी होती वह पाकिस्तान से आ जाती,जिस चीज की पाकिस्तान में कमी होती,वह हिन्दुस्तान से उधर पहुंचा दी जाती । राजस्थान के इस इलाके में प्रायः ढोरों की चोरी होती थी । इधर के लोग,उस ओर के ढोर चुरा लाते । उधर के लोग इधर से ढोर चुरा कर ले जाते – भारत के नामी डाकू,जरूरत पड़े तो पाकिस्तान में जा छिपते । पाकिस्तान के गुंडे अपनी पुलिस से बचने के लिए,इधर आ छिपते ।

भटनवाला के कुएं पर आठों पहर चहल-पहल रहती । मटके और सुराहियां,गागरें और मश्कें । लोग घंटों तक ढोरों को पनी पिलाते,चलते समय उन पर पानी लाद लेते ।

हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में बीसियों झगड़े हुए,विवाद उठे,भटनवाला के कुएं का मीठा पानी,सीमा रेखा पर दोनों ओर के गांवों के लिए,साझा रहा । कोई अपने पड़ोसियों को पानी से प्यासा थोड़े ही मारा करता है । भटनवाला के लोग कहते; होती रहे अपनी सरकार, जहां पड़ोसी पहुंचता है वहां न जयपुर की सरकार न दिल्ली की सरकार पहुंचती है । और फिर इधर गांववालों की बेटियां उधर ब्याही हुई थीं । उधर के गांववालों के संबंधी,इस ओर थे । सरकारें लड़ती रहती हैं,सरकारें मानती रहती हैं,अड़ोस-पड़ोस वाले एक-दूसरे से वैर नहीं पाल लेते ।

पर पिछले कुछ महीनों से,पाकिस्तानी रज़ाकारों और मुजाहिदों ने सारे के सारे इलाके में कुहराम मचा रखा था । छापामारों की तरह बंदूकें कंधों पर उठाये गांवों में आ घुसते और अंधाधुंध गोलियां बरसाने लगते । मर्दों को पीटते,औरतों की इज्जत उतारते । न बूढ़ी देखते न जवान,न कुंवारी देखते न बच्ची,लौटते समय उनके कपड़े भी उठा कर ले जाते ।

पाकिस्तानियों ने अपनी सरहदी चौकियों को मजबूत कर लिया था । रुकणवाला की चौकी के निकट उन्होंने फौजी-प्रशिक्षण का एक शिविर भी खोल लिया था । रणिअल के हवाई अड्डे का और विस्तार कर लिया था । सरहद के गांवों में रहने वाले लोगों को निकाल कर वे पीछे भेज रहे थे । और पाकिस्तानी फौज को सरहद पर इकट्ठा किया जा रहा था । और फिर उन्होंने कश्मीर की तरह इस इलाके में भी घुसपैठ शुरू कर दी । राजस्थान और पश्चिमी पंजाब की सीमा ६५० मील लंबी है और लगभग सारी की सारी मरुस्थल और वीरान । रेत के ऊंचे-ऊंचे,लांघे न पार कर सकने वाले टीले,कोई कहां चौकीदारी करे ? किस जगह की निगरानी रखे ? प्रायःइस क्षेत्र में रेत के बगूले उठते रहते,आंधियां चलती रहतीं,और दस-कदम दूर देख सकना कठिन हो जाता ।

पाकिस्तानी क्षेत्र में रहने वाले हिन्दुओं को शक की नज़रों से देखा जाता । बात-बात पर उनका अपमान किया जाता । कइयों की संपत्ति छीन कर,उन्हें भारत की ओर खदेड़ दिया गया । कोई १५०० लोग रोते-चिल्लाते सीमा पार करके राजस्थान में आ गये । सीमा पर रहने वाले लोगों के हौसले कमजोर नहीं थे । वे कहते – सरकार हमें पानी दे,अन्न दे और बंदूकें

दे, हम दुश्मन को अपने इलाके की ओर आंख उठा कर नहीं देखने देंगे।

सितंबर के शुरू में, पाकिस्तानियों ने गदरा-रोड स्टेशन पर बम-बारी शुरू कर दी। यह देखकर स्टेशन को खाली कर दिया गया। गदरा-रोड स्टेशन भारत के इलाके में है, और गदरा नाम का शहर पाकिस्तानी इलाके में। ९ सितंबर को भारतीय सेना ने इस शहर पर चढ़ाई की। आक्रमण दो ओर से किया गया। एक दस्ता तो सीधा गदरा शहर की ओर बढ़ा, दूसरा रेत के टीलों के पीछे से हो कर शहर के पिछवाड़े की तरफ से गया। गदरा शहर में पाकिस्तानियों की दो बटालियन थीं। वे लोग पूरी तरह हथियारों से लैस थे। उनके पास हर तरह की तोपें थीं और बेशुमार असलहा था। जम कर लड़ाई हुई। लेकिन पाकिस्तानियों को यह नहीं मालूम था कि वे पीछे से भी घिरे हुए थे। प्रातःकाल ३ बजे से लेकर दिन के ११ बजे तक घमासान युद्ध होता रहा। पाकिस्तानी, भाड़ के दानों की तरह भुनते रहे। भारतीय मक्खियों की तरह मरते रहे। आखिर ११ बजे पाकिस्तानी मैदान छोड़ कर भाग गये।

इस इलाके में पाकिस्तानियों से अगली झड़प, गदरा-शहर के दक्षिण-पश्चिम की ओर, जस्से-का-पार नामक स्थान पर हुई। यहां भी पाकिस्तानियों का भारी जानी-नुकसान हुआ। उनका स्थानीय कमांडर युद्ध में मारा गया। और कई फौजी ट्रक, जीपें और हथियार भारतीय सेना के अधिकार में आ गये।

अब भारतीय सेनाएं सकार्बू और खोखरा-का-पार नामक आबादियों की ओर बढ़ीं। इस इलाके में सेना के भारी ट्रक नहीं जा सकते थे, इसलिए साधारण लारियों की आवश्यकता थी, ताकि फौजियों और उनके असलहे को एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सके। शहरी ड्राइवर अपनी लारियां लेकर हाज़िर थे। और बरसती-हुई-गोलियों में निडर ड्राइवर दिन-रात, एक कर रहे थे। गोलियां जमीन से आती थीं। गोलियां आकाश में फुंकार रहे हवाई जहाजों से ओलों की तरह बरसती थीं। १८ सितंबर को भारतीय फौजों ने डाली और खिन सीर की चौकियों पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में भारत के एक टैंक को क्षति पहुंची। एक तीन-टन की पाकिस्तानी लारी भारतीयों के हाथ आई, जिसमें हर तरह का असलहा लदा हुआ था। २२ सितंबर को भारतीय सेनाओं ने डाली से दस मील दूर, एक और हमला किया। इस हमले में अंबाला का शिंगारा सिंह, नौ पाकिस्तानियों के घेरे में आ गया। भारतीय जवान ने हौसला नहीं हारा और गोलियां बरसानी शुरू कर दीं। चार पाकिस्तानी वहीं ढेर हो गये, दो घायल हो गये और बाकी के भाग खड़े हुए।

राजस्थान सैक्टर में सबसे स्मरणीय युद्ध भटनवाला के कुएं पर हुआ। पाकिस्तानियों की एक टुकड़ी, रात के अंधेरे में, भारत की चौकी से कोई तीन मील दूर आकर रुकी। और उनमें से घुसपैठिये दो-दो, चार-चार की टोलियों में मीठे पानी के कुएं की ओर चल पड़े। कुएं पर कई गडरिये अपने जानवरों के साथ सो रहे थे। उनके पास कोई हथियार नहीं था। पूनम सिंह नामक एक सिपाही को, चुपके से इन्होंने, दूसरी चौकी से हथियार लाने के लिए भेजा, और आप सोने का बहाना करके लेटे रहे। पूनम सिंह सुबह चार बजे लौटा। और उन्होंने, भोर होने से पहले, पाकिस्तानियों पर हमला बोल दिया। पाकिस्तानी कमर कस कर लड़ाई के लिए

आये थे। उनके पास असलहे की भी कमी नहीं थी। भारतीय जवानों का असलहा कुछ देर बाद खत्म हो गया। यह देखकर पूनम सिंह फिर बाहर निकला, अपनी जान को बेहद खतरे में डाल कर वह मरे हुए पाकिस्तानी सिपाहियों की बंदूके और गोलियां इकट्ठी करके ले आया। लड़ाई जारी रही। कुछ देर बाद, फिर इनका असलहा खत्म होने लगा। एक बार फिर पूनम सिंह बाहर निकला और औंधे पड़े पाकिस्तानियों के हथियार इकट्ठे करने लग गया। इस बार एक पाकिस्तानी रेंजर ने उसे पहचान लिया और उस पर हथगोला फैंका। घायल हो कर पूनम सिंह, पाकिस्तानियों की एक खाई में जा घुसा, और उसने हमलावरों के सरदार अफजल खान को खत्म कर दिया। इसके बाद पूनम सिंह स्वयं ढेर हो गया और उसने प्राण दे दिये।

गंगा नगर के क्षेत्र में सिक्ख-जाट और अहीर बसते हैं। इनके हौसले आसमान जितने ऊंचे थे। इनकी औरतें मुंडेरों पर बैठी दिन में पाकिस्तान घुसपैठियों पर नजर रखती, इनके मर्द रात को बारी-बारी से पहरा देते। ये लोग छड़ियां और दरांतियां पकड़ कर दुश्मन का मुकाबला करने के लिए तैयार थे। पाकिस्तानियों ने इस इलाके में पठानों और बुलोचों को भेजा। पर गंगा नगर वालों ने उनकी भी दाल नहीं गलने दी।

एक घुसपैठिये ने बताया कि उनको गुरिल्ला युद्ध के लिए, कई छावनियों में प्रशिक्षण दिया गया। भारत पर हमला करने से पहले उनको रावलपिंडी ले जाया गया था। वहां उन्हें सबसे बड़े काजी ने वाअज़ में कहा कि काफिरों पर हमला करना सवाब है। भारत के लोग डरपोक और कमजोर हैं, उन्हें हराना कोई मुश्किल नहीं। भारत को जीत कर, पाकिस्तानी मालामाल हो जायेंगे। हर सिपाही को जागीर दी जायेगी। वो जितनी भी हिन्दुआनियों को चाहे, अपने घर में डाल ले, किसी मौलवी को कोई एतराज़ नहीं होगा।

और फिर तलाशी लेने पर पता चला, बेचारा घुसपैठिया, जुआ खेलने के जुर्म में कैद काट रहा था, जब उसे मुजाहिद बनाकर भारत पर हमला करने के लिए भेज दिया गया।

96

इधर सरहद पर लड़ाई के साथ-साथ, पाकिस्तान के भीतर उन फौजी-ठिकानों को भी नुकसान पहुंचाया गया, जिन पर से पाकिस्तान के हवाई जहाज़, उड़ान भर कर भारत पर हमला करते थे, या जहां से प्रशिक्षण देकर, फौजियों को भारत पर आक्रमण के लिए भेजा जाता था। इस युद्ध में भारत ने स्पष्ट रूप से दुनिया को यह बता दिया था, कि भारत के किसी भू-भाग पर हमला, पूरे भारत पर हमला समझा जायेगा, और कि भारत को यह अधिकार होगा कि वह उन ठिकानों पर जवाबी हमला करे, जिन पर से ये हमले हो रहे थे, और कि कश्मीर, भारत का एक अभिन्न अंग है।

पाकिस्तान के भीतर, इन ठिकानों को बरबाद करने में, सबसे बड़ा हिस्सा भारतीय

हवाबाज़ों का था। उनकी निर्भयता, उनकी सूझ-बूझ, उनकी वीरता की कहानियां हर रोज़ समाचार पत्रों में छपतीं। लोग उनके कारनामों पर गीत लिख-लिखकर गली-गली गाते फिरते।

बेशक पाकिस्तान की वायुसेना, अमरीका-द्वारा दिये गये हवाई जहाजों के कारण, भारत से कहीं बेहतर थी, लेकिन भारतीय हवाबाज़ों के प्रशिक्षण के मुकाबले में उनके अमले की बिल्कुल दाल नहीं गली। लड़ाई शुरू होने से पहले पाकिस्तान के पास १० सेबर १२ स्टार फाइटर और २४ बी-५७ बमबार थे। तीन सप्ताह के युद्ध में उन्होंने आधे से ज्यादा, अपने हवाई जहाज गंवा दिये। इसके मुकाबले में भारत के बहुत कम हवाई जहाजों का नुकसान हुआ। इसके साथ ही भारत ने पूर्वी आदि, बाकी कमानों के हवाई जहाजों को, पश्चिम से हो रही लड़ाई में बिल्कुल शामिल नहीं किया।

भारतीय वायु सेना एक मशीन की तरह काम कर रही थी। हवाई अड्डों पर तैयार बैठे हवाबाजों को, कंट्रोल टावर से वायरलेस से हिदायत दी जाती। हवाबाज आंख झपकने की देर में हवाई जहाज लेकर आकाश में पहुंच जाते। अब उनको बताया जाता कि उन्हें किस ठिकाने पर कैसे हमला करना है। और फिर रडार की मदद से उन्हें उनके मार्ग पर डाल दिया जाता। कितनी देर हवा में रहते, कंट्रोल टावर से उनका संपर्क बना रहता। कंट्रोल टावर, उनके ठिकाने तक उनकी अगवानी करता, उनको वायरलेस से बताता, कौन-कौन से हवाई जहाज उनके मुकाबले के लिए आ रहे हैं? किधर-किधर से आ रहे हैं।

इस तरह की, इससे भी बढ़िया मशीनें पाकिस्तान के पास थीं। सब अमरीका की देन, पर न उनके इस्तेमाल का ढंग ही नहीं बैठा पा रहे थे। और न ही पाकिस्तानी हवाबाज़ों में इतनी सूझ-बूझ थी कि इस तरह की पेचीदा मशीनो का पूरा लाभ उठा सकें। सरगोधा में अमरीका द्वारा लगाया रडार ३०० मील दूर तक हवा में उड़ रहे हवाई जहाज का पता लगा लेता था। और इसका निशाना इतना बढ़िया था कि उड़ रही मक्खी तक को मार कर धराशायी कर देता। सरगोधा, पाकिस्तान की ओर से हो रहे हवाई जहाज और रडार यंत्र छिपे रहते थे। सरगोधा, विशेष रूप से एफ-१०४ सुपर सॉनिक स्टार फाइटर लड़ाकू विमानों का ठिकाना था।

भारतीय नेट हवाबाज़ों ने बड़ी चतुराई से पहले इस बात को पक्का कर लिया था कि सरगोधा का रडार ५८० फुट की उंचाई से नीचे उड़ रहे हवाई जहाजों की टोह नहीं लगा पायेगा। ६ सितंबर को, भारतीय हवाबाज़ों ने सरगोधा के हवाई अड्डे की खूब पिटाई की। १८ हवाई जहाज नष्ट किए गये और कई मशीनों को बरबाद किया गया। लेकिन यह नुकसान सामने धरती पर दिखाई देनेवाली मशीनों का हुआ। प्रश्न यह था कि भूमिगत रडार-मशीनरी को कैसे नष्ट किया जाये। अगले दिन फ्लाइट लेफ्टिनेंट मलिक, इस मशीनरी को तबाह करने के लिए ९० मील लगातार ३०० फुट की उंचाई पर उड़ कर गया। इस तरह वह रडार की पकड़ से बाहर था। सरगोधा हवाई अड्डों के रक्षकों को तब ही पता चला, जब भारतीय जांबाज ३० फुट की ऊंचाई से उन पर बम बरसा रहा था। उसने हवाई अड्डे की ऐसी-तैसी कर दी। रडार के जाल को भी उसने नुकसान पहुंचाया। फ्लाइट लेफ्टिनेंट मलिक सख्त घायल हो

गया, पर वह अपने हवाई जहाज को वापस अपने ठिकाने पर ले आया। जहाज को अपनी जगह रोक कर वह बाहर आया, और निढाल सूरमा ने जान दे दी।

फिर स्क्वाड्रन लीडर हांडा तीन और हवाबाजों के साथ सरगोधा हवाई अड्डे पर हमला करने चला गया। इन्होंने देखा हवाई अड्डा खाली पड़ा था। हांडा तेल के एक भंडार पर बम गिरा कर लौट रहा था कि इसे तीन एफ-८६ और एक एफ-१०४ एक जगह टिकाये हुए नजर आये। ये तुरन्त उनकी ओर गये और इसके साथियों ने बम बरसाने शुरू कर दिए। नीचे से गोलियां बरसाई जा रही थीं, पर पाकिस्तान का कोई जहाज मुकाबले के लिए हवा में नहीं उड़ा। १७ सितंबर को भारतीय कैनबरा जा कर सरगोधा में तबाही मचा आये। इनमें से बस एक भारतीय कैनबरा, अपने अड्डे पर वापस नहीं लौट सका। एक और अवसर पर, चार हवाबाजों को सरगोधा पर हमला करने के लिए भेजा गया। अपने अपने बम गिराकर ये वापस आ रहे थे कि इनमें से एक हवाई जहाज ने देखा कि उनके पास दो बम बच रहे थे। नवयुवक विमान चालक ने आंख झपकने की देर में अपने जहाज का रुख मोड़ लिया। और दुश्मन के इलाके में घुस गया। इस बार इसका पीछा एक पाकिस्तान सेबर जैट ने किया और इसे एक पाकिस्तानी हवाई अड्डे पर उतरने के लिए मजबूर कर दिया। आगे-आगे भारतीय विमान और पीछे-पीछे पाकिस्तान सेबर जैट था। हवाई अड्डे पर उतर रहे भारतीय हवाबाज ने एकदम अपने जहाज को फिर उड़ान दी और सेबर के पीछे हो कर अपने दोनों बम उस पर छोड़ दिए। इनमें से एक सीधा जाकर सेबर पर पड़ा और वह टुकड़े-टुकड़े हो गया। दूसरा बम, नीचे धरती पर रुके एक और हवाई जहाज पर जा गिरा और वह भी नष्ट हो गया। और भारतीय विमान चालक राज़ी-खुशी उड़ कर स्वदेश लौट आया।

पाकिस्तान ने हमेशा यही कहा कि भारतीय हवाबाज सरगोधा के हवाई अड्डे को कोई नुकसान नहीं पहुंचा सके। लेकिन १५ दिसंबर १९६५ को पाकिस्तानी अखबारों में सरगोधा के कमिश्नर का एक इश्तहार छपा, जिसमें उनकी सारी कलई खोल दी। इसमें पाकिस्तानी भवन निर्माण के विशेषज्ञों से एक यादगारी मसजिद के डिजाइन मंगवाये गये थे, जो सरगोधा छावनी में पाकिस्तानी हवाबाजों और शहरियों की याद में बनाई जा रही थी, जो भारतीय हमलों के दौरान शहीद हुए थे।

97

उधर देश के बहादुर सूरमा अपनी जान पर खेल कर देश की रक्षा कर रहे थे, पाकिस्तान के इलाके में घुस कर पराई धरती पर लड़ रहे थे ताकि दुश्मन के हमेशा-हमेशा के लिए कान कस दिए जायें, इधर भारत के लोग, कन्याकुमारी से कश्मीर तक, एक-जुट हो कर अपने जवानों के लिए हर बलिदान देने को तैयार थे। पाकिस्तान ने सोचा कि कश्मीर में पाकिस्तानियों को देख

कर लोग बगावत कर देंगे । शेष भारत में लोग धर्म के नाम पर, सूबे के नाम पर और भाषा के नाम पर लड़ते रहते थे, इनमें से कई उनके साथ आ कर मिल जायेंगे । पाकिस्तान ने अपने जासूस सीमा के सारे क्षेत्र में भेजे हुए थे ताकि शहरियों की सरगर्मियों से उनको अवगत रखें । और जो सूचनाएं वायरलेस से उनके पास पहुंच रही थीं, उन पर उन्हें विश्वास नहीं होता था । फिर उन्होंने सोचा कि उनके जासूस भारतियों से मिल गये हैं, दिन-रात, रात-दिन वायरलेस पर बकवास करते रहते थे । पर मुसीबत यह थी कि सारे-का-सारा आवा ही बिगड़ा हुआ मालूम होता था । जिधर से खबर आती, कुछ और ही आवाज उनके कानों में पड़ती ।

पहली खबर आई कि भारत में जयप्रकाश नारायण आदि राष्ट्रीय नेताओं की जो कमेटी बनाई गई थी कि देश में एकता और बंधुत्व की भावना पैदा की जाये, इस कमेटी ने अपने को भंग कर दिया था । पाकिस्तान ने युद्ध छेड़ कर, भारत को रातों-रात एकजुट कर दिया है । अब भारतवासियों को यह याद दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं थी कि वे एक हैं और कि उनको मिल-जुल कर रहना चाहिए ।

दिल्ली से पाकिस्तानी जासूसों के सरदार ने बताया – यहां रेलवे स्टेशन पर कुली, फौजियों का सामान उठाने के लिए पैसे नहीं लेते । मेरा अपना सामान एक कुली उठा कर लाया, मेरा कद-बुत देख कर उसको ख्याल आया कि मैं भी शहरी कपड़ों में कोई फौजी हूं – बात तो यह भी गलत नहीं – और वह मुझसे पैसे नहीं ले रहा था । हाथ जोड़ कर कहने लगा, फौजी भाइयों से पैसा लेना हराम है । स्टेशन से बाहर निकल कर मैं सवारी का इंतज़ार कर रह था कि एक बूट-पालिश करने वाले लड़के ने मेरे जूतों पर पालिश कर दिया । एक जगह से कुछ टांके उधड़ रहे थे, उनकी मरम्मत भी कर दी । और पैसा मुझसे एक न लिया । इस स्टेशन पर यहां के कुलियों ने, आप पैसे इकट्ठे करके एक कैंटीन खोली है, जहां फौजियों की चाय-पानी और बिस्कुट, मिठाइयों से खातिरदारी की जाती है । गरीब लोग और कुछ नहीं दे सकते तो अपना खून ही दे रहे हैं । हर रोज इकट्ठा किए गये खून की बोतलें, लड़ाई के मुहाज़ पर घायलों के लिए भेजी जा रही थीं । शहर में ब्लैक आउट होता है, पर जुर्म की वारदातें घट कर आधी रह गई थीं ।

पंजाब के जासूसों की रिपोर्ट इससे भी ज्यादा आंखें खोल देने वाली थीं । यहां तो स्कूलों के बच्चे अपना जेब खर्च बचा कर जवान-फंड के लिए भेंट कर रहे हैं । जगह-जगह जवानों के लिए खीर और पराठों के ढेर लगे हुए हैं । गाड़ियां और ट्रक रोक-रोक कर लोग, जवानों को खिलाते हैं । एक देहाती को मैंने कहते सुना, बेटा, मुझसे इंकार न करना, मेरी बूढ़ी बीवी ने बड़े चाव से ये लड्डू बनाये हैं । मेरे सफेद बालों का लिहाज रखना । और उसने लड्डुओं का लिफाफा चलते-ट्रक में सिपाही की झोली में डाल दिया । एक मद्रासी फौजी को मैंने कहते सुना, "अगर ईश्वर मुझे तीन जिंदगियां दें, पहली मैं अपने देश के लिए दूंगा, दूसरी अपनी रेजिमेंट के लिए, और तीसरी पंजाब के लिए । इन लोगों ने हमें बेमोल खरीद लिया है ।"

सीमा के गांवों में, लोगों का हौसला देख कर पाकिस्तानी जासूसों के सोते सूख-सूख जाते । खालड़ा गांव में लोग चैन से हल चला रहे थे, खेती की रखवाली कर रहे थे । और गांव

से चार कदम दूर, सरहद पर घमासान युद्ध चल रहा था। फ़ुरसत के समय मुंडेरों पर बैठ कर वे सामने उठ रहा धुआं देख लेते। दुआ-के नामक गांव, तीनों ओर से घिरा हुआ था। सामने पाकिस्तानी गांव खाली हो रहा था। पाकिस्तानी थाने की घंटी बजना बंद हो गई थी, पाकिस्तानी स्कूल से सवेरे-सवेरे 'तारीफ उस खुदा की जिसने जहां बनाया', गाने की आवाज़ नहीं आती थी, पर भारतीय गांव में से एक बशर नहीं निकला था। एक गांव में, पीपल के नीचे बैठा एक फौजी कमांडर अपनी सेना को जंग की हिदायतें दे रहा था। टेलीफोन उसके मुंह से अलग नहीं हो रहा था। दूर क्षितिज पर टैंक आग बरसा रहे थे, कान पड़ी आवाज सुनाई नहीं देती, और उसके पड़ोस के आंगन में एक किसान बेखबर अपनी भैंस का दूध निकाल रहा था। हमेशा की तरह उसने पहले कटिया को दूध उतारने के लिए छोड़ा। फिर डोल भर कर दूध दुह लिया। और फिर किसान ताज़ा दूध का गर्म-गर्म कटोरा भर कर भारतीय सैनिक के पीने के लिए लाया।

पंजाब, दिल्ली और राजस्थान के ट्रक ड्राइवरों ने सुनते ही ६०० ट्रक सरकार को पेश कर दिए। और निडर ड्राइवर लड़ाई के मुहाज़ तक ट्रकों में सामान और फौजियों को ले जाने लगे। पाकिस्तानी हवाई जहाज आते तो ये ट्रकों को पेड़ों के नीचे रोक देते, स्वयं किसी खाई या गड्ढे में जा छिपते और जब हवाई जहाज आगे निकल जाते, ट्रकों को फिर चला देते। न दिन देखते न रात। जम्मू क्षेत्र में, पठानकोट-जम्मू रोड पर एक पत्रकार ने ड्राइवर को रोक कर उसकी तसवीर खींचने के लिए कहा। न भाई, मुझे जरूरी फौजी सामान ठिकाने पर पहुंचाना है। एक मिनट की देर से लड़ाई का पलड़ा पलट सकता है। पत्रकार का भेस धारण किए हुए पाकिस्तान जासूस पानी-पानी हो गया।

सबसे बड़ी मायूसी पाकिस्तान को यह हुई कि पाकिस्तान से भारत का युद्ध हो रहा था और एक भी भारतीय मुसलमान ने पाकिस्तान के हक में आवाज नहीं उठाई थी। रेडियो पर भारत के मुसलमान नेताओं के बयान सुन-सुन कर पाकिस्तानी नेता एक-दूसरे के मुंह की तरफ देखने लगते, उनको अपने कानों पर विश्वास न होता। अजमेर में हज़रत ख्वाजा गरीब नवाज़ की दरगाह के सबसे बड़े मुफ्ती ने अपनी रेडियो वार्ता में कहा – पाकिस्तान का यह हमला हर मोमिन की नजर में कुफ्र है, गुनाह है। हजरत बाबा का हर पैरोकार इस जंग में अपनी जान कुर्बान करने के लिए तैयार है। पटना शरीफ के मुसलमानों ने पाकिस्तानी काफिरों के हमले के खिलाफ विरोध प्रकट करते हुए छंभ-जौड़ियां में मसजिद पर किए गये उनके हमले की निंदा की। उन्होंने कहा, अधिकृत कश्मीर को पाकिस्तान से वापस लेने के लिए भारतीय मुसलमान कोई कुर्बानी भी देने के लिए तैयार हैं। अलीगढ़ मुसलिम युनिवर्सिटी ने एक एलान में कहा – पाकिस्तान की इस बर्बरता को रोकने के लिए, भारत के मुसलमान एकजुट हो कर दुश्मन का मुकाबला करेंगे। हैदराबाद के मुसलमानों ने शहर की सभी मसजिदों में नमाजें पढ़ीं और देश की फौजों की फतह की दुआ मांगी। लखनऊ के मुसलमानों का कहना था कि पाकिस्तान ने कश्मीर में घुसपैठिए भेज कर अमन को तोड़ा है, इसका उसको खमिआज़ा भुगतना पड़ेगा। कोई कहता, भारत में पाकिस्तान से कहीं ज्यादा मसजिदें हैं। भारत में

पाकिस्तान से कहीं ज्यादा लोग नमाज़ अदा करते हैं। १९६३ में भारत से १६,००० मुसलमान हज के लिए गये, इसके मुकाबले में सारे पाकिस्तान से कोई १४००० हाजी हज करने निकले।

सिक्ख, भारत सरकार से अपने सब भेदभाव भूलकर, पाकिस्तान को मुंह तोड़ जवाब देने के लिए तैयार हो गये। सिक्ख कहते, हमारे नवें गुरु श्री गुरु तेग बहादुर साहब ने कश्मीरी पंडितों के लिए जान कुर्बान की थी, अब सारी की सारी सिक्ख कौम कश्मीर के लिए लड़ने-मरने को तैयार है। संत फतह सिंह ने पंजाबी सूबे के लिए मरण-व्रत रखने की जो धमकी दी थी, वह भी वापस ले ली ताकि देश की सरकार को कोई परेशानी न हो और दुश्मन का लोग डट कर मुकाबला कर सकें। १० सितंबर को संत जी ने व्रत रखा और न ही २५ सितंबर को वे अग्निकुंड में उतरे।

पाकिस्तानी, अपने छाताधारी सिपाहियों को यह कहकर भेज रहे थे कि तुम पंजाब में जहां भी उतरोगे, तुम्हें सिक्ख बगलगीर हो कर मिलेंगे, उन्होंने भारत सरकार के खिलाफ बगावत कर दी है।

98

और पाकिस्तानी छाताधारी जगह-जगह पर उतर रहे थे। मास्टर काला बार-बार गुरमीत और गुरांदित्ता को याद दिलाता, आजकल अपने खेतों की चौकसी के बारे में वे कोताही न किया करें। आस-पास गांव-गांव में पाकिस्तानी छाताधारी पकड़े जा रहे थे।

पगली चाची आजकल चंगी-भली; गुरमीत का खेती में हाथ बंटाती थी। सारा-सारा दिन खेतों के चक्कर काटती रहती। गुरमीत के फसल भी तो खूब होती थी। उसकी ईख का ही क्या कहना। सिर-सिर तक ऊंची और घनी भी इतनी कि भीतर घुसा आदमी सुई की तरह गुम हो जाये। गांव के बाकी लोगों ने अपनी फसलों को हाथ लगवा दिए थे लेकिन गुरमीत को ऐसा करने का हौसला नहीं पड़ रहा था।

और फिर वही बात हुई, एक शाम, अभी अंधेरा हुआ ही था कि पाकिस्तानी हवाई जहाज, अपने कई छाताधारी जालंधर के इलाके में उतार गये। हर किसी को आपा-धापी मच गई।

गुरमीत कहीं शहर से बाहर गया हुआ था। उसका बगीचा और उसके खेत, सूने थे। बस पगली चाची थी जो दीवानों की तरह आप-ही-आप, बार-बार चक्कर काटती रहती। पगली चाची को लगा जैसे एक छाताधारी उनके खेत में आ गिरा है। और बजाय इसके, कि यह शोर मचाती, होमगार्ड वालों को बुलाती, हक्की-बक्की वह ध्रेक के पेड़ के नीचे खड़ी देखती रही। एक पोटली की तरह कोई ईख के घने खेत में उतरा था। और वहीं-का-वहीं दम साध कर बैठ गया था। कितनी देर पगली चाची एक-टक देखती रही, खेत में कोई हलचल नहीं हुई! पगली चाची ने सोचा; यूं ही उसका भ्रम था कोई भी तो नहीं था।

फिर पगली चाची को याद आने लगा, पिछले विश्व युद्ध के बाद फौजी छावनियों में पैराशूटों की रेशम बिका करती थी। नरम-नरम और टिकाऊ। उस दिन इसने रेशम का सूट पहना था, जब पहली बार, कोट-भाई थानसिंह के मेले से लौटते हुए इसकी मुलाकात किशना से हुई थी। इसके पास आ कर जो खड़ा हुआ तो इसे लगा जैसे महीन रेशम का सूट इसके अंग-अंग से चिपट गया हो। और फिर वह एक शैतान हंसी हंसता हुआ, अपनी घोड़ी को एडी लगाकर चला गया। ईशरी का मंगेतर। किशना से इसको क्या लेना-देना था?

लेकिन किशना की वह दिलफरेब हंसी इसे प्रायः याद आ जाया करती थी। और आज शाम भी पगली चाची सब कुछ भूलकर कोट-भाई थानसिंह के मार्ग पर, किशना से उस मुलाकात की याद में डूबी जा रही थी।

रात हो रही थी। अंधेरा पहर-पहर बढ़ रहा था। अभी घुप-काली रात हो जायेगी। फिर हाथ को हाथ सुझाई नहीं देगा। रातें सुहानी होती जा रही थीं। हवा में एक हल्की-सी ठंडक आ गयी थी। किसी के साथ सट-सट कर चलने के दिन। किसी के साथ जुड़-जुड़ कर बैठने के दिन। इस तरह के दिन हों, तो किसी की याद, तड़पा कर रख देती है। होंठों पर गीत थिरकने लगते हैं। अंग-अंग अलसाया रहता है। आकाश का नीलापन गहन होता जाता है। साफ-सुथरा, खुला, गहरा आकाश, जिसको देख कर, आस-पास, धुंधलाया-धुंधलाया प्रतीत होता है। तब बदन मैला-मैला महसूस होता है, हाथ-पांवों को जैसे पंख लग जायें, उड़-उड़ जाने को जी चाहता है।

पगली चाची सच्चे रेशम के, आकाश के रंग के सूट में, एक झाड़ी के पास खड़ी, ईशरी के मंगेतर किशना की शैतान हंसी के बारे में सोच रही है, इसके होंठ लाल-लाल, जैसे लबालब भर रहे हों। सोलह-सत्रह वर्ष की आयु। टूटी-पड़ती जवानी, पुरवैया की ठंडी-मीठी हवा, उसके गाल, लाल होते जा रहे थे। इतने में चुपके-से कोई उसके पीछे कूद कर आया और पगली चाची के होंठों पर हाथ रख इसे दबोच लिया। यह तो पाकिस्तानी छाताधारी था। पगली चाची ने देखा तो एक शेरनी की तरह उस से जूझने लगी। पगली चाची ने हाथ में दरांती पकड़ी हुई थी और पाकिस्तान छाताधारी की कोशिश थी कि वह किसी तरह इसके हाथ से छीन ली जाये। पगली चाची की पकड़, जैसे इस्पात की हत्थी किसी मूठ पर चढ़ा दी हो। पगली चाची की कोशिश थी, किसी तरह इसका दांव लगे और यह दरांती से उसकी गर्दन अलग कर डाले। जोश में वह झाग-झाग हो रही थी। पाकिस्तानी छाताधारी उसके मुंह से हाथ नहीं उठा सकता था; अगर उसका हाथ इसके मुंह से हटा तो इसका शोर सुन कर लोग इसकी मदद के लिए पहुंच जायेंगे। गुत्थम-गुत्था हो रहे, कभी पाकिस्तानी नीचे तो कभी पगली चाची नीचे। दरांती की चुभन से पाकिस्तानी जगह-जगह से लहू-लुहान हो रहा था, पर अभी तक पगली चाची को ऐसा अवसर नहीं मिला था कि उसकी गर्दन के गिर्द दरांती ले जा कर उसको काट कर अलग कर सके। पाकिस्तानी के हाथ में पगली चाची का गिरेबान आ गया और उसने इसकी कमीज के चीथड़े उड़ा दिए। पगली चाची के वक्ष से ओट हट गई थी। पिछले कई बरसों की खुराक से पली और सत्य-धर्म में संभाल-संभाल कर रखी इसकी

ढलकी-ढलकी, दुधारू गाय की तरह छातियां दिख रही थीं। और अब पाकिस्तानी छाताधारी का हाथ इसके नेफे पर था। एक झटका, और पगली चाची का अजारबंद खुल भी सकता था, टूट भी सकता था। इतनी देर में पगली चाची की दरांती पाकिस्तानी की गर्दन में लिपट गई थी। इससे पहले की पगली चाची दरांती को अपनी ओर खींचती, पाकिस्तानी छाताधारी ने ध्यान से पगली चाची के मुंह की ओर देखा, और बरबस उसके होंठों से निकल गया – मैना भाभी।

पगली चाची के हाथ से दरांती छूट गई। वह तो मीरू, फफरियों का लड़का था। अभी मुश्किल से उसकी मसें ही भीगीं थीं, जब देश का बंटवारा हो गया। लाखों लोग बेघर हो कर उधर से इधर आये थे, इधर से उधर गये थे।

मीरू, पगली चाची की सब से हसीन याद थी। पता नहीं दिल के किस कोने में दुबकी बैठी थी।

यह तो सचमुच मैना भाभी थी और मीरू उसकी छाती से चिमट गया।

मीरू, मीरू तू कहां? पगली चाची मीरू की ठोड़ी पर हाथ रख कर उसकी आंखों में देख रही थी।

कैसा बांका जवान निकला था, जैसे इस्पात में ढले हुए उसके पुट्ठे हों।

और फिर पगली चाची की आंखों से छल-छल आंसू बहने लगे। जैसे सावन बरसता है। यह रोये जा रही थी और एक-एक पुरानी याद को जैसे उधेड़ती जा रही थी।

मीरू, मैना भाभी से बहुत छोटा था, पर उसे मैना भाभी बहुत अच्छी लगती थी। कोई न कोई बहाना करके इनके घर आ जाता, कितनी-कितनी देर आंगन में बैठा-खड़ा मैनां भाभी की तरफ ललचाई-ललचाई नज़रों से देखता रहता। कभी मैना की किसी फरमायश की चिन्ता कर रहा है, कभी इसका कोई चाव पूरा कर रहा है। मैना मंदिर जाती, रास्ते में मीरू खड़ा होता। सुबह, शाम कुएं पर पानी भरने के लिए आई मैना की मीरू से मुलाकात हो जाती। मीरू का इस तरह मैना के आगे-पीछे फिरना मैना को अच्छा-अच्छा लगता। मीरू की मासूम आंखें, इसे बेपनाह मुहब्बत करवटें लेते हुए दिखाई देती। उसके अछूते-कुंवारे, खिल-खिल हंसते होंठ, मैना भाभी देखती और इसका मुंह स्वाद-स्वाद से भर जाता।

और फिर कभी-कभी मैना का दिल कहता – अरी मुई! वह तो तेरे बेटे की जगह है। और मैना इस आवाज को सुना-अनसुना कर देती।

कभी उसकी आत्मा और गहरी चोट लगाती – मीरू से तो तेरी बेटी की उम्र बड़ी है। मैना जानबूझ कर आंखें मूंद लेती। और इसमें बुराई की बात ही कौन सी थी? मीरू इसे अच्छा लगता था। मीरू को मैंना भाभी अच्छी लगती थी। देवर-भाभी का रिश्ता।

और फिर, मैना को देवर-भाभी की दोस्ती की अनगिनत कहानियां याद आने लग जातीं। और मैना भाभी गद-गद हो कर पलकें मूंद लेती। कितनी-कितनी देर एक नशे-नशे में डूबी-सी पड़ी रहती।

और फिर एक दिन दोपहर को यह कुएं पर पानी भरने गई। उसका घरवाला बाहर से

लौटा था। और कुएं के ठंडे पानी में सत्तू घोल कर पीने की उसने फरमायश की थी। चिलचिलाती दुपहरी में, जब आंख फूट कर बाहर निकलने को आती है, मैना घड़ा उठा कर कुएं पर पहुंची और कहीं से मीरू आ टपका। कितनी दूर से दौड़ता हुआ आया था। उसके माथे से पसीना टपक रहा था। गाल लाल-सुर्ख। दौड़ कर आने से बाल बिखर कर उसके मुंह पर पड़ रहे थे।

मैना अपने डोल से उसे पानी पिला रही थी, ओक लगाये, मीरू जब पानी पी चुका, बिट-बिट उसकी चढ़ती जवानी के हुस्न को देख रही मैना ने, बाकी डोल उसके सिर और माथे पर उंडेल दिया। और खिल-खिल हंसती, घड़ा उठा कर मीरू की ओर देखती हुई अपनी राह चली गई। मीरू के सुनहरी बाल लट बनकर उसके गेहुँए रंग के चेहरे पर लहरा रहे थे। मीरू एक स्वाद-स्वाद में, मदमस्त आंखों से इसकी ओर देख रहा था। मैना भाभी की मोर की-सी चाल

और फिर एक दिन सांझ ढले, कुएं से पानी की गागर भर कर मैना इधर-उधर देखने लगी कि कोई हाथ लगवा कर गागर उठवा दे। कुएं पर उस समय कोई भी नहीं था। न कोई आ रहा था, न कोई जा रहा था। और इसने देखा सामने टीले पर से मीरू आ निकला। मीरू जरा मेरी गागर को हाथ लगवाना। मैना ने मीरू को पुकारा। कभी किसी हिन्दू की गागर को किसी मुसलमान ने भी छुआ है ? मैना यह क्या कह बैठी थी ? और जब मीरू, मैना की गागर उठवा रहा था, मैना को उसमें से एक भीनी-भीनी सुगंध आई और इसके हाथ मीरू के हाथों से जैसे जुड़ कर रह गये।

वह मीरू आज पगली चाची के पास खड़ा था। पाकिस्तानी छाताधारी। ज़ोर और एक आवेश में; पगली चाची ने दरांती उठाई और उसकी गर्दन में डाल कर इस ताक़त से झटका दिया कि पाकिस्तानी छाताधारी लहू-लुहान औंधा जा गिरा।

जब तक वह ठंडा नहीं हो गया पगली चाची वहां से नहीं हिली।

99

उधर जब रात के अंधेरे में, पगली चाची के भीतर मुर्दा पड़ी मैना भाभी को, किसी पुरानी प्यारी आवाज ने फिर सचेत किया, इधर सोहणेशाह के घर ठक, ठक, ठक; बाहर ड्योढ़ी का दरवाजा कोई खटखटा रहा था। सब सो चुके थे। सोहणेशाह के घर के लोग हमेशा अंधेरा होते ही सो जाते थे। आजकल जब से कर्फ्यू लगने लगा था, उसके घर में लोग और भी जल्दी सो जाते थे।

बाहर कोई ड्योढ़ी का दरवाज़ा खटखटा रहा था। बेबी राजीं ने सुना, वह चौके-चूल्हे के काम से आज देर से निबटी थी। सोने के लिए लेटी और फिर गुसलखाने में जाने के लिए,

बाहर आई थी।

इस वक्त कौन हो सकता है ? बेबी राजी ड्योढ़ी की तरफ चल पड़ी। अब वह जवान हो गई थी। कितना कद निकल आया था। उसे कभी डर नहीं लगता था, चाहे अंधेरा हो, चाहे आगे-पीछे बमवर्षा हो रही हो। सारा दिन या तो रेडियो पर खबरें सुनती रहती या देश-प्रेम के तराने, चाहे फिल्मी हों चाहे कोई दूसरे।

कभी बैठी हुई आप ही आप गाने लगती। राजी बेबी की कितनी प्यारी आवाज थी। सोहणेशाह ने उसे संगीत के लिए मास्टर रख दिया था। नाच के लिए अलग मास्टर था। पिछले सप्ताह उनके स्कूल की ओर से फौजी जवानों के कल्याण के लिए एक संगीत-नाटक खेला गया था, और सारे शहर में राजी बेबी की चर्चा हुई थी। हर कोई उसकी प्रशंसा करता नहीं थकता था – उसके सलीके की, उसके नाच की, उसके गाने की।

ठक, ठक, ठक, धीमी-सी, भरी-भरी आवाज फिर आ रही थी। बाहर कोई था। इस समय कौन हो सकता है ? गुरमीत होगा, इस वक्त कर्फ्यू में ? यहां, वहां पाकिस्तानी छाताधारी उतर रहे थे। हवाई जहाज यहां, वहां बम गिरा जाते थे।

कुलदीप मामा से कोई मिलने आया होगा। जब से पाकिस्तान से लड़ाई शुरू हुई, कुलदीप के घर में पांव नहीं टिकते थे। इधर से आता, उधर निकल जाता, उधर से आता, इधर निकल जाता। उसके मिलने-जुलने वाले आये रहते। घंटों-घंटों अंदर बैठक में बैठे तरकीबें सोचते रहते – कैसे सरकार की मदद करनी है ? कैसे दुश्मन का मुकाबला करना है ? कैसे घायलों की सहायता होनी चाहिए ?

कुलदीप को तो लड़ाई के बारे में बहुत कुछ पता होता था। अखबारों में चाहे कुछ छपे, रेडियो चाहे कुछ कहता रहे, कुलदीप को हमेशा भीतरी बात मालूम होती। कई बार राजी बेबी ने आज़मा कर देखा था, जो बात कुलदीप मामा कहता, वही सच्ची निकलती।

लेकिन पिछले सप्ताह कुलदीप मामा ने इन्हें कितना डराया था। राजी बेबी की तो रात भर आंख नहीं लगी थी। चिन्ता में डूबा हुआ बाहर से आया और कहने लगा – हो सकता है, हमें सतलज तक पंजाब को खाली करना पड़े। पकिस्तानियों के पास बेपनाह अमरीकी हथियार हैं। अगर हमारी फौजें उनके दैत्यों जैसे पैटन-टैंकों की ताब न ला सकीं, तो जैसे खेमकरण हमारे हाथ से निकला है, हो सकता है फिरोजपुर भी हमारे हाथों से जाता रहे। और फिर अमृतसर और जालंधर। सीता ने सुना तो उसके सोते सूख गये। सोहणेशाह सिर झटक कर माला के दाने और तेजी से फेरने लगा। कुलदीप कहता, उसकी खबर पक्की थी। फौजी कमांडरों ने पंजाब के मुख्यमंत्री को इशारा फेंका था और यह राय दी थी कि अगर हालत बिगड़ गई तो सूबे की सरकार को हर कठिनाई के लिए तैयार रहना चाहिए। कश्मीर में, राजस्थान में और उधर स्यालकोट क्षेत्र में बेशक भारतीय फौजें पाकिस्तानी इलाके पर अधिकार जमाये हुए थीं, पर इससे इंकार नहीं कि खेमकरण का इलाका पाकिस्तान के अधिकार में था। हमारे गांव-के-गांव उन्होंने लूट लिए थे। हमारी फसल दुश्मन ने बरबाद कर दी थी। इससे भी इंकार नहीं कि इतने दिनों की हर कोशिश के बावजूद, भारतीय सेनायें अपना इलाका दुश्मन

से खाली नहीं करवा सकी थीं। उस इलाके के मुकाबले में, जितना इलाका भारत ने पाकिस्तान से छीना था, वह क्षेत्र जो भारत ने गंवाया, चाहे थोड़ा था, पर पाकिस्तान भारत के मुकाबले में छोटा भी तो कितना था। उसका इलाका कम था, उसकी आबादी कम थी, उनका फौजी-खर्च कम था, उनके वसीले कम थे।

कुछ इस तरह के विचारों में खोई, पता नहीं क्यों ड्योढ़ी की ओर जा रही राजी बेबी, एकदम सिहर-सी गई। जैसे कोई सिर से लेकर पांव तक कांप जाये। ऐसे तो वह कभी भी नहीं डरी थी।

ठक...ठक...ठक..., यह तीसरी बार किसी ने बाहर, दरवाजा खटखटाया था। धीमी-सी; सहमी-सी आवाज।

और बिना ड्योढ़ी की बत्ती जलाये, राजी बेबी ने ड्योढ़ी की कुंडी जा खोली।

इसने ड्योढ़ी का दरवाजा खोला और सहमा हुआ, फूला हुआ दम, एक नौजवान जल्दी-जल्दी अंदर आया और उसने ड्योढ़ी का दरवाजा अंदर से बंद कर लिया।

यह तो कमाल था, राजी बेबी का भैया। राजी ने देखा और उसके सीने से लिपट गई।

"तू कहां ?"

"तू कब ?"

"तू किधर से ?"

राजी कमाल के गले से लगी हुई बार-बार अपने भैया को चूम रही थी। टप-टप आंसू बहाये जाती और उसे प्यार करती जाती; उसकी आंखों को, उसके गालों को, उसके माथे को, उसके हाथों को, उसकी उंगलियों को; बार-बार उसके सीने से चिमट जाती, बार-बार उसके कंधे पर अपना सिर रख कर आंखें मूंद लेती। खुशी के आंसू, विछोह के आंसू, बेकली के आंसू – एक लहर की तरह बह रहे थे।

ड्योढ़ी में खड़ी, अपने मां-जाये को प्यार करते हुए; पता नहीं कितना समय बीत गया और फिर राजी बेबी ने अचानक सुना; शहर का भोंपू बज रहा था। रात के अंधेरे की सोयी-सोयी खामोशी में एक दिल हिला देनेवाली आवाज कभी डूब रही, कभी उभर रही थी। यह तो पाकिस्तानी हवाई जहाज हमला करने आ रहे थे। और अगले क्षण हवाई जहाजों की हुंकार सुनाई दे रही थी।

"दुश्मन का हमला – " राजी बेबी कमाल को खींच कर आंगन की ओर ले जाना चाहती थी कि उसने इसके होंठों पर हाथ रख दिया।

दुश्मन कौन ?

इतने में सारा परिवार जाग कर मकान की छत पर चढ़ गया।

"राजी। राजी कहां है ?" सोहणेशाह ने पुकारा।

"मैं यहां हूं, इधर ड्योढ़ी में।" राजी बेबी ने जवाब दिया।

"तू वहां क्या कर रही है ?"

इतने में छूट रहे बमों की गड़गड़ाहट में सोहणेशाह की आवाज़ डूब गई। उधर से दुश्मन

के हवाई जहाज़ बम बरसा रहे थे, इधर ज़मीन से, तड़-तड़ एंटी-एअर क्राफ्ट गनें गोलियां दाग रही थीं। और फिर भारतीय नेट आकाश में पहुंच गये। सारा शहर छतों पर चढ़ कर तमाशा देख रहा था। कमाल और राजी बेबी ड्योढ़ी के एक कोने में दुबके हुए थे।

"वो मारा" सब छतों से फिर आवाज़ आई। ऐसा लगता था, दुश्मन का कोई जहाज़ गिरा लिया गया था।

"वो काटा" क्षणभर बाद ही अनेक छतों से लोग चिल्ला उठे। शत्रु का एक और विमान गिरा लिया गया था।

और फिर शत्रु के विमानों को भगा दिया गया। कुछ देर बाद शहर का भोंपू फिर बज रहा था। एक निरंतर ध्वनि। आल क्लिअर। अब कोई खतरा नहीं था।

लोग छतों से उतर रहे थे।

राजी बेबी कमाल को भीतर ले जाना चाहती थी तकि सबको अपने भैया से मिलाये।

"तुम पागल हो गयी हो ?" कमाल ने उसके कान में कहा।

राजी हैरान हो कर उसके मुंह की ओर देखने लगी। बिट-बिट आंखों से।

"तुम दीवानी हो गई हो। मैं तो...मैं तो छाता..." और बाकी के शब्द कमाल के कंठ में सूख गये।

"तुम...तुम..." राजी तड़प कर जैसे चार कदम पीछे हट गई।

"दुश्मन !" राजी चीखना चाहती थी कि कमाल ने आगे बढ़कर उसके होंठों पर हाथ रख दिया।

"मैं पैराटरुपर हूं !" कमाल ने राजी को समझाना शुरू किया। मैं सारी बात तुझे फिर बताऊंगा। मैं क्यों आया हूं, किस लिए आया हूं ? पहले तुम अंदर चक्कर लगा आओ। जब सब सो जायें तो बाहर आ जाना। मैं यहीं ड्योढ़ी में तुम्हारा इंतज़ार करूंगा।"

राजी बेबी के सामने घुप-अंधेरे की दीवारें उभर आई थीं। ऐसा लगता जैसे उसका सिर फिरकी की तरह घूम रहा हो। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पत्थर की शिला की तरह वह खड़ी थी। जैसे काटो तो लहू की बूंद न हो।

और कमाल ने उसे धकेल कर आंगन की तरफ भेज दिया। सोच में डूबी हुई राजी, अपने पलंग पर जा कर पड़ गई। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था, क्या करे, क्या न करे।

चिन्ता में खोई, लेटे-लेटे, इससे पहले कि घर के बाकी लोग सोयें, राजी बेबी की आंख लग गई।

100

सुबह हुई, धूप निकल आई, घर के लोग अपने-अपने काम पर निकल गये, राजी बेबी अभी

तक सो रही थी। तभी सोहणेशाह गुरुद्वारे से लौटा, उसके हाथ में अखबार था, तेज़-तेज़ कदम वह बड़े कमरे में गया और राजी को जगा कर उसने खुशखबरी सुनाई – पाकिस्तान से युद्ध विराम हो गया था। हर मुहाज़ पर लड़ाई रोक दी गई थी। पाकिस्तान ने भी, और भारत ने भी, संयुक्त राष्ट्र की तजवीज़ मान ली थी। सोहणेशाह कहता – अब कोई न कोई समझौता हो जायेगा।

इतने में, यह खबर सुन कर घर लौटे कुलदीप ने सिर झटकना शुरू कर दिया। "पाकिस्तान से समझौता तभी होगा जब वहां कोई ढंग की सरकार बनेगी, उन लोगों में कोई काम का लीडर पैदा होगा।" कुलदीप की राय थी।

हक्की-बक्की खड़ी राजी बेबी को अचानक रात की घटना याद आई और वह बेचैन हो कर इधर-उधर देखने लगी। यह सपना कदापि नहीं था। उसका भैया कमाल रात को आया था, उस से फिर मिलने का वायदा करके राजी पलभर के लिए अपने पलंग पर लेटी थी और लेटी-लेटी सो गई थी। यह क्या कहर हो गया था? कमाल इस समय कहां है? अगर कहीं वह बाहर निकल गया, अगर कहीं वह गली-मुहल्ले में पकड़ा गया तो लोग उसकी बोटी-बोटी नोच डालेंगे। खेतों में इस तरह संदेहास्पद व्यक्ति को होमगार्ड के सिपाही बेझिझक गोली से उड़ा देते थे। कोई उन्हें पूछने वाला नहीं था। बल्कि हर इस तरह के व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने वाले को, इनाम भी मिलता था।

राजी बेबी जल्दी-जल्दी ड्योढ़ी में गई। ड्योढ़ी में इस समय तक वह कैसे बैठा रह सकता था? और फिर वह किसी न किसी बहाने हर कमरे में जा कर ढूंढ़ने लगी। बार-बार अपनी चुनरी के सिरे को उंगली पर लपेटती जाती। बार-बार उसको खोलती जाती और फटी-फटी नज़रों से आगे-पीछे झांकती जाती। बार-बार अपने आप को कोसती। उस से कितनी बड़ी मूर्खता हुई है। अभी तक वह फैसला नहीं कर सकी थी, सोहणेशाह को कमाल के बारे में बताये या न बताये। कुलदीप स्वयं आजकल कुछ और ही होता जा रहा था। हर समय चिढ़ा रहता। पाकिस्तान के नाम पर जैसे काटने को पड़ता। पता नहीं कौन सी बात उसे अच्छी लगती और कौन सी अच्छी नहीं लगती?

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते राजी बेबी भूसे की कोठरी में जा घुसी। देखती क्या है कि एक कोने में गेहूं के सुनहरे ढेर पर, एक ओर कमाल बेसुध सो रहा था।

राजी बेबी की जान में जान आई।

उन्हीं कदमों, वह चुपके से बाहर निकल आई और बिना सोचे-समझे, उसने सोहणेशाह को सारी कहानी, कमाल के बारे में बता दी। कुलदीप किसी काम से फिर बाहर चला गया था।

सोहणेशाह को जैसे राजी बेबी की बात पर विश्वास न आ रहा हो, वह स्वयं भूसे की कोठरी की ओर गया। राजी बेबी द्वारा बाहर से लगाई गई कुंडी को उसने खोला, और अंदर कोठरी में जा घुसा। कुंडी खुलने के खटके से कमाल की आंख खुल गई। और इस तरह सोहणेशाह और राजी को सामने देख कर उनके गले से लग गया।

सोहणेशाह कमाल को अपनी बांहों में लिपटाये-लिपटाये बैठक में ले आया। रसोई में काम कर रही सीता आ गई। इतने में कुलदीप बाहर से लौट आया। अंग्रेजी का अखबार लेने गया था। "तुझे उर्दू का अखबार पढ़कर अभी तक तसल्ली नहीं होती।" सोहणेशाह ने उसे याद दिलाया।

कुलदीप की राय थी, कमाल के बारे में किसी से कोई बात न की जाये, घर की चारदीवारी से बाहर इसकी भनक नहीं पड़नी चाहिए। अगर कोई पूछे तो यही बताया जाये कि दिल्ली से कोई मेहमान आया है।

"लेकिन है तो यह दुश्मन। दुश्मन की तरह हमारे देश में हमलावरों के साथ घुसा है।" कुलदीप जब उनसे अलग हुआ, उसके दिल पर जैसे चोट पड़ी हो।

"लेकिन है यह दुश्मन। दुश्मन की तरह हवाई छतरी से हमारे देश में उतरा है।" राजी बेबी जब बैठक से बाहर आई, उसके भीतर से, जैसे उसे कोई झंझोड़ रहा हो।

सीता, कमाल की खातिरदारी में लगी हुई थी। बेचारा कल से भूखा-प्यासा था। पानी का एक घूंट उसने नहीं पिया था।

"यह तो रब का शुक्र है कि युद्ध विराम हो गया है, नहीं तो यह लड़का हमारे लिए मुसीबत बन जाता।" आंगन में टहल रहे सोहणेशाह ने, फुसफुसाते हुए, कुलदीप से कहा।

"मुसीबत ही क्यों" दुश्मन देश से दुश्मनों की तरह आया है दुश्मनी कमाने के लिए। इसके साथ वही सलूक होता जैसा इस तरह के बाकी लोगों के साथ, इधर-उधर हो रहा है।" कुलदीप के शब्दों में ज़हर था।

"किस तरह इनको तड़पा-तड़पा कर मारा जाता था।" सोहणेशाह चिन्ताओं में डूबा हुआ था।

बातें करते हुए सोहणेशाह और कुलदीप सामने बड़े कमरे में जा बैठे। राजी बेबी कमाल को बैठक में ले आई थी और उसने दरवाजा भेड़ दिया था।

"पता नहीं, भीतर, क्या पट्टी लड़की को पढ़ा रहा है।" कुलदीप खफ़ा-खफ़ा लग रहा था।

"बहन-भाई बातें कर रहे होंगे। इतने अर्से के बाद इनका मिलन हुआ है।" सोहणेशाह हमेशा की तरह मुहब्बत और प्यार की बातें सोच रहा था।

"यह अपराध है, घोर अपराध, इस तरह पराये देश के किसी घुसपैठिये को अपने घर में पनाह देना।" कुलदीप कड़क उठा।

"पाकिस्तान, हमारे लिए कब से पराया हो गया?" सोहणेशाह के सोचने का ढंग दूसरा ही था।

"पाकिस्तान पराया नहीं? हर चौथे रोज़ ये लोग हमारे सिर लड़ाई मढ़ देते हैं। पाकिस्तान पराया नहीं? हज़ारों, हमारे जवान देश की रक्षा के लिए बलिदान हो गये हैं। अमेरिका से हथियार और गोला-बारूद मांग-मांग कर अपने पड़ोसियों से लड़ाई शुरू कर देना। पाकिस्तान पराया नहीं? अब जगह-जगह पर वो छाताधारी उतार रहे हैं ताकि हमारे पुलों को

उड़ायें, हमारे हवाई अड्डों को नुकसान पहुंचायें, हमारी सुरक्षा के भेद अपने देश वालों को जा कर बतायें।"

"राजी बेबी का सगा भाई है।"

"भाई बेशक है, पर राजी का कोई कर्तव्य अपने देश के प्रति भी तो है।"

"भारत उसका देश नहीं। लड़की के मां-बाप पाकिस्तान में हैं। जब हालात मुनासिब हुए, तो लड़की अपने पाकिस्तान चली जाएगी।"

"तो फिर हमने पराये देश के नागरिक को सरकार की अनुमति के बिना अपने घर में रखा हुआ है?"

"पाकिस्तान मुझे कभी पराया नहीं लगा।" सोहणेशाह की आवाज़ भर्रायी हुई थी।

"पाकिस्तान आप को पराया तब लगता जब वो आपके शहर पर कब्जा करके, या आप को फिर से बेघर करके कहीं पनाह लेने के लिए खदेड़ देते, आप को गुलाम बना लेते?

"नाखूनों से मांस कैसे अलग हो सकता है?"

"ये पुरानी दकियानूसी बातें हैं। पुराने घिसे-पिटे आख्यान। पुराने वक्तों में, पुराने लोगों के लिए, पुरानी सभ्यता ने इनको गढ़ा था। आजकल ये सिक्के बेकार हैं।"

"तेरा मतलब क्या है?"

"मेरा मतलब है, इस लड़के को एक दुश्मन देश की सरकार ने सिखा कर भेजा था, कि इधर हमारे देश में आ कर तोड़-फोड़ करे, या हमारे भेद ले जा कर उन्हें बताये। इसके साथ वही सलूक होना चाहिए जो पराये देश के घुसपैठिये के साथ होता है।"

"ये कैसे हो सकता है?"

"उसूल की बात यही है। नहीं तो एक मुजरिम के साथ, हम भी जुर्म में शामिल हो रहे होंगे।" कुलदीप शान्तभाव से बोल रहा था।

यह सुन कर सोहणेशाह तड़प उठा, "लेकिन वो सतभराई का जन्मा है। वो तेरे दोस्त रशीद का बेटा है।"

"वो मेरा भैया है।" राजी बेबी जो कुछ देर से, साथ के कमरे में खड़ी, यह सब कुछ सुन रही थी, आंखों में आंसू लिए बड़े कमरे में आ गई।

कुलदीप और सोहणेशाह हक्का-बक्का रह गये।

"राजी, सरकारी कानून और आदमी के उसूल अटल होते हैं, उन्हें आसानी से बदला नहीं जा सकता।" कुलदीप ने संभलते हुए राजी को समझाया।

"कमाल भाई गैर-कानूनी तौर पर इधर आया है, अगर तुम्हारे इंसाफ की यही मांग है तो बेशक उसे पुलिस के हवाले कर दीजिए।"

"गैरकानूनी तौर पर तुम भी इधर रह रही हो।"

"हरगिज़ नहीं। मैं अपने नाना के पास उनकी बेटी बन कर रह रही हूं। यह मेरा अपना घर है। यह मेरा अपना देश है। मैं किसी पाकिस्तान-वाकिस्तान को नहीं जानती।"

"यह कैसे मुमकिन है?" कुलदीप, राजी बेबी के इस जवाब के लिए तैयार न था।

"यह मुमकिन है; कुलदीप मामा। मैं बचपन से इस घर में पली हूं। मेरी मां ने मुझे आपके हवाले किया है। आप को सौंप दिया है। मैं यहां पली हूं, पढ़ी हूं, मेरा यह अपना घर है।

"इसमें कोई शक नहीं।" सोहणेशाह खिल-सा गया।

"बेटियों का क्या है, आज यहां, कल वहां।" कुलदीप अपने होंठों में बुड़बुड़ाया।

"नहीं कुलदीप मामा, आप मुझे मेरी मां की तरह पाकिस्तान नहीं भेज सकेंगे। मैं आज यहां, और कल ब्याह कर किसी पड़ोसी के घर भले ही चली जाऊं, पर मुझसे मेरा देश कोई नहीं छीन सकता।"

कुलदीप हैरान, बिट-बिट राजी बेबी के मुंह की ओर देखने लग गया।

"कलेजा ठंडा हो गया; जी खुश कर दिया बेटी।" सोहणेशाह जैसे लहर में आ कर कूदने लग पड़ा हो।

और फिर राजी बेबी जैसे आई थी वैसे ही चुपके से बाहर चली गई।

कितनी देर सोहणेशाह और कुलदीप चुपचाप बैठे रहे।

"कुछ तो करना होगा। इस मामले को किसी न किसी तरह तो सुलझाना होगा।" कुलदीप विचारों में डूबा था।

"कमाल भाई तो कहीं भी नहीं", उसने आ कर उन्हें बताया।

"जैसे आया था वैसे ही चला गया होगा", सोहणेशाह ने कहा – "पाकिस्तान कोई दूर है, न ही उसके द्वार बंद हैं।"

101

युद्ध-विराम तो हो गया, पर पाकिस्तान से समझौता बड़ी मुश्किल से हुआ। सोवियत संघ को मध्यस्थ बनना पड़ा। ताशकंद में कड़ी सौदाबाजी के बाद पाकिस्तान को इस बात पर राज़ी किया गया कि वह कश्मीर में घुसपैठियों को नहीं भेजेगा, और इस प्रकार दो देशों के बीच शांति को भंग नहीं करेगा। भारत ने यह बात साफ़-साफ बता दी कि कश्मीर पर कोई हमला, कश्मीर में कोई शरारत, भारत पर आक्रमण समझा जायेगा और उसका मुकाबला, भारत जैसा उचित समझेगा, करेगा।

उधर से समझौते की खबर आई और अभी लोग ठीक तरह से इस खबर को मान भी नहीं पाये थे, कि एक और खबर आई कि भारत के प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री का ताशकंद में दिल का दौरा पड़ने से देहांत हो गया है। सारे देश में मातम छा गया। देश की नाव को कामयाबी से किनारे पर ला कर स्वयं आप विदा हो गया।

सोहणेशाह का विचार था, जो मार पाकिस्तान को इस लड़ाई में पड़ी है, अब उसके कान हो जायेंगे, और आगे वह कोई शरारत नहीं करेगा। कुलदीप इससे सहमत नहीं था। कुलदीप

का विचार था कि जब तक पाकिस्तान में कोई स्थायी सरकार नहीं बनती, जब तक पाकिस्तान को कोई योग्य, लोगों के लिए सहानुभूति रखने वाला नेता नहीं मिलता, तब तक भारत और पाकिस्तान में शांति नहीं रह सकती। पाकिस्तान के कमज़ोर हुक्मरानों को बार-बार इस बात की जरूरत पड़ेगी कि वे अपनी गद्दी को बनाये रखने के लिए, भारत के विरुद्ध अपनी जनता को भड़काते रहें।

कुलदीप कहता, एक तरह से दोनों जीते हैं। पाकिस्तान ने ज्यादा इलाका हारा और थोड़े इलाके पर कब्जा किया, पर पाकिस्तान उतना छोटा मुल्क भी तो है।

सोहणेशाह कहता, दोनों हारे हैं। जब भाई-भाई लड़ते हैं, जब पड़ोसी-पड़ोसी लड़ते हैं, दोनों पक्ष हारते हैं। लड़ाई से कोई जीत कर नहीं निकलता।

राजी बेबी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। जिस दिन युद्ध-विराम की घोषणा हुई, पाकिस्तान का ७४० वर्गमील क्षेत्र भारत के अधिकार में था और भारत का केवल २०० वर्गमील इलाका पाकिस्तान के कब्जे में था। फिर भी पाकिस्तानी अपनी शानदार जीत की डींगे मार रहे थे। उनके शायर नज़्में लिख रहे थे, उनके गायक गीत गा रहे थे।

राजी उठते-बैठते यह कहती रहती, हमने उनके आधे से ज्यादा हवाई जहाज तबाह किए। हमारे कुल २९ हवाई जहाजों को नुकसान हुआ। हमने उनके ३६५ टैंक नष्ट किए, हमारे ८० टैंक बेकार हुए। पाकिस्तान के १०,००० फौजी मारे गये, और हमारे २२२६, फिर भी जीत पाकिस्तान की हुई, हिन्दुस्तान हार गया!

राजी बेबी की मुसीबत थी कि घर में कुलदीप मामा और सोहणेशाह नाना अलग अलग तरह से सोचते थे। उनकी हर बात उल्टी होती, और उसकी समझ में कुछ न आता।

फिर एक दिन राजी बेबी ने सुना, कुलदीप बैठक में किसी दोस्त से बहस कर रहा था। उसके दोस्त का कहना था कि भारत को लाहौर और सियालकोट पर कब्जा कर लेना चाहिए था। एक बार लाहौर पर कब्जा हो जाता तो पाकिस्तान हथियार डाल देता। कुलदीप उससे सहमत नहीं था। लाहौर या सियालकोट जैसे शहरों पर कब्जा कर लेना आसान नहीं होता और फिर कब्जा करके उन पर अधिकार जमाये रखना और भी मुश्किल होता है।

राजी बेबी को यह सुनकर अच्छा-अच्छा लगा।

उस रात खाना खाते समय राजी बेबी ने फिर यह चर्चा छेड़ी, "कुलदीप मामा, जो फौजी दस्ते शालीमार तक पहुंच सकते हैं, क्या वे अनारकली तक नहीं पहुंच सकते?"

"बेशक पहुंच सकते हैं", कुलदीप ने राजी बेबी को समझाया, "पर एक शहर की आबादी को ये खिलायेंगे कहां से? हमारे पास तो अपने खाने के लिए पूरा अनाज नहीं।"

राजी बेबी के मुंह पर जैसे किसी ने थप्पड़ दे मारा हो। वह सोचती, हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या है कि आबादी को बढ़ने से रोका जाये और अनाज की उपज को और बढ़ाया जाये। जो लोग अपनी खुराक आप पैदा नहीं कर सकते उनकी आज़ादी हमेशा खतरे में रहती है, उन्हें कोई अधिकार नहीं कि किसी पर हुक्म चलायें।

पाकिस्तान से फिर आवागमन शुरू हो गया। जब बार्डर खुला, पहली बात, कोई बहाना

बनाकर कुलदीप पाकिस्तान चला गया। उसे यकीन था कि वह राजकर्णी को किसी न किसी तरह ढूंढ़ लेगा। कुलदीप हर कोशिश कर चुका, राजी बेबी पाकिस्तान जाने के लिए तैयार नहीं हुई। बार-बार कहती, जिस गांव को छोड़ दिया उसका नाम क्या लेना।"

और फिर सतभराई आई, रशीद आया, राजी बेबी के दोनों भाई आये, पर यह पाकिस्तान जाने के लिए रज़ामंद ही न हो, बड़ी मुश्किल से, बड़ी मिन्नतों से वे इसे उधर ले कर गये।

राजी बेबी का उधर पाकिस्तान में दिल न लगता। सारा दिन उन लोगों से बहस करती रहती। हर बात की नुक्ताचीनी करती। अभी राजी-बेबी वहां ही थी कि पाकिस्तान में, भारत से युद्ध में उनकी विजय की पहली वर्षगांठ मनाई गई। राजी-बेबी का हंस-हंस कर पेट दुखने लगा। यह हैरान हुई जाती, उनके बड़े-बड़े शायर और पढ़े-लिखे लोग सचमुच यह मानते थे कि 1965 की लड़ाई में पाकिस्तान की जीत हुई थी और भारत हारा था।

राजी बेबी देख-देख कर, सुन-सुन कर हैरान होती, पाकिस्तान में भारत के लिए कितनी नफरत थी, कितना ज़हर फैलाया जा रहा था। वह सोचती, लाख ताशकंद जैसे समझौते होते रहें जब तक इस देश के हुक्मरानों की नीयत साफ नहीं होती, ये लोग इन दो देशों में कभी शांति नहीं होने देंगे।

और उधर पाकिस्तान विदेशमंत्री मिस्टर भुट्टो लोगों से कह रहा था कि ताशकंद में अयूब ने, अपने देश के मुफाद की हिफाज़त नहीं की थी। एक जीते हुए देश को उसने हारा हुआ साबित कर दिया था। और जितने दिन पाकिस्तान में रही, राजी बेबी यही बहस करती रहती— कहां पर आप जीते? कब आप जीते? किस तरह आप जीते?

और वे लोग इसका मज़ाक उड़ा कर इसे टाल देते। अखबारें दिखाते जिनमें खबरें छपी थीं कि नई दिल्ली को, पाकिस्तान ने बमों से तबाह कर दिया है। पार्लियामेंट स्ट्रीट में पाकिस्तान के बेशतर पैटन टैंक घूम रहे हैं।

कुछ दिन, और राजी बेबी को लगता कि इस तरह का कुफ्र सुन-सुन कर इसके कान पक जायेंगे, और वह जैसे-तैसे वापस भारत आ गई। मां की मिन्नतें, बाप का प्यार, भाइयों का स्नेह, उसे कोई चीज़ बांध न सकी। बार-बार कहती — मुझे नाना याद आते हैं। नाना उधर अकेले रह गये हैं। कुलदीप मामा भी तो पाकिस्तान आये हुए हैं।

बस एक बात राजी बेबी को अपने पाकिस्तान के दौरे में अच्छी लगी — और वह थी उनकी भाषा। इतनी मीठी पंजाबी वे लोग बोलते थे। और फिर क्या मजाल जो कोई उर्दू या अंग्रेज़ी में बात करे। शहद-सी मीठी पंजाबी बोली बोलते, जैसे कोई गीतों के बोल गुनगुना रहा हो। और राजी बेबी को भारतीय-पंजाब के लोग याद आते। इतनी हिन्दी अपनी ज़बान में घुसेड़े चले जा रहे थे कि बोली की शक्ल-सूरत ही, और-की-और हो गई थी।

पाकिस्तान के साथ हालात सुधरने न पाये थे कि फिर बिगड़ने लग गये। राजस्थान की सीमा पर, पीर पगाडू के पिच्छलग्गू, भारत के विरुद्ध लोगों को भड़का रहे थे। पूरब में पाकिस्तानी, नागा कबीले के लोगों को फौजी प्रशिक्षण दे कर, मीज़ो पहाड़ियों में विद्रोह के लिए उकसाने लगे थे। अनगिनत बार पाकिस्तानी, भारत की सीमा का उल्लंघन कर चुके थे।

फिर पाकिस्तानी समाचार पत्र और पाकिस्तान रेडियो ने भारत के विरुद्ध ज़हर उगलना शुरू कर दिया।

कुलदीप को यकीन था, ताशकंद समझौता बहुत देर तक चलने वाला नहीं। इसलिए इसकी कोशिश थी, किसी तरह यह राजकर्णी को खोज निकाले। एक बार राजकर्णी, सोहणेशाह को मिल जाये, फिर कुलदीप अपने आपको सुर्खरू समझेगा। सतभराई को पाकिस्तान भिजवा कर, कुलदीप के मन में एक अजीब गुनाह का अहसास; घेरे रहता था। यह सोचता, राजकणी को अवश्य ढूंढ़ लेगा और सोहणेशाह से मिला देगा। न्याय का यही तकाज़ा था।

फिर इसका दिल कहता, सोहणेशह को तो राजकर्णी मिल गई थी। राजी बेबी के रूप में, सोहणेशाह को उसकी बेटी, कुदरत ने लौटा दी थी। जिस तरह राजी अपने मां-बाप को भूल-बिसरा कर सोहणेशाह से घुलमिल गई थी, जिस तरह पाकिस्तान को भुला कर वह भारत में रच-बस गई थी, कुलदीप सोचता; सोहणेशाह के साथ पूरा न्याय हो गया था।

ढूंढ़ते-ढूंढ़ते कुलदीप, लाहौर में उर्दू की इस पत्रिका के दफ्तर तक पहुंच गया जिसमें कई दिन हुए इसने राजकर्णी का आपबीती का एक भाग पढ़ा था।

शालीमार बाग के निकट मियां मीर की बस्ती में, तंग-सी एक गली में, एक पुराना मकान, खंडहर-सा पड़ा था। इस मकान पर पिछले युद्ध में एक बम आकर फटा था। सीधी, इस घर पर चोट पड़ी थी। आस-पास के मकानों को भी क्षति पहुंची थी, पर इस घर का न कोई प्राणी बचा था न घर की कोई वस्तु। कितनी देर इस मुहल्ले को आग लगी रही थी, आग बुझाने वाले इंजन बेहाल होते रहे।

कुलदीप की आंखों के आगे अंधेरा छा गया।

ठीक वही घर था। उसी पत्रिका का कार्यालय और संपादक के रहने का स्थान। आस-पास के लोगों से कुलदीप ने पूछने की कोशिश की। जो बात यह जानना चाहता था, उसके बरे में इसे कोई जानकारी न दे सका।

आखिर इस पत्रिका का कोई सहायक संपादक होगा, कोई और होगा — दफ्तरी काम में मदद देनेवाला, कहीं न कहीं कुलदीप जरूर खोज निकालेगा। यह हारने वाली आसामी नहीं था। पर मुश्किल यह थी, जहां कुलदीप जाता, जिससे यह पूछ-ताछ करता, सफेद कपड़ों में पाकिस्तानी पुलिस इसके पीछे लगी रहती।

फिर एक दिन कुलदीप के मन में पता नहीं क्या आया, इसका पीछा कर रहे खुफिया पुलिस के आदमी से, यह राजकर्णी का किस्सा ले बैठा। पुलिस के आदमी ने इसकी तमाम कहानी

सुनी और कहने लगा, "अगर वो लड़की सचमुच बच गई थी तो उसे अपने मां-बाप को ढूंढ़ना चाहिए था। इतने बरस जिसने इधर गुज़ार लिए, अब उसको यहां से उखाड़ना मेरी नज़र में बेकार है।"

"पर..." कुलदीप अपनी बुनियादी उसूल वाली बात दोहराना चाहता था।

"पर वर कुछ नहीं भाई साहब, उस लड़की के पांच-सात बच्चे हो गये होंगे, अपना उसका घर-बार होगा। अब उसको 17-18 बरस बाद यूं उखाड़ना कोई मतलब नहीं रखता।"

कुलदीप की तसल्ली नहीं हुई। यही राय रशीद की थी। यही राय सतभराई की थी, पाकिस्तान में जिनका कुलदीप अतिथि था ; पर कुलदीप का मन नहीं मानता था।

कुलदीप अपनी धुन का पक्का था। जितने दिन इसके पास थे, दिन रात यह राजकर्णी की तलाश में रहता, कहीं से कोई सुराग मिल जाये ? पर इसे अभी तक कोई सफलता नहीं मिली थी।

रशीद और सतभराई के घर में कुलदीप को काफी अवसर मिला – पाकिस्तान में प्रकाशित हुई पुस्तकों को देखने का, उनके समाचार-पत्रों को पढ़ने का। और इसे विश्वास हो गया कि चाहे कितने समझौते कर लें पाकिस्तान कभी भी भारत के साथ मिलकर नहीं बैठेगा। यही बात रशीद और सतभराई कहते थे। भारत और पाकिस्तान अलग होते-होते इतनी दूर जा चुके थे कि उन्हें फिर से मिलाना कोई आसान काम नहीं था। एक ही तरीका था कि दोनो में से एक हार मान ले। भारत हारने वाला नहीं था, पाकिस्तान हार मानने वाला नहीं था।

आजकल रशीद के घर में पढ़ी किताबों-अखबारों, रशीद और सतभराई से हुई बहस के कई अंश हर समय कुलदीप के कानों में गूंजते रहते।

"या हम हिन्दुस्तान को बांट कर रहेंगे, या हम हिन्दुस्तान को काट कर रहेंगे।"

– मिस्टर जिन्नाह – 1946

"पाकिस्तान खून-खराबे के बिना बनने वाला नहीं। और अगर खून बहा तो हिन्दुओं का बहेगा; क्योंकि मुसलमान तो अहिंसा पर यकीन नहीं रखते।"

– सरदार अबदुर्रब निश्तर – 1946

"क्या पाकिस्तान हमारा आखिरी मुतालबा है ? इसका जवाब मैं नहीं दूंगा, पाकिस्तान हमारा पहला मुतालबा है।"

– एच.एच. सौहरवर्दी – 1946

"बदकिस्मती से हम दस करोड़ हिन्दुस्तानी मुसलमान, अंग्रेज और हिन्दुओं के गुलाम बन गये। हम इस रमज़ान के महीने में जिहाद शुरू कर रहे हैं। और हमारा मददगार अल्लाह सिर्फ तू ही है। हमें काफिरों पर कामयाबी बख्श। हमें ताकत बख्श कि हम हिन्दुस्तान में इस्लामी राज कायम कर सकें। इंशा अल्लाह हम इस मुल्क में दुनिया की सब से बड़ी इस्लामी हकूमत कायम करेंगे।

– एम.एम. उसमान – 1946

"काश्मीर में पाकिस्तानी हमलावर भेजने से पाकिस्तान को कोई रोक नहीं सकता। न

कोई आलमी अदारा न कोई और।"

—सर मुहम्मद ज़फर उल्ला खान – 1948

"आज से हमारा कौमी निशान घूंसा है।"

—लियाकत अली खान – 1951

"अगर हमें कश्मीर हासिल करन है तो हम इसे अपनें बाज़ुओं की ताकत से लेंगे।"

—मियां मुमताज़ दौलताना – 1952

"हम किसी देश से कोई भी समझौता करने को तैयार हैं – जो देश हमारे बस एक बैरी, हिन्दुस्तान के खिलाफ मदद देने का वायदा करे।"

—सरदार अब्दुर्रब निश्तर – 1956

"भारत का पाकिस्तान पर हमला सिर्फ पाकिस्तान की धरती, सुरक्षा और एकता पर हमला नहीं होगा, यह जंग एशिया की सबसे बड़ी ताकत से भी होगी। अब अगर भारत पाकिस्तान की तरफ अपनी तोपों का मुंह मोड़ेगा तो हमें अकेला नहीं पायेगा।"

—जुल्फिकार अली भुट्टो – 1963

"कश्मीर के मसले का दूसरा हल लड़ाई है।"

—प्रेज़िडेंट मुहम्मद अयूब – 1964

"देश की साठ फीसदी आमदनी फौज पर खर्च करना, जब कि हमारे लोग भूखे मर रहे हैं, नंगे फिर रहे हैं, निरा पागलपन है। हमारी पार्टी को अगर सत्ता मिली तो फौजी खर्च कम करके, भारत से समझौता करेगी।"

—शेख मुजीबुर्रहमान – 1964

"हम जी तोड़कर लड़ेंगे, चाहे हमारा देश भारत से छोटा है, हम दुश्मन को ऐसी मार देंगे कि वो फिर सिर नहीं उठा सकेगा।"

—प्रेज़िडेंट अयूब – 1965

सतभराई पांच नमाज़ें पढ़ती थी। रशीद को नमाज़ों पर कोई विश्वास नहीं था। उनके दोनों बेटे इसलामिया कालेज में थे। रशीद कहता, "चाहे किसी कालेज में पढ़ें, इस्लामी रिपब्लिक में इन्हें मज़हब के कट्टरपन के सिवा कुछ नहीं सिखाया जायेगा।" और कुलदीप ने महसूस किया, जब रशीद इस तरह की बातें करता था, तो सतभराई को यह अच्छा नहीं लगता था।

सतभराई कहती, राजकर्णी लाहौर में नहीं हो सकती। लाहौर में होती तो उनकी कभी न कभी, कहीं न कहीं मुलाकात हो जाती।

रशीद ने अपने रसूख से खबर लगा ली। जदीद नाम के उर्दू रिसाले को भारत से आये, गुलाम रब्बानी नामक एक शरणार्थी ने चलाया था। कई बरस तक रिसाला चलता रहा। पिछली जंग में एक गोला ठीक उनके आंगन में आकर फटा और सब कुछ मलियामेट हो गया। रिसाला, रिसाले का एडीटर, उसके घरवाले, दफ्तर, कागज-पत्र कुछ भी नहीं बचा था। बल्कि मुहल्ले में और कितने घर बरबाद हुए थे।

रशीद को यकीन था, यह राजकर्णी का पता लगा लेगा। अगर वह कहीं जिंदा है तो यह ज़रूर उसका पता लगा लेगा, चाहे उन्हें पाकिस्तान का चप्पा-चप्पा ही क्यों न टटोलना पड़े।

"और फिर हम उसे तुम्हारे यहां भिजवा देंगे।" रशीद कहता।

इस बात पर सतभराई कभी हामी न भरती। हमेशा खामोश हो जाती।

उस दिन, कुलदीप को लाहौर से चलना था, रशीद बार-बार इसको हौसला दे रहा था कि वह राजकर्णी को हर हालत में ढूंढ़कर उसको मिलवा देगा।

कुलदीप ने देखा, रशीद के पीछे, बरामदे के एक कोने में खड़ी सतभराई की आंखें आँसुओं से डबडबा रही थीं।

103

बस में बैठे, सीमांत की ओर जा रहे कुलदीप की आंखों के सामने बार-बार सतभराई की आंसुओं से भरी पलकें तैरने लगतीं।

सतभराई कितनी सुन्दर निकल आई थी। उसके बाल बीच-बीच में से सफेद हो गए थे। उसकी आंखों में एक रोशनी थी, जैसे सर्दियों की सुबह की नरम-नरम किरण हो। उसकी कोमल-सी मुखाकृति, लुभावनी-सी! कुलदीप को लगता, जैसे पाकिस्तान में आकर वह ऊंची-लंबी हो गई हो, जैसे रशीद की बीवी बन कर वह और गोरी हो गई हो; जैसे मां बन कर वह और भी सुघड़ हो गई हो।

तब, जब उसे निकाल कर पाकिस्तान भेजा गया, कैसे बिलखती थी, कैसे बेहाल हुई थी, इधर आ कर पूरी-की-पूरी पाकिस्तानी हो गई थी। मुसलमानी रहन-सहन, मुसलमानी बोली, मुसलमानी पहनावा, पाकिस्तानी दृष्टिकोण, पाकिस्तानी सोचने का ढंग, पाकिस्तान से अंधी मुहब्बत। उसके बेटे पाकिस्तान के दीवाने थे। पाकिस्तान के लिए चाहे कोई जान मांग ले। और उनकी बेटी पाकिस्तान का नाम नहीं लेती थी। दस दिन रह कर लौट गई थी। कोई लालच, कोई प्यार उसे इधर बांध कर नहीं रख सका।

रशीद की और बात थी। वह किसी और ही पीढ़ी से संबंधित था। ऐसे लोग, जो चाहे लाख पाकिस्तान के बाशिंदे थे, पाकिस्तान की समस्याओं से लाख जिनको हमदर्दी थी, वक्त आये तो भारत को बुरा-भला भी कह लेते थे, पर जिनके दिल के तार, इस तरह भारत से बंधे हुए थे कि भारत का बुरा उनसे नहीं देखा जाता था। लाख लिहाज़-मुलाहज़े सामने आ खड़े होते थे। वे लोग जो बैरी को मार कर छांव में फेंका करते हैं, धूप में नहीं पड़ा रहने देते।

कुलदीप के सामने कई बार बहस होने लगती। रशीद के बेटे, और ही तरह से सोचते थे, और ही भाषा बोलते थे, रशीद का दृष्टिकोण दूसरा ही था। सतभराई अपने पति और बच्चों के बीच में कुचली जा रही थी। एक अजीब जज़बाती रस्सा-कशी होती रहती। कभी किसी

के मुंह की ओर देखती, कभी किसी की हां में हां मिलाती।

कुलदीप सोचता, उसे बार-बार पाकिस्तान आना होगा। अगर उसे राजकर्णी की तलाश करनी है तो उसे स्वयं पाकिस्तान में आकर ढूंढ़ना पड़ेगा। रशीद का ज्यादा समय मज़दूर संस्थाओं के संगठन में बीतता था। सतभराई पाकिस्तान और पर्दानशीन हो गई थी। उनके बच्चे कभी सोच भी नहीं सकते थे, कि हिन्दू और मुसलमान इस धरती पर कभी मिल कर भी रहते थे। फिर वे हिल-मिल सकते थे।

और सचमुच कुलदीप ने पाकिस्तान के कई चक्कर काटे। जब इसे वीज़ा मिलता, यह लाहौर आता, बाकी शहरों में चक्कर लगाता। इसे कोई भी कामयाबी न हुई।

सबसे बड़ी मुश्किल यह थी, जिस तबके में शायद राजकर्णी बसी हुई थी, उस तबके में पाकिस्तानी अभी भी पर्दा बनाये हुए थे। किसी औरत का पराये मर्द से मिलना, बात करना संभव नहीं था। अमीर तबके की और बात थी। पाकिस्तान के शहरों में लड़कियों के फैशन देख-देख कर कुलदीप की आंखें चुंधिया जातीं। लाहौर के माल रोड पर कोई बिरली ही लड़की नज़र आती जिसके बाल तराशे हुए न हों। उनका पहनावा, उनके अंग-अंग को दर्शा रहा होता। दूसरे को अपना आप ढंकना पड़ता। लाहौर की सड़कों और बाजारों में लड़कियों की टोली-की-टोलियां हंसती-खेलती किलकारियां भरती हुई घूमती-फिरतीं जैसे आसमान से उतरी परियां हों।

सतभराई कहती, स्कूल-कालेज की हमारी लड़कियों से लड़के डरते हैं। उल्टा, लड़कियां लड़कों को छेड़ती और उन पर फब्तियां कसती थीं। कई बार हमारे लड़के रुआंसे हो कर घर आते।

कुलदीप सतभराई के सुन्दर चेहरे की ओर देखता रह जाता। किस तरह की लाहौरनों वाली बोली उसने सीख ली थी। और स्वयं कितनी प्यारी लगती। जैसे-जैसे उसकी उम्र बड़ी होती जा रही थी, वैसे-वैसे एक ठहराव उसमें आता जा रहा था।

उस बार कुलदीप अचानक आ गया। गुरु नानक साहब का जन्मोत्सव मनाने के लिए ननकाणा साहब की यात्रा के लिए कई लोगों को इजाजत मिली थी। किसी न किसी तरह कुलदीप भी उनके साथ जुड़ गया। सतभराई केश धो कर धूप में बैठी थी कि पिछवाड़े से बिना कोई खबर दिए कुलदीप आ दाखिल हुआ। सतभराई कुलदीप को देख कर खिल-सी गई। जैसे धरती पर उसके पांव न टिक रहे हों। रशीद शहर से कहीं बाहर गया हुआ था, शाम को उसे लौटना था। बेटे, दोनों स्कूल पढ़ने गये हुए थे।

सतभराई की आदत थी, केश धोने के बाद गीले बालों को ही वह कंघी करके संवार लेती और फिर सारा दिन खुले बाल सूखते रहते। कुलदीप को उसकी यह अदा हमेशा बड़ी प्यारी लगती थी। अब पक्की उम्र में इस तरह का अल्हड़पन, कुलदीप से जैसे उस के चेहरे पर से नज़रें न हटाई जा रही हों। कुलदीप की खातिरदारी की तैयारी में लगे हुए, इसने देखा, हर बार जब सतभराई बड़े कमरे में से हो कर आती, उसमें कोई न कोई नई फबन होती। इस बार जब वह बाहर आई, उसने जामुनी रंग की लिपिस्टिक लगाई हुई थी। एक हल्का सा लेप, उसकी

लिपस्टिक का रंग, सतभराई के कंधों पर से फिसल रही चुन्नी के रंग से मेल खा रहा था। रबड़ की चप्पल उतार कर उसने ऊंची एड़ी की सैंडल पहन ली थी। कुलदीप को लगा जैसे हर बार उड़ कर उसे रसोई के अंदर जा [illegible]ता था। इतनी लंबी औरत को ऊंची एड़ी की सैंडल पहनने की क्या जरूरत थी ? पर फिर [illegible] ऊंची एड़ी की सैंडल में सतभराई उसे बेहद प्यारी लगती थी। इस बार उसे महसूस हुआ जैसे अपनी टस्सर की कमीज में सतभराई का अंग-अंग निखर-निखर पड़ रहा हो। कितनी खुश-खुश लग रही थी। कुछ देर; और उसके गुलाबी-गुलाबी गाल तमतमाने लग गये। उसकी आंखों में जैसे इशारे मचल रहे हों।

कुलदीप के लिए चाय बनाते हुए उसने देखा, सतभराई के हाथ कांप रहे थे। चाव में, शौक में। फिर ढेर-सी, छुटपुट खाने की चीजें, उसने इसके लिए इकट्ठी कर लीं थी। कुलदीप, उसकी ओर देख-देख कर जैसे झकझोरा जा रहा था।

और फिर हल्की-हल्की धूप में, चाय पी रहे कुलदीप को रावलपिंडी का शरणार्थी कैम्प याद आने लग गया। सतभराई से इसकी पहली मुलाकात। सतभराई के तम्बू में, उसकी बीमारी के दिन, और फिर वह रात। जब सोहणेशाह ने उन्हें बातें करते सुन लिया था, और अगली सुबह होने से पहले सतभराई को कैम्प से निकाल, कुलदीप से छीन कर ले गया था। स्टेशन पर, कुलदीप की, सतभराई को एक नजर देखने की विह्वलता। और फिर गाड़ी चल पड़ी। कुलदीप सूने प्लेटफार्म के एक खंभे से लकर कैसे छल-छल आंसू रोया था।

इस तरह विचारों में खोये हुए कुलदीप की आंखें डबडबा आईं। अचानक संभल कर इसने सतभराई की ओर देखा, उसकी आंखों से छम-छम आंसू बह रहे थे।

यह क्या हो रहा था ? कुलदीप एकदम संभल गया। सतभराई चाय के बरतन लेकर रसोई में चली गयी।

उसके बाद, कितनी देर तक सतभराई बड़े कमरे में पलंग पर गिरकर रोती रही, लहू के आंसू।

कुलदीप बड़े कमरे में आया, इस तरह उसको बेहाल, आठ-आठ आंसू रोते देख इसका रोम-रोम कुलबुला उठा। इसका जी चाहा, सतभराई को बांहों में भरकर उसका अंग-अंग चूमकर उसको शीतल कर दे, अपने भीतर, बरसों से सुलग रही आग को ठंडा-ठार कर ले।

पर नहीं, कितनी देर खंभे को पकड़कर, कुलदीप वैसे का वैसा खड़ा रहा, सामने सतभराई फूट-फूट कर रो रही थी। अकेले घर के अकेले कमरे में मछली की तरह सतभराई तड़प रही थी, जिसको एक नज़र देखने के लिए कुलदीप रात-रातभर जागता था, दिन-दिन भर राह देखता था।

खंभे से लगा, स्तंभित-सा कुलदीप खड़ा था और बाहर परछाइयां ढलने लगीं। फिर ड्योढ़ी में किसी ने दरवाजा खटखटाया। कुलदीप एकदम कांप गया। जल्दी से एक नज़र उसने सतभराई को देखा और बाहर आंगन की ओर निकल गया। कमाल पढ़कर लौटा था।

जब वह अंदर आया, सतभराई उठकर गुसलखाने में जा चुकी थी। कुलदीप की जान में जान आयी।

कुछ देर बाद जमाल भी पढ़कर लौट आया। घर में रौनक लग गई। राजी बेबी और सोहणेशाह की भेजी हुई सौगातों को खोल-खोलकर देखते और वाह-वाह कर उठते। भारत में बना कपड़ा, भारत में बनी घड़ियां, फाउंटेनपेन, उठते-बैठते कमाल और जमाल केले खा रहे थे।

और फिर रशीद आ गया। रात पड़ गई थी। इस तरह की अचानक मुलाकात, रशीद बार-बार कुलदीप के गले मिलता, बार-बार इसका हाथ पकड़ लेता और शुक्रिया कहने लगता। रशीद वैसे का वैसा था, मिलनसार, धुन का पक्का, सादा-तबियत, इतने बड़े बाप का बेटा, उसमें सरमायेदारों वाली कोई बात नहीं थी।

हां, एक फ़रक आ गया था, उम्र के साथ रशीद ने ज़्यादा सिग्रेट पीना शुरू कर दिए थे। एक खत्म होता, दूसरा सुलगा लेता, धुएं का क्रम। सिग्रेट तो वह पहले भी पीता था। पर शराब उसने नई शुरू की थी। उसे आये हुए अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि वह बोतल लेकर बैठ गया। रशीद के लाख ज़िद करने पर भी कुलदीप उसका साथ न दे सका। वैसे उसके साथ बैठा हुआ वह गप्पे जरूर हांक रहा था।

पाकिस्तान में प्रगतिशील विचारों के लोग खत्म होते जा रहे थे। नौजवानों में, आपसी फूट और गरीबी से नफरत की जगह, भारत से और दूसरे पड़ोसियों से नफरत का प्रचार किया जाता था। पूर्वी बंगाल में पश्चिमी पाकिस्तान के विरुद्ध घृणा दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। बंगला को पाकिस्तान ने राज-भाषा स्वीकार कर लिया था, पर उस क्षेत्र के लोगों का रहन-सहन इन लोगों से इतना भिन्न था कि वे इतने बरस पाकिस्तान में रह कर भी इनमें पसीजते नहीं थे! रशीद को खतरा था, वे लोग कभी भी अलग हो जायेंगे। नई बात, पंजाबी हुक्मरानों ने यह की कि रवीन्द्र संगीत को बंद कर दिया था, कि यह भारतीय संगीत है। कोई बंगाली रवीन्द्र संगीत के बिना कैसे जीवित रह सकता है? पाकिस्तान में बायें बाज़ू के लोग, ढूंढने पर नहीं मिलते थे, पर पूर्वी पाकिस्तान में ये लोग बड़े ज़ोरों पर थे। रशीद कहता, शराब की आदत भी उसे इस कारण पड़ी थी। कोई नहीं था जिसके साथ बैठ कर वह दिल की बात कर सके, अपनी शाम गुज़ार सके। अकेले घर-बैठे उसका मन उतावला होने लगता था और उसने शराब का शगल शुरू कर दिया। पहले-पहल तो सतभराई खफा होती थी, अब वह समझ गयी थी और कभी-कभी तो उसका साथ भी देती थी।

यह सुनते ही कुलदीप की आंखों के सामने सतभराई की एक अजीब तसवीर तैरने लग गई। सिर से दुपट्टा ढलका हुआ, शोख आंखें, सतभराई घूंट-घूंट जाम पी रही है। उसके गाल तमतमाने लगे हैं। घूंट-घूंट जाम पी रही है और तड़ाक-तड़ाक बातें कर रही है। खिलखिला कर हंस रही है। और फिर रंग-बिरंगे कपड़ों में तितली की तरह नाचने लग जाती है। नाचते-नाचते किसी की बाहों में जाकर ढेर हो जाती है। ये किसकी बांहें हैं? कुलदीप को दिखाई नहीं दे रहा। और फिर इसे महसूस होता है जैसे इसके कंधे थके-थके हों। जैसे किसी के आलिंगन में कोई रातभर औंधा पड़ा रहा हो।

रात बहुत बीत गई थी। रशीद अभी भी पी रहा था। खाना खाने के बाद भी वह पीता

रहा। कुलदीप बार-बार सतभराई से कहता, खाना खाने के बाद, उसको तुम न पीने दिया करो।

और फिर रशीद जाम पकड़ कर उठा, उसने सतभराई को अपनी बगल में लिया और सामने अपने सोने के कमरे में चले गये। कमरे में पहुंचकर उसने दरवाजा भेड़ लिया, फिर अंदर से चिटखनी लगा ली।

104

उस रात कुलदीप को लेडी डाक्टर कुसुम बहुत याद आई।

कितनी देर वैसे का वैसा, वह बैठा रहा, जहां पर रशीद, सतभराई और वह, खाना खाने के बाद गप्पें मार रहे थे। सामने सोने के कमरे का दरवाजा बंद था, भीतर से चटखनी लगा ली गई थी। कुलदीप का कमरा पिछली ओर था, बरामदे के बगल में, बच्चों के कमरे की एक ओर।

चटखनी लगाने की आवाज कुलदीप के सीने में कांटे की तरह चुभ गई थी। क्यों? आखिर क्यों?

फिर अपने पलंग पर लेटा हुआ वह अपने मन को टटोलता रहा। कहीं कोई खराबी जरूर थी।

उसे नींद नहीं आ रही थी। और फिर उसे कुसुम याद आने लग गई। आप-से-आप वह कुसुम से बातें कर रहा था। सतभराई से अपनी मुहब्बत की सारी कहानी इसने उसे सुनायी। और फिर जो कुछ उस दिन इस पर बीती थी। दिन में, अकेले में सतभराई का बहक जाना। कुलदीप का अकथनीय स्वनियंत्रण। और फिर रात को शराब में मदहोश रशीद का अपनी बीवी को पकड़ कर अपनी आरामगाह में चले जाना। और कुलदीप का वैसे-का-वैसे देखते रह जाना।

सुनते-सुनते कुसुम खिलखिला कर हंस पड़ी। हंसती गई, हंसती गई। कुलदीप हैरान हो कर उसके मुंह की ओर देख रहा था।

"जरा सोचो कुलदीप, अगर दिन में तुम भी सतभराई की तरह बहक गये होते..."

कुलदीप का पसीना छूटने लगा।

"ज़रा सोचो कुलदीप, अगर दिन में तुम भी सतभराई की तरह बहक गये होते, तो रात जब उसका घरवाला उसको इस तरह पकड़कर सोने के कमरे में ले गया, तो तुम कितना तड़पते?"

"सच्चाई और शराफत के लिए, ज़िंदगी कभी इस तरह इनाम देती है..." कुसुम कुछ देर खामोश रह कर पिर बोलने लग गई।

कुसुम इस प्रकार बोल रही थी कि यख़-ठंडे कुलदीप की आंख लग गई।

अगली सुबह कुलदीप का जी चाहता, उड़कर किसी तरह जालंधर चला जाये। पर जिस उद्देश्य के लिए यह आया था, वह तो वैसे का वैसा पड़ा था। राजकर्णी की तलाश बड़ी जरूरी थी। अखबारों में कई बार ये लोग विज्ञापन निकलवा चुके थे। यह सोचता, अगर रेडियोवाले इसकी मदद करें तो शायद इसकी आवाज राजकर्णी तक पहुंच जाये। पर रेडियोवाले क्यों इसकी मदद करने लगे। खास तौर पर लाहौर का रेडियो स्टेशन जो दिन-रात भारत के विरुद्ध जहर उगलता रहता था।

कुलदीप कोई एक सप्ताह शहर-शहर भटकता रहा। इसके साथ रशीद भी था। पर कोई कामयाबी नहीं मिली। केवल एक बात का उसे बार-बार प्रमाण मिलता था, कि पाकिस्तानी भारत से बैर बनाये हुए थे। पिछली लड़ाई में चाहे उनकी हार हुई थी, पाकिस्तान का हर शहरी सोचता था कि वे जीते थे। अगली लड़ाई के लिए वे हर क्षण तैयारी कर रहे थे। नई छावनियां डाली जा रही थी, नई भरती जारी थी, सरहद की सड़कों की मरम्मत हो रही थी। किसी समय भी यह आग भड़क सकती थी। स्कूलों में, कालेजों में, मसजिदों में, गलियों में भारत के विरुद्ध प्रोपेगेंडा किया जा रहा था। भारत को ज़लील करने के लिए पाकिस्तानी कोई भी कीमत दे सकते थे। बरसों-बरसों से फौजी तानाशाही को वे सहन कर रहे थे, बस इस लालच में, कि कोई अयूब, कोई याह्या उनके मन की मुराद पूरी कर देगा। कभी अमरीका से वे मित्रता करते थे, कभी चीन से दोस्ती गांठते थे, बस एक ही उद्देश्य कि भारत के विरुद्ध उनको सहायता दी जाये। पाकिस्तान में बीसियों तकाज़े थे, बीसियों झगड़े थे, पर भारत के विरुद्ध सभी एक-जुट थे।

रशीद कहता — इस देश का क्या बनेगा?

और कुलदीप उसके मुंह की ओर देखता रह जाता।

"तुम्हारे जैसे इस देश में कितने लोग हैं?" आखिर कुलदीप ने उससे पूछा।

"उंगलियों पर गिने जा सकते हैं।" रशीद ने निराश होकर कहा। कुलदीप का जी चाहा, इसी क्षण वापस भारत लौट जाये। पर, राजकर्णी की तलाश जैसे उसका परम-धर्म बन गया हो।

सतभराई कई बार चिढ़कर कहती — राजकर्णी को आप कैसे ढूंढ़ सकते हैं? न देखा न भाला, सुनी-सुनाई कहानी में कभी कोई औरत किसी को मिली है? धेकों वाले आंगन का पता पूछता हुआ, कभी कोई ठिकाने पर पहुंचा है?

कुलदीप सोचता, जो कुछ सतभराई कह रही थी, उसमें किसी हद तक सच्चाई थी। रशीद भी सतभराई से सहमत प्रतीत हो रहा था।

और उस दिन ठीक इस तरह का तमाशा हुआ।

कुलदीप और रशीद किसी से मिलने माडल टाऊन गये थे। जिस से मिलने गये थे वह मिला नहीं। उनके पास समय काफी था। उन्होंने सोचा, वे बस का इंतजार कर लेंगे। उन्होंने टैक्सी छोड़ दी। और सामने बस के अड्डे की तरफ चल पड़े।

उनके बस-अड्डे पहुंचने से कोई पांच मिनट पहले एक स्कूटर आया। स्कूटर को पुलिस

का एक अफसर चला रहा था। स्कूटर के पीछे एक औरत बैठी थी, गेहुंआ रंग, भली-सी सूरत, चुस्त शलवार-कमीज़ में उसका ऊंचा-लंबा कद और भी सुडोल और सुहावना लग रहा था। पोठोहारिन लगती थी। फिर जब वह बोली, तो यह पक्का हो गया।

"मैं आपूं आई जासां, तुसीं खेचल न करिओ।" उसने स्कूटर से उतरकर अपने घरवाले से कहा।

"राजकर्णीएं, मैं ते उधर वंझणा ही ए, तुघी वी लई आसां।" उसके घरवाले ने उससे कहा और स्कूटर चालू करके चला गया। मर्द भी पोठोहारी था।

पुलिस अफसर स्कूटर चालू करके गया ही था कि बस के अड्डे पर खड़ी अधेड़ उम्र की एक औरत आगे बढ़ी और उसने राजकर्णी के कान में कहा – "नी मिड़ें तूं राजकर्णी एं. तापे सोहणे शाह दी धी ?" और फिर दोनों एक दूसरे की बाहों में फफक-फफक कर रो रही थीं। यह औरत गोमा थी। राजकर्णी के पड़ोस के जोड़ियां गांव के चौधरी की बेटी।

और फिर वे एक दूसरे की राजी-खुशी पूछने लगीं। एक दूसरे के घरबार, बाल बच्चों के बारे में पूछने लगीं। बार-बार एक दूसरे के गले मिलतीं।

वे यूं कर रही थीं कि कुलदीप और रशीद बस के अड्डे पर पहुंचे। चार कदम दूर खड़े इन दो औरतों की अजीब हरकतें देखते रहे।

फिर बस आ गई और सब लोग बस में जा बैठे। बस, लाहौर शहर की ओर चल पड़ी।

बाकी लोग भी कुलदीप की ओर बार-बार देखते थे, दाढ़ी-साफ़े में सिक्ख-सरदार आजकल इस तरफ कोई बिरला ही दिखाई देता था, पर राजकर्णी की तो जैसे कुलदीप के चेहरे से आंखें नहीं हटती थीं। एकं-टक उसकी ओर देखे जा रही थी। उसका जी चाहता, कोई बहाना मिले तो इससे बात करे।

पर अगले स्टाप पर ढेर-सारे लोग बस में चढ़ आये। तिल धरने को जगह बाकी नहीं बची थी। जिनको बैठने की जगह मिली वे बैठ गये, बाकी खड़े थे। खचाखच भरी बस दौड़ती हुई लाहौर शहर की ओर जा रही थी। अब तो राजकर्णी कुलदीप को देख भी नहीं सकती थी।

और फिर माल रोड का चौक आया और कुलदीप और रशीद बस से उतर गये। दूर भीड़ में गायब हो जाने तक राजकर्णी की आंखें खिड़कीं से कुलदीप के साफे पर लगी रहीं।

"हमारी तरफ का लगता है।" गोमा ने राजकर्णी के कान में फुसफुसाया।

"मेरा दिल भी यही कहता है।" राजकर्णी ने जवाब दिया। और फिर उसकी आंखें आंसुओं से डबडबाने लगीं।

"हाय; उससे पूछ ही लेती, कौन है, कहां से आया है ? गोमा ने कहा।

"किस-किस से कोई पूछता फिरे ?" राजकर्णी ने आह भरकर कहा।

जालंधर स्टेशन पर गाड़ी पहुंची तो कुलदीप ने देखा, सामने लेडी डाक्टर कुसुम उसके स्वागत के लिए खड़ी थी। और कोई नहीं था। सोहणेशाह, न सीता न गुरमीत न राजी बेबी, बस कुसुम थी। लाख अरमान पलकों में संजोये, बेताब आंखों से कुलदीप को, रुक-रही गाड़ी की खिड़कियों में ढूंढ रही थी। कुलदीप ने उसे देखा, इशारा भी किया, पर एक अजीब बेचैनी, एक अजीब विह्वलता में इसने, उसके इशारे को नहीं देखा। और कुलदीप का डिब्बा आगे निकल गया। प्याज़ी रंग की जारजट की साड़ी में, बिजली के खंभे के पास खड़ी कुसुम ऐसे लगती थी जैसे कोई बेल, बेताबी से ऊपर चढ़ रही हो।

"और लंबी हो गई है। बालिश्त-बालिश्त बढ़ रही है शायद।" कुलदीप ने लाड में अपने आप से कहा।

और अगले क्षण कुसुम उसके पास खड़ी थी। बिल्कुल सटकर, उसके कंधे से कंधा घिसट रहा था और कुसुम ने धीरे से कुलदीप का हाथ पकड़ कर दबा लिया। चाहे रात थी, प्लेटफार्म जानी-पहचानी शक्लों से भरा हुआ था। कुलदीप का जी चाहा इसकी मोटी, भारी चोटी को इसके गर्दन के गिर्द लपेट कर इसके तमतमा रहे गालों पर हाथ रखकर इसके होंठों से अपने होंठ जोड़ दे। यह सोच कर कुलदीप ने पलकें मींच लीं। एक स्वाद-स्वाद में, एक नशे-नशे में, उसे पता भी न चला, और वे दोनों बाहर एक तांगे में बैठे हुए थे। कुसुम सट कर कुलदीप से चिपटी हुई थी। कितनी सारी सीट खाली पड़ी थी और कुसुम, एक ओर कुलदीप से सट कर बैठ गई। लोग घूर-घूर कर इसकी ओर देखते, कुलदीप की ओर देखते, फिर आंखें नीची कर लेते। जालंधर जैसी छोटी जगह, आगे-पीछे अंधेरे में जैसे पाप घुलता जा रहा हो। तांगा चला तो कुसुम ने कुलदीप की कमर के गिर्द अपनी बांह लपेट ली। थोड़ी देर, दूर एक पेड़ के नीचे से गुज़रते इसने अपने तड़प रहे होंठों को कुलदीप के होंठों पर रख दिया। कुलदीप ने आवेश में, एक नशे-नशे में इसको अपने सीने से दबा लिया और कितनी देर उसकी दंतुलियां कुसुम की दंतुलियों से जुड़ी रहीं। उसकी जीभ कुसुम की जीभ पर तैरती रही।

और फिर तांगा, माडल टाउन में, कुसुम के घर के आगे आ खड़ा हुआ। कुछ दिन हुए, कुसुम इस कोठी में आई थी। आजकल यह बिल्कुल अकेली रह रही थी। फैसला यह हुआ कि कुलदीप रात को यहीं रहेगा, और अगली सुबह सोहणेशाह के यहां जायेगा।

"मुसाफिरों का क्या है? जहां रात पड़ी वहीं घर बना लिया।" कुलदीप के मुंह से निकला।

"यह हमारा घर है। अब न कोई मुसाफिर है, न कोई और सफर।" कुसुम ने कुलदीप की पीठ पर चुटकी काटते हुए कहा।

और कुसुम कुलदीप को अपना घर दिखाने लग गई।

"और यह हमारी स्टडी होगी।" किताबें चाहे ज्यादा नहीं थी, पर कमरा बाहर घर के खुले लान में खुलता था। बोगनविला के फूल एक खिड़की में से बेरोक-टोक अंदर घुस आया करते

थे। कुसुम ने इस कमरे को बड़े सलीके से सजाया हुआ था। रेशमी पर्दे,मेज़,कुर्सियां,स्टैंडर्ड लैम्प,सुस्ताने के लिए सोफे का एक-पीस,पर्दों के रंग से मेल खाता गलीचा।

"यहां बैठकर कोई चिट्ठियां लिखा करे।" कुलदीप ने कहा।

"विरह वेदना की।" कुसुम ने उसे छेड़ा और फिर अपने होंठ कुलदीप के होंठों पर रख दिए। कितनी देर वे एक दूसरे की बांहों में लिपटे रहे।

इसके बाद कुसुम उसे बगल के कमरे में ले गई, जो बाहर, सड़क की ओर बरामदे में खुलता था। यह कुसुम की क्लिनिक थी।

"क्या शहर का क्लिनिक बंद...?" कुलदीप ने,कुसुम से हैरान हो कर पूछा।

"नहीं,वहां भी मैं बैठा करूंगी। पर डाक्टर के घर आने से भी,कोई मरीज़ों को रोक नहीं सकता।" कुसुम ने उत्तर दिया। और फिर उसे अपने गोल कमरे में ले गई।

इतने थोड़े दिनों में,पता नहीं कैसे उसने अपने घर को इतना सुन्दर सजा लिया था। हर कमरे में फर्निचर नया था। कुसुम की बढ़िया पसंद का प्रतीक था।

"पर इतनी जल्दी तुमने ये सब कुछ इकट्ठा कैसे कर लिया?" कुलदीप को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"कर्तारपुर से।" कुसुम ने बताया, "कर्तारपुर जालंधर से चार कदमों के फासले पर फर्निचर का शहर है। गोदामों के गोदाम फर्निचर से भरे पड़े हैं। गलियां-गलियां, मुहल्ले-मुहल्ले फर्निचर के गोदामों के हैं। वहां का फर्निचर दिल्ली तक जाता है और चार कदमों के फासले पर, हमें इसका पता नहीं। दरिया के किनारे होने से लकड़ी सस्ती है, और फर्निचर के कारीगर वहां पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे हैं।

"पर इतना फर्निचर बनाकर वे तैयार कैसे रखते हैं?"

"एक कोठी का? कर्त्तारपुर वाले तो आंख झपकने की देर में महल-के-महल; होटलों-के-होटल, शहरों-के-शहर फर्निचर से सजा सकते हैं। तरह-तरह का फर्निचर उनके पास तयार पड़ा है। और हर नमूने के सैंकड़ों नग वे बनाते हैं। दिल्ली से,अंबाला से,लुधियाना से,पटियाला से लोग आते हैं,फर्निचर पसन्द करके ट्रकों में लदवा देते हैं। उधर वे घर पहुंचते हैं,इधर फर्निचर उनके यहां पहुंच चुका होता है।"

इस तरह बातें करती,कुसुम गोल कमरे में से होती हुई सोने के कमरे में जा घुसी। हल्के नीले पर्दे,हल्के नीले रेशमी बेलबूटों का पलंगपोश। और कुसुम अपने खुले पलंग के पास स्थिर खड़ी थी। जैसे पत्थर की शिला हो गई हो। इसके पास कुलदीप खड़ा था। बिट-बिट आंखों से,आगे-पीछे,बहुत सुघड़ता से सजाये गये,सोने के कमरे को देख रहा था। और फिर कुसुम पलंग पर बैठ गई जैसे मंजिलें पार करके लौटा थका-हारा कोई राही हो। कुलदीप वैसे का वैसा खड़ा था। और फिर कुसुम एकदम तकिये पर सिर फेंक कर चित्त लेट गई। कड़क-कड़क, उसके अंगिया के बटन एक-एक करके खुल गये। कुसुम आंखें मूंदे, एक नशे-नशे में डूबी,लेटी हुई थी।

कुलदीप वैसे का वैसा खड़ा था। अचानक जैसे कोई पर्दा सरकता हो,उसकी आंखों के

सामने सतभराई की मूर्ति तैरने लगी। उसे लगा जैसे कोई उसे पुकार रहा हो, उसे कोई बुला• रहा हो। हां, यह तो सतभराई थी। छल-छलाती आंखों से उसकी राह देख रही थी।

और कुलदीप दुबके-दुबके सोने के कमरे से गोल कमरे में आया, फिर बरामदे में! अभी नौकर ने उसका सूटकेस भीतर नहीं रखा था कि अपना सामान उठा, उसने बाहर एक तांगे को रोका, और अपने घर चला गया।

106

उस रात घर में घुसते ही, एक क्षण के लिए कुलदीप को लगा जैसे सामने आंगन में पनिहारे के पीछे खड़ी सतभराई उसकी राह देख रही थी। यह कहां से? और अगले क्षण उसने देखा, वह तो राजी बेबी थी। अंधेरे में दूर से, हू-ब-हू सतभराई लगती थी। लड़कियां बालिश्त-बालिश्त बढ़ती हैं।

सोने से पहले, सारा समय, कुलदीप राजी बेबी से बातें करता रहा। राजकर्णी का कहीं सुराग नहीं मिला था। सोहणेशाह, यह सुन कर अपने आप में डूब गया था। राजी बेबी अपनी मां की भेजी हुई सौगातों को छाती से लगा कर, कुलदीप से आप-ही-आप बोली जा रही थी। कुलदीप, बार-बार सतभराई के बारे में उसे बताता –

"तेरी मां के बाल बीच-बीच में सफेद हो रहे हैं।"

"आपके भी तो बाल बीच-बीच में सफेद हो रहे हैं।"

राजी बेबी का जवाब एक नश्तर की तरह कुलदीप के सीने में चुभ गया। कुलदीप को महसूस हुआ जैसे उसकी ज़िंदगी एक उज़ाड़ बियाबान थी, जिसका कोई आदि था न अंत। इस रेगिस्तान में सतभरायी की याद एक सुहावने नखलिस्तान की तरह थी और कुलदीप का जी चाहता, आंखें मींच कर इस हरियाली, इस ताज़गी, इस खुशबू में अपने आपको डुबोये रखे।

और फिर एक अजीब ढब, जैसे कुलदीप को मिल गया हो। हर समय सतभराई की याद में खोया रहता। उसे दिन-रात, खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, हंसना-खेलना सब कुछ भूल गया। एक सतभराई की याद, और बस कुछ नहीं।

लेकिन सतभराई को तो इसने आप इधर से भेजा था। इसने आप उसे रशीद के हवाले किया था। अब वह किसी पराये मर्द की बीबी थी, तीन बच्चों की मां थी। अब, जब कि ज़िंदगी का पल्लू हाथ से खिसकना शुरू हो गया था, यह कौन-सा रोग उसके भीतर से फूट पड़ा था? कुलदीप की समझ में कुछ न आता।

लेडी डाक्टर कुसुम ने उस शाम के बाद कई दिन कुलदीप को मुंह नहीं लगाया। कुलदीप को इसकी ज़रा भी परवाह नहीं थी।

हर समय सतभराई की याद,हर समय रुँआसा-रुँआसा। हर समय दुखी-दुखी। कुलदीप को खाना अच्छा लगता न पीना। सोहणेशाह हैरान था। बाकी घरवाले परेशान थे। कुलदीप ने तो कभी कोई गैरजिम्मेदारी वाली बात नहीं की थी। कुलदीप तो हमेशा अपने काम से काम रखता,कभी उसने किसी को शिकायत का मौका नहीं दिया था।

आजकल हर समय कुलदीप के होंठों पर बस यही बोल होते –

मैनूं अजे मिले तां जीवां
मैनूं हुणे मिलें तां जीवां
(मोहन सिंह)

हर समय यही बोल गुनगुनाता रहता।

सोहणेशाह सोचता,कुलदीप की शायद तबीयत ठीक नहीं रहती थी। कभी किसी हकीम को ले आता,कभी किसी वैद्य को बुलवा भेजता। अगर कोई डाक्टर मिलता,उससे कुलदीप के बारे में चर्चा करता। कुलदीप,सोहणेशाह के इस उतावलेपन पर खीझता रहता।

सीता को,कुलदीप पर बड़ा तरस आता। सीता इतना कुछ समझती थी कि इस उम्र में कुलदीप,अकेलापन महसूस करता है। उसे किसी के साथ की जरूरत है। कुलदीप की हालत उस मुसाफिर की तरह थी जिसे बस के अड्डे पर खड़े हुए अचानक पता चले कि आखिरी बस निकल चुकी थी और वह पिछड़ गया था। अब उसका रास्ता मिट्टी-मिट्टी और धूल-धूल था। अब उसे राहों की चिलचिलाती धूप से वास्ता पड़ेगा,पगडंडियों की सर्दियां झेलनी होंगी। बिना साथी,बिना सहारे के,कोई दूर मंजिल का मुसाफिर!

राजी बेबी अब जवान हो गई थी। उसे तो बेबी कहलवाना भी अच्छा नहीं लगता था। राजी बेबी को कुलदीप मामा पर बेपनाह प्यार आता। कुलदीप उसकी हर जरूरत और हर खुशी के लिए जान देता,पर उससे अपने लिए कुछ करवाना इसे अच्छा नहीं लगता था।

एक शाम बैठे-बैठे कुलदीप को अचानक याद आया कि राजी बेबी शायद उसी उम्र की हो गई थी जिस उम्र की सतभराई थी,जब उनकी पहली मुलाकात रावलपिंडी छावनी के शरणार्थी कैम्प में हुई थी। हूबहू मां जैसी। उसका कद-बुत; उसका रंग,उसका मुंह-माथा! कैम्प में बीती एक एक घटना कुलदीप की आंखों के आगे तैरने लगती।

कितने दिन सतभराई कैम्प में अकेली थी। सोहणेशाह के इंतजार में दिन-रात कँटीली बाड़ के पास खड़ी रहती। और फिर जब वह बीमार हो गई,कुलदीप चाहता तो चाहे उसे कहीं ले जाता। और फिर आधी रात को उनकी मुलाकात,जब सोहणेशाह ने उनकी सारी की सारी कहानी सुन ली थी। कुलदीप चाहता तो तब भी सतभराई को सोहणेशाह से छीन लेता। सतभराई तो उसके एक इशारे का इंतजार कर रही थी। और फिर उनकी जालंधर की मुलाकात। किस बेदर्दी से कुलदीप ने सतभराई को पाकिस्तान भिजवा दिया था! किस बेरहमी से उसने सोहणेशाह की एक फरियाद नहीं सुनी थी!

[मुझे आज मिलो तो जिऊं
मुझे अभी मिलो तो जिऊं।"]

कुलदीप सोचता, शायद इसलिए कि वह सतभराई को सोहणेशाह से छीन लेना चाहता था। शायद इसलिए कि वह सोहणेशाह से बदला लेना चाहता था, रावलपिंडी छावनी के कैम्प से सतभराई को, बिना उसे बताये, वह निकाल कर ले गया था।

पर सोहणेशाह की शराफत, सारी उम्र उसने कुलदीप को बेटों की तरह अपने घर में रखा था। कुलदीप से उसने कभी किसी बात का भेदभाव नहीं किया था।

कुलदीप सोचता, राजकर्णी की तलाश इसकी जिंदगी का उद्देश्य था। इसने सतभराई को सोहणेशाह से छीना था, यह उसे उसकी बेटी राजकर्णी ढूंढ़ कर दे देगा, और अपने-आप को सुर्खरू समझेगा। राजकर्णी पाकिस्तान में थी। इसके पास पूरा प्रमाण था। उसकी सारी आप-बीती इसने अपनी आंखों से पढ़ी थी, पर लड़की अभी तक उसके हाथ में नहीं आ सकी थी। पाकिस्तान की धूल फांक कर वह लौट आया था।

और आजकल सतभराई की याद उसे घेरे हुए थी। बस सतभराई, और कुछ भी नहीं। न सोहणेशाह, न राजकर्णी, न राजी बेबी, न सीता, न लेडी डाक्टर कुसुम, न और कोई। सबसे बड़ी तबदीली जो कुलदीप में आयी वह यह थी कि समाज सेवा का जो काम यह करता था, इसने छोड़-छाड़ दिया। उस ओर कभी रुख न करता। अगर कोई जरूरतमंद इसके पास आता, उसे टाल देता। इसके साथी इससे तकरार करने आते, यह बगलें झाँकता रहता।

कुछ सप्ताह, और कुलदीप फिर लाहौर जाने के लिए तैयार हो गया। पर इसका इस प्रकार बार-बार पाकिस्तान जाना न इधर की सरकार को पसंद था, न वहां की सरकार को भाता था। महीनों तक यह दफ्तरों के चक्कर काटता रहता, कभी चंडीगढ़, कभी दिल्ली, फिर कहीं जाकर इसकी सुनवाई होती। कामयाबी होती दिखाई नहीं दे रही थी। अपनी सरकार कहती, इतने बरस बाद किसी लड़की की तलाश बेकार थी। और चाहे किसी अन्य बात में एक-दूसरे से कभी सहमत न हों, इस मामले में दोनों सरकारें एक ही दृष्टिकोण रखती थीं।

कोई न कोई बहाना ढूंढ़कर यह राजी बेबी से सतभराई के बारे मं बातें करने लग जाता। घंटों तक ये इस तरह छोटी-छोटी बातें करते रहते। कुलदीप को ऐसा करना आजकल बहुत अच्छा लगता था। कभी कुछ, कभी कुछ. सारा दिन राजी बेबी के चाव पूरे करता रहता। राजी की फरमायश थी, इनके यहां टेलीविजन होना चहिए, अमृतसर और जालंधर में कई लोगों ने टेलीविजन लगवा लिए थे और लाहौर के प्रोग्राम देखते थे। कुलदीप को, सिद्धांत में यह बात गलत लगती थी, पर राजी को खुश करने के लिए एक टेलीविजन खरीद लाया। और हर शाम, जब मौसम खास खराब न होता, ये लोग लाहौर का प्रोग्राम देखते रहते। फिर राजी ने टेलीफोन के लिए कहा। हर कोई सहमत था, पर टेलीफोन के लिए बारी आने तक इंतज़ार करना पड़ता था। राजी की यह इच्छा देखते हुए, कुलदीप ने अपने सारे उसूल भुलाकर एक सिफारिश, दूसरी सिफारिश और टेलीफोन अपने घर लगवा लिया। राजी सारा दिन टेलीफोन से चिपटी रहती। या वह टेलीफोन कर रही होती या उसके टेलीफोन आ रहे होते। जवान-जहान लड़की, उसकी सहेलियां भी गली-गली में थीं, मुहल्ले-मुहल्ले में थीं।

कुछ दिन, और अजी-अजीब टेलीफोन आने लग गये। कई बार ऐसा होता, राजी

टेलीफोन का चोंगा उठाती, उधर से पता नहीं कोई क्या कहता, उसका चेहरा तमतमाने लगता और वह जल्दी-जल्दी टेलीफोन का चोंगा वैसे का वैसा रख देती। कई बार ऐसा होता, टेलीफोन की घंटी बजती, कुलदीप या घर का कोई और चोंगा उठाता, उधर से टेलीफोन मिलानेवाला हैलो की आवाज़ सुनकर टेलीफोन बंद कर देता। इस तरह का तमाशा दिन में कई-कई बार होता। खास तौर पर उठकर, टेलीफोन सुनने के लिए गये व्यक्ति को बड़ी चिढ़ आती।

107

कुलदीप कुछ का कुछ होता जा रहा था।

अजीब-अजीब लोगों से आजकल उसकी संगति थी। कई-कई दिन घर से बाहर रहता। कभी आधी रात को घर में आकर घुसता, कभी तड़के ही कहीं निकल जाता। कपड़े मैले होते तो मैले-कीचट ही पहने फिरता। न खाता तो कई-कई जून उपवास काट देता। खाने बैठता तो जो आगे आता चट कर जाता। सोता तो रात-रात भर, सारा सारा-दिन सोता रहता। जब न सोने का मन होता, कितने-कितने पहर बिना आंख झपके बैठा रहता। पढ़ता रहता, लिखता रहता।

एक दिन सोने से पहले राजी ने देखा, अपने कमरे में छल-छल आंसू, कुलदीप रो रहा था। उसके दिल को कुछ हो गया। राजी ने सोहणेशाह को जा बताया। कोई करे तो क्या? इसका तो आजकल ढंग ही यह है। सोहणेशाह करवट बदल कर सो गया। उस सारी रात, राजी की आंख नहीं लगी।

कोई समय था, साधू-फकीरों से कुलदीप को चिढ़ थी। आजकल भगवा वस्त्रधारी योगी आये दिन उसके पास बैठे रहते। वह स्वयं कभी किसी आश्रम, और कभी किसी आश्रम के चक्कर काटता रहता। योगी उससे मिलने आते और वे अजीब-अजीब तरह की गंध की चिलमें बनाकर पीते, कुलदीप को बुरा न लगता। सोहणेशाह के घर जहां किसी ने कभी सिग्रेट नहीं सुलगाई थी, चरस, सुल्फा और पता नहीं किस-किसी बूटी की लाटें उठती रहतीं, धुएं उड़ते रहते।

एक दिन राजी बेबी ने देखा, कुलदीप एक धोती के टुकड़े को निगल रहा था। उसके देखते देखते सारी-की-सारी धोती वह निगल गया। राजी बेबी हक्की-बक्की देख रही थी। काटो तो जैसे लहू की बूंद न हो। कुछ मिनट, और कुलदीप ने सारी की सारी धोती फिर बाहर खींच ली। फिर एक दिन राजी बेबी ने देखा, एक टब में पानी डाल कर कुलदीप बैठा। क्षण भर बाद ही टब का पानी गायब होना शुरू हो गया। अपनी इन्द्रियों के द्वारा पानी, कुलदीप ने अपने भीतर खींच लिया था। और फिर राजी के देखते-देखते उस पानी को वापस बाहर निकाल दिया। टब का पानी वैसे का वैसा था, जरा मटियाला-सा और बस।

कई बार कुलदीप समाधि लगाकर बैठ जाता। सारी-सारी रात ध्यान-मग्न बैठा रहता। जब समाधि से उठता तो चेहरा तमतमा रहा होता। उसकी आंखों से एक न कहा जा सकने वाला सरूर झलक रहा होता। मुंह खोलता तो जैसे नगमें फूट रहे हों। कुछ सप्ताह, और उसके चेहरे से उम्र के सारे निशान एक-एक करके मिटने शुरू हो गये। एक न कही जा सकने वाली जवानी, जैसे उसके ऊपर उतर आई हो।

एक दिन सवेरे-सवेरे, सो कर उठी, राजी बेबी आंखें मलती हुई रसोई की ओर जा रही थी कि कुलदीप उसे रास्ते में मिल गया।

"लड़की, तेरी मां की तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब है।" कुलदीप चिन्ता में डूबा हुआ था।

"आपको चिट्ठी आई है?" राजी बेबी ने पूछा। "कहां है चिट्ठी?" यह सुनकर कुलदीप के हाथ-पांव फूल गये। चिट्ठी तो कोई नहीं आई थी।

राजी बेबी ने कुलदीप की बात आई गई कर दी। उन दिनों में जिस तरह की उसकी हालत थी, घरवाले कुलदीप की किसी बात पर कोई खास ध्यान नहीं देते थे।

अभी नाश्ता भी उन्होंने खत्म नहीं किया था कि लाहौर से तार आई। सचमुच सतभराई सख्त बीमार थी। राजी बेबी को उन्होंने बुलवा भेजा था।

राजी जाने के लिए तैयार नहीं हुई। जब भी कोई उसकी मां की बीमारी का ज़िक्र करता, बस यह कहा करती, "अब्बा तो वैसे ही परेशान हो जाते हैं। अम्मी का सिर दुख रहा हो तो वे डाक्टर को बुला लाते हैं।"

पर यह बात कि सतभराई बीमार है, तार के आने से पहले कुलदीप को कैसे पता चल गई। बार-बार राजी बेबी को इसका ध्यान आता और वह अचंभे में पड़ जाती।

"कुलदीप मामा, आपको अम्मी की बीमारी का सपना आया था?"

"हां", कुलदीप ने जान छुड़ाने की कोशिश की।

"सपना मुझे क्यों नहीं आया?" राजी बार-बार अपने आपसे कहती।

राजी की उन दिनों परीक्षायें चल रही थीं, वह जाने के लिए तैयार नहीं हुई। कुलदीप को, पाकिस्तान वालों ने जाने नहीं दिया। और फिर चिट्ठी आ गयी कि सतभराई की तबीयत ठीक हो गई थी। अगर हो सका, तो कुछ दिनों के लिए वह आप आ जायेगी। डाक्टरों का कहना था कि उसे हवा-पानी बदलना चाहिए।

सतभराई के आने की बात सुन कर खुशी तो सब को हुई, पर कुलदीप जैसे भीतर ही भीतर खिल गया हो। धरती पर जैसे उसके पांव न लग रहे हों। उसने अपने आप को संवारना शुरू कर दिया, घर को सजाना शुरू कर दिया। जो नई बात करनी होती, हमेशा कहता, सतभराई के आने पर करेंगे। सतभराई की सहेलियों को उसके आने की खबर देने के लिए कभी कहीं जा रहा होता, कभी कहीं। वह कमरा जिसमें कभी सतभराई रहती थी, उसने खाली करवा कर फिर से सजाना शुरू कर दिया।

हर सुबह, हर शाम कुलदीप इंतजार करता, राजी बेबी इंतजार करती। सोहणेशाह तो बस

के अड्डे और रेलवे स्टेशन के भी चक्कर काट आता, पर सतभराई नहीं आयी। फिर उसकी चिट्ठी आ गई कि उसने आने का इरादा बदल दिया था।

जो बंदिशें इधर, हम पर हमारी सरकार ने लगाई हुई हैं, वही बंदिशें उधर, उन पर उनकी सरकार ने भी लगाई हुई हैं। सोहणेशाह को सरकार की हर बात पर संदेह होने लगा था, चाहे सरकार भारत की हो, चाहे पाकिस्तान की।

जिस प्रकार चम-चम जल रहे बल्ब की रोशनी एकदम फीकी पड़ जाये, कुलदीप ने जब से सुना था कि सतभराई नहीं आ रही है, उसका चेहरा उतरा-उतरा रहता। अगले दिन उसे बुखार आ गया। पारा एकदम, जैसे तीर की तरह ऊपर चढ़ गया। अगले दिन, उस से अगले दिन जब बुखार न उतरा, सोहणेशाह सिविल सर्जन को बुला लाया। सिविल सर्जन ने मुआयना करके बताया, कुलदीप को यरकान था। तभी तो उसकी आंखें पीली पड़ गई थीं। उसका रंग हल्दी की तरह ज़र्द हो गया था। पीलापन, जैसे उसके कपड़ों से निचुड़ रहा था। उसका कुर्ता पाजामा पीला-ज़र्द हो गया था।

कुछ दिन बाद सतभराई की फिर चिट्ठी आई। उसे भी पीलिया की बीमारी हुई थी।

"एक देश, एक-लोग, एक जैसी बीमारियां और हमें बांट कर इन्होंने सत्यानाश कर दिया है।" सोहणेशाह ने सुना तो हमेशा की तरह वह उबल पड़ा।

गुरमीत इससे कभी भी सहमत नहीं हुआ था। उसका कहना था कि इसमें भी कोई भलाई थी।

सीता, गुरमीत की दीवानी थी। उसकी हर बात से वह सहमत होती। सोहणेशाह को यह बात ज़हर की तरह लगती।

कुछ दिन बाद, कुलदीप की हालत जैसे और अजीब-अजीब सी हो गई हो।

हर समय राजी बेबी से उसकी मां की बातें करता रहता। जब भी उसके हाथ लग जाती, सतभराई की कहानियां लेकर बैठ जाता। सतभराई की बातें करते हुए जैसे मीठा शहद उसके होंठों से चू रहा हो, उसकी आंखों में एक अनोखी चमक झलकने लगती, एक अजीब गर्माहट - का-सा उसके अंग-अंग में संचार होने लगता।

इस तरह दुलराया-जाता देखकर, राजी बेबी को अपनी मां पर अथाह प्यार आने लगता। अपने कमरे में, गोल कमरे में, कुलदीप के कमरे में जगह-जगह पर उसने सतभराई की नई पुरानी तसवीरें सजा दीं। सतभराई का इस तरह, इस घर में याद किया जाना सोहणेशाह को भी बड़ा अच्छा लगता था। बार-बार, आजकल सोहणेशाह को याद आता, किस बेदर्दी से कुलदीप ने उस लड़की को पाकिस्तान भिजवा दिया था। पता नहीं कब का बैर उसके साथ निकाला था? किस तरह सोहणेशाह तड़पा था।

कुछ इस तरह की तड़प, आजकल कुलदीप के भीतर, सतभराई के लिए, भड़क उठी थी। पिछले तीन दिनों से जैसे कुलदीप ने अपने कमरे में अपने आप को बंद कर रखा हो। एक घड़ी भर के लिए बाहर निकलता, फिर गायब हो जाता। चौथे रोज़ जब उसने अपने कमरे का दरवाजा खोला तो राजी ने देखा जैसे वह कमरा खुशबुओं से भरा हो। एक पल के लिए कमरे

में जाकर वह खड़ी हुई तो उसे लगा जैसे कमरे की हर दिशा से, हर कोने से "सतभराई", "सतभराई" की प्रतिध्वनि गूंज रही हो। और हर क्षण यह आवाज स्पष्ट और गहरी होती जा रही थी। जैसे कोई नाम की रट लगा रहा हो।

एक दिन भोर होते ही, कुलदीप ने, घर में हर किसी को हिला दिया। सतभराई आ रही है। स्टेशन पर कौन-कौन चलेगा ? हर किसी से कहता। अभी मुंह-अंधेरा था। घरवाले आजकल कुलदीप के बावलेपन से परिचित थे। किसी ने उसकी बात पर ज्यादा ध्यान न दिया। राजी ने चिढ़ कर कहा,– "कुलदीप मामा, न चिट्ठी न तार! अम्मी ऐसे कैसे आ सकती है ?" चिट्ठी या तार तो सचमुच कोई नहीं आई थी, पर कुलदीप का मन कहता, सतभराई आ रही थी। घर में किसी व्यक्ति ने उसकी बात को महत्व न दिया। राजी करवट बदल कर गहरी नींद सोई पड़ी थी। कुलदीप अकेला ही स्टेशन चला गया।

कोई एक घंटा भी न बीता था कि छन-छन करता हुआ एक तांगा उनके घर के सामने आ रुका। तांगे में से सतभराई निकली जैसे कोई परी हो। कोमल सी। हर कोई आंखें मल मल कर उसकी ओर देखता। "यह तो सपना है, यह तो ख्वाब है।" सोहणेशाह सतभराई को अपने आलिंगन में भर कर बार-बार बुड़बुड़ा रहा था। घर में किसी को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। राजी अजीब शशोपंज में थी। बार-बार अपने आपसे कहती, "सवाल यह है, कुलदीप मामा को कैसे पता चल गया कि अम्मी फलां गाड़ी से आ रही हैं।"

108

कुलदीप को महसूस होता जैसे सतभराई और ऊंची हो गई हो, और सुन्दर हो गई हो, और आकर्षक हो गई हो। उसकी ओर इससे देखा न जाता। जिसे यह पिछले कई दिनों से दिन-रात, रात-दिन याद कर रहा था, दिन-रात, रात-दिन जिसका यह नाम रटता रहता, दिन-रात, रात-दिन जिसे एक नज़र देखने के लिए यह तड़पता रहता, वह सतभराई से दूर-दूर रहता। जहां तक मुमकिन होता उसके साथ अकेला न बैठता। जहां तक मुमकिन होता, उससे बात न करता। जहां तक मुमकिन होता, उसकी ओर आंख उठाकर न देखता। सतभराई की सुघड़ता, सतभराई के भीतर की औरत का संयम, सतभराई की आंखों की लाज, वह अपने मन को टटोलती रहती, उसे तो लगता था जैसे कोई उसको पुकार रहा हो, और वह बंधी हुई, खिंची हुई, अपना घर-बार छोड़ कर इधर आ गई थी। इतनी उम्र तक उसकी अपने घरवाले से कभी कोई गलतफहमी नहीं हुई थी, पर इस बार आने से पहले बदमज़गी हो गई थी। सतभराई को यह बात याद करके बड़ा बुरा लगता।

कुछ दिनों बाद जब सतभराई के आने की खुशी कम हुई, सोहणेशाह को डर लगने लगा, कहीं वह राजी बेबी को लेने तो नहीं आई थी। और जैसे कोई मुर्गी, चूजों को पंखों के नीचे

छिपाये फिरती है, सोहणेशाह राजी को अपने साथ हर समय टांगे रहता। जहां मां-बेटी जाते उनके साथ जाता, जहां वे मिल बैठतीं वहां वह हाज़िर रहता। क्या मजाल जो वे अकेली रह जायें, सोहणेशाह का दिल धक-धक करने लग जाता।

सतभराई के मन की स्थिति सतभराई भी समझती थी, राजी भी जानती थी। फिर एक दिन राजी हंसते-हंसते कहने लगी –

"नाना, मैं कहीं नहीं जा रही हूं। चाहे मेरी अम्मी ही जाने के लिए मुझसे क्यों न कहे। इतने अविश्वासी क्यों हो गये हैं आप, आजकल ?"

और फिर सतभराई ने सोहणेशाह को विश्वास दिलाया – "जब तक राजकर्णी को ढूंढ़ कर हम नहीं ला देते, यह लड़की आपके हवाले है। इसीलिए तो इसके अब्बा ने इसका नाम राजी रखा था।"

सोहणेशाह ने सुना तो छल-छल आंसू उसकी आंखों से बहने लगे।

"राजकर्णी अब कहां मिलेगी !" सोहणेशाह फूट पड़ा, "इतने बरस हो गये, राजकर्णी अब कहां मिलेगी ? अपने बाबा को याद करती हुई कहीं मर खप गई होगी।"

"जिनका मिलाप होना होता है, बाबा होके रहता है। हमने तो अभी हौसला नहीं हारा। पिछली बार कुलदीप शहर-शहर, गली-गली घूम कर उसे ढूंढ़ता रहा है।"

"कुलदीप तो पगला है। इसका मुझे कोई भरोसा नहीं। कभी तोला कभी माशा। कैसे तुझे उसने इधर से निकाल कर उधर भिजवा दिया था ?

"तो फिर क्या ? अच्छा भला मेरा घरबार है। बाल-बच्चे हैं। धी-ध्यानियों को भला और क्या चाहिए ?"

"हाय, हम कहां थे और कहां पहुंच गये हैं ?"

"मुझे तो अपनी पोठोहारी बोली भी भूल गई है। मैं उधर किसी को पोठोहारी में बात करते हुए सुनती हूं तो मेरे कानों में गीत गूंजने लगते हैं।"

"हाय, कभी हमारी बोली सुनने के लिए लोग, हमारी तरफ कान लगा लेते थे, राह चलते हमें रोक-रोक लेते थे। अब मुझे ही पोठोहारी में बात किए हुए हफ्ते गुजर जाते हैं।"

"अपनी-अपनी बोली सबको मीठी लगती है।" राजी बेबी कहने लगी। मेरी कौन-सी बोली है ? लाहौर में पैदा हुई, जालंधर में पली, अंग्रेजी स्कूलों में पढ़ी। हमारे स्कूल में अगर कोई अंग्रेजी में बात न करे तो उस पर जुर्माना होता है। पंजाब के हिन्दू अपनी बोली हिन्दी बताते हैं।"

इस तरह ये बातें कर रहे थे कि कुलदीप का टेलीफोन आया, वह सिनेमा की सीटें बुक करवा रहा था, कौन कौन चलेगा ? सीता और गुरमीत कहीं गये हुए थे। शाम का खाना उन्हें बाहर ही खाना था। राजी वह पिक्चर, सहेलियों के साथ दो बार देख चुकी थी। सोहणेशाह को सिनेमा में कोई दिलचस्पी नहीं थी, बाकी बची सतभराई। कुलदीप से कहा न गया, कि बस दो टिकटें ही खरीदे। कुलदीप और सतभराई के लिए।

सतभराई ने सुना तो उसे मन ही मन जैसे गुदगुदी होने लगी। बस, एक क्षण भर के

लिए। और फिर उसके मन ने कहा, कुलदीप सिनेमा के दो टिकट कदापि नहीं खरीदेगा।

और वही बात हुई, दोपहर को जब कुलदीप घर लौटा, बात बनाने लगा। वह सिनेमा पहुंचा तो पहले ही सारे टिकट बिक चुके थे।

"कुलदीप मामा, इस सिनेमा के टिकट आप कब खरीदते हैं?" राजी ने कुलदीप का भंडाफोड़ कर रख दिया, इस सिनेमा में तो आप हमेशा सिनेमा के मालिक के मेहमान हो कर जाते हैं। पिक्चर देखो और खान-पान भी करो, लाख आप की खातिरदारी होती है।"

कुलदीप हल्का पड़ने लगा। सतभराई ने उसकी मदद की। "अच्छा ही हुआ, मेरी तबीयत आज कुछ ढीली है। मैं तो हाथ जोड़ रही थी – अल्लाह, आज टिकटें न मिलें।"

"चलो कल सही, पाकिस्तानियों को हिन्दुस्तानी पिक्चरें बड़ी पसंद हैं।" राजी ने कहा।

अगले दिन कुलदीप ने सीता को सतभराई के साथ चलने के लिए तैयार कर लिया। और स्वयं उस शाम, वह कुसुम के यहां चला गया।

कुसुम को अजीब लगता था यह आदमी। न आता तो छै-छै महीने मुंह न दिखाता। गली-बाज़ार में मिलता तो जैसे जान-पहचान न हो। और फिर किसी दिन अचानक आंगन में आ धमकता। सारी-सारी शाम बैठा गप्पे हांकता रहता, खाता-पीता रहता।

उस शाम कुसुम सिग्रेट पर सिग्रेट पीती जा रही थी। एक सिग्रेट खत्म होती, उससे दूसरा सुलगा लेती। कुछ दिन हुए, कुसुम ने अपने बाल कटवा लिए थे। कंधों पर नाच रहे उसके तराशे हुए रेशमी बालों के गुच्छे; ज़हीन चेहरा, आंखों पर काले शीशों का चश्मा, कुसुम आजकल दिन पर दिन बदलती जा रही थी।

कुछ देर से कुलदीप को महसूस हो रहा था, जैसे थोड़े-थोड़े समय बाद कुसुम रसोई की ओर जा रही थी। कुसुम के नौकर बड़े सयाने थे, उसने कभी खाना पकाने की परवाह नहीं की थी। पर आज वह बार-बार गायब हो जाती। थोड़ी ही देर में फिर आ कर कुलदीप के पास बैठ जाती। गप्पे हांकने लग जाती। जैसे-जैसे शाम गहरी होती जा रही थी, कुलदीप को लगता जैसे कुसुम अधिक चंचल होती जा रही हो, ज्यादा चहकने लग गई हो। और जब एक बार फिर कुसुम भीतर चक्कर काटकर लौटी बाहर लान में बैठे कुलदीप को एक हल्की सी खुशबू आई। कुलदीप को लगा जैसे कुसुम कुछ पी रही हो। फिर यह सोच कर कि डाक्टरों की सांस में से हमेशा किसी न किसी दवाई की सुगंध आती है, कुलदीप ने इस ओर ध्यान न दिया।

ज़रा और अंधेरा हुआ तो कुसुम अपना जाम थामे हुए आ गई। "कुलदीप, तुम कब शराब पीना शुरू करोगे? तुम्हारी सेहत के लिए हर शाम, व्हिस्की का एकाध पेग बहुत जरूरी है।" वह कुलदीप को छेड़ रही थी।

कुलदीप बिट-बिट कुसुम के मुंह की ओर देख रहा था। इससे पहले वह एक दो जाम जरूर पी चुकी थी। उसके गाल तप रहे थे, उसकी आंखों में एक चंचलता झलक रही थी। और फिर कुसुम ने गुनगुनाना शुरू कर दिया –

+ अज एधर पलकां भिझिआं
  अज ओधर पलकां गिलिआं
  अज मुड़ मुड़ अखियां आखण
  असीं याद किसे नूं आये ।

कुसुम की फरमायश थी कि रात का खाना, कुलदीप उसके साथ ही खाये । कितनी रात तक कुसुम पीती रही और गाती रही । अजीब मज़े में थी । अब उसने एक पोठोहारी गीत शुरू किया –

+ + अज कोई आया साडे विहड़े
  तकन चन्न सूरज ढुक-ढुक नेडे

कुसुम की आवाज में एक न कहा जा सकने वाला दर्द था । एक लहर में वह गा रही थी । गाते-गाते उसके मन में पता नहीं क्या आया, वह अपनी कुर्सी से उठ कर सामने रखी तिपाई पर बैठ गयी और बार-बार कुलदीप को एक घूंट अपना जाम पीने के लिए कहने लगी । कुलदीप अपनी जिद पर अड़ा हुआ था । जब तक उसका यह फैसला था कि वह शराब नहीं पियेगा, वह एक घूंट भी लेने के लिए तैयार नहीं था ।

"तुझे आज अपना यह फैसला तोड़ना होगा ।" कुसुम की शोखी, बदमस्ती का रूप धारण करती जा रही थी ।

कुलदीप हैरान होकर उसकी ओर देख रहा था ।

और अब कुसुम उठ कर उसकी गोद में, घुटनों पर आ बैठी और अपना जाम उसने कुलदीप के होंठों से लगा दिया ।

कुलदीप को, कुसुम की इस हरकत पर खीझ सी आई । उस क्षण तो वह खामोश रहा, पर कुछ देर बाद वह बाथरूम जाने का बहाना बनाकर कोठी के अंदर गया । कुलदीप को कोठी की ओर जाते देख कुसुम मुस्कराई । कुसुम को पता था, कुलदीप कोठी की ओर क्यों जा रहा था । वही बात हुई, कुलदीप ने उधर बरामदे से बाहर निकल कर देखा, कोठी का गेट बंद था । गेट को ताला लगा हुआ था । शराब में मदहोश कुसुम को यह बात नहीं मालूम थी कि जो लोग न फंसना चाहे उनके लिए भाग निकलने के कई रास्ते होते हैं । कुलदीप नौकरों के क्वार्टरों की ओर से होता हुआ फिर उस रात गायब हो गया । बाट देख-देख कर जब कुसुम कोठी में आई, कुलदीप को कहीं न देख कर उसकी आंखों से, जैसे आंसुओं की धारा फूट पड़ी ।

कुछ देर बाद कुसुम ने कुलदीप को टेलीफोन किया । "मैं सोचती हूं तुम कहीं खुसरे तो

+ [आज इधर पलकें भीगीं
  आज उधर हैं पलकें गीली
  आज बोल रही हैं अखियां
  हम याद किसी को आये]

+ [आज कोई हमारे आंगन में आया है
  चांद और सूरज पास-पास आकर देख रहे हैं]

नहीं ? अगली बार तुम इधर आये तो मैं तुम्हारा मुआयना करवाऊंगी।" जैसे कोई जहर उगल रहा हो, कुसुम ने टेलीफोन के चोंगे में इस तरह की कुछ बकवास की और फिर टेलीफोन पटक दिया।

आज दूसरी बार कुसुम की हार हुई थी। और कुसुम धड़ाम से अपने पलंग पर औंधी जा गिरी। उसकी मदहोश आंखों के सामने एक-एक करके कई तसवीरें घूमने लगीं। वे लोग जो उसकी एक मुसकान के लिए, अपनी लाख मुस्कराहटें कुर्बान करने के लिए तैयार रहते थे। और कुसुम सोचती, उसने अपने आपको इस आदमी के लिए संभाल-संभाल कर रखा था, जिसे उसकी इतनी कद्र नहीं थी।

क्षण भर बाद ही, कुसुम को ऐसा लगा, जैसे उसका सारा नशा उतर गया हो। सारी वह रात, कुसुम आठ-आठ आंसू बहाती रही। सारी वह रात उसकी सेज जैसे उसे कांटों की तरह चुभती रही। भोर फूटने से कुछ पहले वह उठी, उसने नींद की गोलियां खाईं तो उसकी आंख लगी।

109

सतभराई, वापस लाहौर जाने के लिए तैयार होने लगी। सोहणेशाह ने सुना तो टूटी खाट लेकर पड़ गया। आखिर क्यों ? सतभराई को तो जाना ही था। आज न जाती, कल चली जायेगी। अपना घर-बार छोड़कर आई थी। उधर उसके बेटे थे, पति था, घर था जिसे छोड़ना किसी घरवाली के लिए कभी आसान नहीं होता।

सोहणेशाह से ज्यादा, मानसिक हालत, कुलदीप की खराब थी। सतभराई के जाने की बात सुन कर इसे लगा जैसे पांव तले जमीन खिसकती जा रही हो। जैसे सच्चे रेशम की कोई लच्छी इसकी उंगलियों में से फिसलने लगी हो। वह सतभराई, जिस से पिछले कई दिनों से यह परे-परे रहता था, जिस से सीधे मुंह बात करने पर इसे डर लगता था; अब, जबकि वह जा रहीं थी, कुलदीप को लगता, अब इसकी ज़िंदगी अंधेरा-अंधेरा हो जायेगी। जैसे किसी काली-कोठरी में से कोई एकमात्र जलती लालटेन को उठा कर चल पड़े। कुलदीप बुझा-बुझा रहने लग गया, जैसे किसी का दम घुट रहा हो।

घर में अगर कोई नार्मल था तो राजी बेबी। दिन रात अपनी मां के जाने की तैयारियां करती रहती। जो-जो चीज़ उसके साथ जानी थी; इकट्ठी करती रहती। ढेरों रुपयों का कपड़ा, सतभराई ने खरीद लिया था। पान के पत्तों से लेकर, केले के गुच्छों तक का प्रबंध कर दिया गया था। जब वह चलेगी मंडी से ताज़ा, उसके लिए आ जायेंगे।

फैसला यह हुआ कि कुलदीप और राजी दोनों सतभराई को फीरोज़पुर सीमा तक पहुंचा कर आयेंगे। सुबह की गाड़ी से जायेंगे, शाम की गाड़ी से लौट आयेंगे।

अब, जबकि सतभराई जा रही थी, कुलदीप का जी चाहता, किसी तरह वह रुक जाये। किसी तरह उसे बांध लिया जाये। घर में बाकी लोग थे, पर कुलदीप को लगता, सतभराई चली गई तो यह घर सूना हो जायेगा। वह बार-बार अपने दिल को टटोलता, क्यों वह नहीं चाहता था कि सतभराई अपने घर, अपने घरवाले के पास, अपने बेटों के पास वापस चली जाये ? उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। पर उसका दिल एक ही जगह फँसा हुआ लगता था। किसी तरह सतभराई को रोक लिया जाये। हर समय वह अरदास करता रहता। हाथ जोड़ता रहता, हर समय रुआंसा-रुआंसा। उसका अंग-अंग दुख रहा था।

उस शाम विचारों में डूबा हुआ कुलदीप, अपने कमरे में बैठा था कि सतभराई अंदर आई। भीतर आकर उसने कमरे का दरवाजा भेड़ लिया।

"कुलदीप, मुझे तुमसे कुछ ज़रूरी बात करनी है।"

कुलदीप चौंक गया। सतभराई के चेहरे से लग रहा था कि बात कोई साधारण नहीं है।

"कुलदीप, तुझे पता है मैं इस तरह अचानक क्यों तुम्हारे यहां आ गई थी ?"

कुलदीप की चिन्ता बढ़ गई।

"कुलदीप, तूने भी महसूस किया होगा कि इतने दिन मुझे आये हुए हो गये हैं, रशीद की कोई चिट्ठी नहीं आई। न मेरे पास न तुम में से किसी के पास।"

कुलदीप कुर्सी पर सिकुड़ कर बैठ गया। यह तो सचमुच कोई खतरे वाली बात थी।

और फिर सतभराई फूट-फूट कर रोने लगी। रोती जाये, रोती जाये, लहू के आंसू। कुलदीप बिट-बिट आंखों से उसकी ओर देख रहा था, सोते सूखे हुए। यह क्या होने वाला था ? कभी वह नीचे फर्श की ओर देखता, कभी सतभराई के मनमोहक चेहरे की ओर, जो रो-रोकर बेहाल हो रही थी।

जब सतभराई का जी हल्का हुआ, तो जो कुछ उसने बताया, सुन कर कुलदीप के पांव तले ज़मीन निकल गई। धरती जगह नहीं देती थी कि वह उसमें समा जाये।

रशीद को शक था कि सतभराई, कुलदीप से प्यार करती थी। रशीद का कहना था कि सोते-सोते वह कुलदीप से बातें करती रहती थी। कुलदीप का नाम लेकर सपनों में उसको पुकारती थी। कई बार इस तरह इसने उसकी नींद खराब की थी। और सतभराई के जालंधर आने से कुछ दिन पहले तो अनर्थ ही हो गया।

"मैं गहरी नींद में सोई पड़ी थी कि पास के पलंग पर पड़े रशीद ने एकदम मेरे मुंह पर थप्पड़ दे मारा। पांचों की पांचों उंगलियां मेरे गाल पर धंस गई। भौंचक्की होकर मैं उठ कर बैठ गई। बिट-बिट उसके मुंह की ओर देख रही थी कि उसने मुझ पर गंदी गालियां बकनी शुरू कर दीं। बार-बार मुझे तकिये के गीले हुए किनारे दिखाता और कहता, मैं रो-रो कर फरियाद कर रही थी, कुलदीप ! मुझे छोड़ कर न जा। पूरे चांद की रात थी। चांद की चांदनी रोशनदान से छन-छन कर मेरे पलंग पर पड़ रही थी। और फिर उसने आईना ला कर मेरे हाथ में थमा दिया। सचमुच मेरी आंखें लाल हो रही थीं। मेरी पलकें भीगी-भीगी थीं। रशीद ने बताया कि मैं कितनी देर से सुबक-सुबक कर रो रही थी, रशीद को बुरा-भला कह रही थी और

कुलदीप से लाड-प्यार कर रही थी। और वह कहता, रोज़ का मेरा यह चलन था। हर रोज़ सोते-सोते मैं इस तरह की हरकतें करती थीं। यह सुन-सुन कर, देख-देख कर थक गया था। और उसनें फैसला किया था, अब और वह इस बेहूदगी को बर्दाश्त नहीं करेगा। वह तो तलाक की धमकी दे रहा था।"

सतभराई बातें करते-करते फिर रोने लगी।

"यह फरेब है, एक बेहूदगी है।" कुलदीप कड़का, उसका दिल कहीं और तो नहीं लग गया?"

"नहीं, नहीं, कुलदीप मेरी जान, ऐसा कुछ नहीं।" अब सतभराई कुलदीप के पलंग पर आ बैठी थी और उसने अपनी बाहें उसके गले के गिर्द लपेट दी थी।

"वह जरूर कहीं और झक मार रहा होगा। तेरे कंधे पर बंदूक रख कर..."

"यह बात नहीं कुलदीप। यह बात हरगिज नहीं। रशीद बेचारे का कोई कसूर नहीं। उसने तो हमारी एक-एक पुरानी बात, मुझे बता दी है। सोते-सोते मैं ये बातें करती रहती थी और वह सुनता रहता था। सुनता रहता होगा और रोता रहता होगा।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"उसे हमारा रावलपिंडी छावनी के शरणार्थी कैम्प में मिलना, फिर मेरा बीमार पड़ जाना, फिर हमारी दोस्ती, फिर उस रात की मुलाकात, जब चाचा लौट कर आया, चाचा का शरणार्थी कैम्प में से मुझे निकाल कर चल देना और फिर रेलवे प्लेट-फार्म पर तेरा मुझे ढूंढ़ना और रेल के डिब्बे में बैठे हुए मेरा तड़पते रहना, एक एक बात मालूम है।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"ऐसा लगता है, मैं सोते-सोते बोलती रही हूं। पर वह कहता है, हर रोज़, हर दूसरे रोज़ सोते-सोते मैं उठकर बैठ जाती थी और तेरी कहानियां कहने लग जाती थी। वह सुन सुन कर घुटता रहता था।"

"यह सब धोखा है।"

"यह धोखा नहीं, मेरी जान, यह सच्चाई है। पता नहीं मैं क्या-क्या बकती रहती हूं, रशीद तो कहता है, कोई और मर्द होता तो मुझे वहीं काट डालता।"

"इसमें जरूर कोई फरेब है।"

"नहीं, नहीं, नहीं। मैं तुझे कैसे बताऊं? ऐसे लगता है, मैं सपनों में सोते-सोते, वह सब कुछ करती रही हूं जो कुछ ज़िंदगी में कभी नहीं कर सकी। वह सब कुछ, जो करने के लिए मैं तड़पती रही हूं। रशीद ने मुझे एक-एक बात बताई है। मैं तो उसे मुंह दिखाने योग्य नहीं रही।"

"पिछली बार जब मैं तुम्हारे यहां आया, वैसी ही किसी बात पर रशीद को गलत-फहमी हो गई होगी।" कुलदीप ने, अपनी गर्दन के गिर्द लिपटी हुई सतभराई की बाहों को अलग करते हुए कहा।

"तुझे कैसे समझाऊं, कुलदीप। पिछले कई दिनों से मुझे हर वक्त तेरी याद सताती रहती

थी। मुझे ऐसा लगता, जैसे तू बुला रहा हो। मेरे कानों में तेरी पुकार सुनाई देती रहती। मुझे महसूस होता, मेरी याद में कोई तड़प रहा है, बेहाल हो रहा है। और कई बार बिल्कुल अकेली बैठी, मैं अपने-आप तुझ से बातें करने लग जाती। तुझे ताने देने लगती। और कितनी-कितनी देर यह स्वांग रचाये रखती। फिर अचानक मुझे ध्यान आता, यह मैं क्या पागलपन मचा रही हूं और मैं पानी-पानी हो जाती। मुझे अपने आपसे डर लगने लगता। और मैं अपने मन को समझाती रहती। अपने आपको रोक-रोक कर रखती। ऐसे लगता है, जो कुछ दिन-दहाड़े, होश में, मैं अपने आपको करने से बचाये रखती, रात को सोते-सोते मैं वह सब कुछ करती रही हूं।"

"रशीद की यह ज्यादती है।" कुलदीप जान छुड़ाने की कोशिश में था।

"तू ऐसा न कह कुलदीप। रशीद बेचारे का कोई कसूर नहीं। किसी की औरत उसके सामने किसी पराये मर्द का नाम ले ले कर याद करे। किसी की औरत उसके सामने किस पराये मर्द से मुहब्बत करे। कौन-सा खाविंद है जो यह सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है?"

"और उसने तुझ से बदतमीज़ी की?"

"हां, उसने मुझे थप्पड़ दे मारा। उस रात पलंग पर मैं तेरे साथ पड़ी हुई थी। मुझे तो वह कत्ल कर देता तो भी कम न था।"

"तुझे कैसे पता लगा?" कुलदीप सतभराई को टालने की कोशिश में था।

"किसी औरत को पता नहीं होता, सपने में उसने क्या करतूत की है? भीतर-बाहर से मैं भीगी-भीगी थी, पसीना-पसीना थी। मेरा अंग-अंग ऐंठा हुआ था।"

"सत्ती, तू तो हमेशा मेरी दीवानी रही है।" कुलदीप यह कहता हुआ पलंग से उठा। इतने में बाहर, दरवाजे को किसी ने खटखटाया। यह तो लेडी डाक्टर कुसुम थी। अगले क्षण वह कमरे में आकर बैठ गई।

"ये आपने बत्ती क्यों नहीं जलाई अभी तक? रात हो रही है।" कुसुम ने आगे बढ़ कर बत्ती का बटन दबाया और सामने जिस कुर्सी पर वह हमेशा बैठा करती थी, जम कर बैठ गई।

110

कुलदीप ने जैसे शुक्र मनाया हो! कुसुम आई और उसकी जान छूटी। अजीब शिकंजे में आज यह फंसा था।

"मैंने सोचा, राजी की अम्मी से मिल आऊं। कुसुम कहने लगी, सुना है आपने जाने की तैयारी कर ली है। मेरा, लाहौर देखने का बड़ा जी चाहता है।

"तो फिर आप आते क्यों नहीं? सतभराई ने कहा, मेरे साथ ही चलिए। आपका अपना घर है वहां।"

"हाय, लाहौर जैसा कोई शहर नहीं दुनिया में। मुझे तो लाहौर के सपने आते रहते हैं। लाहौर की सड़कों पर घूम रही हूं, लाहौर की गलियों में आ-जा रही हूं।'

सपने के नाम से सतभराई का चेहरा पीला पड़ गया। वह कुलदीप के पलंग से उठ कर सामने कुर्सी पर आ गई।

"मैंने डाक्टरी, लाहौरके कालेज से पास की है। हमारे साथ के जो लड़कियां-लड़के फेल होते थे, दूसरे उन्हें बधाई देते थे, कुछ देर और वे लाहौर में रह सकेंगे। हम जो पास होते थे, हमें अच्छा नहीं लगता था। यह सोचकर कि लाहौर छोड़ना पड़ेगा, दिल धक-धक करने लगता था।"

"अब तो लाहौर और भी सुन्दर हो गया है।"

"पता नहीं, पाकिस्तानियों ने उस पर क्या किया होगा। हमें तो वह पुराना लाहौर पसंद था। इतना बड़ा हो कर भी इतना छोटा कि किसी की मुट्ठी में आ जाये।"

बातें करते-करते कुसुम चली गई। अपने साथ कुलदीप को भी ले गई। कुलदीप तो जैसे इसकी बाट देख रहा हो, कुसुम ने संकेत ही किया और वह उसकी मोटर में बैठ गया।

"आप अभी तो नहीं जा रहे हैं?" मोटर चलाने से पहले कुसुम ने सतभराई से पूछा।

"इतनी जल्दी हम इन्हें नहीं जाने देंगे।" कुलदीप ने कहा।

"मैं तो हमेशा हमेशा के लिए रहने को तैयार हूं। कोई मुझे रखने वाला तो हो। सतभराई ने ठंडी सांस लेकर कहा। आंसुओं से भीगे हुए शब्द।

कुसुम ने सुना तो उसके दिल को कुछ होने लगा। कुलदीप के चेहरे का रंग उड़ गया। कुछ देर के लिए जैसे सकता तारी हो गया हो। और फिर कुसुम ने मोटर चला दी।

देखते-देखते मोटर दूर निकल गई। सतभराई की आंखों के सामने अजीब भयानक चित्र उभरने लगे। सतभराई का जी चाहता, पुकार-पुकार कर, चीख-चीख कर कहे, कोई उस मोटर को रोक ले, उस मोटर का हादसा होने वाला है। उस मोटर को चलाने वाली औरत बेरोक-टोक मौत के मुंह में जा रही है।

कुछ देर बाद सतभराई ने राजी से कहा, टेलीफोन करके पता करो कुलदीप राज़ी ख़ुशी कुसुम के घर पहुंच गया है।

हां, वो घर पहुंच गये थे। मोटर गैराज में रख कर दोनों सैर के लिए गये हैं। राजी ने बताया।

सतभराई को एक अकथनीय बेचैनी महसूस हो रही थी। उसका दिल चाहता वह अपने कपड़े फाड़ डाले। उसको कमरे में, दम घुटता महसूस हो रहा था। किसी की बात अच्छी नहीं न लग रही थी। वह छत पर जा कर अपने आप अकेली टहलने लगी। अंधेरे में दूर-दूर आंखें फाड़-फाड़ कर झांकने की कोशिश कर रही थी। कितनी देर सतभराई इस तरह छत पर टहलती रही। एक वह थी और एक चिमगादड़ थी जो छत के चक्कर काट रही थी। और शेष, घुप अंधेरी रात का अंधेरा था।

उधर कार में बैठे हुए, कार से घर पहुंचते हुए, कार छोड़ कर बाहर सैर को निकलते हुए,

लेडी डाक्टर कुसुम अपने और कुलदीप के बीच एक सम्मानपूर्वक अंतर बनाये हुए थी। वह ज़माने भर की बातें कर रही थी पर पहले की तरह उसके साथ सट-सट कर नहीं चल रही थी। हर अंधेरे कोने में, हर पेड़ की घनी परछाईं में उसकी ओर मुंह उठा कर ऐसे नहीं देखती थी कि वह इसके होंठों को चूम ले। शहर से बाहर वीरान सड़क से होते हुए वे खुले खेतों में घूमते रहे, पर एक बार आज कुसुम ने यह कोशिश नहीं की थी कि आगे बढ़कर कुलदीप का हाथ पकड़ ले, उसकी बांह में बांह फंसा ले, उसके साथ घिसट-घिसट कर चले। कुलदीप को कुसुम का व्यवहार हैरान भी कर रहा था, अच्छा भी लग रहा था।

और इस तरह घूमते-घूमते जब वे घर लौटे, बहुत रात बीत चुकी थी। नौकर खाना तैयार करके जम्हाइयां ले रहा था।

खाना खाते हुए कुसुम अपने आप से बातें करती जा रही थी। क्या मजाल जो कुलदीप को बीच में बोलने दे। कुसुम का विचार था, पाकिस्तान और भारत में झगड़ा हमेशा चलता रहेगा। कश्मीर नहीं होगा कच्छ होगा, कच्छ नहीं होगा तो नहरों का पानी होगा, कोई न कोई बहाना ढूंढ़ कर वे भारत से बैर बनाये रखेंगे। इतने में नई पीढ़ी आ जायेगी। वे नौजवान जो देश के बंटवारे के बाद पैदा हुए थे, उनके लिए भारत उतना ही पराया होगा जितना बर्मा, थाईलैण्ड और कम्बोडिया! हमारे हक में यही है कि हम अब पाकिस्तान और पाकिस्तानियों को भुला दें। पिछली लड़ाई को पांच छः साल बीत चुके हैं। अगली लड़ाई किसी समय भी छिड़ सकती है। कोई बहाना मिला, और यह चिनगारी आग की लपटों में बदल जायेगी। मुसीबत यह है कि आजकल के जमाने में कोई निर्णायक युद्ध नहीं हो सकता। हर लड़ाई में न कोई पूरा जीतता है न कोई पूरा हारता है! हारे हुए चाहें तो अपने आपको जीता हुआ प्रमाणित कर सकते हैं, जीते हुए, अगर कोई चाहे तो हारे हुए बताये जा सकते हैं।

खाना खा चुके तो वे गोल कमरे में जा बैठे। कुसुम ने टेलीविजन पर लाहौर लगाया। भारत के विरुद्ध प्रचार किया जा रहा था। टेलीविजन बंद करके लाहौर रेडियो सुनना चाहा, मुशायरे में शायर भारत के विरुद्ध ज़हर उगल रहे थे। फिर उन्होंने जालंधर स्टेशन लगाया, कोई वार्ता हो रही थी जिसमें पाकिस्तान को दोषी ठहराया जा रहा था। कुसुम ने सुई दिल्ली की ओर घुमाई, अंग्रेज़ी में एक परिसंवाद ब्राडकास्ट किया जा रहा था। विषय था– पाकिस्तान में दरार। बहस में भाग लेने वालों की सर्वसम्मति से यह राय थी कि पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पाकिस्तान के साथ कदापि नहीं रहेगा।

"दोनों पक्ष एक से एक बढ़कर हैं।" कुलदीप ने सिर झटक कर कहा।

"दोनों का मुंह काला है। पर पाकिस्तान का जरा ज्यादा।" कुसुम ने राय दी।

"उन्नीस बीस का फर्क है बस, ज्यादा नहीं।" कुलदीप कहने लगा।

"पाकिस्तानी कोई पराये नहीं। कल तक हमारे अंग के अंग थे।"

"जब मैं लाहौर जाता हूं, मुझे ऐसा लगता है जैसे हर शक्ल पहचानी-पहचानी हो।"

"अच्छा, यह भी आज पता चल गया कि आप लाहौर क्यों जाते हैं?"

"क्या मतलब?" कुलदीप चौंक गया। और फिर एक परेशान कर देने वाली खामोशी

छा गई।

अगले क्षण कुसुम ने सिग्रेट सुलगा लिया। कितनी देर वह सिग्रेट के धुएं के गोल छल्ले बनाती रही। कुलदीप चुपचाप बैठा था। उसका एक रंग आता,एक रंग जाता।

111

सतभराई,वैसे भी जाने की सोच रही थी। अचानक उसका मन कुछ इस तरह उदास हो गया कि अगली सुबह बोरिया-बिस्तर बांध लिया। कुलदीप कहने लगा,उसे तो किसी जरूरी काम से चंडीगढ़ जाना है। सतभराई बोली,वह अकेली चली जायेगी,आखिर आई भी तो अकेली थी। सोहणेशाह यह कब सहन करने वाला था? वह स्वयं सतभराई के साथ चल पड़ा। कुलदीप फिर भी टस से मस न हुआ। उधर ये लोग रेलवे स्टेशन के लिए चले,इधर वह बस पकड़ कर चंडीगढ़ चला गया।

सतभराई चली गयी। इस बार ऐसी गयी कि फिर कभी उसकी कोई चिट्ठी न आई। उसने तो यह भी नहीं बताया कि वह राजी-खुशी लाहौर पहुंच गई थी। न राजी की चिट्ठी का कोई जवाब आया न सोहणेशाह की चिट्ठी की किसी ने पहुंच लिखी।

कई महीने बीत गये।

और फिर अचानक भारत और पाकिस्तान के हालात और बिगड़ने लगे। जनवरी १९७१ में हाशिम कुरैशी और मुहम्मद अशरफ नामक दो कश्मीरी युवक एक भारतीय हवाई जहाज का अपहरण करके लाहौर ले गये। हवाई जहाज श्रीगनर से आ रहा था। उसमें कई सवारियां थीं। यह सुनकर भारत में गुस्से की लहर दौड़ गई। एक दिन,दूसरा दिन,आखिर पाकिस्तान ने हवाई जहाज में सफर कर रहे यात्रियों को वापस भेज दिया,पर हवाई जहाज को रोक लिया। इधर भारत में लोगों का खून खौल रहा था। उधर पाकिस्तान में जश्न मनाये जा रहे थे। हवाई जहाज का अपहरण करने वालों को आसमान पर उठाया जा रहा था। उनके साथ पाकिस्तान के चोटी के लीडर सलाह मशवरा कर रहे थे। जुल्फिकार अली भुट्टो जो पाकिस्तान का विदेशमंत्री रह चुका था,स्वयं उनसे मिलने गया।

कुलदीप इस घटना से बहुत परेशान था। हर क्षण;हर पल हालात बिगड़ रहे थे। कुछ भी हो सकता था। पाकिस्तानी एक भारतीय विमान को अपनी धरती पर उतार कर खुशियों के डंके बजा रहे थे। भारत की समझ में नहीं आ रहा था,कैसे पाकिस्तान से अपना हवाई जहाज वापस मंगवाया जाये। दो पड़ोसी देशों में इस तरह की घटनायें होने लग जायें तो मामला कहां जाकर रुकेगा?

उस शाम कुलदीप कुसुम के साथ बैठा हुआ था। कुसुम की आदत हो गई थी,जब कुलदीप परेशान होता,या वह शराब पीने लगती,या सिग्रेट पर सिग्रेट फूंकती जाती। उस

शाम वे दोनों बातें कर रहे थे। कुलदीप उसकी ज़िद पर अपना जाम लेकर बैठा हुआ था। कुसुम को बस इतने से तसल्ली हो जाती थी।

कुलदीप जितना परेशान था, कुसुम उतनी ही नटखट होती जा रही थी। कभी उसका जाम पीने लग जाती; कभी अपना जाम उसके होठों से जा लगाती। फिर अपनी सिग्रेट का धुआं कुलदीप के मुंह पर मारती जैसे कोई पिचकारी छोड़ रहा हो। कुलदीप को गोता आने लगता। कभी कुलदीप के गले में बाहें डालकर गाने लग जाती।

\+ अज कोई आया साडे विहड़े
तक्कन चन्न सूरज ढुक ढुक नेड़े।

कुलदीप के मन में पता नहीं क्या आया, उठकर उसने टेलीविजन पर लाहौर का स्टेशन लगा दिया। कुलदीप टेलीविजन की ओर बढ़ा और कुसुम ने चुपके से गोल कमरे के सामने वाले दरवाजे की चटखनी लगा दी। सर्दियों की रात, बाकी दरवाजे, खिड़कियां पहले ही बंद थे।

टेलीविजन चालू करके कुलदीप लौटा तो सामने कुसुम खड़ी थी, अपने पूरे जोबन में। मदमस्त आंखों से बिट-बिट उसकी ओर देख रही थी। उधर टेलीविजन के पर्दे पर तसवीर आई, इधर हाथ बढ़ाकर कुसुम ने बत्ती बंद कर दी। बत्ती बंद करके कुलदीप को अपनी बांहों में ले लिया और सामने सोफे पर जा बैठी।

होंठों पर होंठ, कुसुम भूखी बाघिन की तरह कुलदीप का लंबा प्यार ले रही थी कि टेलीविजन पर एलान हुआ, दर्शक एक महत्वपूर्ण प्रोग्राम का इंतज़ार करें। कुलदीप ने विशेष प्रोग्राम के लिए टेलीविजन की तरफ मुंह मोड़ने की कोशिश की। पर कुसुम, शराब से जैसे पूरी तरह मदहोश हो चुकी हो, उसने कुलदीप को सोफे पर गिरा लिया और एक ही सांस में उसका मुंह, माथा, गाल, होंठ चूमती जा रही थी।

"यह वो हवाई जहाज है जिसे दो जांबाज, कुरैशी और अशरफ हाईजैक करके लाहौर लायें हैं।" टेलीविजन पर भारत के हवाई जहाज़ फाकर फ्रेंडशिप का चित्र था और एक जीती हुई बेबाक आवाज एक बार, दूसरी बार, तीसरी बार एलान कर रही थी – यह वो हवाई जहाज है जिसे दो जांबाज, कुरैशी और अशरफ हाई जैक करके लाहौर लाये हैं।

कुलदीप ने कुसुम को एक ओर हटा कर फिर टेलीविजन की ओर झांकने की कोशिश की, पर कुसुम जैसे उत्तेजित शेरनी हो, उसने कुलदीप को अपने आलिंगन में जकड़ा हुआ था।

कुसुम तुझे क्या हो रहा है? कुलदीप ने झुंझला कर कहा।

कुसुम वैसी की वैसी कुलदीप को अपने आलिंगन में लिए हुए उसके कंधे को, उसके सीने को, उसकी गर्दन को, यहां-वहां प्यार करती जा रही थी। इस बार जब कुलदीप ने अपने आपको छुड़ाने की कोशिश की, वे सोफे से फिसल कर नीचे कालीन पर जा गिरे।

कुसुम बाहर तेरा नौकर है। कुलदीप ने कुसुम को समझाने की कोशिश की।

\+ [आज कोई हमारे आंगन में आया है
[चांद और सूरज पास-पास आकर देख रहे हैं]

'इस भारतीय हवाई जहाज को हजारों तमाशबीनों के सामने आज की शाम हथगोलों से उड़ा दिया गया।" टेलीविजन पर एलान हो रहा था और अब उन बेशुमार तमाशबीनों के पास जाकर लिए गये चित्र दिखाये जा रहे थे, जो हवाई अड्डे पर यह नाटक देखने पहुंचे थे। इनमें मर्द थे, औरतें थीं, बच्चे थे। कालेज के लड़के-लड़कियां बांहें उठा-उठा नाच रहे थे, नारे लगा रहे थे।

कुसुम ने अब कुलदीप का कोट उतारकर सोफे पर फैंक दिया था। और उसकी कमीज के बटन खोलकर उसकी छाती के बालों में उंगलियां फेर रही थी।

कुलदीप एकटक टेलीविजन की ओर देख रहा था। कुसुम खुद ही कुलदीप से चिपटी हुई थी। हाथ बढ़ाकर उसने हीटर का मुंह अपनी ओर कर लिया।

ये वो जांबाज़ हैं – हाशिम कुरैशी और मुहम्मद अशरफ। टेलीविजन की आवाज में जैसे एक मस्ती हो। टेलीविजन पर अब कुरैशी और अशरफ को दिखाया जा रहा था। कभी एक को, कभी दूसरे को। कभी दोनों को।

हीटर की तपिश में गरमाई हुई कुसुम अब कुलदीप के अंग अंग से खेल रही थी। कमरे में टेलीविजन की ही रोशनी थी, और बिल्कुल अंधेरा था।

अब कुसुम ने अपने आपको कुलदीप के साथ लपेट लिया था। एक वहशत थी इसके अंग-अंग में, इसकी हर हरकत में। जिस बात के लिए कुलदीप मना करने की कोशिश करता, वह वही करती, बार-बार कर रही थी।

इश्क ेचे की बेल की तरह बल खाती हुई जैसे ऊपर ही ऊपर चढ़ रही थी। और अब जैसे उसने कुलदीप को अपने साथ उड़ा लिया हो। एक झटका, एक और झटका। और उधर टेलीविजन के पर्दे पर एक हथगोला कुरैशी ने फेंका, फिर एक गोला अशरफ ने फेंका और भारतीय हवाई जहाज आग की उठती हुई लपटें बन कर रह गया। लाहौर के दर्शक तालियां बजा रहे थे, नारे लगा रहे थे।

कुसुम एक लहर में, एक नशे में जैसे आग का शोला हो गई हो। उसने कुलदीप को समूचा अपनी लपेट में ले लिया था।

टेलीविजन के पर्दे पर नारे लगा रहे, खुशिया मना रहे दीवाने लोगों ने कुरैशी और अशरफ को कंधों पर उठ लिया था। नाच-नाच कर और गा-गा कर लोग बेहाल हो रहे थे। लाहौर का हवाई अड्डा जैसे लबा-लब भरा हुआ हो। एक बाढ़-सी आई हुई थी। ऐसे लगता जैसे कोई अथाह सागर ठाठें मार रहा हो। नाच रहे और गा रहे, तालियां बजा रहे और नारे लगा रहे लोग दीवाने हो रहे थे।

और फिर टेलीविजन का प्रोग्राम खत्म हो गया। पर्दे पर अब अंधेरा था। उससे भी ज्यादा अंधेरा कमरे में था। सर्दियों की ठंडी रात का अंधेरा।

और कुसुम को लगता जैसे उसे गोते आ रहे हों। अपने सहित उसने कुलदीप को भी डुबो लिया था। और वे ठाठें मार रहे किसी समुद्र की तह में उतरते जा रहे थे, नीचे ही नीचे।

भारत के हवाई जहाज को, इस प्रकार पाकिस्तान का तबाह कर देना, और फिर हवाई जहाज को हाईजैक करनेवालों का, लाहौर शहर में जुलूस निकालना, कुछ इस तरह की हरकतें थीं जिनके कारण भारत और पाकिस्तान में खाई और गहरी हो गई थी। पहला बदला, भारत ने पाकिस्तान से यह लिया कि पाकिस्तानी हवाई जहाजों की भारत पर से उड़ान बंद कर दी। अब पश्चिमी पाकिस्तान से पूर्वी बंगाल जाने के लिए पाकिस्तानी हवाई जहाजों को हजारों मील का चक्कर काट कर जाना पड़ता। पूर्वी बंगाल पाकिस्तान के पश्चिमी भाग से और दूर हो गया।

पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी बंगाल में और भी कई फासले थे। इन दोनों छोरों की बोली अलग थी, लिपि अलग थी, रहन सहन अलग था, जीवन के दृष्टिकोण भिन्न थे। अब एक-दूसरे की पहुंच का फासला, जो पहले भी कोई कम नहीं था और बढ़ गया था। पूर्वी बंगाल के लोगों को लाहौर और कराची आने के लिए ज्यादा किराया देना पड़ता था, ज्यादा समय लगता था।

पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी बंगाल में खाई और बढ़ गई, जब पाकिस्तान में पहले आम चुनावों के बाद शेख मुजीबुर्रहमान के दल, अवामी लीग को स्पष्ट बहुमत मिल जाने पर भी, पाकिस्तान की फौजी हुकूमत उसे केवल इसलिए सत्ता सौंपने के लिए तैयार नहीं थी कि वह पूर्वी बंगाल का था।

स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी – पूर्वी बंगाल और पाकिस्तान में, पाकिस्तान और भारत में। पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी बंगाल के झगड़े में भारत की हमदर्दी कुदरती तौर पर पूर्वी बंगाल से थी। यह एक और कारण था जिससे वे और दूर-दूर हो गये थे।

और फिर भारत से न कोई पाकिस्तान जा सकता था, न पाकिस्तान से कोई भारत आ सकता था। दोनों देशों के बीच सीमा को बंद कर दिया गया था। पाकिस्तान से डाक भारत नहीं आ सकती थी, भारत से डाक, पाकिस्तान नहीं जा सकती थी। हर गलत-फहमी को बढ़ाया जा रहा था, हर विरोध को बिगाड़ा जा रहा था। पाकिस्तान ने अपने हाई कमिश्नर को वापस बुला लिया, भारत ने अपने को, और उनके डिप्टी काम चलाने लग गये।

पूर्वी बंगाल में शेख मुजीब की अभूतपूर्व विजय पश्चिमी पाकिस्तानियों के लिए एक अजीब अड़चन बन गई। मक्खी थी, जो न निगली जा सके न छोड़ते बने। लोकराज का तकाजा था कि शेख मुजीबुर्रहमान को पाकिस्तान का प्रधानमंत्री बना दिया जाये। पर पश्चिमी पाकिस्तान के लोगों को यह कदापि स्वीकार नहीं था।

शेख मुजीब से समझौते की बातचीत की आड़ में पाकिस्तान की फौजी हुकूमत ने हजारों की गिनती में फौज और अमला पूर्वी बंगाल में भिजवा दिया। और फिर अचानक, पाकिस्तान की पश्चिमी पाकिस्तान से भेजी हुई फौजों ने ढाका और दूसरे नगरों में अत्याचार शुरू कर दिया। सारी दुनिया त्राहि-त्राहि कर उठी। मोहल्लों के मोहल्ले, गांव के गांव जला कर राख कर दिए गये, लाखों की गिनती में लोगों को गोली से उड़ा दिया गया। समाचार-पत्र बंद कर

दिए गये। विदेशी पत्रकारों को हवाई जहाजों में लाद कर कराची भिजवा दिया गया और पूर्वी बंगाल की जनता,क्या हिन्दू,क्या मुसलमान घर-बार छोड़ भारत में शरण लेने आ गई।

पाकिस्तानी फौज ने शेख मुजीब को पकड़ कर पश्चिमी पाकिस्तान भेज दिया। उसके बाकी साथी या गोली का निशाना बना दिए गये या रूपोश हो गये। पूर्वी बंगाल के नवयुवकों ने मुक्तिवाहिनी नाम से अपनी सेना बना ली और गली-गली, मोहल्ले-मोहल्ले, गांव-गांव में पाकिस्तानी फौज का मुकाबला करने लगे। उन्होंने एलान किया कि उनका पाकिस्तान से कोई वास्ता नहीं है। बांग्ला देश एक स्वतंत्र राष्ट्र है।

पाकिस्तान की हिंसा, मुक्तिवाहिन की वीरता और भारत में बांग्लादेश से आये शरणार्थियों की अजीब-अजीब कहानियां सुनने में आ रही थीं, पढ़ने में आ रही थीं।

लेडी डाक्टर कुसुम बांग्ला देश से आये शरणार्थियों के कैम्पों में काम करने के लिए चली गई थी। सोहणेशाह को कुलदीप जब कहानियां सुनाता तो वह सिर हिलाने लगता। इस सबका मतलब यह है कि पाकिस्तान से फिर लड़ाई होगी। हमेशा यही उसके मुंह से निकलता था।

सतभराई की कोई सूचना नहीं थी, पाकिस्तान से चिट्ठी पत्री कब की बंद हो गई थी। राजी कभी अपनी मां को याद कर लेती। कभी अपने भाइयों को याद कर लेती। अपने अब्बा का नाम कभी न लेती। जब से उसने सुना था कि रशीद ने उसकी अम्मी को तलाक की धमकी दी थी, राजी के दिल में एक अजीब नफरत पैदा हो गई थी मर्द जात के लिए। अवसर मिलता तो कुलदीप को भी सुना देती। गुरमीत का लिहाज न करती। बस एक सोहणेसाह था जिसके सामने क्या मजाल जो उसकी जुबान खुल सके। जो कुछ सोहणेशाह कहता, हमेशा ठीक कहकर मान लेती।

कुलदीप आजकल बांग्ला देश से आये शरणार्थियों के लिए कपड़े इकट्ठा करता रहता, दवाइयां इकट्ठा करता रहता, अन्न इकट्ठा करता रहता।

समाचार पत्रों में प्रकाशित अत्याचारों के विवरण, जो पाकिस्तानी फौजें बांग्ला देश की जनता पर ढाह रही थी, बड़े भयानक थे। कोई एक लाख बंगालियों को मौत के घाट उतार दिया गया था। कोई दस लाख बंगाली, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई बांग्ला देश से जान बचाकर भारत में आ टिके थे।

"पाकिस्तान की समस्या यह है कि पूर्वी बंगाल हाथ से जाता है तो पंजाबी यार लोग लूट-खसोट कहां मचायेंगे? एक दिन राजी कुलदीप से इस समस्या पर विचारों का आदान प्रदान कर रही थी।

पूर्वी पाकिस्तान का सबसे बड़ा गुनाह यह है कि उन्होंने शेख मुजीब और उसकी पार्टी को वोट देकर कामयाब बनाया है। पिछले २४ साल से जिन पर हुकूमत का नशा चढ़ा हो, वो कैसे यह सहन कर सकते हैं कि उनके हाथ से ताकत निकल जाये। कुलदीप समस्या की तह तक जाने की कोशिश कर रहा था।

ये पाकिस्तानी कश्मीर में रायशुमारी का शोर मचाते हैं, अपने देश में पहली बार चुनाव

करवा कर इनके हाथ-पांव फूल गये हैं ?"

सारा कसूर भुट्टो का है। वह पाकिस्तान का वजीरे आजम बनना चाहता है। उसकी पार्टी को तो सूबा सरहद और बुलोचिस्तान में भी बहुमत नहीं मिला।"

तो फिर अकड़ काहे की ?"

"उसी ने समझौते के बहाने बात लटका कर उधर पाकिस्तान फौजें भिजवाई हैं।"

"हाय रे कभी ऐसा भी हुआ है ?"

"मैं तो सोचता हूं, यह कोई बड़ी बात नहीं कि भुट्टो साहब यह सोच रहे हों, अगर जाता है तो पूर्वी बंगाल हाथ से जाये, बाकी बचे पाकिस्तान पर वो आराम से हुकूमत कर सकेंगे।"

"अगर यह बात है तो बांग्ला देश बन कर रहेगा। पाकिस्तान के दो टुकड़े होकर रहेंगे।"

"राजी। तुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए। तेरे मां-बाप पाकिस्तानी हैं। तेरे दोनों भाई पाकिस्तानी हैं। जवान-जहान लड़के, मुझे तो डर है कहीं पाकिस्तानियों ने उन्हें भरती करके उधर पूर्वी बंगाल के दमन के लिए न भेज दिया हो।"

"बड़ा तो है भी कुछ ऐसा ही। अम्मी बता रही थी कि बड़ा कट्टर पाकिस्तानी होता जा रहा है।"

"हां, पिछली बार जब मैं लाहौर में था तो कश्मीर का झगड़ा लेकर मुझसे भी कितनी देर बहस करता रहता। एक दो बार तो मुझे खीझ भी आ गई। जब हम खाली होते वो यह बहस लेकर बैठ जाता। यह तो सतभराई ने उसे डांटा तो कहीं उसकी समझ में आया।"

"कसूर उसका नहीं। उस ओर हवा ही ऐसी है। आदमी को कुछ का कुछ दिखाई देने लगता है। कुछ का कुछ सुनाई देने लगता है।"

113

कुलदीप, पंजाबी की किसी पत्रिका में छपी एक कहानी, सोहणेशाह को सुना रहा था –

सिराज चौधरी अपने बेटे मजीद की मुहब्बत से बेज़ार है। किसी के इकलौता बेटा भी न हो। कहां नोआखाली, कहां अगरतल्ला, और कहां 'माना' का यह शरणार्थी कैम्प।

सिराज चौधरी सोचता है कि वे लोग उसके बेटे की बदौलत ही उसे यहां ले आये हैं। वरना क्या पता वे मोहनपुरा के.कैम्प में ही धक्के खा रहे होते। वह और उसका जवान-जहान बेटा। उसे गोली मारी गई थी, गोली टांग में लगी थी, लड़का निढाल हो गया था। क्या पता; शायद इसीलिए उसे हवाई जहाज में भेजा गया था। हवाई जहाज के रूसी चालक ने उसे कैसे हाथ जोड़ कर, शुभकामानाओं सहित विदा किया था। रूसी हवाई-चालक ने गांधी टोपी पहन रखी थी।

गांधी टोपी का ख्याल आते ही सिराज चौधरी की पलकों के सामने उसकी जिन्दगी की

घटनाएं चलचित्र की तरह घूमने लगती हैं। वह बार-बार अपने सिर को झटकता है, बार बार अपनी आंखों के सामने हाथ फेरता है, जैसे तसवीरों के झुरमुट को हटा रहा हो। बार-बार उसकी नज़रों के सामने वही तसवीरें खिंच जाती थीं।

नवाखाली में १९४७ के भयानक दिन। खुद सिराज चौधरी को एतबार नहीं आता था कि वह कभी, वह सब कुछ कर सकता था, जो उसने किया था। वह दारू पी कर बाहर निकला और अपने पिस्तौल से कीड़ों की तरह भाग रहे हिन्दुओं को भूनता रहा था। दूसरे लोग आग लगाते थे, माल लूटते थे, सिराज को बस निशाना पक्का करने का शौक सवार हुआ था। कोई भाग रहा होता, कोई छिप रहा होता, सिराज उसे वहीं का वहीं भून कर रख देता। या पिस्तौल का निशाना बनाता या फिर हिन्दू औरतों को अपनी टांगों के नीचे से निकालता। पौ फटने लगी थी जब सिराज चौधरी को उस औरत का मुंह दिखाई दिया, उसका रातभर का नशा पलक झपकते ही काफूर हो गया। वह तो उसके अपने काश्तकार त्रिलोचन की बीवी थी।

तौबा, तौबा, कितना अनर्थ हुआ था।

लेकिन वे दिन अनर्थ के थे। मुसलमानों का पाकिस्तान बन रहा था। दो सौ बरस पुरानी अंग्रेज की गुलामी खत्म हो रही थी। हिन्दुस्तान अलग, पाकिस्तान अलग। अलग-अलग कौमें, अलग-अलग मुल्क। उनका फायदा इस बात में था कि हिन्दू पाकिस्तान से चले जाये। पाकिस्तान, एक इस्लामी जम्हूरियत होगा। हिन्दुओं की पाकिस्तान में कोई जगह नहीं थी। बेशक अभी तक करोड़ों मुसलमान हिन्दुस्तान में बस रहे थे। इसीलिए कि हिन्दुस्तान दो कौमों के सिद्धांत को नहीं मानता था। हिन्दुस्तान जो चाहे सो करे, पाकिस्तान अपने मुल्क के लिए कोई खतरा मोल नहीं लेगा। मुसलमान अपने पाकिस्तान में चाहे स्याह करें, चाहे सफेद।

हाय वे कैसे दिन थे। किसी की मजाल नहीं थी उसकी तरफ आंख उठा कर देख जाये। एक औरत, दूसरी औरत, तीसरी औरत, और अब वह चौथी औरत थी। पता नहीं उसकी किस्मत में बांझ औरतें ही क्यों लिखी थीं। दूसरे लोगों के आंगन में उसके बच्चे खेलते थे, लेकिन उसका अपना आंगन सूना था। यह सोच कर हमेशा सिराज चौधरी के मुंह का स्वाद कसैला-कसैला हो जाता था। उसका जी चाहता, आसपास के लोगों को कच्चा खा जाये। वह गली-गली हलकाया-सा घूमता रहता।

आजादी से पहले के सांप्रदायिक दंगे तो बहाना बन गये थे। सिराज चौधरी ने जी-भर कर हिन्दुओं का सफाया किया और जी भर कर हिन्दू औरतों की इज्जत लूटी।

उसकी खून से सनी उंगलियां देख कर उसकी बीवी बार-बार सोचती; अगर इसका अपना कोई बच्चा होता तो शायद यह इस तरह अत्याचार न करता। हर रात मियां बीवी में तू-तू, मैं-मैं हो जाती थी। सिराज चौधरी तो यही चाहता था। हर रात वह गू खाने के लिए बाहर चला जाता था।

फिर तसवीरों का रंग बदलता है। लाल लहू का रंग, आग के लाल शोलों का रंग, मीठे शहद की सुनहरी रंगत में बदलना शुरू हो जाता है, कोरे बरतन में दुहे गये ताजे दूध की अछूती स्वच्छता में बदल जाता है।

महात्मा गांधी नोआखाली के दौरे पर आते हैं। वहां के शहर-शहर, गांव-गांव, गली-गली घूम कर गांधी जी लोगों पर जैसे जादू कर रहे हों। लोग आ कर सिराज चौधरी को हृदय परिवर्तन की अजब-अजब कहानियां सुनाते हैं। लेकिन वह एक कान से सुनता है, दूसरे कान से बाहर निकाल देता है। फिर महात्मा जी के साथ उसकी मुलाकात होती है। गांधी जी खुद चल कर उसके आंगन में आते हैं। चौधरी सिराज प्रार्थना सभा में शामिल होता है। जैसे किसी ने उसे पीस कर कोई चीज पिला दी हो। चौधरी सिराज बापू के कदमों पर सर रख कर रोता जा रहा था, रोता जा रहा था। उसने हिन्दुओं से लूटी हुई एक-एक चीज उन्हें लौटा दी थी। अपने सब हिन्दू काश्तकारों को ढूंढ़-ढूंढ कर उनके खेत उनके हवाले कर दिए। उनके जलाये हुए घरों को अपने खर्च से बनवाया। ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, ईश्वर अल्लाह तेरे नाम गा-गा कर जैसे उसका गला सूखता नहीं था। एक दिन बैठे-बैठे उसके मन में आया कि अगर उसके घर एक बेटा पैदा हो जाये तो वह महात्मा गांधी का मुरीद बन जायेगा, सारी उम्र उनका हाथबंधा गुलाम बन जायेगा। कुछ दिनों बाद सचमुच करामात हो गई। उसकी बीवी की कोख हरी हो गई। चौधरी सिराज दिन-रात महात्मा गांधी के गुण गाता रहता।

फिर यह तस्वीर ऊदे, नीले, मटमैले रंगों में बदलती-बदलती स्याह काले रंगों में बदल जाती है। किसी ने आ कर कहा, दूर हिन्दुस्तान के एक गांव में हिन्दुओं ने किसी मस्जिद की बेहुरमती की है। हिन्दू कट्टरपंथियों ने छुरों से मुसलमानों को कत्ल किया है, उनके घरों में आग लगाई है। कई मुसलमान बच्चे यतीम हो गये हैं, यतीम बनाने के बाद उन्हें हिन्दू बना लिया गया है। यह सुन कर जैसे सिराज चौधरी के तन-बदन में आग लग गई। उसने अपने बच्चे मजीद को गोद से उतार कर अपनी बीवी को दे दिया और बाहर गली में चला गया। और फिर उनके मुहल्ले में, उनके बाजार मे, उनके खेतों में वह कुछ हुआ जो कई बरस पहले आजादी के वक्त हुआ था। उस रात और उस रात के बाद कई दिन तक सिराज चौधरी को महात्मा गांधी का ख्याल तक न आया। उन्होंने दस-दस हिन्दुओं को कत्ल करके एक-एक मुसलमान का बदला लिया। हर मस्जिद के बदले में गिन-गिन कर दर्जन-दर्जन मंदिरों के कलश गिराये गए। कुछ दिन बाद जब उसके सर से यह जुनून उतरा तो सिराज चौधरी बार-बार दीवार पर टंगी अपनी दुनाली बंदूक की तरफ देखता और उसे महसूस होता जैसे पिछले कुछ दिन सिर्फ एक भयानक सपना थे और बस।

और यह तसवीरें धीरे-धीरे मानो शान्त हरे-भरे खेतों में बदल जाती हैं। लहलहा रही धान की बालियां और पद्मा नदी, एक किनारे किसी मंदिर की दहलीज से माथा रगड़ने वाली और दूसरे किनारे किसी मकबरे-मज़ार के कदमों को चूमने वाली। और वैसी की वैसी पाक और वैसी की वैसी पवित्र बहती हुई दूर क्षितिज के पार, सागर में एक हो जाती है। केले के झुरमुट के पीछे, शहद-सी मीठी बंगला भाषा में रसूल की नात गा रही सकीना की आवाज, शिवालय से निकली सोनिया के भजन की आवाज में गड्ड-मड्ड हो जाती है। और सिराज चौधरी को यह सब अच्छा-अच्छा लगता है।

फिर अचानक जैसे तूफान आ गया हो। आंख झपकते ही यह सुहावनी तसवीर

काली-कलूटी रात में बदल जाती है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। अमावस की अंधियारी रात का अंधेरा। इस अंधेरे में बार बार बिजली मानो किसी जहरीली नागिन की तरह चमकती है और चारों तरफ जहर ही जहर फैल जाता है।

मुहर्रम के दिनों में मुसलमान एक मंदिर के सामने से ताजिये निकालना चाहते थे। इसके लिए मंदिर के सामने लगे बरगद के पेड़ की कुछ टहनियों की छंटाई जरूरी थी। पिछले बरस भी उन लोगों ने यही किया था। हिन्दुओं का कहना था, मुसलमान हर बरस अपने ताजियों को और ऊंचा करते जा रहे हैं, हर साल एक चौबारा और बढ़ा लेते हैं। इस तरह उनके बरगद में बाकी क्या बचेगा ? बरगद को तो उनके बाप-के बाप के बाप, उनकी मांओं की मांओं की मांएं पूजती आई थीं। बरगद, भक्तों के मन की मुरादें पूरी करता था। और हिन्दुओं ने यह फैसला किया कि इस साल ताजिये उनके मंदिर के सामने से नहीं गुजरेंगे। अगर मुसलमानों के लिए उधर से ताजिये निकालना जरूरी था, तो मंदिर के सामने वाले बरगद के नीचे से गुजारते वक्त उन्हें ताजियों को नीचे झुकाना होगा। मुसलमान यह मानने के लिए तैयार नहीं थे। इसका मतलब तो यह हुआ कि ताजिये मंदिर के सामने अपना सर झुका दें। यह किसी तरह मुमकिन नहीं था। इधर सुन्नी मुसलमान हिन्दुओं को भड़काते थे उधर शिया लोगों के कान भरते थे। और फिर मुहर्रम वाले दिन काली बाड़ी की गली कर्बला बन गई। सिराज चौधरी ने जब यह खबर सुनी, उसके भीतर के शिया का खून खौल उठा। आंख झपकते ही फिर उसके बाजार में, उसके खेतों में हिन्दुओं के साथ वही कुछ हुआ जो कई बरस पहले हो चुका था। इस बार तो पूरी तरह सफाया कर डाला गया। सिराज चौधरी के कस्बे में एक भी हिन्दू नहीं बचने पाया। सारे व्यापारी, सारे सरकारी मुलाज़िम, सारे किसान सारे मजदूर या तो खत्म कर दिए गये, या उन्हें हिन्दुस्तान खदेड़ दिया गया। खुद सिराज चौधरी के हिन्दू काश्तकार भी रातों-रात घर-बार छोड़ कर भाग गये। सिराज चौधरी को यह पता चला तो वह हक्का-बक्का रह गया। यह क्या हो गया था ? उसे ऐसा लगता, जैसे उसका आसपास, खाली, सुनसान हो गया हो। अब, जब वह काश्तकारों की झुग्गियों के सामने से गुजरा करेगा तो तोतली-तोतली बातें करने वाली वह बच्ची उसे नहीं मिला करेगी। किस तरह हाथ जोड़ कर, सिर झुका कर वह उसे प्रणाम किया करती थी। और केले के पेड़ के पीछे खड़ी बच्ची की ऊंची लंबी मां, खुशी से झूम-झूम उठती थी।

फिर सिराज चौधरी को लगता जैसे बादल छंट गये हों। पौ फटने के साथ ही लाल-पीली किरणों का पूरा गुच्छा जैसे उसके चेहरे पर आ पड़ा हो। जैसे ताजे दुहे दूध की झाग में गोते खा रहा हो। जाड़े की गुनगुनी धूप जैसे उसके आगे-पीछे नाच रही हो।

इस बार हिन्दू काश्तार ऐसे गये कि फिर लौट कर नहीं आये। उनकी बात सोचते ही सिराज चौधरी को अपने आसपास का सूनापन जैसे काटने को दौड़ता। पूरे कस्बे में कोई हिन्दू आवाज नहीं थी। वह मुहल्ले के मुहल्ले घूम आता, लेकिन उसे कोई हिन्दू शक्ल दिखाई नहीं देती थी। मुसलमान, मुसलमान, मुसलमान। सिराज चौधरी की अजीब आदत पड़ गई, वह हर वक्त थूकता रहता था। जहां भी खड़ा होता, जहां भी बैठता आगे-पीछे थूक फेंकता रहता।

जब उसके बेटे ने उसे टोकना शुरू किया, तब कहीं सिराज चौधरी की यह आदत हटी। उसका बेटा अब बड़ा हो गया था। कितना कद निकल आया था। जमायत पर जमायत चढ़ता, अब कालेज में पहुंच गया था। इतने बरस बीत गये थे, सिराज चौधरी तो जैसे भूल ही गया था कि कभी उनके पड़ोस में हिन्दू रहते थे। उनके मुहल्ले में मंदिर का पुजारी सुबह-शाम शंख बजाता था। अब सिराज चौधरी के मन में इस रौनक का ख्याल तक नहीं उठता था।

और सिराज चौधरी अपने बेटे को देख-देख कर हैरान होता रहता था। कैसी खोद-खोद कर बातें करता था। और ही किस्म की बातें जैसी उसके बाप ने भी न कभी सोची थीं, न सुनी थीं।

सिराज चौधरी की आंखों के सामने घूम रही तसवीर जैसे रंग-बिरंगी झांकियों की एक लड़ी हो कर रह गई हो। ताजे-ताजे दिलकश रंग।

सिराज चौधरी हैरान था कि जिस तरह की बातें उसका बेटा मजीद करता था, इस तरह की बातें खुद पहले उसे क्यों नहीं सूझी थीं। वे बेशक पाकिस्तान का एक अंग थे, लेकिन इसमें कोई शक नहीं था कि पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमान पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को लूट-लूट कर खा रहे थे। विदेशी मुद्रा कमाते बंगाली थे, खर्च पश्चिमी पाकिस्तान में होती थी। हर नया कारखाना, हर नई योजना पश्चिमी पाकिस्तान के लिए थी, बचा-खुचा बंगालियों को मिलता था। और अब पश्चिमी पाकिस्तान के शासकों का यह फरमान था कि बंगला भाषा का भी गला घोंट दिया जाये। बंगालियों पर उर्दू ठूंसी जा रही थी। पहले उन लोगों ने शास्त्रीय संगीत बंद किया, कहने लगे इसमें से हिन्दुओं की बू आती है। अब रवीन्द्र संगीत को खत्म कर रहे थे, क्योंकि रवीन्द्रनाथ हिन्दुस्तानी थे। मजीद कहता था, भला कोई बंगाली रवीन्द्रनाथ ठाकुर की धुनें गुनगुनाये बगैर जी सकता है? उसकी तो सांस घुट कर रह जायेगी। अपने बेटे की बातें सुन कर सिराज चौधरी को लगता, जैसे वे लोग पहले की तरह अब भी गुलाम हैं! अंग्रेज की गुलामी गई, अब एक हजार मील दूर बैठे पाकिस्तानियों की गुलामी सर पड़ गई थी। फिर सिराज चौधरी को महसूस होता कि पंजाबी और पठान बेशक मुसलमान थे, लेकिन वे बंगालियों की तरफ इस तरह देखते थे जैसे कोई हुक्मरान कौम अपनी प्रजा की तरफ देखती है; और मजीद कहता था, हम इनका अहंकार तोड़ कर ही रहेंगे। इस तानाशाही को जुआ उतार ही दम लेंगे।

यही बात उनका नेता शेख मुजीबुर्रहमान कह रहा था। यही बात बांग्ला देश में हर ज़बान पर सुनाई दे रही थी। और फिर यह बात बांग्ला देश के लोगों का नारा बन गई।

सिराज चौधरी की बड़ी मुसीबत थी। जिस दुनिया में वह पैदा हुआ था, पला था, उसे तो बस यह सिखाया गया था कि हिन्दू मुसलमान की लूट खसोट करता है। हिन्दू मुसलमान का हक मारता है। हिन्दू मुसलमान से भेद-भाव करता है। मुसलमान भी कभी मुसलमान का बैरी हो सकता है? अहले सुन्नत भी कभी एक-दूसरे का हक मार सकते हैं? यह ख्याल तक कभी उसके मन में नहीं उठा था।

और फिर वही बात हुई। मुहर्रम के दिन थे। सिराज चौधरी ताज़ियों की तैयारी करवा

रहा था। काली के मंदिर वाली गली को आजकल सपाट मैदान बना दिया गया था। अब उनके ताज़िये बेशक आसमान को चूम लें। सिराज चौधरी ने मन ही मन फैसला किया था कि इस साल वह ताजियों में तीन मंजिलें और शामिल करेगा। इतने में खबर आई कि ढाका में पश्चिमी पाकिस्तान की फौज ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर हमला कर दिया था। फौज और पुलिस में पूर्वी पाकिस्तान के सिपाहियों और अफसरों को निहत्था कर दिया गया था। पश्चिमी पाकिस्तान की फौजों ने ढाका की गलियों में लहू की नदियां बहा दी थीं। बाजार लाशों के ढेर से अटे पड़े थे। यूनिवर्सिटी के प्रमुख प्रोफेसरों और योग्य विद्यार्थियों को एक-एक करके गोली से भून दिया गया था। मुहल्लों के मुहल्ले, बस्तियों की बस्तियां टैंकों की बमबारी से ध्वस्त कर दी गई थीं। जो कई सिर उठाता, उसका सिर वहीं का वहीं कलम कर दिया जाता था।

जो कुछ ढाका में हुआ था, हू-ब-हू वही बाकी शहरों में भी होने लगा। मैमनसिंह, सिलहट, रंगपुर, ठाकुर गांव, दीनापुर, सैदपुर बोगरा, राजशाही, जैस्सोर, कुश्तिया, बारसाल, कोमीला, चटगांव और नवाखाली। नवाखाली जहां खुद सिराज चौधरी ने पाकिस्तान बनने से पहले और बाद में बड़े-बड़े जुल्म ढाये थे। और अब जो कुछ उसकी आंखों के सामने पाकिस्तान की फौज अपने मुसलमान भाइयों के साथ कर रही थी, उसके सामने तो सिराज चौधरी के अत्याचार कुछ भी नहीं थे। किस तरह उसकी अपनी बीवी की इज्ज़त लूटी गई। उसने घर से बाहर निकल कर बस इतना ही कहा था, "अरे, जीते-रहो – क्यों इस तरह जुल्म कर रहे हो, क्या तुम्हें अल्लाह पाक के सामने जवाब नहीं देना पड़ेगा?" आंख झपकते ही पाकिस्तानी सिपाही ने उसकी जीभ पकड़ कर गले से बाहर खींच दी और अपने पिस्तौल से चौधरानी को वहीं भून कर रख दिया था। आगे बढ़ने से पहले उस बदमस्त फौजी ने लहू में अपनी उंगली डुबो कर, उसकी नंगी छाती पर उर्दू में लिखा था, "पाकिस्तान ज़िन्दाबाद!" सिराज चौधरी अपने झरोखे से यह सब देख रहा था। फिर पता नहीं किस वक्त वह वहीं बेहोश हो कर गिर पड़ा था।

सिराज चौधरी को वह दिन कभी नहीं भूलता था जब उसके बेटे मजीद को कंधों पर उठा कर लाया गया। जिस दिन से फौजियों ने उनके इलाके में अत्याचार शुरू किए थे, मजीद अपने साथियों समेत इस जंग में उतर गया था। उस दिन से सिराज चौधरी को मजीद की कोई खबर नहीं मिली थी। आज उसकी टांग में गोली लगी थी और उसके साथी मजीद को कंधों पर उठा कर ले आये थे।

मजीद की टांग की हड्डी टूट चुकी थी। जब तक हड्डी नहीं जुड़ती तब तक वह मुक्तिवाहिनी के लिए बेकार था। और यह हड्डी कोई एक-दो दिन में जुड़ने वाली नहीं थी। मजीद के साथियों ने यह फैसला किया था कि मजीद को सरहद के पार भारत में पहुंचा दिया जाये। अगर पाकिस्तानियों को खबर मिल गई कि उनकी गोली से जखमी हुआ कोई आदमी इस घर में है, तो वे घर के हर प्राणी को गोली से उड़ा देंगे।

घर-बार, सब कुछ छोड़ कर रातोंरात सिराज चौधरी मजीद को लेकर सरहद की तरफ

चल पड़ा। छिपते-छिपाते, कुछ दिनों बाद मजीद के साथियों ने उन्हें सरहद के पार पहुंचा दिया। सिराज चौधरी के बेटे का लोग बहुत मान करते थे। उसके साथियों की एक टोली छुट्टी लेती तो दूसरी टोली फौरन उसकी जिम्मेदारी संभाल लेती। उन्हें 'माना' कैंप में पहुंचा दिया गया।

सिराज़ चौधरी की आंखों के सामने लाखों बेघर, बेसहारा लोगों की तसवीर आतीं, और आंखों से टप-टप आंसू बहने लगते थे। सिराज चौधरी सोचता, इनका क्या बनेगा ? भारत की सरकार और भारत की जनता आखिर इन्हें कब तक खिलाएगी ? सबके सब मक्खियों-मच्छरों की तरह मर जायेंगे। हजारों लोग हैजे और पेचिश से पहले ही खत्म हो रहे थे। न इनके रहने का कोई प्रबंध था, और न उनके काम का ही कोई सिलसिला बन रहा था।

सिराज चौधरी सोच रहा था, हिन्दुओं को तो हिन्दुस्तान आना ही था, लाखों मुसलमान भी उनके साथ निकल आये थे। इनमें हज़ारों वे मुसलमान भी थे, जिन्होंने हमेशा अपने बंगाली हिन्दू पड़ोसियों पर अत्याचार किए थे।

जैसे खुद सिराज चौधरी था। अपने गिरेबान में वह मुंह डाल कर देखता तो पानी-पानी हो जाता। कौन-कौन से कहर उसने हिन्दुओं पर नहीं ढाये थे ? पाकिस्तान के नाम पर, इस्लाम के नाम पर, वे लोग हर चौथे दिन फसाद शुरू कर देते थे, हज़ारों हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया जाता था, सैकड़ों हिन्दू, औरतों का अपहरण किया जाता था।

यह सोच कर सिराज चौधरी का जी चाहता कि वह चुल्लू-भर पानी में डूब मरे। माना कैम्प में पहुंच कर उसे जो पहली औरत मिली थी वह उसके अपने हिन्दू काश्तकार त्रिलोचन की बीवी थी। शरणार्थी कैम्प में रहते-रहते अब उसके भीतर कुछ नहीं बच रहा था। लेकिन उसकी बेटी जवान हो गई थी। छोटी-सी बच्ची, तोतली बातें किया करती थी।

आज उसी हिन्दू लड़की की मेहनत की बदौलत सिराज चौधरी का बेटा चंगा हो रहा था। लता ने नर्सिंग की ट्रेनिंग ली थी, और वह माना कैम्प के अस्पताल में काम करती थी। जिस दिन से ये लोग कैम्प में आये थे, लता दिन-रात मजीद की तीमारदारी करती रही थी। ड्यूटी खत्म होने के बाद भी वह मजीद के पास बैठ कर उसकी सेवा-तीमारदारी करती रहती। जो दवाई कहीं से न मिलती, लता न जाने कहां से मजीद के लिए ले आती। माना कैम्प का दौरा करने के लिए जो भी बड़ा डाक्टर आता, मजीद के मुआइने के लिए उसे बुला लाती। वक्त-बेवक्त मजीद के साथी मजीद से मिलने आते थे। वे घंटों तक खुसुर-फुसुर करते रहते थे, नर्स लता, एतराज़ नहीं करती थी। वह उन लोगों को चाय पिलाती रहती, पान खिलाती रहती, मजीद के संदेश उसके दोस्तों तक पहुंचाती रहती थी, दोस्तों के संदेश मजीद को ला कर देती थी। सुबह-शाम अपने ट्रांजिस्टर पर उसे बांग्ला देश की खबरें और प्रोग्राम सुनवाती थी।

ज़मीन फटती नहीं थी कि सिराज चौधरी उसमें समा जाये। सिराज चौधरी की वह करतूत; और लता और लता की मां की यह शराफत। अपने ज़मीदार की, उसके बेटे मजीद की वे जैसी खातिरें कर रही थीं, उन्हें देख कर सिराज चौधरी को अपनी आंखों पर यकीन नहीं आता था, भला कोई किसी दूसरे के लिए इतनी कुर्बानी भी कर सकता है ?

इस तरह की तसवीरें बार-बार उसकी आंखों में आ कर धंसी जा रही हैं। सामने माना कैम्प का नया अस्पताल बन कर तैयार हो गया है। कितनी विशाल, कितनी बड़ी इमारत। लेकिन सिराज चौधरी को क्या ! उसके बेटे को तो आज या कल छुट्टी मिलने वाली है। उसकी जांघ की हड्डी जुड़ गई है। लता की सेवा-शुश्रूषा और मालिशों ने उसे इतनी जल्दी दोबारा पैरों पर खड़ा कर दिया है। हर कोई कहता है, "उस लड़की ने जादू कर दिखाया है।"

सिराज चौधरी कब से अपने ख्यालों में डूबा है। अचानक वह चौंक उठा है, लता की मां आ कर उसके पास बैठ गई और छल-छल आंसू बहा रही है और बार-बार उसे पुकार रही है, चौधरी, ओ चौधरी।" पता नहीं वह कब से उसे आवाज़ें दे रही है। शाम की रोशनी धीरे-धीरे घटती जा रही है। ऊपर से अमावस की काली-बहरी रात-उतरती आ रही है।

सिराज चौधरी ने लता की मां की तरफ इस तरह देखा है जैसे कोई गहरी नींद से ज़ागा हो। पता नहीं वह कब से उसके पास आ कर बैठी हुई थी।

चौधरी, ओ चौधरी यह मत होने देना, यह अनर्थ कभी न होने देना। लता की मां हाथ जोड़ कर बार-बार उसके कदमों में सर रख रही है।

क्या है लता की मां ? सिराज चौधरी ने हैरान हो कर पूछा है। उसे तो किसी बात की भनक तक न थी।

सब तरफ शोर मचा हुआ है, तू इस तरह अनजान क्यों बन रहा है, चौधरी ?

"क्या है लता की मां ? अल्लाह की कसम, मुझे कुछ पता नहीं।"

"यह जुल्म न होने देना चौधरी। पहले भी तुमने मेरे साथ कोई कम जुल्म नहीं किया।"

"मैं गुनाहगार हूं, मुझे अपने सारे गुनाहों का एहसास है। इससे बड़ी सजा क्या हो सकती है कि सिराज चौधरी के बेटे को पाकिस्तानी फौज की गोली का निशाना बनाया जाये, जिस पाकिस्तान को बनाने के लिए मैं खून की होली खेलता रहा। सर-धड़ की बाज़ी लगाता रहा।"

"चौधरी, जो कहर अब ढहने वाला है, वह इन सारे अत्याचारों से कहीं बढ़ कर है। यह न होने देना। मैं तुम्हारे पैर पकड़ती हूं।

"आखिर मुझे कुछ बताओ तो सही।"

"अस्पताल में हर कोई कह रहा है..." बाकी शब्द लता की मां की आंखों में अंकित हैं।

114

सोहणेशाह ने जब यह कहानी सुनी तो जैसे उसका समूचा शरीर कांप उठा हो। कहानी सुनते हुए वह गुम-सुम बैठा रहा। उसके चेहरे का रंग जैसे सोख लिया गया हो। उसकी आंखें जैसे पथरा गई हों। कितनी देर वह ऐसे पत्थर-का-पत्थर बना बैठा रहा। बाकी लोग सब अपने अपने काम पर लग गये। सोहणेशाह वैसे-का-वैसा बैठा हुआ था। रात हो गई।

अगली सुबह उठते-बैठते हुए सोहणेशाह बस यही कह रहा था – अब लड़ाई होकर रहेगी। अब लड़ाई होकर रहेगी।

और फिर वही बात हुई, खबर आई कि भारतीय फौजें बांग्ला देश में प्रवेश कर गई हैं। उन लोगों को, जो निहत्थे बंगालियों पर अत्याचार ढाह रहे थे, उन्हें चेतावनी देना जरूरी था। एक करोड़ देशवासियों को उन्होंने दर-बदर कर दिया था। इतने महीनों से जो भारत में आकर शरण ले रहे थे, भारत उनका भार कब तक उठाये फिरता?

कुलदीप की इच्छा थी, वह बंगाल की सीमा पर जा कर यह लड़ाई अपनी आंखों से देखे और अगर आवश्यकता पड़े तो वह स्वयं भी मुक्तिवाहिनी के बहादुर सिपाहियों के साथ कंधे से कंधा मिला कर लड़े। पर सोहणेशाह ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। सोहणेशाह का विश्वास था कि अगर भारतीय सेना ने पूर्वी बंगाल में हस्तक्षेप किया तो पश्चिमी सीमा पर भी लड़ाई छिड़ जायेगी। पाकिस्तान के साथ बाकायदा जंग कभी भी शुरू हो सकती थी।

वही बात हुई। ३ दिसंबर, शाम के ५.३० बजे पाकिस्तान ने भारत पर बाकायदा हमला कर दिया। पाकिस्तानी हवाई जहाज़ों ने अमृतसर, पठानकोट, श्रीनगर, अवंतीपुर, जोधपुर, अंबाला और आगरा के हवाई अड्डों पर बंबारी की। भूमि पर उनका तोपखाना सुलेमानकी, खेमकरण और पुंछ के इलाके में गोलाबारी कर रहा था।

उस रात भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने राष्ट्र के नाम यह संदेश ब्राडकास्ट किया –

..पिछले मार्च से हम बड़ा भारी बोझ अपने सिर पर उठाये हुए हैं। हमें सख्त मजबूर किया जा रहा है। हमने हर कोशिश की दुनिया को यह बताने की, कि इस मामले का कोई शांतिपूर्वक हल ढूंढा जाये और एक समूची कौम को नष्ट होने से बचा लिया जाये; जिनका केवल यह दोष है कि उन्होंने लोकराज के लिए अपना मत दिया। दुनिया ने हमारी नहीं सुनी, इस झंझट के बुनियादी कारणों को जानने की परवाह नहीं की; केवल इसके नतीजों का ही सोचा है। हालत बिगड़नी ही थी। अब आज़ादी के दीवाने उन मूल्यों के लिए जो उन्हें प्रिय हैं, सब कुछ बलिदान कर देने के लिए जूझ पड़े हैं। ये वही मूल्य हैं जिनके लिए हमने भी संघर्ष किया और जो हमारे रहन-सहन का आधार हैं।"

"बांग्ला देश की लड़ाई आज भारत की लड़ाई बन गई है। मेरी सरकार, और भारत की जनता पर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी है। हमारे लिए इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि हम अपने देश को लड़ाई के लिए तैयार करें। हमारे बहादुर जवान और अफसर अपने मोर्चों पर देश की रक्षा के लिए तत्पर हैं। आपात स्थिति का एलान कर दिया गया है। हर आवश्यक कदम उठाया जा रहा है और हम हर खतरे के लिए तैयार-बर-तैयार हैं।"

प्रधानमंत्री के भाषण के बाद देश इस नये खतरे से एकजुट होकर जूझने के लिए तैयार हो गया।

सुबह और, शाम और, हर पल हर घड़ी हालात बदल रहे थे। घरों में, बाज़ारों में लोग रेडियो से कान लगाये रहते।

प्रातः ४ दिसंबर, १९७१

पश्चिमी सीमा पर शत्रु के तीन विमान गिरा दिए गये।

कल सारी रात और सवेरे पाकिस्तानी हमारे हवाई अड्डों पर लगातार बम बरसाते रहे।

संध्या ४ दिसंबर, १९७१

पश्चिमी और पूर्वी, दोनों सीमाओं पर हमारी सेनायें बढ़त में हैं। बांग्ला देश में पाकिस्तान की ज्यादातर हवाई ताकत को खत्म कर दिया गया है।

अब तक दोनों सीमाओं पर पाकिस्तान के ३३ हवाई जहाज नष्ट किए जा चुके हैं। ९ हवाई जहाज तो केवल कराची में तबाह किए गये। हमने ११ विमान गंवाये हैं।

पाकिस्तानी अधिकार में बांग्ला देश के बंदरगाहों की नाकाबंदी कर दी गई है। चटगांव बंदरगाह पर दो हमले किए गये हैं।

पश्चिमी सीमा पर ऊड़ी और हाजी पीर दर्रे के बीच एक पहाड़ी पर हमारा अधिकार हो गया है।

प्रातः ५ दिसंवर, १९७१

पाकिस्तानी हवाई जहाज़ों ने पश्चिमी सीमा पर हमारे छः हवाई अड्डों पर फिर हमला किया है।

बांग्ला देश में पाकिस्तानी सेना पर हमारा दबाव है।

संध्या ५ दिसंबर, १९७१

भारतीय वायु सेना पूरी तरह हावी है। कुरमीटोला हवाई अड्डे को बेकार कर दिया गया है।

अखोरा और लक्षम नामक शहरों पर हमारा अधिकार हो गया है।

कराची बंदरगाह में खड़े तीन जंगी जहाज डुबो दिए गये हैं।

पश्चिमी सीमा पर शत्रु के हमलों को रोक लिया गया है। यहां दुश्मन का भारी जानी नुकसान हुआ है। अमृतसर में दो स्टार लड़ाकू हवाई जहाज गिरा दिए गये हैं।

भारतीय सेना सिंध में प्रवेश कर गई है। गौदरा के शहर पर हमारा कब्जा हो गया है।

प्रातः ६ दिसंबर, १९७१

राजस्थान क्षेत्र में एक भारी मुकाबले के दौरान पाकिस्तान के ३१ टैंक नष्ट कर दिए गये हैं।

सिंध में भारतीय फौजें आगे ही आगे बढ़ती जा रही हैं और शहर-पर-शहर हमारे अधिकार में आ रहे हैं।

भारतीय वायुसेना की पश्चिम में फौजी ठिकानों पर बमबारी जारी है। शत्रु के दो हवाई जहाज कल जमीन पर ही तबाह कर दिए गये हैं।

बांग्ला देश में पाकिस्तानी फौजों की हालत नाजुक बताई जाती है।

मुक्तिवाहिनी के जवान खुलना से कोई ४८ किलोमीटर दूर हैं।

संध्या ६ दिसंबर, १९७१

बांग्ला देश को मान्यता दे दी गई है।

पाकिस्तान ने भारत से अपने राजकीय संबंध तोड़ दिये हैं।

हमारी सेनाओं ने बांग्ला देश में कई शहरों पर अधिकार कर लिया है और अब जैस्सोर पर बमबारी हो रही है।

छंभ में एक भारी लड़ाई के दौरान पश्चिमी पाकिस्तान के कुछ टैंक बरबाद कर दिए गये हैं।

पाकिस्तानी वायु सेना की कार्यवाही धीमी पड़ गई है। पाकिस्तान के ४२ विमान और ८९ टैंक नष्ट किए जा चुके हैं।

प्रातः ७ दिसंबर, १९७१

भारतीय फौजें स्यालकोट के मोर्चे पर शत्रु को पछाड़ती हुई पश्चिम पाकिस्तान में बहुत आगे बढ़ गई हैं।

कच्छ की लड़ाई में हमारी सेनाओं ने छड़बेट पर अधिकार कर लिया है।

बांग्लादेश में दो पाकिस्तानी जंगी जहाज डुबो दिए गये हैं और बाकी दो को हवाई बमबारी से क्षति पहुंची है।

ढाका पर लगातार बमबारी हो रही है।

संध्या ७ दिसंबर, १९७१

जैस्सोर पर हमारा अधिकार हो गया है।

सिलहट में हमारी फौजें हेलिकाप्टरों द्वारा उतर गई हैं और उन्होंने तमाम शहर पर अधिकार कर लिया है।

आज जिन शहरों को आजाद करवाया गया, उनमें लालमुनीरहाट और मौलवी बाजार शामिल हैं।

कौमीला को घेर लिया गया है और चटगांव और ढाका में यातायात ठप्प हो गया है।

पश्चिम में हमारी फौजें बाड़मेर और सिंध में आगे बढ़ रही हैं, परं छंभ में मुन्नवर नदी के पूर्व की ओर हट गई हैं।

115

फिर कर्फ्यू लगने शुरू हो गये। फिर उधर रात होती, इधर ब्लैक आउट कर दिया जाता। फिर पाकिस्तानी हवाई छतरियों से पूर्वी पंजाब के जंगलों में, खेतों में, उतरने लगे। फिर जोश और उत्साह में भरे पंजाबी, ग्रामीण और शहरी दिन-रात टोलियां बना कर उनकी खोज में निकले रहते। और जहां कोई पाकिस्तानी किसी के हाथ लगता उसको खत्म कर दिया जाता। इस तरह की ज्यादतियों के बड़े भयानक समाचार अखबारों में छपते। एक छापामार कोठे पर

बैठनेवाली औरत के वेश में पकड़ा गया। रेशमी शलवार कमीज,गालों पर लाली,होंठों पर लिपस्टिक। सांवले रंग का पतला लंबा कोमल लड़का था। जब उसे पकड़ा गया तब वह एक तालाब के किनारे बैठा श्रृंगार कर रहा था। ग्रामीणों ने उसकी रबड़ की छातियों को खींच-खींच कर उखाड़ दिया। उसके नकली बालों की चोटियों को नोच डाला। उसकी रेशमी शलवार कमीज उतार ली। उसको नंग-धड़ंग तालाब के किनारे वैसा का वैसा छोड़ कर चले गये सर्दियों के दिन,उन्होंने सोचा,रात हुई और वह ठिठुर कर मर जायेगा। ग्रामीण आंख से ओझल हुए तो पाकिस्तानी छापामार को एक चरवाहिन ने बचा लिया। टीले के पीछे छिप कर बैठी वह सारा तमाशा देख रही थी। चरवाहिन का मर्द बाहर गया हुआ था। उसे पाकिस्तानी लड़का अत्यन्त सुंदर लगा। रात हुई और उसे अपने घर ले गई। उसे खीर बना कर खिलाई, गरम-गरम चाय पिलाई। लाख खातिरदारी की। और फिर उसकी आंख लग गई। सुबह जब चरवाहिन जागी,पाकिस्तानी लड़का गायब था;चरवाहिन के घरवाले के कपड़े पहन कर निकल गया था। बाकी कपड़ों की संदूकची भी ले गया था।

चरवाहिन ने देखा तो उसके होंठों पर एक विचित्र प्रकार की मुसकान खेलने लगी। और फिर नशे-नशे में वह बाहर आंगन में जा बैठी। चरवाहिन लड़की का अंग-अंग फूल-सा हो रहा था। एक नशा-नशा था उसे, पराये मर्द के साथ गुजारी सर्दियों की लंबी रात का। पाकिस्तानी परदेसी के साथ गुज़ारा एक-एक क्षण जैसे तसवीर की तरह उसकी आंखों के सामने घूम रहा था। उसके कानों में की गई परदेसी की सरगोशी, बार-बार नगमों की तरह गूंजने लगती और उसे लगता जैसे वह विभोर हो रही हो।

इस प्रकार एक स्वाद-स्वाद में चरवाहिन बैठी हुई थी कि दनदनाते हुए सिपाही उस के आंगन में घुसे और सपनों में डूबी,धूप सेंक रही चरवाहिन को हिरासत में ले लिया। जब थाने में पहुंची तो उसने देखा सामने सीखचों वाले एक दरवाजे के पीछे उसका रात का मेहमान भी बंद किया हुआ था।

नवां पिंड वालों के हाथ एक अधेड़ उम्र का पाकिस्तानी लगा। उसके पास पुलों को उड़ाने का बारूद था और रेल की पटरियों को उखाड़ने के औज़ार थे। उसे पकड़ते ही ग्रामीण उस पर टूट पड़े।

उधर पाकिस्तानी एक-एक का नाम ले कर मिन्नतें करने लगा। उसने अपनी नकली दाढ़ी को खसोट कर फेंक दिया। यह तो सचमुच कासिम था,करमू नम्बरदार का बेटा। और इधर सारे शशोपंज में पड़ गये। करमू नम्बरदार के,इन लोगों पर इतने एहसान थे। अगर देश का बंटवारा न हुआ होता तो अब शायद वह ईनामखोर बन गया होता। उसके बेटे को कोई कैसे चोट पहुंचा सकता था। और ग्रामीण आपस में बहस करने लगे। ऐसे तू-तू, मैं-मैं करते वे हाथापाई तक उतर आये,जूतियां खड़कने लगीं,लाठियां चलने लगीं।

इस प्रकार लड़ते हुए अब उनका क्रोध जरा ठंडा हुआ,उन्हें होश आया, देखा तो करमू नम्बरदार का बेटा कासिम कहीं भी नहीं था। अपना थैला भी उठाकर ले गया था जिसमें कई तरह का बारूद,हथगोले और पता नहीं क्या-क्या भरा हुआ था।

गांव वालों को जब इसका आभास हुआ तो उनके हाथों के तोते उड़ गये । एक दूसरे को मुंह दिखाने योग्य वे नहीं रहे । उस सारी रात,वे पीछे,अपने गांव नहीं लौटे । सारे इलाके का चप्पा-चप्पा उन्होंने छान मारा । लेकिन पाकिस्तानी छापामार जैसे पर लगा कर उड़ गया हो ।

बईं के तट पर लोगों ने देखा,एक छाताधारी मरा पड़ा था । ऐसा लगता,वह सपेरे का वेश बना कर आया था । एक टोकरी में सांप और थैले में हथगोले,जिनसे वह महत्वपूर्ण भवनों को क्षति पहुंचाना चाहता था,और उसके अपने सांप ने उसे डस लिया था । नीला-पीला हुआ वह पड़ा था,और टोकरी का सांप कहीं गायब था । सपेरे की बीन उसके सामने सपेरे की तरह औंधी पड़ी थी । बेजान,बेहिस । कोई बहुत जहरीला सांप था जिसका काटा पानी नहीं मांगा करता । लोग,पाकिस्तानी छापामार को देख-देख कर उस पर तरस खा रहे थे,हर कोई हाथ मल-मल कर कहता –

"हाय,कितना सुन्दर बांका जवान है ।"

"अभी मुश्किल से इसकी मसें भीगी हैं ।"

"कालेज का लड़का लगता है,पढ़ा-लिखा,जेब में फाउंटेनपेन है ।"

"रोयेंगे इसके मां-बाप । पाकिस्तानी छापामारों की अक्ल मारी गई है ।"

गात्रों से बंधी बंदूकें कंधों पर डाले,गिद्धों की तरह लाश के आगे-पीछे खड़े हुए इस तरह वे बातें कर रहे थे कि आसमान से एक हवाई जहाज नीचे झुकता हुआ गुजरा और एक और पाकिस्तानी छाताधारी को उसने उतारा । ग्रामीण दल के देखते-देखते छापामार एक खेत में आ गिरा । उन्मत्त ग्रामीणों ने उसे वैसे का वैसे जा घेरा और इससे पहले कि वह संभल सकता,उससे उसका हथियार छीन लिया । इस छापामार के पास एक ट्रांसमिटर था जिससे वह लाहौर बात कर सकता था,उधर से जवाब ले सकता था । पाकिस्तानी छापामार के पास कई दिनों के लिए भोजन था । गांव के नवयुवकों ने उसकी मिठाई छीन कर खा ली । बाकी बचा-खुचा उसे वापस कर दिया ।

मुसलमानों की छुई हुई चीजें हम नहीं खाते । उन्होंने नाक चिढ़ाते हुए उससे कहा,और फिर उनके मन में पता नहीं क्या आया,उसको पकड़ कर पहले छापामार की लाश के पास ले गये । और फावड़ा दे कर उसे उसकी कब्र खोदने के लिए उन्होंने कहा । सारी दोपहर वह अपने साथी की कब्र खोदता रहा । शाम हो गई । जब कब्र तैयार हो गई तो ग्रामीणों ने मरे हुए छापामार और जिंदा छापामार दोनों को कब्र में डाल,मिट्टी फेंक कर,मिट्टी में दबा दिया । हंसते जाते और हाथ जोड़ रहे जीते-जागते नौजवान को कब्र में दबाते जाते । भलेमानस,मरना तो तुझे है ही । हम में से कौन फिर कब्र खोदेगा ? अब कब्र खुदी हुई तैयार है,तेरी मिट्टी भी ठिकाने लगाये जाते हैं ।

परले गांव के लोगों ने एक पाकिस्तानी छाताधारी को ईख के खेत में जा घेरा । उसके पास एक डायरी में इलाके भर के जाने-माने लोगों के नाम और पते लिखे हुए थे । पूछने पर पता चला,वह भी इधर से ही उजड़ कर उधर गया था । पास के गांव के वे रहनेवाले थे । उनकी अपनी जमीनें थी,बाग थे । और देहाती उसके पास बैठ कर इधर से गये अपने साथियों

और परिचितों का हालचाल पूछने लगे। कोई कहीं जा बसा था, कोई कहीं जा बैठा था। किसी का ब्याह हो गया था, कोई कुंवारा रह गया था। कइयों के बेटियां, बेटे जवान हो गये थे। बार-बार पाकिस्तानी छापामार कहता, इधर से गये लोग वहां खुश नहीं हैं। उन्हें अपना इधर का घरबार बहुत याद आता है। और इस तरह की बातें सुनना देहातियों को बडा अच्छा लगता था। फिर छापामार ईख के खेत में गया और शराब की बोतल निकाल लाया। ऐसा लगता था, वह तो कई दिनों से यहां जम कर बैठा हुआ था। शराब की बोतल देख कर देहातियों की जैसे बॉछें खिल गईं। ईख के खेत के एक कोने में बैठे वे घूंट-घूंट दारू पीने लगे। एक बोतल के बाद एक और बोतल। अपने बिछड़े हुए साथियों की कहानियां सुनते जाते और घूंट-घूंट शराब पीते जाते। पीते-पीते रात हो गई। फिर वे गाने लगे। दूसरी बोतल खत्म हुई तो पाकिस्तानी फिर ईख के खेत में घुसा, तीसरी बोतल लाने के लिए, देहाती नशे में धुत्त, हंस रहे, गा रहे सुरूर में थे। पांच मिनट बीत गये। दस मिनट बीत गये, पंद्रह मिनट बीत गये। फिर अचानक उनमें से एक को होश आया। पाकिस्तानी छापामार खेत में से बाहर नहीं निकला था। कुछ देर उन्होंने और बाट देखी। फिर उसे आवाज़ें लगाने लगे – फतह ओ फतह ! फतह तो कहीं भी नहीं था। फिर ईख का खेत उन्होंने छान मारा। फतह गायब हो गया था। अगली सुबह जब पुलिस को पता चला, उन्होंने सारा क्षेत्र ढूंढ़ डाला, पाकिस्तानी छापामार की कोई खबर नहीं मिली।

116

प्रातः ८ दिसंबर, १९७१

बांग्लादेश में पाकिस्तानी सेनाओं ने मोंगला और खुलना के बंदरगाह खाली कर दिए हैं।

सिलहट को मुक्त करवा कर भारतीय सेनाओं नें खादिम नगर और सलूटीकर के हवाई अड्डों पर घेरा डाल लिया है।

मुक्तिवाहिनी ने भारतीय सेनाओं के संग-संग जैसूर और रंगपुर में और क्षेत्र शत्रु से छुड़वा लिया है।

संध्या ८ दिसंबर, १९७१

ढाका की ओर धावा जारी है।

दक्षिण पूर्व की ओर हम केवल ४० किलोमीटर दूर हैं और दक्षिण पश्चिम की ओर हम रेल और सड़क के मागुरा नामक जंकशन तक पहुंच गये हैं।

कोमीला और उसके छः हवाई अड्डे आजाद करवा लिये गए हैं। अब मयनामाटी छावनी की ओर शत्रु के भाग निकलने का कोई रास्ता नहीं रहा।

ब्रह्मबारियां पर हमारा अधिकार हो गया है।

छंभ के इलाके में घमासान युद्ध में पाकिस्तानियों को पीछे हटना पड़ा। हमने उनके ३३ टैंक तबाह कर दिए।

पाकिस्तान ने १२ और हवाई जहाज गंवाये हैं।

प्रातः ९ दिसंबर, १९७१

बांग्ला देश में शत्रु की सेना में हर ओर भगदड़ मची हुई है। दिनाजपुर पर हमारा अधिकार पा लेना निश्चित है। सैदपुर की छावनी पर भारी दबाव डाला जा रहा है।

जनरल माणिक शाह ने कहा है कि अगर भागती हुई पाकिस्तानी फौज हार नहीं मानती तो वह मौत को बुलावा दे रही है।

बारमार के इलाके में हमारी सेना ने शत्रु की सभी चौकियों पर अधिकार कर लिया है। दो रेलगाड़ियां, जिनमें फौजी सामान लदा हुआ था, तबाह कर दी गई हैं।

कारगिल में हमारी सेना का पलड़ा भारी है।

संध्या, ९ दिसंबर, १९७१

हम ढाका के निकट पहुंच गये हैं।

आशूगंज, भैरव बाजार, चांदपुर, दाऊदकंदी और नारायणगंज, अब हमारे अधिकार में हैं।

पश्चिमी मोर्चे पर हमारी सेनाएं अब छंभ के क्षेत्र में मुनव्वर तवी के किनारे तक पहुंच गई हैं।

कारगिल में ९ और चौकियों पर हमारा अधिकार हो जाने से लेह की सड़क पर भारतीय सेना का अधिकार है।

अमरीका में बनी पाकिस्तानी पनडुब्बी ग़ाज़ी को डुबो दिया गया है।

कराची बंदरगाह पर दूसरी बार हमला हुआ है।

प्रातः १० दिसंबर, १९७१

ढाका को लगभग घेरा जा चुका है। नगर शेष संसार से अलग कर दिया गया है।

हमारे हवाई जहाजों ने फिर बारीसाल पर हमला किया है।

छंभ के मोर्चे पर शत्रु के १९ टैंक नष्ट कर दिए गये हैं।

सिंध में हमारी फौजों ने नगर को पार करके शहर पर अधिकार जमा लिया है।

संध्या १० दिसंबर, १९७१

श्रीमती गांधी ने एलान किया है कि उन्हें अपनी जीत पर रत्तीभर संदेह नहीं।

मेघना के पश्चिमी तट पर हमारी सेनाएं ढाका पर आखिरी हमले के लिए तैयार खड़ी हैं।

छंभ में भयंकर युद्ध हो रहा है।

प्रातः ११ दिसंबर, १९७१

छंभ में पाकिस्तानी हमले को बेकार कर दिया गया है और शत्रु को नदी के दूसरे किनारे पर खदेड़ दिया गया है। शत्रु को भारी क्षति पहुंची है।

बांग्ला देश में नवाखाली और गईतंदा मुक्त करवा लिए गये हैं। शत्रु की सेनाएं दिनाजपुर को खाली कर कर रही हैं।

पूर्वी क्षेत्र में १६०० पाकिस्तानी सैनिकों ने हथियार डाल दिए हैं।

छः और युद्ध-नौकाएं नष्ट कर दी गई हैं और दो पर अधिकार कर लिया गया है।

संध्या, ११ दिसंबर, १९७१

ढाका पर हमले की तैयारियां ज़ोरों पर हैं। हमारी फौजों ने मुक्तिवाहिनी की सहायता से मेघना नदी के पूर्वी तट पर पाकिस्तानी फौजों को नकारा कर दिया है।

बांग्ला देश में दस और महत्वपूर्ण नगर हमारे अधिकार में आ गये हैं और १९०० पाकिस्तानी सैनिक पकड़े गये हैं।

छंभ में हमारी फौजों ने शत्रु को मुनव्वर तवी के पश्चिमी तट से आगे नहीं बढ़ने दिया।

जनरल माणिक शाह ने बांग्ला देश में पाकिस्तानी फौजों को हथियार डालने की अनुमति दी है।

प्रातः १२ दिसंबर, १९७१

ढाका पर कई ओर से आक्रमण जारी है। शत्रु की सेना की टुकड़ियों का एक-दूसरे से संबंध टूट गया है। रावलपिंडी ने माना है कि स्थिति चिंताजनक है।

कारगिल के क्षेत्र में शत्रु की दो और चौकियों पर हमारा अधिकार हो गया है।

छंभ क्षेत्र मौन है।

सिंध में नया छोर के इलाके में घमासान युद्ध हो रहा है।

संध्या १२ दिसंबर, १९७१

बांग्ला देश की आज़ादी निर्णायक पड़ाव पर पहुंच गई है। ढाका के अंदर और इधर-उधर लड़ाई हो रही है।

खुलना पर हमला होने ही वाला है।

बांग्ला देश में शत्रु भारी गिनती में हर ओर हथियार डाल रहा है।

कच्छ के क्षेत्र में छड़बेट का समूचा इलाका हमारे अधिकार में हैं।

117

यह मुजीब नगर कहां है ? कुलदीप कई लोगों से पूछ चुका था। कोई कुछ जवाब देता, कोई कुछ।

मुजीब नगर के रेडियो स्टेशन से सबेरे शाम प्रोग्राम ब्राडकास्ट किए जाते थे। बंगला में सुरीले गीत, मुक्तिवाहिनी और भारतीय सेनाओं की विजय की विस्तारपूर्वक विवेचना। ये जीत की कहानियां भी नगमों की तरह कुलदीप के कानों में गूंजती रहतीं।

यह मुजीब नगर है कहां ? भारत में है ? बांग्ला देश में है ? किस प्रदेश में है ? कौन-सी सड़क वहां जाती है ? कुलदीप को याद था, एक बार अखबारों में तसवीरें छपी थीं, मुजीब नगर में कोई समारोह हुआ था। अखबार वालों को बुलाया गया था। कुछ विदेशी पत्रकार भी इनमें शामिल थे। उन दिनों अभी भारत से पाकिस्तान की लड़ाई शुरू नहीं हुई थी। मुक्तिवाहिनी का संघर्ष जोरों पर था। भारत से जीपों में बिठा कर लोगों को बांग्ला देश में किसी जगह ले जाया जाता था, जिसको लोग बांग्लादेश की अस्थायी राजधानी मुजीब नगर बताते थे। पर उस शहर का पता क्या है ?

और जो खबर बांग्ला देश के बारे में आती, मुजीब नगर से आ रही थी। हर कोई मुजीब नगर के किस्से सुना रहा था।

कुसुम की चिट्ठी, कुलदीप को मुजीब नगर से आई थी। और कुलदप उसे उत्तर भेजना चाहता था। साधारण पत्र तो डाक के बक्से में डाला जा सकता था, लेकिन रजिस्टरी डाकखाने वाले लेने से कतरा रहे थे।

बांग्ला देश की बाकायदा सरकार थी। उस सरकार के मंत्री थे। उस सरकार की सेना थी। उस सरकार को भारत ने मान्यता दी थी। उस सरकार की बाकायदा राजधानी थी जिसे लोग मुजीब नगर के नाम से जानते थे।

पर यह मुजीब नगर था कहां ?

मुजीब नगर से फरमान जारी होते थे, कोई कहां युद्ध करेगा, कब युद्ध करेगा, किसकी कमान में युद्ध करेगा ? मुजीब नगर का एक इशारा, और एक कौम की कौम मरने-मारने के लिए तैयार हो गई थी। मुजीब नगर से आदेश होता था और मुक्तिवाहिनी के सेनापति और सिपाही जान पर खेल जाते थे।

पर यह मुजीब नगर था कहां ?

कोई कहता मुजीब नगर का सही ठिकाना इसलिए नहीं बताया जाता था क्योंकि बंगला देश की जनता को यह खतरा था कि पाकिस्तान अपनी फौजों को उधर भेज कर उसे बरबाद कर देगा। लगातार हवाई बमबारी करके नगर के नगर धराशायी कर देगा।

कोई कहता मुजीब नगर कलकत्ता में था। भारत सरकार ने बांग्ला देश की सरकार को कुछ भवन अपना सचिवालय चलाने के लिए दे दिए थे। इस बस्ती को बांग्ला देश मुजीब नगर कहते थे।

जितने मुंह उतनी बातें।

कुलदीप परेशान था। उसके पास कुसुम की चिट्ठियां आती थीं। हर एक में बस अपने पते की जगह मुजीब नगर लिख देती थी। जो चिट्ठियां जवाब में कुलदीप लिखता था, उसको यकीन था, कुसुम को नहीं मिलती थीं। कुसुम ने उसका कभी बखान नहीं किया था। हर चिट्ठी में बस अपनी बात कहती रहती। पाकिस्तान सैनिकों द्वारा मासूम औरतों पर ढाये गये अत्याचारों की कहानी। हर कहानी और दर्दनाक होती। हर कहानी और भयानक होती। और अब जैसे मुक्तिवाहिनी वाले अपने क्षेत्रको पाकिस्तानी सेनाओं से मुक्त करवाते जाते वैसे-वैसे

लोग अपने-अपने नगर, अपने-अपने गांव, अपने-अपने घर लौट रहे थे।

कुलदीप की इच्छा थी कि इससे पहले कि बांग्ला देश में उजड़े लोग फिर अपने अपने ठिकाने पर जम जायें, वह उनकी कोई न कोई सेवा अवश्य करे। पर आज़कल तो पाकिस्तानी हमले के कारण अपने शहर में उसके लिए ढेरों काम था। सवेरे घर से निकलता और कहीं ब्लैक आउट होने के समय घर लौटता। न कुछ खाने की होश, न पीने की।

और फिर कुसुम की एक और चिट्ठी आई – "एक राज़ मैंने तुम से इतने महीनों से छिपा रखा है। कुछ दिनों में मां बननेवाली हूं। कुछ दिन, और मेरी गोदी में एक नन्हा-सा कुलदीप होगा।"

कुलदीप ने कुसुम की चिट्ठी पढ़ी और उसका जी चाहा, किसी तरह उड़ कर उसके पास पहुंच जाये। कुलदीप चाहता था, कुसुम के बच्चा होने से पहले वह उसके साथ चार फेरे ले ले।

पर मुजीब नगर कहां था ? वह कहां जाये ?

और फिर किसी ने कुलदीप से कहा, मुजीब नगर वहां है जहां कोई हिंसा के विरुद्ध न्याय के लिए लड़ता है; हर उस जगह जहां लूट-खसोट और सीनाजोरी के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है, वहां मुजीब नगर है। मुजीब नगर यहां, वहां, हर जगह है।

और कुलदीप उसके मुंह की ओर देखता रह गया।

कुलदीप बहुत बेचैन था। उसका दिल उछल-उछल पड़ता। उस शाम पाकिस्तानी हवाई जहाजों ने हमला किया। सब लोग भाग कर सुरक्षित स्थानों पर पहुंच गये। कुलदीप जहां खड़ा था, हक्का-बक्का वहीं खड़ा रहा। जिस किसी ने देखा कुलदीप की इस हरकत पर हर एक को हैरानी हुई।

अगले दिन कुसुम की एक चिट्ठी आई – मुझे विश्वास है, मेरी पिछली चिट्ठी पढ़कर तुम मेरे पास आने के लिए उतावले हो रहे होगे। यह भी मुझे यकीन है, तुम हमारे संबंध को कोई कानूनी सूरत देना चाह रहे होंगे। एक दिन तुमने किसी और के सिलसिले में अपनी इस तरह की राय दी थी। मुझे विश्वास है, तुम नहीं चाहोगे कि तुम्हारा बच्चा किसी अनब्याही मां की गोद में खेले। पर, मेरे कुलदीप, हालात ने तुम से गहरी साजिश की है। तुम्हें उस बच्चे का पिता बनना पड़ेगा, जिसकी मां का ब्याह तुम्हारे साथ नहीं हुआ। यह एक वास्तविकता है जो सदा-सदा के लिए तुम्हारे सामने रहेगी।

कुलदीप उसी क्षण घर से निकल पड़ना चाहता था, किस तरह कहीं भी कुसुम को ढूंढकर वह उसके साथ चार फेरे ले ले। पर उसे यकीन था, यह सब बेकार था। कुसुम ने जानबूझ कर इतने दिन से उसको अपना ठौर ठिकाना नहीं बताया था। और अब उसका उसके पास पहुंच सकना कदाचित् संभव नहीं था।

कुलदीप दांत पीसकर रह गया।

118

प्रातः १३ दिसंबर, १९७१

बांग्लादेश में सारे का सारा कुशतिया जिला पाकिस्तानी फौज से खाली करवा लिया गया है।

ढाका में अफरा-तफरी मची हुई है।

बांग्लादेश के पूर्वी क्षेत्र में दुश्मन के कोई चार हजार सिपाहियों ने हथियार डाल दिए हैं।

संध्या, १३ दिसंबर, १९७१

हमारी फौजें ढाका को घेर रही हैं। एक दस्ता ढाका से कोई १६ मील पर है, दूसरा १८ मील पर।

खुलना में लड़ाई हो रही है।

पश्चिमी सीमा पर कारगिल के क्षेत्र में शत्रु की दो और चोकियों पर हमारा अधिकार हो गया है।

नया छोर की लड़ाई में हमारी सेना को और सफलता मिली है।

प्रातः १४ दिसंबर, १९७१

ढाका में पाकिस्तानी दस्ते हमारे तोपखाने की मार में हैं। हमारी फौज खुलना पर दबाव बढ़ा रही हैं।

संध्या, १४ दिसंबर, १९७१

ढाका में तैनात पाकिस्तानी फौज की एक टुकड़ी ने हथियार डाल दिए हैं।

इधर हमारे तोपखाने की ओर से गोलाबारी शुरू हुई और उधर सिविल के कई उच्च अधिकारी इस्तीफा देकर रेडक्रास के अहाते में हिफाजत के लिए पहुंच गये हैं।

बोगरा सहित शत्रु के कई मजबूत ठिकाने हमारे अधिकार में आ गये हैं।

स्यालकोट सैक्टर में कोई एक हज़ार वर्ग किलोमीटर इलाके पर हमारा अधिकार है।

कारगिल सीमा पर शत्रु की तीन और चौकियों ने हथियार डाल दिए हैं।

श्रीनगर पर आज दो सेबर जेट बम्बार गिराये गये।

बरमार क्षेत्र में घमासान युद्ध हो रहा है और हमारी सेनाएं और आगे बढ़ी हैं।

प्रातः, १५ दिसंबर, १९७१

बांग्ला देश की अधिकृत सरकार ने त्यागपत्र दे दिया है।

ढाका के लिए लड़ाई जारी है। हमारी फौजें शहर की ओर बढ़ रही हैं।

चटगांव बंदरगाह जल रहा है।

संध्या, १५ दिसंबर, १९७१

बांग्ला देश की अधिकृत सरकार के कमांडर ने युद्ध-विराम के लिए प्रार्थना की है।

जनरल मानिक शा ने उसे कल सवेरे दो बजे तक अपनी फौजों को हथियार डाल देने

की हिदायत देने के लिए कहा है, नहीं तो फिर पूरे ज़ोर से हमला शुरू कर दिया जायेगा।

वचन के अनुसार आज शाम पांच बजे से ढाका पर हवाई हमले बंद कर दिए गये हैं।

हमारी सेनायें ढाका शहर से कोई दो मील दूर हैं।

अमृतसर सीमा पर एक, और बारमार सीमा पर शत्रु के दो लड़ाकू हवाई जहाज मार गिराये गये हैं।

119

अरी लड़की! तेरी नींद वैसे ही खुल-खुल जाती है। और सोहणेशाह करवट बदल कर सो गया।

लेकिन नहीं यह हवा नहीं। बाहर आंगन का द्वार किसी ने खटखटाया था। शायद डब्बू होगा। डब्बू को आजकल चैन नहीं था। जब से पाकिस्तानी छाताधारी उतरना शुरू हुए थे, डब्बू गली में ज़ंजीर नहीं डालने देता था, न दिन को, न रात में, गली में अकेला बैठा झपकियां लेता रहता। कोई बात भी हुई।

ठक! ठक! ठक! कोई द्वार खटखटा रहा था।

नाना! बाहर कोई है।

सोहणेशाह गहरी नींद सोया पड़ा था।

कोई घंटा हुआ ठीकरी पहरा देकर लौटा था। सारा-सारा दिन खेतों में मिट्टी के साथ मिट्टी होना, रात को बारी-बारी से पहरा दो। कैसे दिन आ गये थे।

नाना, उसने फिर सोहणेशाह को आवाज लगाई।

राजी, तू पागल न बन, सो जा।

बाहर कोई है, नाना! मैं कहती हूं, बाहर कोई है।

कोई नहीं; वैसे ही तेरा भ्रम है। तुझे डर लग रहा है। न घर में कुलदीप है। और सीता भी आजकल ससुराल गई हुई है।

और राजी लज्जित हो गई, शायद यही बात हो। उसे शायद डर ही लग रहा था। आजकल इसे कैसे बुरे-बुरे सपने आते थे। कुलदीप कहता, तू सोती जो बहुत है। ब्लैक आउट में कोई करे भी क्या? इधर अंधेरा होता, उधर राजी पांव पसार कर पड़ जाती। इधर लेटती उधर उसे नींद आ दबोचती। जवान-जहान; अल्हड़।

ठक! ठक! ठक! बाहर तो कोई था।

बाहर कोई है, नाना। राजी ने फिर सामने खाट पर सो रहे चौधरी सोहणेशाह को जगाया।

अरे लड़की तू दम नहीं मारने देती। इस कुलदीप को आज ही बाहर जाना था। कहता तो था, मैं शाम को आ जाऊंगा। बाहर डब्बू होगा।

"यह बात नहीं नाना, मैं कहती हूं, बाहर जरूर कोई है।"

"कोई नहीं, कोई भी नहीं, तू सो जा, बस!"

"नाना! हमने अब तक ईख नहीं काटी। बाकी लोगों ने आगे-पीछे अपने खेत खाली कर दिए हैं, जब से ये मुए छाताधारी उतरने शुरू हुए हैं। मैं कहती हूं, अगर कुलदीप ने कल ईख न कटवाई तो मैं इसे जला डालूंगी। लोगों ने अपने खेत के खेत बरबाद कर दिए हैं। सिर-सिर तक ईख लगी है। कुछ पता है, इसमें आकर कोई छिप जाये। बैरी का भरोसा नहीं करना चाहिए। मैं कहती हूं, नाना! तुम सुन भी रहे हो...?"

नहीं, वह फिर सो गया था। बातें करते-करते वह सो जाता।

"ठक! ठक!! ठक!!!"

बाहर तो कोई है। और इस बार राजी कपड़ा ओढ़ कर कमरे से बाहर निकल गई। बरामदा, दालान, आंगन, गली का दरवाज़ा।

आकाश पर बादल घिरे हुए थे। आज अंधेरा भी कितना था। उधर ब्लैक आउट। हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता था। यह कमबख्त डब्बू पता नहीं कहां जा डूबा था। वैसे दम नहीं लेने देता था। जब जरूरत हो तब गायब।

कुढ़ते-बुड़बुड़ाते हुए राजी ने आंगन का किवाड़ खोला।

"कौन?"

"कमाल।"

और अगले क्षण राजी कमाल की बांहों में थी।

"भाई मेरे, तू कहां?" और उसे छिपा कर राजी आंगन के भीतर अंधेरे में ले गई। उसने भीतर से सांकल चढ़ा ली। बार-बार उसके कंधों को, उसकी बांहों को, उसके हाथों को चूमने लग जाती। बार-बार उसे भाई, भाई मेरे कहती। उसके सीने पर अपना सिर रख कर आंखें मूंद लेती।

"कमाल, तुम लोगों ने हमें कभी चिट्ठी भी नहीं डाली। जब से अम्मी गई है, उसने हमारी बात नहीं पूछी। कई महीने बीत गये हैं। मुझसे लाख इकरार करके यहां से चली थी। अब्बा का क्या हाल है? उन दिनों अम्मी बड़ी परेशान लगती थी। हाय, तू कैसा बांका जवान निकला है। ऊंचा और लम्बा, गोरा और चिट्टा। ये बाल तू ने भी बढ़ाये हुए हैं। मुझे लड़कों के लंबे बाल बहुत अच्छे लगते हैं। लड़कियों के छोटे बाल, लड़कों के लंबे बाल। पर तू इस वक्त किधर मेरे भाई, तू कहां से आया है? कब आया है? कैसे आया है...?

"जैसे पिछली बार आया था।" कमल बिट-बिट उसके मुंह की ओर देख रहा था।

और फिर राजी को सब प्रश्नों के उत्तर समझ में आ गये। राजी के दिल की एक धड़कन जैसे खो गई हो। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया।

और अपने भाई को पकड़ कर उसने सामने कोने में सुनसान भूसे के कोठे में जा छिपाया

फिर सारा समय वह बातें करता रहा। अब्बा की बातें। अम्मा की बातें। छोटे भाई जमाल की बातें। और वह ऊंघने लगा। कब का ईख के खेत में पड़ा था। ईख के खेत में किसी को

नींद थोड़े ही आती है। बातें करते-करते वह सो गया। जवानी की नींद, बेहोश पड़ा था।

राजी ने उसके झोले को टटोल कर देखा। हथगोले थे। बारूद था, पलीता था। और राजी सिर से पांव तक कांपने लगी।

अगले क्षण राजी भूसे के कोठे में से निकल आई।

बड़े कमरे में लौटकर अपने काम में लगी हुई राजी के हाथ से मिट्टी के तेल की बोतल कुछ इस तरह छूटी कि सोहणेशाह की आंख खुल गई।

"यह तू इस समय क्या कर रही है राजी?"

"वैसे ही यह बोतल गिर गई थी।"

"इस समय तूने क्या खटर-पटर लगा रखी है?"

"मैं लालटेन जलाने लगी थी, ब्लैक आऊट में बिजली जलाई तो बाहर सीटियों वाले टूट कर आ पड़ेंगे।

सोहणेशाह ने कुछ नहीं सुना, वह फिर सो गया था। राजी ने कनस्तर में से मिट्टी के तेल की कई बोतलें भर लीं।

और फिर एक उन्माद में, शेरनी की तरह वह बाहर बरामदे के अंधेरे में निकल गई। उसके दांत, उसके होंठ को काट-काट कर लहू-लुहान कर रहे थे।

कोई पांच मिनट, और फूले हुए सांस के साथ राजी बड़े कमरे में लौट आई। सामने सोहणेशाह सो रहा था। राजी चारपाई पर लेट कर करवटें बदलने लगी। किड़-किड़, किड़-किड़। वही बात। राजी तुझे डर लग रहा है। मैंने नहीं कहा था, आजकल तुझे डर लगने लगा है, जब से ये मुए छाताधारी इधर उतरना शुरू हुए हैं।

हां, राजी ने धीरे से कहा। उसका गला भर आया था।

शेर बच्चियां डरा नहीं करतीं।

हां! हां! राजी की आंखें छल-छल बरस रही थीं। सामने भूसे के कोठे से लपटें निकलनी शुरू हो गई थीं। चारों ओर से एक ही दफा सारे के सारे कोठे में आग लग गई थी। और राजी को; अंजलि भर-भर बह रही आंखों से लगता जैसे वे लपटें नाच रही हों, गा रही हों। गा रही हों अपने प्यारे देश का कोई तराना।

इतने में शोर मच गया। सोहणेशाह के घर आग लग गई थी। सोहणेशाह जाग गया, अड़ोसी-पड़ोसी, गली मोहल्ले वाले आ गये। आग बुझाने वाले पहुंच गये। कुलदीप बाहर से लौट आया। बाकी घर को तो बचा लिया गया पर सोहणेशाह का भूसे का कोठा जल कर एक ढेर होकर रह गया; और बस।

आग बुझा चुके तो सोहणेशाह ने देखा, राजी कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। राजी कहां थी?

भीड़ में होगी। भीड़ छंट गई। राजी कहीं भी नहीं थी।

भीतर किसी कमरे में होगी। सोहणेशाह भीतर घुस कर एक-एक कमरा देख आया। राजी कहीं भी नहीं थी।

अड़ोस-पड़ोस में कहीं चली गई होगी। सोहणेशाह ने घर-घर पता किया। राजी कहीं भी नहीं थी।

राजी कहां थी ?

सोहणेशाह ने सीता से पूछा। सीता कुलदीप से पूछती। कुलदीप को क्या पता, वह तो बाहर गया हुआ था। सीता को क्या पता, वह तो ससुराल से लौटी थी।

सोहणे शाह अपने-आपसे पूछता। राजी कहां थी ?

और सोहणेशाह को लगता कि वह समूचे का समूचा जैसे एक प्रश्न चिह्न बनकर रह गया हो।

120

दिसंबर १६,१९७१

बांग्ला देश में पाकिस्तानी फौजों ने बिना शर्त हथियार डाल दिए हैं।

भारत ने कल शाम आठ बजे से पश्चिमी क्षेत्र में इकतरफा जंगबंदी का एलान कर दिया।

उस शाम सोहणेशाह घर में अकेला था। बिल्कुल अकेला। कुलदीप, सीता, गुरमीत सब राजी को ढूंढ़ने निकले हुए थे। रात यख-ठंडी थी। ठंडी और भीगी-भीगी। धुंध-धुंध-सी चारों ओर। धुंध का एक गुबार फैला हुआ था। आंगन में धुंध, छत पर धुंध, आकाश में धुंध, सोहणेशाह की आंखों में, कानों में, दिमाग पर धुंध। और फिर उस धुंध में से बूंदे टपकने लगीं — टप-टप-टप।

कुछ देर और आंगन में डब्बू ने चिल्लाना शुरू कर दिया। जैसे किसी की याद में हलकान हो रहा हो। डब्बू राजी को बुला रहा था ? नहीं, इस तरह जब कुत्ता रोता है तो कहते हैं किसी की मौत होती है। किसी घर में मातम मनाया जाता है।

और फिर बाहर चौकीदार डंडे को ठक-ठक बजाते हुए जाता सुनाई दिया, खबरदार, खबरदार। डंडे की हर ठक से सोहणएशाह के सिर में एक धमाका होता। चौकीदार की आवाज उसके कानों में गूंजने लगी — खबरदार, खबरदार, खबरदार।